CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. 3866

Book No. 294.4
ज प

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला : १०

यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन
न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य,
जैनदर्शनाचार्य, एम. ए., पी-एच. डी.

State Museum, Library
3866
19.12.69

पढमं नाणं तओ दया

सच्चं लोगम्मि सारभूयं

सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी द्वारा पी-एच० डी० को उपाधि के लिए स्वीकृत

YAŚASTILAKA KĀ SĀṂSKṚITIKA ADHYAYANA

(A Cultural Study of the Yaśastilaka)

by

Dr. Gokul Chandra Jain, M. A., Ph. D.

294.4
जं यें

प्रकाशक :
सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति,
गुरु बाजार,
अमृतसर

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय लखनऊ 19/12/69

प्राप्ति-स्थान :
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान,
जैनाश्रम,
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५

प्रकाशन-वर्ष :
सन् १९६७

राज्य संग्रहालय, लखनऊ
क्रम 3866
प्राप्ति ति. 18/12/69
State Museum, Library, Lko.

3866
19.12.69

मूल्य :
बीस रुपये

मुद्रक :
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के छोटालाल केशवजी शाह शोधछात्र रहे हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध 'यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन' सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति द्वारा प्रकाशित चौथा शोध-प्रबन्ध है। डॉ० जैन समिति के चौथे सफल शोधछात्र हैं।

इस शोध-छात्रवृत्ति का कुछ लम्बा इतिहास हो गया है। बम्बई में स्व० सेठ छोटालाल केशवजी शाह से १९४८ में पाँच हजार रुपये शोधकार्य के लिए मिले थे। पहले एक अन्य शोधछात्र को यह कार्य दिया गया। दुर्भाग्यवश तीन बार के परिश्रम के बाद भी उनका प्रबन्ध विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत नहीं हुआ। तदनन्तर यह छात्रवृत्ति श्री गोकुलचन्द्र जैन को दी गयी। सन् १९६० में कार्य आरम्भ हुआ और प्रबन्ध तैयार होकर दिसम्बर १९६४ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया गया। प्रबन्ध स्वीकृत हुआ तथा उसके उपलक्ष में श्री जैन को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

'यशस्तिलक' एक महान् ग्रन्थ है। उसकी अनेक विशेषताएँ हैं। यह ग्रन्थ अपने काल में और बाद में भी आदरणीय रहा है। यह प्रबन्ध यशस्तिलक की सांस्कृतिक सामग्री का विवेचन प्रस्तुत करता है। इससे पूर्व भी विद्वानों ने इस ग्रन्थ की ओर ध्यान दिया है। डॉ० हन्दिकी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ० जैन ने अपने प्रबन्ध में एक स्थान पर लिखा है कि यशस्तिलक के अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। डॉ० हन्दिकी जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे, तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा।

यशस्तिलककार सोमदेव सूरि की आस्था जैन हैं, परन्तु उनके लेखन का दृष्टिकोण विस्तृत है। संन्यस्त व्यक्तियों के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें जैन नाम भी हैं।

साग-सब्जी के उल्लेखों में आलू जैसे जनप्रिय साग का अभाव है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि आलू भारतीय नहीं है। विदेश से आकर यहाँ भी फूला-फला है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समिति स्व० सेठ छोटालाल केशवजी शाह के परिवार का आभार मानती है कि उन्होंने अपने प्रियजन की स्मृति में प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रकाशित करवाने का खर्च अपने पास से दिया है। स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, जो समिति की जैन साहित्य निर्माण-योजना के प्रेरक थे और डॉ० जैन के निर्देशक भी, के प्रति भी यह समिति हार्दिक आभार प्रकट करती है। पा० वि० शोध संस्थान के अध्यक्ष को भी समिति धन्यवाद देती है कि उनके निर्देशन में संस्थान उन्नतिशील हो रहा है।

फरीदाबाद
२४. ७. १९६७

– हरजसराय जैन
मंत्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राथमिक

सन् १९५६ में एक धार्मिक परीक्षा के निमित्त मैंने पहली बार यशस्तिलक पढ़ा था, और तभी लगा था कि इस में बहुत कुछ ऐसा है, जो अबूझा बच जाता है। तब से वह बहुत कुछ जानने की साध मन में बनी रही।

काशी आने के बाद प्रो० हन्दिकी की 'यशस्तिलक एण्ड इडियन कल्चर' पुस्तक सामने आयी तथा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का सम्पर्क मिला तो वह साध और भी जगी।

जुलाई १९६० में डॉ० अग्रवाल के निर्देशन में प्रस्तुत प्रबन्ध की रूपरेखा बनी और दिसम्बर १९६४ में प्रबन्ध प्रस्तुत रूप में तैयार होकर हिन्दू विश्व-विद्यालय को परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया गया। पुस्तक रूप में प्रकाशित होते समय भी मैंने इसमें आंशिक परिवर्तन ही किये हैं। इससे यह भी ज्ञात होगा कि शोध-प्रबन्ध को अनावश्यक विस्तार और मोटापा देना अनिवार्य नहीं है।

मैंने यशस्तिलक की अधिकतम सामग्री को निकाल कर उसके विषय में भरसक पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न किया है। सोमदेव के लेखन की यह विशेषता है कि आगे-पीछे वह अपने शब्द-प्रयोग आदि के विषय में जानकारी देते चलते हैं; फिर भी जिस विषय का सोमदेव ने केवल उल्लेख मात्र किया है उसके विषय में सोमदेव के पूर्ववर्ती, समकालीन तथा उत्तरवर्ती मनीषियोंके ग्रन्थों से जानकारी प्राप्त की गयी है और उन सबको प्राचीन साहित्य, कला एवं पुरातत्त्व की साक्षी पूर्वक जाँचा-परखा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में संगृहीत संपूर्ण सामग्री तथा उसकी प्रमाणक सामग्री मैंने मूल स्रोतों से स्वयं ही संगृहीत की है। आधुनिक अनुसंधाताओं के ग्रन्थों से जो सामग्री ली है, उसका यथास्थान उल्लेख किया है। मैं पूर्णतया सचेष्ट रहा हूँ कि प्राचीन ग्रन्थों के किसी भी अप्रामाणिक संस्करण या किसी भी अमान्य नयी कृति का उपयोग संदर्भ ग्रन्थ के रूप में न किया जाये। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध की प्रत्येक सामग्री, उसके प्रस्तुतीकरण और विवेचन के लिए मैं अपने को उत्तरदायी अनुभव करता हूँ। यदि कहीं कोई भूल-चूक भी हुई हो तो वह भी मेरी ही कहना चाहिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी कृति के विषय में स्वयं कुछ कहना उचित नहीं लगता। यदि मनीषी विद्वान् यह अनुभव करेंगे कि प्रस्तुत प्रबन्ध आधुनिक साहित्यिक अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और इसके माध्यम से यशस्तिलक की महनीय सामग्री का भविष्य के शोध-प्रबन्धों, इतिहास-ग्रन्थों तथा शब्द-कोशों में उपयोग किया जा सकेगा, तो मैं अपने प्रयत्न को सार्थक समझूँगा। इस प्रबन्ध में मैंने उन्हीं विषयों को लिया है, जो प्रो० हन्दिकी के ग्रन्थ में नहीं आ पाये। इस दृष्टि से यह प्रबन्ध तथा प्रो० हन्दिकी का ग्रन्थ दोनों मिलकर यशस्तिलक के साहित्यिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन को पूर्णता देंगे।

एक शोध-प्रबन्ध सोमदेव के राजनीतिक विचारों पर प्रो० पुष्यमित्र जैन ने आगरा विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया है। इस में विशेष रूप से सोमदेव के द्वितीय ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत का अध्ययन किया गया है। यशस्तिलक की भी राजनीतिक सामग्री का उपयोग किया गया है। सोमदेव के समग्र अध्ययन की दिशा में यह एक पूरक इकाई का काम करेगा।

इन अध्ययन ग्रन्थों के बाद भी यह कहना उचित नहीं होगा कि सोमदेव का पूर्ण अध्ययन हो चुका। मैं तो इसे श्रीगणेश मात्र कहता हूँ। वास्तव में विभिन्न दृष्टिकोणों से सोमदेव की सामग्री का पृथक्-पृथक् अध्ययन-विवेचन आवश्यक है।

सोमदेव के समग्र अध्ययन के लिए इस समय जो सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य अपेक्षित है, वह है सोमदेव के दोनों उपलब्ध ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण तैयार करने का। ऐसे संस्करण जिनमें इन ग्रन्थों से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया गया हो। अपने अनुसंधान काल में मुझे निरन्तर इस की तीव्र अनुभूति होती रही है। अभी तक दोनों ग्रन्थों के जो पूर्ण संस्करण निकले हैं, वे अशुद्धि-पुंज तो हैं ही, अनेक दृष्टियों से अपूर्ण और अवैज्ञानिक भी हैं। इस के अतिरिक्त उन को प्रकाशित हुये भी इतना समय बीत गया कि बाजार में एक भी प्रति उपलब्ध नहीं होती।

यशस्तिलक का एक ऐसा संस्करण मैं स्वयं तैयार कर रहा हूँ, जिसमें श्रीदेव के प्राचीन टिप्पण, श्रुतसागर की संस्कृत टीका तथा आधुनिक अनुसंधानों का तो पूर्ण उपयोग किया ही जायेगा, हिन्दी अनुवाद और सांस्कृतिक भाष्य भी साथ में रहेगा।

नीतिवाक्यामृत के संपादन का कार्य पटना के श्री श्रीधर वासुदेव सोहानी ने करने की रुचि दिखायी है। आशा है वे इसे अवश्य करेंगे। यदि किन्हीं कारणों वश न कर पाये, तो यशस्तिलक के बाद इसे भी मैं पूरा करने का प्रयत्न करूँगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव की उपलब्धियों का अधिकाधिक उपयोग हो, यह मेरी भावना है। उन के शास्त्र में मेरी महती निष्ठा है। लगभग पाँच वर्षों तक उस में डूबे रहने पर भी मुझे सोमदेव से कहीं भी असहमत नहीं होना पड़ा। मेरी आस्था कभी तनिक भी नहीं डिगी। अपने संस्करण में मैं यह बताना चाहता हूँ कि सोमदेव ने एक भी शब्द का व्यर्थ प्रयोग नहीं किया, और उनके हर प्रयोग का एक विशेष अर्थ है।

अन्त में सोमदेव के ही पुण्यस्मरण पूर्वक श्रद्धेय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हूँ, जिनके स्नेह, निर्देशन और प्रेरणा से प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रणयन सम्भव हुआ। खेद है कि प्रकाशित रूप में देखने के लिए वे हमारे बीच नहीं हैं। उन्हें इस रूप में इसे देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती।

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति के श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी ने दो वर्ष तक फेलोशिप और पुस्तकालय आदि की सुविधाएँ प्रदान कीं, उस के लिए संस्था के मन्त्री लाला हरजसराय जैन तथा पं० कृष्णचन्द्राचार्य का हृदय से कृतज्ञ हूँ। डॉ० राय कृष्णदास, वाराणसी, डॉ० वी० राघवन्, मद्रास, डॉ० वी० एस० पाठक, वाराणसी, डॉ० आनन्दकृष्ण, वाराणसी, डॉ० ई० डी० कुलकर्णी, पूना, डॉ० कुमारी प्रेमलता शर्मा, वाराणसी आदि अनेक विद्वानों और मित्रों का सहयोग उपलब्ध हुआ, उन सबका कृतज्ञ हूँ। प्रबन्ध में संदर्भ रूप से जिन प्राचीन और नवीन कृतियों का उपयोग किया गया है उन सभी के कृतिकारों का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ। प्रबन्ध को प्रकाशित करने में पार्श्वनाथ विद्याश्रम के निदेशक डॉ० मोहनलाल मेहता ने पूर्ण रुचि ली तथा शोध-सहायक पं० कपिलदेव गिरि ने पुस्तक की विस्तृत शब्दानुक्रमणिका तैयार की, इसके लिए दोनों का आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त भी जाने-अनजाने जिनसे सहयोग प्राप्त हुआ उन सब के प्रति आभारी हूँ।

सत्यशासनपरीक्षा के बाद पुस्तक रूप में प्रकाशित यह मेरी द्वितीय कृति है। आशा है, विज्ञ-जन इसमें रही त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाते हुए इसका समुचित मूल्यांकन करेंगे।

दिसम्बर १९६७ }

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छोटालाल केशवजी शाह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री छोटालाल भाई का जन्म वि० सं० १९३५ की आषाढ़ कृष्णा १३ गुरुवार के दिन सोनगढ़ के समीप दाठा ग्राम में हुआ था। दो वर्ष के बालक को छोड़कर इन के पिता श्री केशवजी भाई स्वर्गवासी हो गये। माता श्री पुरीबाई ने इन को तथा इन के छोटे भाई छगनलाल भाई को पालियाद में प्रारम्भिक शिक्षण हेतु शाला में प्रविष्ट कराया। सातवीं गुजराती उत्तीर्ण करके श्री छोटालाल भाई सं० १९५० में व्यवसाय के लिए बम्बई आ गये। पहले-पहल नौकरी की। इसके पश्चात् ई० सन् १९१३ में मुकादमी तथा क्लीयरिंग एजेण्ट का धन्धा शुरू किया। व्यवसाय में आप को कई बार आर्थिक कठिनाइयाँ भी आयीं परन्तु उद्यम, लगन और प्रामाणिकता के कारण आप ने अच्छी सफलता प्राप्त की। सन् १९१७ में करनाक बन्दर, बम्बई में लोहे की दुकान की और लोहे के प्रमुख व्यापारी के रूप में प्रख्यात हुए।

सेठ श्री छोटालाल भाई बड़े धर्म-प्रेमी और श्रद्धालु थे। साधु-मुनिराजों के प्रति आप की बहुत भक्ति थी। धार्मिक समारोहों के अवसर पर आप मुक्त हस्त से धन का सदुपयोग करते थे। उस समय बम्बई क्षेत्र में चींचपोकली के सिवाय अन्य कोई उपाश्रय नहीं था। इतनी दूर जाने में नगर-निवासियों को असुविधा होती थी अतः आपने और कतिपय अग्रगण्य बन्धुओं ने संवत् १९६१ में हनुमान गली में सेठ मंगलदास नाथुभाई की वाड़ी में पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० सा० का चातुर्मास करवाया। उस समय रत्न चिन्तामणि स्था० जैन मित्र मण्डल तथा जैन शाला की स्थापना में सेठ श्री का प्रमुख हाथ रहा। आप इन के प्रारम्भिक मंत्री रहे। कांदावाड़ी में स्थानक निर्माणार्थ आप की ओर से रु० ५०००) प्रदान किये गये। पं० श्री रत्नचन्द्रजी ज्ञानमन्दिर को ५०००), वढ़वाण केम्प बोर्डिंग को ३०००), पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी को ५०००), बोटाद गवर्नमेन्ट अस्पताल के बाल विभाग को २०००), ब्यावर साहित्य प्रचारक समिति को ५००), आम्बिल ओली, वढ़वाण केम्प को ५००)—इस प्रकार अनेक संस्थाओं को आपने मुक्त हस्त से दान दिया। दीक्षा प्रसंग पर वरघोड़ा आदि में तथा अन्य समारोहों पर आपने हजारों रुपयों का सदुपयोग किया। आप की उदारता अनुकरणीय रही। आप के पास आशा लेकर आया हुआ कोई व्यक्ति खाली हाथ नहीं लौटा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन् १९४७ में भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय पाकिस्तान से जैन मुनियों को लाने के वास्ते आप ने खास तौर से चार्टर्ड वायुयान भेजा था।

सेठ श्री की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबाई धार्मिक कार्यों में सेठ सा० को सहयोग देती थीं। तीन पुत्र और दो पुत्रियों को छोड़कर सं० १९८० में कस्तूरबाई का स्वर्गवास हो गया। सेठ साहब ने नई शादी की। नई धर्मपत्नी भी धार्मिक वृत्ति वाली थीं। सन् १९४२ में इनका भी स्वर्गवास हो गया।

सन् १९४८ में सेठ सा० को लकवा हो गया। अनेक उपायों के बावजूद भी विशेष सुधार नहीं हो सका। सन् १९५९ में सेठ सा० देवलाली वायु-परिवर्तन हेतु गये थे। वहीं ६ जनवरी १९५९ को सेठ सा० का स्वर्गवास हो गया।

सेठ सा० के व्यवसाय को उनके पुत्रों में से तीसरे सुपुत्र श्री धीरजलाल भाई सँभाल रहे हैं। सेठ सा० के तीनों पुत्र भी अपनी धार्मिक वृत्ति से सेठ छोटालाल भाई की स्मृति-सौरभ में वृद्धि कर रहे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

परिचय १–२७

अध्याय एक : यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि

परिच्छेद १ : यशस्तिलक और सोमदेव सूरि २७–४१

यशस्तिलक का बाह्य स्वरूप, यशस्तिलक का रचनाकाल, कृष्णराज तृतीय का दानपत्र, दक्षिण के महाप्रतापी राष्ट्रकूट, यशस्तिलक का साहित्यिक स्वरूप, चम्पू की परिभाषा, यशस्तिलक काव्य की एक स्वतन्त्र विधा, यशस्तिलक का सांस्कृतिक स्वरूप, श्रीदेवकृत यशस्तिलक पंजिका में उल्लिखित सत्ताईस विषय, श्रीदेव की सूची में और विषय जोड़ने की आवश्यकता, यशस्तिलक का प्रसार, यशस्तिलक के संस्करण तथा यशस्तिलक पर अब तक हुआ कार्य, निर्णयसागर प्रेस के संस्करण, प्रो० जे० एन० क्षीरसागर द्वारा सम्पादित प्रथम आश्वास, प्रो० के० के० हन्दिकी का यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर, पं० सुन्दरलाल शास्त्री द्वारा सम्पादित-अनुवादित-प्रकाशित यशस्तिलक पूर्वार्ध, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित-अनुवादित उपासकाध्ययन, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित शोध-निबंध, सोमदेव का व्यक्तिगत जीवन, सोमदेव और चालुक्य सामन्त, अरिकेसरिन् तृतीय का दानपत्र, सोमदेव के उपलब्ध ग्रन्थ, अनुपलब्ध ग्रन्थ षण्णवतिप्रकरण, महेन्द्रमातलिसंजल्प, युक्तिचिन्तामणिस्तव, स्याद्वादोपनिषत्, सोमदेव और कन्नौज से गुर्जर प्रतिहार नरेश, महेन्द्रमातलिसंजल्प का संकेत, सोमदेव और महेन्द्रदेव के संबन्धों का ऐतिहासिक मूल्यांकन, महेन्द्रपालदेव प्रथम, महेन्द्रपालदेव द्वितीय, इन्द्र तृतीय, नीतिवाक्यामृत का रचनाकाल, देवसंघ या गौड़संघ, यशस्तिलक राष्ट्रकूट संस्कृति का दर्पण।

परिच्छेद २ : यशस्तिलक की कथावस्तु और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ४२–४९

यशस्तिलक की संक्षिप्त कथा, कथा के माध्यम से नीति के उपदेश की प्राचीन परम्परा, मम्मट का काव्य प्रयोजन, सौन्दरनन्द और बुद्धचरित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उद्देश्य, यशस्तिलक की मूल प्रेरणा, हिंसा और अहिंसा के द्वन्द्व का निदर्शन, गृहस्थ की चार प्रकार की हिंसा, संकल्पपूर्वक की गयी हिंसा के दुष्परिणाम और जनमानस की अहिंसा की ओर अभिरुचि।

परिच्छेद ३ : यशोधरचरित्र की लोकप्रियता ५०–५६

उद्योतन सूरि की कुवलयमाला कहा में प्रभंजन के यशोधरचरित्र का उल्लेख, हरिभद्र सूरि की समराइच्च कहा में यशोधर की कथा, सोमदेव का संस्कृत यशस्तिलक, पुष्पदन्त का अपभ्रंश जसहर चरिउ, वादिराजकृत यशोधरचरित्र, वासवसेन का यशोधरचरित्र, वत्सराज का कथा-ग्रन्थ, वासवसेन द्वारा उल्लिखित हरिषेण का काव्य, सकलकीर्ति, सोमकीर्ति, माणिक्य सूरि, पद्मनाभ, पूर्णभद्र तथा क्षमाकल्याण के संस्कृत यशोधरचरित, अज्ञात कवि का यशोधरचरित्र, मल्लिभूषण, ब्रह्म नेमिदत्त तथा पद्मनाथ के ग्रन्थ, श्रुतसागर का संस्कृत यशोधरचरित्र, हेमकुंजर की यशोधर कथा, जन्न कवि का कन्नड़ यशोधरचरित्र, पूर्णदेव, विजयकीर्ति तथा ज्ञानकीर्ति के यशोधरचरित्र, यशोधर चरित्र की चार और पाण्डुलिपियाँ, देवसूरि का यशोधरचरित्र, सोमकीर्ति का हिन्दी यशोधररास, परिहरानन्द, साह लौहट तथा खुशालचन्द्र के यशोधरचरित्र, अजयराज की यशोधर चौपई, गारवदास तथा पन्नालाल का यशोधरचरित्र, अज्ञात कवियों के यशोधर चरित्र, यशोधर जयमाल और यशोधर भाषा, सोमदत्त सूरि तथा लक्ष्मीदास का हिन्दी यशोधरचरित्र, जिनचन्द्र सूरि, देवेन्द्र, लावण्यरत्न तथा मनोहरदास के गुजराती यशोधरचरित्र, ब्रह्मजिनदास, जिनदास तथा विवेकराज का यशोधरदास, अज्ञात कवि की गुजराती यशोधर कथा चतुष्पदी, एक अज्ञात कवि का तमिल यशोधरचरित्र, चन्द्रन वर्णी तथा कवि चन्द्रम का कन्नड़ यशोधरचरित्र, कन्नड़ यशोधरचरित्र की दो और पाण्डुलिपियाँ।

अध्याय दो : यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन

परिच्छेद १ : वर्ण-व्यवस्था और समाज-गठन ६०–६६

विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत समाज, वर्णव्यवस्था की श्रौत-स्मार्त मान्यताएँ और उनका समाज तथा साहित्य पर प्रभाव, चतुर्वर्ण—ब्राह्मण, ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त होने वाले विभिन्न शब्द—ब्राह्मण, द्विज, विप्र, भूदेव,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रोत्रिय, वाडव, उपाध्याय, मौहूर्तिक, देवभोगी, पुरोहित, त्रिवेदी। ब्राह्मणों की सामाजिक मान्यता, क्षत्रिय, क्षत्रियोंकी सामाजिक मान्यता, वैश्य, वणिक, श्रेष्ठी, सार्थवाह, देशी तथा विदेशी व्यापार करने वाले वणिक, राज्यश्रेष्ठी, शूद्र, अन्त्यज, पामर, शूद्रों की सामाजिक मान्यता, अन्य सामाजिक व्यक्ति—हलायुधजीवि, गोप, व्रजपाल, गोपाल, गोध, तक्षक, मालाकार, कौलिक, ध्वज, निपाजीव, रजक, दिवाकीर्ति, आस्तरक, संवाहक, धीवर, धीवर के उपकरण—लगुड, गल, जाल, तरी, तर्प, तुवरतरंग, तरण्ड, वेडिका, उडुप, चर्मकार, नट या शैलूष, चाण्डाल, शबर, किरात, वनेचर, मातंग।

परिच्छेद २ : सोमदेवसूरि और जैनाभिमत वर्ण-व्यवस्था ··· ६७–७२

गृहस्थों के दो धर्म—लौकिक और पारलौकिक, लौकिक धर्म लोकाश्रित, पारलौकिक आगमाश्रित, जैन दृष्टि से मान्य विधि, वर्ण-व्यवस्था और नीतिवाक्यामृत, प्राचीन जैन साहित्य और वर्ण-व्यवस्था, सैद्धान्तिक ग्रन्थों में वर्ण और जाति का अर्थ, जटासिंहनन्दि (७ वीं शती) और वर्णव्यवस्था, रविषेणाचार्य (६७६ ई०) और वर्ण-व्यवस्था, जिनसेन (७८३ ई०) और वर्ण-व्यवस्था, श्रौत-स्मार्त मान्यताओं का जैनीकरण, सोमदेव के चिन्तन का निष्कर्ष, सोमदेव के चिन्तन का जैन दृष्टि से सामंजस्य।

परिच्छेद ३ : आश्रम-व्यवस्था और संन्यस्त व्यक्ति ··· ७३–८४

आश्रम-व्यवस्था की प्रचलित वैदिक मान्यताएँ, यशस्तिलक में आश्रम-व्यवस्था के उल्लेख, बाल्यावस्था और विद्याध्ययन, गुरु और गुरुकुलोपासना, विद्याध्ययन समाप्ति पर गोदान ओर गृहास्थाश्रम प्रवेश, वृद्धावस्था और संन्यास, अल्पावस्था में संन्यस्त होने का निषेध, आश्रम-व्यवस्था के अपवाद, जैनागम और बाल-दीक्षा, आश्रम-व्यवस्था की जैन मान्यताएँ। परिव्रजित व्यक्तियों के अनेक उल्लेख – आजीवक, आजीवक सम्प्रदाय के प्रणेता मंखलिपुत्त गोशाल, गोशाल की मान्यताएँ, कर्मन्दी, पाणिनी में कर्मन्दी भिक्षुओं के उल्लेख, कर्मन्दी की ऐकान्तिक मोक्ष साधना, कापालिक, प्रबोधचन्द्रोदय में कापालिकों का उल्लेख, कुलाचार्य या कौल, कौल सम्प्रदाय की मान्यताएँ, कुमारश्रमण, चित्रशिखण्डि, जटिल, देशयति, देशक, नास्तिक, परिव्राजक, परिव्राट, पारासर, ब्रह्मचारी, भविल, महाव्रती, महाव्रतियों की भयंकर साधनाएँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महासाहसिक, महासाहसिकों का आत्म-रुधिरपान, मुनि, मुमुक्षु, यति, यागज्ञ, योगी, वैखानस, शंसितव्रत, श्रमण, साधक, साधु, सूरि, जितेन्द्रिय, क्षपण, श्रमण, आशाम्बर, नग्न, ऋषि, मुनि, यति, अनगार, शुचि, निर्मम, मुमुक्षु, शंसितव्रत, वाचंयम, अनूचान्, अनाश्वान्, योगी, पंचाग्नि-साधक, ब्रह्मचारी, शिखोच्छेदी, परमहंस, तपस्वी ।

परिच्छेद ४ : पारिवारिक जीवन और विवाह ८५–९०

संयुक्त परिवार प्रणाली, वयोवृद्धों का आदर सम्मान, छोटों की मर्यादा, चिरपरिचित पारिवारिक सम्बन्ध, पति, पत्नी, पुत्र, बालक्रीड़ाओं का हृदयग्राही वर्णन, स्त्री के विभिन्न रूप— भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी, धातृ, भार्या । कन्यादान और विवाह—स्वयंवर, स्वयंवर आयोजन की विधि, स्वयंवर की परंपरा, माता-पिता द्वारा विवाह का आयोजन, विवाह की आयु, बाल-विवाह, सोमदेव के पूर्व बाल-विवाह की परम्परा, स्मृति-ग्रन्थों के उल्लेख, अलबरूनी की सूचना, बाल-विवाह के दुष्परिणाम ।

परिच्छेद ५ : पाक-विज्ञान और खान-पान ९१–१०७

यशस्तिलक में प्राप्त खान-पान विषयक सामग्री की त्रिविध उपयोगिता, खाद्य और पेय वस्तुओं की लम्बी सूची, दशमी शती में भारतीय परिवारों की खान-पान व्यवस्था, ऋतुओं के अनुसार संतुलित एवं स्वास्थ्यकर भोजन । पाकविद्या, त्रेसठ प्रकार के व्यंजन, सूपशास्त्र विशेषज्ञ पोरोगव । बिना पकाई गयी सामग्री—गोधूम, यव, दीदिवि, श्यामाक, शालि, कलम, यवनाल, चिपिट, सक्तू, मुद्ग, माष, बिरसाल, द्विदल । घृत, दधि, दुग्ध, मट्ठा आदि के गुण-दोष तथा उपयोग-विधि, भोजन के साथ जल पीने के गुण-दोष। जल : अमृत या विष, ऋतुओं के अनुसार जल, संसिद्धजल, जल संसिद्ध करने की प्रक्रिया। मसाले—लवण, दरद, क्षपारस, मरिच, पिप्पली, राजिका । स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय—घृत, आज्य, पृषदाज्य, तैल, दधि, दुग्ध, नवनीत, तक्र, कलि या अवन्तिसोम, नारिकेलि फलांभ, पानक, शर्कराढय पय। मधुर पदार्थ— शर्करा, सिता, गुड़, मधु, इक्षु। साग-सब्जी तथा फल—पटोल, कोहल, कारवेल, वृन्ताक, वाल, कदल, जीवन्ती, कन्द, किसलय, विष, वास्तूल तण्डुलीय, चिल्ली, चिर्भटिका, मूलक, आर्द्रक, धात्रीफल, एर्वारु, अलावू, कर्कारु, मालूर, चक्रक, अग्निदमन, रिंगणीफल, अगस्ति, आम्र,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आम्रातक, पिचुमन्द, सोभाजन, वृहतीवार्ताक, एरण्ड, पलाण्डु, वल्लक, रालक, कोकुन्द, काकमाची, नागरंग, ताल, मन्दर, नागवल्ली, वाण, असन, पूग, अक्षोल, खर्जूर, लवली, जम्बीर, अश्वत्थ, कपित्थ, नमेरु, राजादन, पारिजात, पनस, ककुभ, वट, कुरवक, जम्बू, दर्दरीक पुण्ड्रेक्षु, मृद्वीका, नारिकेल, उदुम्बर, प्लक्ष। तैयार की गयी सामग्री—भक्त, सूप, शष्कुली, समिध, यवागू, मोदक, परमान्न, खाण्डव, रसाल, आमिक्षा, पक्वान्न, अवदंश, उपदंश, सर्पिषिस्नात, अंगारपाचित, दध्नापरिप्लुत, पयसाः विशुष्क, पर्पट। मांसाहार और मांसाहार निषेध—जैनधर्म में मांसाहार का विरोध, कौल, कापालिक आदि सम्प्रदायों में मांसाहार की धार्मिक अनुमति, बध्य पशु-पक्षी—मेष, महिष, मय, मातंग, मितंद्रु, कुंभीर, मकर, सालूर, कुलीर, कमठ, पाठीन, भेरुण्ड, क्रौंच, कोक, कुर्कुट, कुरर, कलहंस, चमर, चमूरु, हरिण, हरि, वृक, वराह, वानर, गोखुर। क्षत्रिय तथा ब्राह्मण परिवारों में मांस का व्यवहार, यज्ञ और श्राद्ध में मांस प्रयोग, मनुस्मृति की साक्षी, छोटी जातियों में मांस प्रयोग, मांसाहार-निषेध।

परिच्छेद ६ : स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या १०८–१२०

खान-पान और स्वास्थ्य का अनन्य सम्बन्ध, मनुष्यों की विभिन्न प्रकार की प्रकृति, जठराग्नि, ऋतुओं के अनुसार प्रकृति परिवर्तन, ऋतु-चर्या, ऋतुओं के अनुसार खाद्य और पेय। भोजन-पान के विषय में अन्य जानकारी—भोजन का समय, सह भोजन, भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति, अभोज्य पदार्थ, भोज्य पदार्थ, विषयुक्त भोजन, भोजन के विषय में अन्य नियम, भोजन करने की विधि। रात्रिशयन या निद्रा। नीहार या मलमूत्र विसर्जन, तैल मालिश, उबटन, स्नान, स्नानोपरान्त भोजन, व्यायाम। रोग और उनकी परिचर्या—अजीर्ण–विदाहि और दुर्जर, अजीर्ण के कारण, अजीर्ण के प्रकार, अजीर्ण की परिचर्या, दृग्मान्द्य, वमन, ज्वर, भगन्दर, उसका पूर्वरूप, लक्षण, प्रकार और उसकी परिचर्या, गुल्म, सितश्वित। औषधियां—मागधी, अमृता, सोम, विजया, जम्बूक, सुदर्शना, मरुद्भव, अर्जुन, अभीरु, लक्ष्मी, वृती, तपस्विनी, चन्द्रलेखा, कलि, अर्क, अरिभेद, शिवप्रिय, गायत्री, ग्रन्थिपर्ण, पारदरस। आयुर्वेद विशेषज्ञ आचार्य—काशिराज, निमि, चारायण, धिषण, चरक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद ७ : वस्त्र और वेष-भूषा १२१-१३९

तीन प्रकार के वस्त्र—(१) सामान्य वस्त्र, (२) पोशाकें या पहनने के वस्त्र, (३) अन्य गृहोपयोगी वस्त्र।

सामान्य वस्त्र—नेत्र– नेत्र के प्राचीनतम उल्लेख, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा नेत्र वस्त्र पर प्रकाश, कालिदास का उल्लेख, बाणभट्ट के साहित्य में नेत्र, उद्योतनसूरि (७७९ ई०) कृत कुवलयमाला में नेत्र-वस्त्र, चौदह प्रकार के नेत्र, चौदहवीं शती तक बंगाल में नेत्र का उपयोग, नेत्र की पाचूड़ी, जायसी के पदमावत में नेत्र, भोजपुरी लोक-गीतों में नेत्र। चीन—चीन देश से आने वाला वस्त्र, भारत में चीनी वस्त्र आने के प्राचीनतम प्रमाण, बृहत्कल्पसूत्र में चीनांशुक की व्याख्या, चीन और वाल्हीक से आने वाले अन्य वस्त्र। चित्रपटी—बाणभट्ट की साक्षी, चित्रपट के तकिए। पटोल, गुजरात की पटोला साड़ी, पटोल की बिनावट का विशेष प्रकार। रल्लिका, रल्लक मृग या एक प्रकार का जंगली बकरा, रल्लक की ऊन से बने बेशकीमती गरम वस्त्र, युवांग च्वांग के उल्लेख। दुकूल, दुकूल की पहचान, आचारांग, निशीथचूर्णि तथा अर्थशात्र में दुकूल के उल्लेख, बंगाल पौंड्र तथा सुवर्ण-कुड्या के दुकूल वस्त्र, दुकूल की बिनाई का विशेष प्रकार, डॉ० अग्र-वाल की व्याख्या, दुकूल का जोड़ा पहिनने का रिवाज, हंस मिथुन लिखित दुकूल के जोड़े, दुकूल का जोड़ा पहनने की अन्य साहित्यिक साक्षी, दुकूल की साड़ियाँ, पलंगपोश, तकियों के गिलाफ आदि, दुकूल और क्षौम वस्त्रों में पारस्परिक अन्तर और समानता, कोशकारों की साक्षी। अंशुक— कई प्रकार के अंशुक, भारतीय तथा चीनी अंशुक, रंगीन अंशुक, अंशुक की विशेषताएँ। कौशेय—कौशेय के कीड़े, कौशेय की पहचान, कौशेय की चार योनियाँ। पोशाकें या पहनने के वस्त्र—कंचुक, वारवाण, वारबाण की पहचान, वारबाण एक विदेशी वेश-भूषा, भारतीय साहित्य में वारबाण के उल्लेख, चोलक, चोलक एक सम्भ्रान्त पहनावा, नौशे के अवसर पर चोलक का उपयोग, चोलक एक विदेशी पहनावा, चोलक के विषय में अब तक प्राप्त अन्य जानकारी। चण्डातक, उष्णीष, कौपीन, उत्तरीय, चीवर, आवान, परिधान, उपसंव्यान, परिधान और उपसंव्यान में अन्तर, गुह्य, हंसतूलिका, उपधान, कन्था, नमत, निचोल, या चन्दोवा, सिचयोल्लोच और वितान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद ८ : आभूषण ... १४०–१५१

शिरोभूषण—किरीट, मौलि, पट्ट, मुकुट। कर्णाभूषण–अवतंस, पल्लवावतंस, पुष्पावतंस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल, कुण्डल। गले के आभूषण—एकावली, कण्ठिका, हार, हारयष्टि, मौक्तिमदाम। भुजा के आभूषण–अंगद, केयूर। कलाई के आभूषण– कंकण, वलय। अंगुलियों के आभूषण– उर्मिका, अंगुलीयक। कटि के आभूषण– काँची, मेखला, रसना, सारसना, घर्घरमालिका। पैर के आभूषण– मंजीर, हिंजीरक, नूपुर, तुलाकोटि, हंसक।

परिच्छेद ९ : केश-विन्यास, प्रसाधन-सामग्री तथा पुष्प प्रसाधन १५२–१६०

केश धूपाना, आश्यानित केश, अलकजाल, कुन्तलकलाप, केशपाश, चिकुरभंग, धम्मिलविन्यास, मौली, सीमन्त-सन्तति, वेणिदण्ड, जूट, कबरी। प्रसाधन-सामग्री–अंजन, कज्जल, अगुरु, अलक्तक, कुंकुम, कर्पूर, चन्द्रकवल, तमालदलधूलि, ताम्बूल, पटवास, पिष्टातक, मनःसिल, मृगमद, यक्षकर्दम, हरिरोहण, सिन्दूर। पुष्प प्रसाधन—अवतंसकुवलय, कमलकेयूर, कदलीप्रवालमेखला, कर्णोत्पल, कर्णपूर, मृणालवलय, पुन्नागमाला, बन्धूकनूपुर, शिरीषजंघालंकार, शिरीषकुसुमदाम, विचकिलहारयष्टि, कुरवकमुकुलस्रक्।

परिच्छेद १० : शिक्षा और साहित्य ... १६१–१८८

शिक्षा का काल, गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श, शिक्षा समाप्ति के उपरान्त गोदान। शिक्षा के विषय, इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनि तथा पतंजलि के व्याकरणों का अध्ययन, गणितशास्त्र, गणितशास्त्र के आचार्य, भिक्षुसूत्र और पारिरक्षक, प्रमाणशास्त्र और उस के प्रतिष्ठापक आचार्य भट्ट अकलंक, राजनीति और नीतिशास्त्र के आचार्य गुरु, शुक्र, विशालाक्ष परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाज। गज-विद्या, गज-विद्या विशेषज्ञ आचार्य—रोमपाद, इभचारी याज्ञवल्क्य, वाद्धलि या वाहलि, नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम, अश्व-विद्या, अश्व-विद्या विशेषज्ञ रैवत, शालिहोत्र, शालिहोत्रकृत रैवत स्तोत्र, रत्नपरीक्षा, शुकनास और अगस्त्य, बुद्धभट्टकृत रत्नपरीक्षा और उसका उद्धरण। आयुर्वेद और काशिराज धन्वन्तरि, आयुर्वेद विशेषज्ञ आचार्य—चारायण, निमि, धिषण और चरक। संसर्ग-विद्या या नाट्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शास्त्र। चित्रकला और शिल्पशास्त्र। कामशास्त्र और दत्तक, वात्स्यायन का कामसूत्र, रतिरहस्य, चौसठ कलायें, भोगावलि या राजस्तुति। काव्य और कवि—उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तमेण्ठ, कण्ठ, गुढ़ाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, राजशेखर, ग्रहिल, नीलपट, वररुचि, त्रिदश, कोहल, गणपति, शंकर, कुमुद, तथा कैकट। दार्शनिक और पौराणिक साहित्य। गज-विद्या—गज शास्त्र सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द, यशोधर के पट्ट बन्धोत्सव के हाथी का वर्णन, गज के अन्तरंग–बाह्यगुणों का विचार–उत्पत्तिस्थान, कुल, प्रचार, देश, जाति, संस्थान, उत्सेध, आयाम, परिणाह, आयु, छवि, वर्ण, प्रभा, छाया, आचार, शील, शोभा आवेदिता, लक्षण-व्यंजन, बल, धर्म, वय और जव, अंश, गति, रूप, सत्त्व, स्वर, अनूक, तालु, अन्तरास्य, उरोमणि, विक्षोभकटक, कपोल, सृक्व, कुम्भ, कन्धरा, केश, मस्तक, आसनावकाश, अनुवंश, कुक्षि, पेचक, वालधि, पुष्कर, अपर, कोश। गजोत्पत्ति–पौराणिक तथ्य, गज के भेद–भद्र, मन्द, मृग, संकीर्ण, यागनाग। मदावस्थाएँ तथा उनका चौदह प्रकार का उपचार। गजशास्त्र विशेषज्ञ आचार्य, गजपरिचारक, गज शिक्षा, गजदर्शन और उसका फल, गजशास्त्र के कतिपय विशिष्ट शब्द। अश्व-विद्या—अश्व के ४३ गुण, अन्य गुणों की तुलनात्मक जानकारी, अश्व के पर्यायवाची शब्द, अश्व-विद्याविद्।

परिच्छेद ११ : कृषि तथा वाणिज्य आदि १८९–१९९

कृषि, कृषि योग्य जमीन, सिंचाई के साधन, सहज प्राप्य श्रमिक, उचित कर। बीज वपन, लुनाई तथा दौनी। ऊसर जमीन। वाणिज्य–स्थानीय व्यापार, हर सामग्री की अलग-अलग हाटें, व्यापार के केन्द्र-पैण्ठास्थान, पैण्ठास्थानों की व्यवस्था। सार्थवाह और विदेशी व्यापार, सुवर्णद्वीप और ताम्रलिप्ति का व्यापार। विनिमय, वस्तु-विनिमय, विनिमय के साधन, निष्क, कार्षापण, सुवर्ण। न्यास, न्यास रखने का आधार, न्यास धरने वाले की दुर्बलताएँ। भृति या नौकरी तथा नौकरी के प्रति जन साधारण की धारणाएँ।

परिच्छेद १२ : शस्त्रास्त्र ... २००–२१९

छत्तीस प्रकार के आयुध और उनका परिचय–धनुष, धनुर्वेद, शराभ्यासभूमि, धनुष चलाने की प्रक्रिया, धनुर्वेद विशेषज्ञ, धनुर्वेद की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशिष्ट शब्दावली। असिधेनुका या शस्त्री, असिधेनुका के प्रहार का तरीका, असिधेनुकाधारकी सैनिक। कर्तरी, कटार, कृपाण, खड्ग, कौक्षेयक या करवाल, तरवारि, भुसुंडि, मण्डलाग्र, असिपत्र, अशनि, शिल्प और चित्रों में अशनि का अंकन, साहित्य में अशनि के उल्लेख, अशनिधारी सैनिक, अंकुश, अंकुश का अपरिवर्तित स्वरूप, शिल्प और चित्रों में अंकुश का अंकन, कणय, कणय की पहचान, परशु या कुठार, प्रास, कुन्त, भिन्दिपाल, करपत्र, गदा, दुस्फोट, मुद्गर, परिघ, दण्ड, पट्टिस, चक्र, भ्रमिल, यष्टि, लांगल, शक्ति, त्रिशूल, शंकु, पाश, वागुरा, क्षेपणिहस्त और गोलधर।

अध्याय तीन : ललित कलाएँ और शिल्प-विज्ञान

परिच्छेद १ : गीत, वाद्य और नृत्य ... २२३–२४०

तौर्यत्रिक, भरतमुनि और उनका नाटचशास्त्र, संगीत का महत्त्व और प्रसार, गीत और स्वर का अनन्य संबंध, सप्त स्वर, वाद्यों के लिए सामान्य शब्द आतोद्य, वाद्यों के चार भेद, घन, सुषिर, तत और अवनद्ध वाद्य, यशस्तिलक में उल्लिखित तेईस प्रकार के वाद्ययन्त्र, शंख, शंख की सर्वश्रेष्ठ जाति पांचजन्य, शंख एक सुषिर वाद्य, शंख के प्राप्ति स्थान, शंख प्रकृति-द्वारा प्रदत्त वाद्य, वाद्योपयोगी शंख, शंख से राग-रागनियाँ निकालना। काहला, काहला की पहचान, उड़ीसा में अब भी काहला का प्रयोग। दुंदुभि, दुंदुभि एक अवनद्ध वाद्य, प्राचीन काल से दुंदुभि का प्रचार। पुष्कर, पुष्कर का अर्थ, अवनद्ध वाद्यों के लिए पुष्कर सामान्य शब्द, महाभारत और मेघदूत में पुष्कर के उल्लेख। ढक्का, ढक्का की पहचान, ढक्का और ढोल। आनक, आनक एक मुँह वाला अवनद्ध वाद्य, नौवत या नगाड़ा और आनक। भम्भा, भम्भा एक अप्रसिद्ध वाद्य, साहित्य में भम्भा के उल्लेख, भम्भा एक अवनद्ध वाद्य। ताल, ताल एक प्रमुख घन वाद्य, ताल बजाने का तरीका, करटा एक अवनद्ध वाद्य, त्रिविला या त्रिविली, डमरुक, रुंजा, रुंजा की पहचान, घंटा, वेणु, वीणा, झल्लरी, वल्लकी, पणव, मृदंग, भेरी, तूर्य या तूर, पटह और डिण्डिम। नृत्य, नाट्शास्त्र, नाट्शाला नाट्यमंडप के तीन प्रकार, अभिनय और अभिनेता, रंगपूजा, नृत्य के भेद, नृत्य, नाट्य और नृत्त में पारस्परिक अन्तर, नृत्त के भेद, लास्य और ताण्डव।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद २ : चित्र-कला ... २४१–२४५

भित्तिचित्र, भित्तिचित्र बनाने की विशेष प्रक्रिया, भीत का पलस्तर तैयार करना और उस पर आकार टीपना। सोमदेव द्वारा उल्लिखित जिनालय के भित्तिचित्र, बाहुबलि, प्रद्युम्न, सुपार्श्व, अशोक राजा और रोहिणी रानी तथा यक्ष-मिथुन के भित्तिचित्र। तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्नों का चित्रांकन—ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमालाएँ, चन्द्र और सूर्य, मत्स्ययुगल, पूर्णकुंभ, पद्म सरोवर, सिंहासन, समुद्र, फणयुक्त सर्प, प्रज्ज्वलित अग्नि, रत्नों का ढेर और देवविमान। रंगावलि या धूलि-चित्र, धूलिचित्रके दो भेद, धूलिचित्र बनाने का तरीका। प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म और उसका उद्धरण, तीर्थंकर के समवशरण का चित्र बनाने वाला कलाकार। चित्रकला के अन्य उल्लेख, केतुकाण्डचित्र, चित्रार्पित द्विप, झरोखों से झाँकती हुई कामिनियाँ।

परिच्छेद ३ : वास्तु-शिल्प ... २४६–२५७

चैत्यालय, चैत्यालयों के उन्नत शिखर, शिखर-निर्माण का विशेष शिल्प-विधान, अटनि पर सिंह निर्माण की प्रक्रिया, आमलासार कलश तथा स्वर्णकलश, ध्वजस्तंभ, स्तम्भिकाएँ और ध्वजदण्ड, चन्द्रकान्त के प्रणाल, किंपिरि, विटंक, पालिध्वज, स्तूप। त्रिभुवनतिलकप्रासाद, उत्तुंगतरंगतोरण, रत्नमयस्तंभ। त्रिभुवनतिलकप्रासाद के वर्णन में आयीं महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ—पुरंदरागार, चित्रभानुभवन, धर्मधाम, पुण्य-जनावास, प्रचेतःपस्त्य, वातोदवसित, धनदधिष्ण्य, ब्रध्नसौध, चन्द्र-मन्दिर, हरिगेह, नागेशनिवास तथा तण्डुभवन। आस्थानमण्डप का विस्तृत वर्णन, आस्थानमंडप के निकट गज और अश्वशाला, सरस्वती-विलासकमलाकर नामक राजमंदिर, दिग्वलयविलोकनविलास नामक भवन, करिविनोदविलोकनदोहन नामक क्रीड़ाप्रासाद, मनसिज-विलासहंसनिवासतामरस नामक अन्तःपुर, दीर्घिका का विस्तृत वर्णन, पुष्करणी, गंधोद्धक कूपक्रीड़ावापी, हर्षचरित और कादम्बरी में दीर्घिका वर्णन, मुगलकालीन महलों की नहरे विहिश्त, खुसरु परवेज के महल की नहर, हेम्टन कोर्ट का लांग वाटर केनाल। प्रमदवन, प्रमदवन के विभिन्न अंग।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद ४ : यन्त्रशिल्प २५८-२६४

यन्त्रधारागृह का विस्तृत वर्णन, यन्त्रजलधर या मायामेघ, पाँच प्रकार के वारिगृह, यन्त्रव्याल और उनके मुँह से झरता हुआ जल, यन्त्रहंस, यन्त्रगज, यन्त्रमकर, यन्त्रवानर, यन्त्रदेवता, यन्त्रवृक्ष, यन्त्र पुत्तलिकायें, यन्त्रधारागृह का प्रमुख आकर्षण यन्त्रस्त्री, यन्त्र-पर्यंक, यान्त्रिक-शिल्प की उपयोगिता।

अध्याय चार : सोमदेवकालीन भूगोल

परिच्छेद १ : जनपद २६७-२८१

अवन्ति, अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी, अंग और उसकी राजधानी चम्पा, वसुवर्धन नृप और लक्ष्मीमति रानी, अश्मक-अश्मन्तक, सपाद-लक्ष-बर्बर, राजधानी पोदनपुर, पाली साहित्य का अस्सक, अन्ध्र की पुष्प-प्रसाधन परम्परा, इन्द्रकच्छ रोरुकपुर, बौद्ध ग्रन्थों का रोरुक, औद्रायन राजा, कम्बोज-वाल्हीक, कर्णाट, करहाट, कलिंग, कलिंग के विशिष्ट हाथी, महेन्द्रपर्वत, समुद्रगुप्त प्रशस्ति का उल्लेख, क्रथकैशिक, काँची, काशी, कीर, कुरुजांगल, कुन्तल, केरल, कौंग, कौशल, गिरि-कूटपत्तन, चेदि, चेरम, चोल, जनपद, डहाल, दशार्ण, प्रयाग, पल्लव, पांचाल, पाण्डु या पाण्डच, भोज, बर्बर, मद्र, मलय, मगध, यौधेय, लम्पाक, लाट, वनवासी, बंग या बंगाल, बंगी, श्रीचन्द्र, श्रीमाल, सिन्धु, सूरसेन, सौराष्ट्र, यवन, हिमालय।

परिच्छेद २ : नगर और ग्राम २८२-२९१

अहिच्छत्र, अयोध्या, उज्जयिनी, एकचक्रपुर, एकानसी, कनकगिरि, कंकाहि, काकन्दी, काम्पिल्य, कुशाग्रपुर, किन्नरगीत, कुसुमपुर, कौशाम्बी, चम्पा, चुंकार, ताम्रलिप्ति, पद्मावतीपुर, पद्मनीखेट, पाटलि-पुत्र, पोदनपुर, पौरव, बलवाहनपुर, भावपुर, भूमितिलकपुर, उत्तर मथुरा, दक्षिण मथुरा या मदुरा, मायापुरी, मिथिलापुर, माहिष्मती, राजपुर, राजगृह, वलभी, वाराणसी, विजयपुर, हस्तिनापुर, हेमपुर, स्वस्तिमति, सोपारपुर, श्रीसागरम् या सिरीसागरम्, सिंहपुर, शंखपुर।

परिच्छेद ३ : बृहत्तर भारत २९२-२९३

नेपाल, सिंहल, सुवर्ण द्वीप, विजयार्ध तथा कुलूत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद ४ : वन और पर्वत २९४–२९६

कालिदासकानन, कैलास, गन्धमादन, नाभिगिरि, नेपाल शैल, प्रागद्रि, भीमवन, मन्दर, मलय, मुनिमनोहरमेखला, विन्ध्य, शिखण्डिताण्डव, सुवेला, सेतुबन्ध और हिमालय।

परिच्छेद ५ : सरोवर और नदियाँ २९७–२९९

मानसरोवर, गंगा, जलवाहिनी, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, शोण, सिन्धु और सिप्रा नदी।

अध्याय पाँच : यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति ३०३

इस अध्याय में यशस्तिलक के विशिष्ट शब्दों पर अकारादि क्रम से विचार किया गया है।

चित्रफलक

सहायक ग्रंथ-सूची

शब्दानुक्रमणिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिचय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यैः ।

—यशस्तिलक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव दशमी शती के एक बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और प्रकाण्ड पाण्डित्य का पता उनके प्राप्त साहित्य तथा ऐतिहासिक तथ्यों से लगता है। वे एक उद्भट तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्वचिन्तक, सफल समाजशास्त्री, संमान्य जन-नेता और क्रान्तदृष्टा धर्माचार्य थे। उनकी निर्मल प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी थी। वे बिम्बग्राहिणी प्रतिभा के धनी थे। ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के तलस्पर्शी अध्ययन में उनकी दृढ़ निष्ठा थी। बड़े-बड़े राजतन्त्रों के निकट संपर्क से उनके ज्ञान-कोष में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विभिन्न संस्कृतियों की प्रभूत जानकारी संगृहीत हुई थी। जैन साधु की प्रवास-प्रवृत्ति के कारण सहज ही उन्हें लोकानुवीक्षण का सुयोग प्राप्त हुआ। विद्या-गोष्ठियों तथा वाग्युद्धों ने उनकी विद्वत्ता को और अधिक विस्तार और निखार दिया। धार्मिक क्रान्ति ने उन्हें संमान्य जन-नेता और सफल समाजशास्त्री बनाया। शास्त्रों के निरन्तर स्वाध्याय और विद्वान् मनीषियों के अहर्निश सान्निध्य से उनकी व्युत्पत्ति अजस्र रूप से वृद्धिगत होती रही।

इस प्रकार सोमदेव की प्रज्ञा के अथाह सागर में ज्ञान की अनेक सरितायें व्युत्पत्ति की अपार जलराशि ला-लाकर उड़ेलती रहीं। और तब उनके प्रज्ञा-पुरुष ने एक ऐसे शास्त्र-सर्जन का शुभ संकल्प किया जो समस्त विषयों की व्युत्पत्ति का साधन हो (यद्व्युत्पत्यै सकलविषये, पृ० ५१८)। यशस्तिलक उनके इसी पुनीत संकल्प का मधुर फल है। जीवनभर तर्क की सूखी घास खानेवाली उनकी प्रज्ञा-सुरभि ने जो यह काव्य का मधुर दुग्ध दिया, उसे उन्होंने सुकृतिजनों के पुण्य का फल माना है (पृ० ६)।

इस विशिष्ट कृति के लिए उन्होंने महाराज यशोधर के लोकप्रिय चरित्र को पृष्ठभूमि के रूप में चुना। केवल गद्य या केवल पद्य इसके लिए उन्हें पर्याप्त नहीं लगा। इसलिए उन्होंने यशस्तिलक में दोनों का समावेश किया है। कहीं-कहीं कथनोपकथन भी आये हैं। पूरे ग्रन्थ में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष भाग गद्य है। स्वयं सोमदेव ने गद्य और पद्य दोनों को मिलाकर आठ हजार श्लोकप्रमाण बताया है (एतामष्टसहस्रीम्, पृ० ४१८ उत्त०)। पूरा ग्रन्थ प्रौढ़ संस्कृत में रचा गया है और आठ आश्वासों में विभक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। प्रथम आश्वास कथावतार या कथा की पृष्ठभूमि के रूप में है। और अन्त के तीन आश्वासों में उपासकाध्ययन अर्थात् जैन गृहस्थ के आचार का विस्तृत वर्णन है। यशोधर की वास्तविक कथा बीच के चार आश्वासों में स्वयं यशोधर के मुँह से कहलायी गयी है। बाण की कादम्बरी की तरह कथा जहाँ से प्रारंभ होती है, उसकी परिसमाप्ति भी वहीं आकर होती है। महाराज शूद्रक की सभा में लाया गया वैशम्पायन शुक कादम्बरी की कथा कहना प्रारंभ करता है और कथावस्तु तीन जन्मों में लहरिया गति से घूमकर फिर यथास्थान पहुँच जाती है। सम्राट मारिदत्त द्वारा आयोजित महानवमी के अनुष्ठान में अपार जनसमूह के बीच बलि के लिए लाया गया परिव्रजित राजकुमार यशस्तिलक की कथा का प्रारंभ करता है और रथ के चक्र की तरह एक ही फेरे में आठ जन्मों की कहानी पूरी होकर अपने मूल सूत्र से फिर जुड़ जाती है।

साहित्यिक दृष्टि से यशस्तिलक एक महनीय कृति है। यशस्तिलक के पूर्व लगभग एक सहस्र वर्षों में संस्कृत साहित्यरचना का जो क्रमिक विकास हुआ, उसका और अधिक परिष्कृत रूप यशस्तिलक में दृष्टिगोचर होता है।

एक उत्कृष्ट काव्य के विशेष गुणों के अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसी प्रचुर सामग्री है, जो इसे प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास तथा ज्ञान-विज्ञान की अनेक विधाओं से जोड़ती है। पुरातत्त्व, इतिहास, कला और साहित्य के साथ तुलना करने पर इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता भी परिपुष्ट होती है। इस दृष्टि से भी यशस्तिलक कालिदास और बाण की परंपरा में महत्वपूर्ण नवीन कड़ी जोड़ता है। कालिदास और बाणभट्ट ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति के संग्रथन का जो कार्य प्रारंभ किया था, सोमदेव ने उसे और अधिक आगे बढ़ाया। एक बड़ी विशेषता यह भी है कि सोमदेव ने जिस विषय का स्पर्श भी किया उसके विषयमें पर्याप्त जानकारी दी। इतनी जानकारी कि यदि उसका विस्तार से विश्लेषण किया जाये तो प्रत्येक विषय का एक लघुकाय स्वतंत्र ग्रन्थ बन सकता है। निःसंदेह सोमदेव को अपने इस संकल्प की पूर्ति में पूर्ण सफलता मिली कि उनका शास्त्र समस्त विषयों की व्युत्पत्ति का साधन बने। दशमी शताब्दी तक की अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन तथा उस युग का एक सम्पूर्ण चित्र यशस्तिलक में उतारा गया है। वास्तव में यशस्तिलक जैसे महनीय ग्रन्थ की रचना दशमी शती की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। स्वयं सोमदेव के शब्दों में यह एक महान् अभिधानकोश है (अभिधाननिधानेऽस्मिन्, पृ० ४१८ उत्त०)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशस्तिलक में सामग्री की जितनी विविधता और प्रचुरता है, उतनी ही उसकी विवेचन-शैली और शब्द-सम्पत्ति की दुरूहता भी। इसलिए जिस वैदुष्य और यत्न पूर्वक सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना की, शायद ही उससे कम वैदुष्य और प्रयत्न उसके हार्द को समझने में लगे। संभवतया इसी दुरूहता के कारण यशस्तिलक साधारण पाठकों की पहुँच से दूर बना आया; फिर भी दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत, राजस्थान और गुजरात के शास्त्र-भण्डारों में उपलब्ध यशस्तिलक की हस्तलिखित पाण्डुलिपियां और बाद के साहित्यकारों पर यशस्तिलक का प्रभाव इसके प्रमाण हैं कि पिछली शताब्दियों में यशस्तिलक का संपूर्ण भारतवर्ष में मूल्यांकन हुआ, किन्तु वास्तव में लगभग सहस्र वर्षों में जितना प्रसार होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। और इसका बहुत बड़ा कारण इसकी दुरूहता ही लगता है।

इस शताब्दी में पीटरसन, विन्टरनित्ज और कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान यशस्तिलक की महत्ता और उपयोगिता की ओर आकर्षित हुआ है। भारतीय विद्वानों ने भी अपनी इस निधि की ओर अब दृष्टि डाली है।

सम्पूर्ण यशस्तिलक श्रुतसागर की अपूर्ण संस्कृत टीका के साथ अभी तक केवल एक ही बार लगभग पैंसठ वर्ष पूर्व (सन् १९०१, १९०३) प्रकाशित हुआ था जो अब अप्राप्य है। प्रो० कृष्णकान्त हन्दिकी का अध्ययन ग्रन्थ शोलापुर से सन् १९४९ में 'यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर' नाम से प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रो० हन्दिकी ने विशेष रूप से यशस्तिलक की धार्मिक और दार्शनिक सामग्री का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने जिस-जिस विषय को लिया है, उसके विषय में निःसन्देह सोमदेव के प्रति पूरी निष्ठा, विद्वत्ता और श्रम पूर्वक पर्याप्त और प्रामाणिक जानकारी दी है।

यशस्तिलक के जो और आंशिक संस्करण निकले हैं तथा सोमदेव और यशस्तिलक पर जो फुटकर कार्य हुआ है, उस सबका लेखा जोखा लगाकर देखने पर भी मेरी समझ से यशस्तिलक के सही अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। श्रीगणेश मंगलमय हुआ यह परम शुभ एवं आनन्द का विषय है। वास्तव में प्रो० हन्दिकी जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा। यशस्तिलक तो विविध प्रकार की बहुमूल्य सामग्री का अक्षय भंडार है। अध्येता ज्यों-ज्यों इसके तल में पैठता है, उसे और-और सामग्री उपलब्ध होती जाती है। इसी कारण स्वयं सोमदेव ने विद्वानों को निरन्तर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आनुपूर्वी से इसका विमर्श करते रहने की मंत्रणा दी है (अजस्रमनुपूर्वशः कृती विमृशन्, उत्त० पृ० ४१८)।

काशी विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत अपने शोध प्रबन्ध में मैंने यशस्तिलक की सांस्कृतिक सामग्री को वर्गीकृत रूप में पांच अध्यायों में निम्नप्रकार प्रस्तुत किया है—

१. यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि
२. यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन
३. ललितकलायें और शिल्पविज्ञान
४. यशस्तिलककालीन भूगोल
५. यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

प्रथम अध्याय में वह सामग्री दी गयी है जो यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि के रूप में अनिवार्य है। इस अध्याय में तीन परिच्छेद हैं। परिच्छेद एक में यशस्तिलक का रचनाकाल, यशस्तिलक का साहित्यिक और सांस्कृतिक स्वरूप, यशस्तिलक पर अब तक हुये कार्य का लेखा-जोखा, सोमदेव का जीवन और साहित्य, सोमदेव और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार तथा देवसंघ के विषय में संक्षेप में आवश्यक जानकारी दी गयी है।

यशस्तिलक का रचनाकाल स्वयं सोमदेव ने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी शक संवत् ८८१ अर्थात् सन् ९५९ ई० दे दिया है। इससे यशस्तिलक के परिशीलन की वे सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं, जो समय की अनिश्चितता के कारण साधारणतः भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन में उपस्थित होती हैं।

साहित्यिक स्वरूप का विश्लेषण करते हुये मैंने लिखा है कि यशस्तिलक की रचना गद्य और पद्य में हुई है और साहित्य की इस सम्मिलित विधा को समीक्षकों ने चम्पू कहा है! स्वयं सोमदेव ने यशस्तिलक को महाकाव्य कहा है। वास्तव में यह अपने प्रकार की एक विशिष्ट कृति है और अपने ही प्रकार की एक स्वतंत्र विधा। एक उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं।

यशस्तिलक का सांस्कृतिक स्वरूप और भी विराट है। श्रीदेव ने यशस्तिलक-पंजिका में यशस्तिलक में आये सत्ताइस विषय गिनाये हैं। मैंने लिखा है कि यदि श्रीदेव के अनुसार ही यशस्तिलक के विषयों का वर्गीकरण किया जाये तो उनकी सूची में भूगोल आदि कई विषय और भी जोड़ने होंगे। इस सामग्री की सबसे बड़ी विशेषता इसकी पूर्णता और प्रामाणिकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशस्तिलक ग्रौर सोमदेव पर ग्रब तक हुये कार्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुये यशस्तिलक ग्रौर नीतिवाक्यामृत के ग्रब तक प्रकाशित संस्करण, विभिन्न पत्र-पत्रिकाग्रों में प्रकाशित शोध-निबंध तथा प्रो० हन्दिकी के समीक्षा ग्रन्थ की जानकारी दी गयी है।

सोमदेव के जीवन ग्रौर साहित्य का जो परिचय उपलब्ध होता है, उससे उनके उज्ज्वल पक्ष का ही पता चलता है। नीतिवाक्यामृत ग्रौर यशस्तिलक उनकी उपलब्ध रचनायें हैं। षण्णवतिप्रकरण ग्रादि चार ग्रन्य ग्रन्थ ग्रनुपलब्ध हैं।

नीतिवाक्यामृत के संस्कृत टीकाकार ने सोमदेव को कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार नरेश महेन्द्रदेव का ग्रनुज बताया है। यशस्तिलक के दो पद्य भी महेन्द्रदेव ग्रौर सोमदेव के सम्बन्धों की ग्रोर संकेत करते हैं। उनका ग्रनुपलब्ध ग्रन्थ महेन्द्रमातलिसंजल्प ग्रौर सोमदेव का देवान्त नाम भी शायद इस ग्रोर इंगित है। महेन्द्रपालदेव द्वितीय तथा सोमदेव के सम्बन्धों में कालिक कठिनाई भी नहीं ग्राती। यशस्तिलक में राजनीति ग्रौर शासन का जो विशद वर्णन है, उससे सोमदेव का विशाल राज्यतन्त्र ग्रौर शासन से परिचय स्पष्ट है। इतनी सब सामग्री होते हुये भी मेरी समझ से सोमदेव को प्रतिहार नरेश महेन्द्रपालदेव का ग्रनुज मानने के लिए ग्रभी ग्रौर ग्रधिक ठोस साक्ष्यों की ग्रपेक्षा बनी रहती है।

यशस्तिलक चालुक्यवंशीय ग्ररिकेसरी के प्रथम पुत्र वद्यग की राजधानी गंगाधारा में रचा गया था। ग्ररिकेसरिन् तृतीय के एक दानपत्र से सोमदेव ग्रौर चालुक्यों के सम्बन्धों का ग्रौर भी दृढ़ निश्चय हो जाता है। चालुक्य वंश दक्षिण के महाप्रतापी राष्ट्रकूटों के ग्रधीन सामन्त पदवी धारी था। यशस्तिलक राष्ट्रकूट संस्कृति को एक विशाल दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित करता है। जिस तरह बाणभट्ट ने हर्षचरित ग्रौर कादम्बरी में गुप्त युग का चित्र उतारने का प्रयत्न किया, उसी तरह सोमदेव ने यशस्तिलक में राष्ट्रकूट युग का।

सोमदेव देव संघ के साधु थे। ग्ररिकेसरी के दानपत्र में उन्हें गौड संघ का कहा गया है। वास्तव में ये दोनों एक ही संघ के नाम थे। देव संघ ग्रपने युग का एक विशिष्ट जैन साधुसंघ था। सोमदेव के गुरु, नेमिदेव ने सैकड़ों महावादियों को वाग्युद्ध में पराजित किया था। सोमदेव को यह सब विरासत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में मिला । यही कारण है कि उनके लिए भी वादीभपंचानन, तार्किकचक्रवर्ती आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं ।

इस सम्पूर्ण समाग्री को प्रमाणक साक्ष्यों के साथ पहले परिच्छेद में दिया गया है ।

परिच्छेद दो में यशस्तिलक की संक्षिप्त कथा दी गयी है तथा उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है । महाराज यशोधर के आठ जन्मों की कहानी का सूत्र यशस्तिलक के प्रासंगिक विस्तृत वर्णनों में कहीं खो न जाये, इसलिए संक्षिप्त कथा का जान लेना आवश्यक है ।

कथा के माध्यम से सिद्धान्त और नीति की शिक्षा की परम्परा प्राचीन है । यशस्तिलक की कथा का उद्देश्य हिंसा के दुष्प्रभाव को दिखाकर जनमानस में अहिंसा के उच्च आदर्श की प्रतिष्ठा करना था । यशोधर को आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण छह जन्मों तक पशुयोनि में भटकना पड़ा तो पशुबलि या अन्य प्रकार की हिंसा का तो और भी दुष्परिणाम हो सकता है । सोमदेव ने बड़ी कुशलता के साथ यह भी दिखाया है कि संकल्पपूर्वक हिंसा करने का त्याग गृहस्थ को विशेष रूप से करना चाहिए । कथावस्तु की यही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है ।

परिच्छेद तीन में यशोधरचरित्र की लोकप्रियता का सर्वेक्षण है । यशोधर की कथा मध्ययुग से लेकर बहुत बाद तक के साहित्यकारों के लिए एक प्रिय और प्रेरक विषय रहा है । कालिदास ने अवन्ति जनपद के उदयन-कथा कोविद ग्रामवृद्धों की बात कही थी, यशोधर कथा के विशेषज्ञ मनीषी आठवीं शती के भी बहुत पहले से लेकर लगभग आजतक यशोधर की कथा कहते आये । उद्योतन सूरि (७७९ ई०) ने प्रभञ्जन के यशोधरचरित्र का उल्लेख किया है । हरिभद्र की समराइच्चकहा में यशोधर की कथा आयी है । बाद के साहित्यकारों ने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, तमिल और कन्नड़ भाषाओं में यशोधरचरित्र पर अनेक ग्रन्थों की रचना की । प्रो०पी०एल० वैद्य ने जसहरचरिउ की प्रस्तावना में उन्तीस ग्रन्थों की जानकारी दी थी । मेरे सर्वेक्षण से यह संख्या चौवन तक पहुँची है । अनेक शास्त्र-भण्डारों की सूचियाँ अभी भी नहीं बन पायीं । इसलिए सम्भव है अभी और भी कई ग्रन्थ यशोधर कथा पर उपलब्ध हों ।

द्वितीय अध्याय में यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन का विवेचन है । इसमें बारह परिच्छेद हैं ।

परिच्छेद एक में समाज गठन और यशस्तिलक में उल्लिखित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामाजिक व्यक्तियों के विषय में जानकारी दी गयी है। सोमदेवकालीन समाज अनेक वर्गों में विभक्त था। वर्ण-व्यवस्था की प्राचीन श्रौत-स्मार्त मान्यतायें प्रचलित थीं। समाज और साहित्य दोनों पर इन मान्यताओं का प्रभाव था। ब्राह्मण के लिए यशस्तिलक में ब्राह्मण, द्विज, विप्र, भूदेव, श्रोत्रिय, वाडव, उपाध्याय, मौहूर्तिक, देवभोगी, पुरोहित और त्रिवेदी शब्द आये हैं। ये नाम प्राय: उनके कार्यों के आधार पर थे।

क्षत्रिय के लिए क्षत्र और क्षत्रिय शब्द आये हैं। पौरुष सापेक्ष्य और राज्य संचालन आदि कार्य क्षत्रियोचित माने जाते थे।

वैश्य के लिए वैश्य, वणिक, श्रेष्ठि और सार्थवाह शब्द आये हैं। ये देशी व्यापार के अतिरिक्त टाड़ा बाँधकर विदेशी व्यापार के लिए जाते थे। श्रेष्ठ व्यापारी को राज्य की ओर से राज्यश्रेष्ठी पद दिया जाता था।

शूद्र के लिए यशस्तिलक में शूद्र, अन्त्यज और पामर शब्द आये हैं। प्राचीन मान्यताओं की तरह सोमदेव के समय भी अन्त्यजों का स्पर्श वर्जनीय माना जाता था और वे राज्य संचालन आदि के अयोग्य समझे जाते थे।

अन्य सामाजिक व्यक्तियों में सोमदेव ने हलायुधजीवि, गोप, व्रजपाल, गोपाल, गोध, तक्षक, मालाकार, कौलिक, ध्वजिन्, निपाजीव, रजक, दिवाकीर्ति, आस्तरक, संवाहक, धीवर, चर्मकार, नट या शैलूष, चाण्डाल, शबर, किरात, वनेचर और मातंग का उल्लेख किया है। इस परिच्छेद में इन सब पर प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद दो में जैनाभिमत वर्णव्यवस्था और सोमदेव की मान्यताओं पर विचार किया गया है। सिद्धान्त रूप से जैन धर्म में वर्णव्यवस्था की श्रौत-स्मार्त मान्यतायें स्वीकृत नहीं हैं। कर्मग्रन्थों में वर्ण, जाति और गोत्र की व्याख्या प्रचलित व्याख्याओं से सर्वथा भिन्न है। इसी प्रकार जैन ग्रन्थों में चतुर्वर्ण की व्याख्या भी कर्मणा की गयी है। सिद्धान्त रूप से मान्यताओं का यह रूप होते हुए भी व्यवहार में जैन समाज में भी श्रौत-स्मार्त मान्यतायें प्रचलित थीं। इसलिए सोमदेव ने चिन्तन दिया कि गृहस्थ के लौकिक और पारलौकिक दो धर्म हैं। लोकधर्म लौकिक मान्यताओं के अनुसार तथा पारलौकिक धर्म आगमों के अनुसार मानना चाहिए। प्राचीन कर्मग्रन्थों से लेकर सोमदेव तक के जैन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर विचार किया गया है।

परिच्छेद तीन में आश्रम-व्यवस्था और संन्यस्त व्यक्तियों का विवेचन है। आश्रम-व्यवस्था की प्राचीन मान्यतायें प्रचलित थीं। ब्रह्मचर्य आश्रम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की समाप्ति पर सोमदेव ने गोदान का उल्लेख किया है। बाल्यावस्था में संन्यस्त होने का निषेध किया जाता रहा है, पर इसके भी पर्याप्त अपवाद रहे हैं। यशस्तिलक के प्रमुख पात्र अभयरुचि और अभयमति भी छोटी अवस्था में प्रव्रजित हो गये थे। संन्यस्त व्यक्तियों के लिए आजीवक, कर्मन्दी, कापालिक, कौल, कुमारश्रमण, चित्रशिखंडि, ब्रह्मचारी, जटिल, देशयति, देशक, नास्तिक, परिव्राजक, पाराशर, ब्रह्मचारी, भविल, महाव्रती, महासाहसिक, मुनि, मुमुक्षु, यति, यागज्ञ, योगी, वैखानस, शंसितव्रत, श्रमण, साधक, साधु और सूरि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त सोमदेव ने कुछ और नामों की व्युत्पत्तियाँ दी हैं। इनमें से अधिकांश अपने-अपने सम्प्रदाय विशेष को व्यक्त करते हैं। इनके विषय में संक्षेप में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद चार में पारिवारिक जीवन और विवाह की प्रचलित मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेवकालीन भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन था। सोमदेव ने चिरपरिचित पारिवारिक सम्बन्ध पति, पत्नी, पुत्र आदि का सुन्दर वर्णन किया है। बालक्रीड़ाओं का जैसा हृदयग्राही वर्णन यशस्तिलक में है, वैसा अन्यत्र कम मिलता है। स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी, धातृ, भार्या आदि रूपों पर प्रकाश डाला गया है।

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारों का उल्लेख है। प्राचीन राजे-महाराजे तथा बहुत बड़े लोगों में स्वयंवर की प्रथा थी। स्वयंवर के आयोजन की एक विशेष विधि थी। माता-पिता द्वारा जो विवाह आयोजित होते थे, उनमें भी अनेक बातों का ध्यान रखा जाता था। सोमदेव ने बारह वर्ष की कन्या तथा सोलह वर्ष के युवक को विवाह योग्य बताया है। बाल विवाह की परम्परा स्मृतिकाल से चली आयी थी। स्मृति ग्रन्थों में अरजस्वला कन्या के ग्रहण का उल्लेख है। अलबरूनी ने भी लिखा है कि भारतवर्ष में बाल विवाह की प्रथा थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद पाँच में यशस्तिलक में आयी खान-पान विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव की इस सामग्री की त्रिविध उपयोगिता है। एक तो इससे खाद्य और पेय वस्तुओं की लम्बी सूची प्राप्त होती है, दूसरे दशमी शती में भारतीय परिवारों, विशेषकर दक्षिण भारत के परिवारों की खान-पान व्यवस्था का पता चलता है। तीसरे ऋतुओं के अनुसार संतुलित और स्वास्थ्यकर भोजन की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है। पाक विद्या के विषय में भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है। शुद्ध और संसर्ग भेद से त्रेसठ प्रकार के व्यंजन बनाये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा सकते हैं। सूपशास्त्र विशेषज्ञ पौरोगव का भी उल्लेख है। बिना पकायी खाद्य सामग्री में गोधूम, यव, दीदिवि, श्यामाक, शालि, कलम, यवनाल, चिपिट, सक्तु, मुद्ग, माष, विरसाल तथा द्विदल का उल्लेख है। भोजन के साथ जल किस अनुपात में पीना चाहिए, जल को अमृत और विष क्यों कहा जाता है, ऋतुओं के अनुसार वापी, कूप, तड़ाग, कहाँ का जल पीना उपयुक्त है, जल को संसिद्ध कैसे किया जाता है, इसकी जानकारी विस्तार से दी गयी है।

मसालों में दरद, क्षपारस, मरिच, पिप्पली, राजिका तथा लवण का उल्लेख है। स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय सामग्री में घृत, आज्य, तेल, दधि, दुग्ध, नवनीत, तक्र, कलि या अवन्ति-सोम, नारिकेलफलांभ, पानक तथा शर्कराढ्यपय का उल्लेख है। घृत, दुग्ध, दधि तथा तक्र के गुणों को सोमदेव ने विस्तार से बताया है। मधुर पदार्थों में शर्करा, शिता, गुड़ तथा मधु का उल्लेख है। साग-सब्जी और फलों की तो एक लम्बी सूची आयी है– पटोल, कोहल, कारवेल, वृन्ताक, बाल, कदल, जीवन्ती, कन्द, किसलय, विस, वास्तूल, तण्डुलीय, चिल्ली, चिर्भटिका, मूलक, आर्द्रक, धात्रीफल, एर्वारु, अलावू, कर्कारु, मालूर, चक्रक, अग्निदमन, रिंगणीफल, आम्र, आम्रातक, पिचुमन्द, सोभाजन, वृहतीवार्ताक, एरण्ड, पलाण्डु, वल्लक, रालक, कोकुन्द, काकमाची, नागरंग, ताल, मन्दर, नागवल्ली, वाण, आसन, पूग, अक्षोल, खर्जूर, लवली, जम्बीर, अश्वत्थ, कपित्थ, नमेरु, पारिजात, पनस, ककुभ, वट, कुरवक, जम्बू, दर्दरीक, पुण्ड्रेक्षु, मृद्वीका, नारिकेल, उदम्बर तथा प्लक्ष।

तैयार की गयी सामग्री में भक्त, सूप, शष्कुली, समिध या समिता, यवागू, मोदक, परमान्न, खाण्डव, रसाल, आमिक्षा, पक्वान्न, अवदंश, उपदेश, सर्पिषिस्नात, अंगारपाचित, दध्नापरिप्लुत, पयषा-विशुष्क तथा पर्पट के उल्लेख हैं।

मांसाहार तथा मांसाहार निषेध का भी पर्याप्त वर्णन है। जैन मांसाहार के तीव्र विरोधी थे, किन्तु कौल-कापालिक आदि सम्प्रदायों में मांसाहार धार्मिक रूप से अनुमत था। बध्य पशु, पक्षी तथा जलजन्तुओं में मेष, महिष, मय, मातंग, मितंद्रु, कुंभीर, मकर, मालूर, कुलीर, कमठ, पाठीन, भेरुण्ड, क्रौंच, कोक, कुकुंट कुरुर, कलहंस, चमर, चमूरु, हरिण, हरि, वृक, वराह, वानर तथा गोखुर के उल्लेख हैं। मांसाहार का ब्राह्मण परिवारों में भी प्रचलन था। यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर मांसाहार की धार्मिक स्वीकृति मान ली गयी थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद छह में स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या विषयक सामग्री का विवेचन है। खान-पान और स्वास्थ्य का अनन्य संबंध है। जठराग्नि पर भोजनपान निर्भर करता है। मनुष्यों की प्रकृति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। ऋतु के अनुसार प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। इसलिए भोजन-पान आदि की व्यवस्था ऋतुओं के अनुसार करना चाहिए। भोजन का समय, सहभोजन, भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति, भोज्य और अभोज्य पदार्थ, विषयुक्त भोजन, भोजन करने की विधि। नीहार या मलमूत्रविसर्जन, अभ्यंग, उद्वर्तन, व्यायाम तथा स्नान इत्यादि के विषय में यशस्तिलक में पर्याप्त सामग्री आयी है। इस सबका इस परिच्छेद में विवेचन किया गया है।

रोगों में अजीर्ण, अजीर्ण के दो भेद विदाहि और दुर्जर, दृग्मान्द्य, वमन, ज्वर, भगन्दर, गुल्म तथा सितश्वित के उल्लेख हैं। इनके कारणों तथा परिचर्या के विषय में भी प्रकाश डाला गया है।

ओषधियों में मागधी, अमृता, सोम, विजया, जम्बूक, सुदर्शना, मरुद्भव, अर्जुन, अभीरु, लक्ष्मी, वृती, तपस्विनि, चन्द्रलेखा, कलि, अर्क, अरिभेद, शिवप्रिय, गायत्री, ग्रन्थिपर्ण तथा पारदरस की जानकारी आयी है। सोमदेव ने आयुर्वेद के अनेक पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस सब पर इस परिच्छेद में प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद सात में यशस्तिलक में उल्लिखित वस्त्रों तथा वेशभूषा का विवेचन है। सोमदेव ने बिना सिले वस्त्रों में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका, दुकूल, अंशुक तथा कौशेय का उल्लेख किया है। नेत्र के विषय में सर्व प्रथम डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हर्षचरित के सांस्कृतिक अध्ययन में विस्तार से जानकारी दी थी। नेत्र का प्राचीनतम उल्लेख कालिदास के रघुवंश का है। बाण ने भी नेत्र का उल्लेख किया है। उद्योतनसूरि कृत कुवलयमाला (७७९ ई०) में चीन से आने वाले वस्त्रों में नेत्र का भी उल्लेख है। वर्णरत्नाकर में इसके चौदह प्रकार बताये हैं। चौदहवीं शती तक बंगाल में नेत्र का प्रचलन था। नेत्र की पाचूड़ी ओढ़ी सौर बिछायी जाती थी। जायसी ने पदमावत में कई बार नेत्र का उल्लेख किया है। गोरखनाथ के गीतों तथा भोजपुरी लोक गीतों में नेत्र का उल्लेख मिलता है। चीन देश से आने वाले वस्त्र को चीन कहा जाता था। भारत में चीनी वस्त्र आने के प्राचीनतम प्रमाण ईसा पूर्व पहली शताब्दी के मिलते हैं। डॉ० मोतीचन्द्र ने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। कालिदास ने शाकुन्तल में चीनांशुक का उल्लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया है। बृहत्कल्पसूत्र की वृत्ति में इसकी व्याख्या आयी हैं। चीन और वाह्लीक से और भी कई प्रकार के वस्त्र आते थे। चित्रपट संभवतया वे जामदानी वस्त्र थे, जिनकी बिनावट में ही पशु-पक्षियों या फूल-पत्तियों की भाँत डाल दी जाती थी। बाण ने चित्रपट के तकियों का उल्लेख किया है। पटोल गुजरात का एक विशिष्ट वस्त्र था। आज भी वहाँ पटोला साड़ी का प्रचलन है। रल्लिका रल्लक नामक जंगली बकरे के ऊन से बना वेशकीमती वस्त्र था। युवांगच्यांग ने भी इसका उल्लेख किया है। वस्त्रों में सबसे अधिक उल्लेख दुकूल के हैं। आचारांग-चूर्णि तथा निशीथ-चूर्णि में दुकूल की व्याख्या आयी है। पौण्ड्र तथा सुवर्णकुड्या के दुकूल विशिष्ट होते थे। दुकूल की बिनाई, दुकूल का जोड़ा पहनने का रिवाज, हंसमिथुन लिखित दुकूल के जोड़े, दूकूल के जोड़े पहनने की अन्य साहित्यिक साक्षी, दूकूल की साड़ियाँ, पलंगपोश, तकियों के गिलाफ, दुकूल और क्षौम वस्त्रों में अन्तर और समानता इत्यादि का इस परिच्छेद में पर्याप्त विवेचन किया गया है। अंशुक एक प्रकार का महीन वस्त्र था। यह कई प्रकार का होता था। सफेद तथा रंगीन सभी प्रकार का अंशुक बनता था। भारतीय और चीनी अंशुक की अपनी-अपनी विशेषतायें थीं। कौशेय कोशकार कीड़ों से उत्पन्न रेशम से बनता था। इन कीड़ों की चार योनियाँ बतायी गयी हैं। उन्हीं के अनुसार कौशेय भी कई प्रकार का होता था।

पहनने के वस्त्रों में सोमदेव ने कंचुक, वारबाण, चोलक, चण्डातक, उष्णीष, कौपीन, उत्तरीय, चीवर, आवान, परिधान, उपसंव्यान और गुह्या का उल्लेख किया है। कंचुक एक प्रकार के लम्बे कोट को कहा जाता था और स्त्रियों की चोली को भी। सोमदेव ने चोली के अर्थ में कंचुक का उल्लेख किया है। वारबाण घुटनों तब पहुँचने वाला एक शाही कोट था। भारतीय वेशभूषा में यह सासानी ईरान की वेशभूषा से आया। वारबाण पहलवी भाषा का संस्कृत रूप है। शिल्प तथा मृण्मूर्तियों में वारबाण के अङ्कन मिलते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों वारबाण पहनते थे। वारबाण जिरहबख्तर को भी कहते थे, किन्तु सोमदेव ने कोट के अर्थ में ही प्रयोग किया है। भारतीय साहित्य में वारबाण के उल्लेख कम ही मिलते हैं। चोलक भी एक प्रकार का कोट था। यह और कोटों की अपेक्षा सबसे अधिक लम्बा और ढीला बनता था। इसे सब वस्त्रों के ऊपर पहनते थे। उत्तर-पश्चिम भारत में नौशे के समय चोला या चोलक पहनने का रिवाज अब भी है। भारत में चोलक संभवतया मध्य एशिया से शक लोगों के साथ आया और यहाँ की वेशभूषा में रमा गया। भारतीय शिल्प में इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार के कोट पहने मूर्तियाँ मिलती हैं। चण्डातक एक प्रकार का घंघरीनुमा वस्त्र था। इसे स्त्री और पुरुष दोनों पहनते थे। उष्णीष पगड़ी को कहते थे। भारत में विभिन्न प्रकार की पगड़ियाँ बाँधने का रिवाज प्राचीनकाल से चला आया है। छोटे चादर या दुपट्टा को कौपीन कहते थे। उत्तरीय ओढ़नेवाला चादर था। चीवर बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्र कहलाते थे। आश्रमवासी साधुओं के वस्त्रों के लिए सोमदेव ने आवान कहा है। परिधान पुरुष की धोती को कहते थे। बुन्देलखण्ड की लोकभाषा में इसका परदनिया रूप अब भी सुरक्षित है। उपसंव्यान छोटे अंगौछे को कहते थे। गुह्या कछुटिया या लंगोट था। हंसतूलिका रुई भरे गद्दे को कहा जाता था। उपधान तकिया के लिए बहु-प्रचलित शब्द था। कन्था पुराने कपड़ों को एक साथ सिलकर बनायी गयी रजाई या गदरी थी। नमत ऊनी नमदे थे। निचोल विस्तर पर बिछाने का चादर कहलाता था। सिचयोल्लोच चन्द्रातप या चंदोवा को कहते थे। इस परिच्छेद में इन समस्त वस्त्रों के विषय में प्रमाणिक सामग्री के साथ पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद आठ में यशस्तिलक में उल्लिखित आभूषणों का परिचय दिया गया है। भारतीय अलंकारशास्त्र की दृष्टि से यह सामग्री महत्त्वपूर्ण है। सोमदेव ने शिर के आभूषणों में किरीट, मौलि, पट्ट और मुकुट का उल्लेख किया है। किरीट, मौलि और मुकुट भिन्न-भिन्न प्रकार के मुकुट थे। किरीट प्राय: इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं के मुकुट को कहा जाता था। मौलि प्राय: राजे पहनते थे तथा मुकुट महासामन्त। पट्ट सिर पर बाँधने का एक विशेष आभूषण था, जो प्राय: सोने का बनता था। बृहत्संहिता में पाँच प्रकार के पट्ट बताये हैं।

कर्णाभूषणों में सोमदेव ने अवतंस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल तथा कुंडल का उल्लेख किया है। अवतंस प्राय: पल्लव या पुष्पों के बनते थे। सोमदेव ने पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल तथा कैरव के बने अवतंसों के उल्लेख किये हैं। एक स्थान पर रत्नावतंसों का भी उल्लेख है। कर्णपूर पुष्प के आकार का बनता था। देशी भाषा में अभी इसे कनफूल कहा जाता है। कर्णिका तालपत्र के आकार का कर्णाभूषण था। आजकल इसे तिकोना कहते हैं। उत्पल के आकार का बना कर्ण का आभूषण कर्णोत्पल कहलाता था। कुण्डल कुड्मल तथा गोल वाली के आकार के बनते थे। इसमें कानों को लपेटने के लिए एक पतली जंजीर भी लगी रहती थी। बुदेलखंड में इस प्रकार के कुण्डलों का देहातों में अब भी रिवाज है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गले में पहनने के आभूषणों में एकावली, कंठिका, मौलिकदाम, हार तथा हारयष्टि का उल्लेख है। एकावली मोतियों की इकहरी माला को कहते थे। सोमदेव ने इसे समस्त पृथ्वीमंडल को वश में करने के लिए आदेशमाला के समान कहा है। गुप्त युग से ही विशिष्ट आभूषणों के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयीं थीं। एकावली के विषय में बाण ने एक रोचक किंवदन्ती का उल्लेख किया है। कंठिका कंठी को कहते थे। हार अनेक प्रकार के बनते थे। सोमदेव ने आठ बार हार का उल्लेख किया है। हारयष्टि संभवतया आगुल्फ लम्बा हार कहलाता था। मौलिकदाम मोतियों की माला को कहते थे।

भुजा के आभूषणों में अंगद और केयूर का उल्लेख है। केयूर भुजा के शीर्ष भाग में पहना जाता था। अंगद बहुत चुस्त होने के कारण ही संभवतया अंगद कहलाता था। स्त्री और पुरुष दोनों अंगद पहनते थे। कलाई के आभूषणों में कंकण और वलय का उल्लेख है। कंकण प्रायः सोने आदि के बनते थे और वलय सींग, हाथीदाँत या कांच के। हाथ की अंगुली में पहना जाने वाला गोल छला उर्मिका कहलाता था। अंगुलीयक भी अंगुली में पहना जानेवाला आभूषण था। कटि के आभूषणों में काँची, मेखला, रसना, सारसना तथा धर्घरमालिका का उल्लेख है। ये सब करधनी के ही भिन्न-भिन्न प्रकार थे। मंजीर, हिंजीरक, नूपुर, तुलोकोटि और हंसक पैरों में पहनने के आभूषण थे। इस परिच्छेद में इन सब आभूषणों के विषय में विस्तार से जानकारी दी गई है।

परिच्छेद नव में केश विन्यास, प्रसाधन सामग्री तथा पुष्प प्रसाधन की सुकुमार कला का विवेचन है। शिर धोने के बाद स्त्रियाँ सुगंधित धूप के धुंये से केशों को धूपायित करती थीं। इससे केश भभरे हो जाते थे। भभरे केशों को अपनी रुचि के अनुसार अलकजाल, कुन्तलकलाप, केशपाश, चिकुरभंग, धम्मिलविन्यास, मौली, सीमन्तसन्तति, वेणीदंड, जटाजूट या कबरी की तरह सँवार लिया जाता था। केश सँवारने के ये विभिन्न प्रकार थे। कला, शिल्प और मृण्मूर्तियों में इनका अंकन मिलता है। इस परिच्छेद में इन सबका परिचय दिया गया है।

प्रसाधन सामग्री में अंजन, अलक्तक, कज्जल, अगुरु, कंकोल, कुंकुम, कर्पूर, चन्द्रकवल, तमालदलधूलि, ताम्बूल, पटवास, मनःसिल, मृगमद, यक्षकर्दम, हरिरोहण, तथा सिन्दूर का उल्लेख है। पुष्पप्रसाधन में पुष्पों के बने विभिन्न प्रकार के अलंकारों के नाम आये हैं। जैसे– अवतंसकुवलय, कमलकेयूर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कदलीप्रवालमेखला, कर्णोत्पल, कर्णपूर या कर्णफूल, मृणालवलय, पुन्नागमाला, बंधूकनूपुर, शिरीषजंघालंकार, शिरीषकुसुमदाम, विचकिलहारयष्टि तथा कुरवक-मुकुलस्रक । इन सबके विषय में प्रस्तुत परिच्छेद में जानकारी दी गयी है ।

परिच्छेद दश में शिक्षा और साहित्य विषयक सामग्री का विवेचन है । बाल्यावस्था शिक्षा का उपयुक्त समय माना जाता था । गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श थी । शिक्षा समाप्ति के बाद गोदान दिया जाता था । शिक्षा के अनेक बिषयों का सोमदेव ने उल्लेख किया है । अमृतमति महारानी की द्वारपालिका को समस्त देशों की भाषा और वेश की जानकार कहा गया है । तर्कशास्त्र, पुराण, काव्य, व्याकरण, गणित, शब्दशास्त्र, धर्माख्यान, प्रमाणशास्त्र, राजनीति. गज और अश्व शिक्षा, रथ, वाहन और शस्त्रविद्या, रत्नपरीक्षा, संगीत, नाटक, चित्रकला, आयुर्वेद, युद्धविद्या तथा कामशास्त्र शिक्षा के प्रमुख विषय थे । इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, अपिशल, पाणिनी तथा पतंजलि के व्याकरणों का अध्ययन अध्यापन होता था । पाणिनी के विषय में सोमदेव ने एक महत्त्व-पूर्ण जानकारी दी है । इनके पिता का नाम पणि या पाणि था । इसीलिए इन्हें पणिपुत्र भी कहा जाता था । गणित को सोमदेव ने प्रसंख्यान शास्त्र कहा है । सोमदेव के समय प्रमाणशास्त्र के रूप में अकलंक-न्याय की प्रतिष्ठा हो चुकी थी । राजनीति में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाज रचित नीतिशास्त्रों का उल्लेख है । सोमदेव ने गजविद्या में यशोधर को रोमपाद की तरह कहा है । रोमपाद के अतिरिक्त गजविद्या विशेषज्ञों में इभचारी, याज्ञवल्क्य, वाद्धलि (वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख है । कुल मिलाकर यशस्तिलक में गजविद्या विषयक प्रभूत सामग्री है । गजोत्पत्ति की पौराणिक अनुश्रुति, उत्तम गज के गुण, गजों के भद्र, मन्द, मृग और संकीर्ण भेद, गजों की मदावस्था, उसके गुण-दोष और चिकित्सा, गज-परिचारक, गजशिक्षा इत्यादि के विषय में सोमदेव ने विस्तार से लिखा है । मैंने उपलब्ध गजशास्त्रों से इसकी तुलना करके देखा है कि यह सामग्री एक स्वतन्त्र गजशास्त्र के लिए पर्याप्त है । गजशास्त्र की तरह अश्वशास्त्र पर भी सोमदेव ने विस्तार से प्रकाश डाला है । राजाश्व के वर्णन में केवल एक प्रसंग में ही पर्याप्त जानकारी दे दी है । रैवत और शालिहोत्र अश्वशास्त्र विशेषज्ञ माने जाते थे । सोमदेव ने अश्व के इकतालीस गुणों की परीक्षा करना अपेक्षित बताया है । यशस्तिलक में इन सभी गुणों के विषय में पर्याप्त जानकारी दी गयी है । अश्वशास्त्र के साथ तुलना करने पर यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामग्री और भी महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होती है। रत्नपरीक्षा में शुकनास का उल्लेख हैं। वैद्यक या आयुर्वेद में काशिराज धन्वन्तरि, चारायण, निमि, धिषण तथा चरक का उल्लेख है। रोग और उनकी परिचर्या नामक परिच्छेद में इनके विषय में विशेष जानकारी दी है। संसर्गविद्या या नाट्यशास्त्र, चित्रकला, तथा शिल्पशास्त्र विषयक सामग्री भी यशस्तिलक में पर्याप्त और महत्वपूर्ण है। ललित-कलायें और शिल्प विज्ञान नामक तीसरे अध्याय में इस सामग्री का विवेचन किया गया है। कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुसिद्धान्त कहा है। यशस्तिलक में इसकी सामग्री बिखरी पड़ी है। भोगावलि राजस्तुति को कहते थे। काव्य और कवियों में सोमदेव ने अपने पूर्ववर्ती अनेक महाकवियों का उल्लेख किया है। उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ तथा राजशेखर का एक साथ एक ही प्रसङ्ग में उल्लेख है। सोमदेव द्वारा उल्लिखित ग्रहिल, नीलपट, त्रिदश, कोहल, गणपति, शंकर, कुमुद तथा केकट के विषय में अभी हमें विशेष जानकारी नहीं उपलब्ध होती। वररुचि का भी एक पद्य उद्धृत किया गया है। दार्शनिक और पौराणिक शिक्षा और साहित्य की तो यशस्तिलक खान है। प्रो० हन्दिकी ने इस सामग्री का विस्तार से विवेचन किया है, हमने उसकी पुनरावृत्ति नहीं की।

परिच्छेद ग्यारह में आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेव ने कृषि, वाणिज्य, सार्थवाह, नौ सन्तरण और विदेशी व्यापार, विनिमय के साधन, न्यास आदि के विषय में पर्याप्त सामग्री दी है। काली जमीन विशेष उपजाऊ होती है। सुलभ जल, सहज प्राप्य श्रमिक, कृषि के उपयोगी उपकरण, कृषि की विशेष जानकारी तथा उचित कर कृषि की समृद्धि में कारण होते हैं। तभी वसुन्धरा पृथ्वी चिन्तामणि की तरह शस्य सम्पत्ति लुटाती है।

वाणिज्य में सोमदेव ने स्थानीय तथा विदेशी व्यापार का उल्लेख किया है। स्थानीय व्यापार के लिए प्रायः प्रत्येक चीज का अलग-अलग बाजार या हाट होता था। बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्र पेण्ठास्थान कहलाते थे। देश-देश के व्यापारी आकर इन पेण्ठास्थानों में अपना रोजगार करते थे। पेण्ठास्थानों का संचालन राज्य की ओर से होता था या किसी विशेष व्यक्ति द्वारा। इनमें व्यापारियों को हर तरह की सुविधा दी जाती थी। मध्य युग में जो व्यापारिक प्रगति हुई उसमें इन व्यापारिक मंडियों का विशेष हाथ था।

भारतवर्ष में व्यापार करने के लिए जिस प्रकार विदेशी सार्थ आते थे उसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार भारतीय सार्थ टाड़ा बाँधकर विदेशी व्यापार के लिए निकलते थे। सोमदेव ने ताम्रलिप्ति तथा सुवर्णद्वीप के व्यापार को जानेवाले सार्थों का उल्लेख किया है।

सोमदेव के युग में वस्तु विनिमय तथा मुद्रा के माध्यम से विनिमय की प्रणाली थी। पिछड़े क्षेत्रों में वस्तु विनिमय चलता था। मुद्राओं में सोमदेव ने निष्क, कार्षापण तथा सुवर्ण का उल्लेख किया है। निष्क वैदिक युग में एक स्वर्णाभूषण था, किन्तु बाद में एक नियत स्वर्ण मुद्रा बन गया। मनुस्मृति में निष्क को चार स्वर्ण या तीन सौ बीस रत्ती के बराबर कहा गया है। कार्षापण चांदी का सिक्का था। मनुस्मृति में इसे राजतपुराण और धरण कहा है। पुराण का वजन बत्तीस रत्ती होता था। कार्षापण की फुटकर खरीद भी होती थी। सुवर्ण निष्क की तरह एक सोने का सिक्का था। अनगढ़ सोने को हिरण्य कहते थे, और जब उसी के सिक्के ढाल लिए जाते तो वे सुवर्ण कहलाते थे। मनुस्मृति के अनुसार स्वर्ण का वजन अस्सी रत्ती या सोलह माषा होता था।

सोमदेव ने न्यास या धरोहर रखने का भी उल्लेख किया है। आचार, व्यवहार तथा विश्वास के लिए विश्रुत व्यक्ति के यहाँ न्यास रखा जाता था। यदि न्यास रखने वाले की नियत खराब हो जाये और वह समझ ले कि न्यास रखनेवाले के पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं, जिसके आधार पर वह कह सके कि उसने अमुक वस्तु उसके पास न्यास रखी है, तो वह न्यास को हड़प जाता था।

भृति या सेवावृत्ति के विषय में लोगों की भावना अच्छी नहीं थी। विवश होकर आजीविका के लिए सेवावृत्ति स्वीकार भले ही कर ली जाये, किन्तु उसे अच्छा नहीं माना जाता था। ग्यारहवें परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन है।

परिच्छेद बारह में यशस्तिलक में उल्लिखित शस्त्रास्त्रों का विवेचन है। सोमदेव ने छत्तीस प्रकार के शस्त्रास्त्रों का उल्लेख किया है। इन उल्लेखों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनसे अधिकांश शस्त्रास्त्रों का स्वरूप, उनके प्रयोग करने के तरीके तथा कतिपय अन्य बातों पर भी प्रकाश पड़ता है। धनुष, असिधेनुका, कर्तरी, कटार, कृपाण, खड्ग, कौक्षेयक या करवाल, तरवारि, भुसुण्डी, मंडलाग्र, असिपत्र, अशनि, अंकुश, कणय, परशु, या कुठार, प्रास, कुन्त, भिन्दिपाल, करपत्र, गदा, दुस्फोट या मुसल, मुद्गर, परिघ, दण्ड, पट्टिस, चक्र, भ्रमिल, यष्टि, लांगल, शक्ति, त्रिशूल, शंकु, पाश, वागुरा, क्षेपणिहस्त तथा गोलधर के विषय में इस परिच्छेद में पर्याप्त जानकारी दी गयी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तृतीय अध्याय में ललित कलाओं तथा शिल्प-विज्ञान विषयक सामग्री का विवेचन है। इसमें सब चार परिच्छेद हैं।

परिच्छेद एक में संगीत, वाद्य-यन्त्र तथा नृत्यकला का विवेचन है। सोमदेव ने यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती कहा है। यशोधर का हस्तिपक, जिसकी ओर महारानी आकृष्ट हुई, संगीत में माहिर था। संगीत और स्वरलहरी का अनन्य सम्बन्ध है। सोमदेव ने सप्त स्वरों का उल्लेख किया है।

वाद्य-यन्त्रों में यशस्तिलक के उल्लेख विशेष महत्त्व के हैं। वाद्यों के लिए सम्मिलित शब्द आतोद्य था। संगीतशास्त्र की तरह सोमदेव ने भी वाद्यों के घन, सुषिर, तत और अवनद्ध, ये चार भेद बताये हैं। सोमदेव ने तेईस वाद्य-यन्त्रों की जानकारी दी है। शंख, काहला, दुन्दुभि, पुष्कर, ढक्का, आनक, भम्भा, ताल, करटा, त्रिविला, डमरुक, रुञ्जा, घण्टा, वेणु, वीणा, झल्लरी, वल्लकी, पणव, मृदंग, भेरी, तूर, पटह, और डिण्डिम, इन सभी के विषय में यशस्तिलक की सामग्री से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। संगीतशास्त्र के अन्य ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इन वाद्य-यन्त्रों का इस परिच्छेद में पूरा परिचय दिया गया है।

नृत्यकला विषयक सामग्री भी यशस्तिलक में पर्याप्त है। सोमदेव ने लिखा है कि सम्राट यशोधर नाट्यशाला में जाकर कुशल अभिनेताओं के साथ अभिनय देखते थे। नाट्य प्रारम्भ होने के पूर्व रंगपूजा की जाती थी। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

यशस्तिलक में नृत्य के लिए नृत्य, नृत्त, नाट्य, लास्य, ताण्डव, तथा विधि शब्द आये हैं। नृत्य, नृत्त और नाट्य देखने में समानार्थक शब्द लगते हैं, किन्तु वास्तव में इनमें पर्याप्त अन्तर था। दशरूपक में धनंजय ने इनके पारस्परिक भेदों को स्पष्ट किया है। नाट्य दृश्य होता है, इसलिए इसे 'रूप' भी कहते हैं और रूपक अलंकार की तरह आरोप होने के कारण रूपक भी। काव्यों में वर्णित धीरोद्धत आदि प्रकृति के नायकों, नायिकाओं तथा अन्य पात्रों का आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनयों द्वारा अवस्थानुकरण नाट्य कहलाता है। यह रसाश्रित होता है। नृत्य भावाश्रित और केवल दृश्य होता है। ताल और लय के आश्रित किये जानेवाले नर्तन को नृत्त कहते हैं। इसमें अभिनय का सर्वथा अभाव रहता है। लास्य और ताण्डव नृत्त के ही भेद हैं। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विशद विवेचन किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद दो में यशस्तिलक की चित्रकला विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के भित्तिचित्रों तथा धूलिचित्रों का उल्लेख किया है। प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का सन्दर्भ विशेष महत्त्व का है। उसका एक पद्य उद्धृत किया गया है।

भित्तिचित्र बनाने की एक विशेष प्रक्रिया थी। भित्तिचित्र बनाने के लिए भीत का लेप कैसा होना चाहिए, उसे कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिए जमीन कैसे तैयार करना चाहिए—इत्यादि का मानसोल्लास में विस्तृत वर्णन है। सोमदेव ने दो प्रकार के भित्तिचित्रों का उल्लेख किया है— व्यक्तिचित्र और प्रतीकचित्र। एक जिनालय में बाहुबलि, प्रद्युम्न, सुपार्श्व अशोक राजा और रोहिणी रानी तथा यक्ष मिथुन के चित्र बनाये गये थे। प्रतीक चित्रों में तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्नों के चित्र थे। श्वेताम्बर साहित्य में इनकी संख्या चौदह बतायी है। ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, लटकती हुई पुष्पमालायें, चन्द्र, सूर्य, मत्स्ययुगल, पूर्ण कुम्भ, पद्मसरोवर, सिंहासन, समुद्र, फणयुक्त सर्प, प्रज्वलित अग्नि, रत्नों का ढेर और देवविमान ये सोलह स्वप्न तीर्थंकर की माता बालक के गर्भ में आने के पहले देखती है। प्राचीन पाण्डुलिपियों में भी इनका चित्रांकन मिलता है।

रंगावली या धूलिचित्रों का सोमदेव ने छह बार उल्लेख किया है। चित्रकला में रंगावली को क्षणिक चित्र कहते हैं। इसके धूलिचित्र और रसचित्र, ये दो भेद हैं। आजकल इसे रंगोली या अल्पना कहा जाता है। प्रत्येक माँगलिक अवसर पर रंगोली बनाने का प्रचलन भारतवर्ष में अभी भी है।

प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का एक विशेष प्रसंग में उल्लेख है। पद्य का तात्पर्य है कि जो कलाकार प्रभामण्डल युक्त तथा नव भक्तियों सहित तीर्थंकर अर्थात् तीर्थंकर सभा या समवसरण का चित्र बना सकता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी का भी चित्र बना सकता है।

चित्रकला के अन्य उल्लेखों में ध्वजाओं पर बने चित्र, दीवालों पर बने सिंह तथा गवाक्षों से झाकती हुई कामिनियों के उल्लेख हैं। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद तीन में यशस्तिलक की वास्तु-शिल्प विषयक सामग्री का विवेचन किया गया है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के शिखर युक्त चैत्यालय गगनचुम्बी महाभोगभवन, त्रिभुवनतिलक नामक राजप्रासाद, लक्ष्मीविलासतामरस नामक आस्थानमंडप, श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमंदिर, दिग्व-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लयविलोकनविलास नामक क्रीड़ाप्रासाद, करिविनोदविलोकनदोहद नामक वासभवन, गृहदीर्घिका, प्रमदवन तथा यन्त्रधारागृह का विस्तृत वर्णन किया है।

चैत्यालयों के शिखरों ने सोमदेव का विशेष ध्यान आकृष्ट किया। सोमदेव ने लिखा है कि शिखर क्या थे मानों निर्माण कला के प्रतीक थे। शिखरों की अटनि पर सिंह निर्माण किया जाता था। मणिमुकुर युक्त ध्वजस्तंभ और स्तंभिकायें, सचित्र ध्वजदण्ड, रत्नजटित कांचन कलश, चंद्रकान्त के बने प्रणाल, उज्ज्वल आमलासार कलश और उन पर खेलती हुई कलहंस श्रेणी, विटंकों पर बैठे शुकशावक, इन सबके कारण शिखर और अधिक आकर्षण का केन्द्र बन रहे थे। सोमदेव की इस सामग्री को वास्तुसार, प्रासादमण्डन तथा अपराजितपृच्छा की तुलना पूर्वक स्पष्ट किया गया है।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन में सोमदेव ने प्राचीन वास्तु-शिल्प की अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनायें दी हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सूर्य और अग्निमन्दिर की तरह इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, चन्द्र आदि के भी मन्दिरों का निर्माण किया जाता था।

आस्थानमण्डप को सोमदेव ने लक्ष्मीविलास नाम दिया है। गुजरात के बड़ौदा आदि स्थानों में विलास नामान्तक भवनों की परम्परा अब तक सुरक्षित है। मुगल वास्तु में जिसे दरबारे आम कहा जाता था, उसी के लिए प्राचीन नाम आस्थानमण्डप था। सोमदेव ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।

आस्थानमण्डप के ही निकट गज और अश्वशालायें बनायी जातीं थीं। राजभवन के निकट इन शालाओं के बनाने की परम्परा भी प्राचीन थी। राजा को प्रातः गजदर्शन शुभ बताया गया है, यह इसका एक बड़ा कारण प्रतीत होता है। फतेहपुर सीकरी के प्राचीन महलों में इस प्रकार की वास्तु का दर्शन अब भी देखा जाता है।

सरस्वतीविलासकमलाकर सम्राट का निजी वासभवन था। क्रीड़ा पर्वतक की तलहटी में बनाये गये दिग्वलयविलोकन प्रासाद में सम्राट अवकाश के क्षणों को आनंदपूर्वक बिताते थे। करिविनोदविलोकनदोहद आजकल के स्पोर्ट्स-स्टेडियम के सदृश था। मनसिजविलासहंसनिवासतामरस नामक भवन पटरानी का अन्तःपुर था। यह सप्ततलप्रासाद का सबसे ऊपरी भाग था। इसके वर्णन में सोमदेव ने बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री की जानकारी दी है। रजत-वातायन, अमलक-देहली, जातरूप-भित्तियाँ, मरकतपराग निर्मित रंगावलि, संचरणशील

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमकन्यकायें, तुहिनतरु के वलीक, कूर्चस्थान इत्यादि का विश्लेषण किया गया है।

दीर्घिका और प्रमदवन के विषय में भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है। दीर्घिका राजभवन में एक ओर से दूसरी ओर दौड़ती हुई वह लंबी नहर थी, जिसे बीच-बीच में रोककर, पुष्करणी, गंधोदककूप, क्रीड़ावापि आदि मनोरंजन के साधन बना लिए जाते थे और अन्त में जाकर दीर्घिका प्रमदवन को सींचती थी। दीर्घिका तथा प्रमदवन दोनों के प्राचीन वास्तु-शिल्प की यह विशेषता बहुत समय तक जारी रही और भारत के बाहर भी इसके उल्लेख मिलते हैं। इस परिच्छेद में इस सबके विषय में विस्तृत जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद चार में यन्त्र-शिल्प विषयक सामग्री का विवेचन है। यन्त्रधारागृह के प्रसंग में सोमदेव ने अनेक प्रकार के यान्त्रिक उपादानों का उल्लेख किया है। कुछ सामग्री अन्य प्रसंगों में भी आयी है।

यन्त्रधारागृह के निर्माण की परम्परा का क्रमशः विकास हुआ है। समरांगण सूत्रधार में पाँच प्रकार के वारिगृहों के उल्लेख हैं। सोमदेव ने यन्त्रधारागृह का विस्तार से वर्णन किया है। वहाँ यन्त्रजलधर या मायामेघ की रचना की गयी थी। विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों के मुँह से निकलता हुआ जल दिखाया गया था। यन्त्रपुत्तलिकायें, यन्त्रवृक्ष आदि की रचना की गयी थी। यन्त्र-धारागृह का प्रमुख आकर्षण यन्त्रस्त्री थी, जिसके हाथ छूने पर नखाग्रों से, स्तन छूने पर चूचुकों से, कपोल छूने पर नेत्रों से, सिर छूने पर कर्णावतंसों से, कटि छूने पर करधनि की डोरियों से तथा त्रिवली छूने पर नाभि से चन्दन चर्चित जल की धारायें बहने लगती थीं। सोमदेव ने पंखा झलनेवाली तथा ताम्बूल-वाहिनी यान्त्रिक पुत्तलिकाओं का भी उल्लेख किया है। अन्तःपुर के प्रसंग में यन्त्रपर्यंक का उल्लेख है। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में यशस्तिलककालीन भूगोल पर प्रकाश डाला गया है। यशस्तिलक में सैंतालिस जनपद, चालीस नगर और ग्राम, पाँच बृहत्तर भारत के देश, पन्द्रह वन और पर्वत तथा बारह झील और नदियों के उल्लेख हैं। इसमें कुछ सामग्री ऐसी भी हैं जो सोमदेव के युग में अस्तित्व में नहीं थी। ऐसी सामग्री को सोमदेव ने परम्परा से प्राप्त किया था। इस सम्पूर्ण सामग्री का पाँच परिच्छेदों में विवेचन किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद एक में यशस्तिलक में उल्लिखित सैंतालिस जनपदों का परिचय है। अवन्ति, अश्मक, अन्ध्र, इन्द्रकच्छ, कम्बोज, कर्णाट या कर्णाटक, करहाट, कलिंग, क्रथकैशिक, काँची, काशी, कीर, कुरुजांगल, कुन्तल, केरल, कोंग, कौशल, गिरिकूटपत्तन, चेदि, चेरम, चोल, जनपद, डहाल, दशार्ण, प्रयाग, पल्लव, पाँचाल, पाण्डु या पाण्ड्य, भोज, बर्बर, मद्र, मलय, मगध, यौधेय, लम्पाक, लाट, वनवासि, बंग या बंगाल, बंगी, श्रीचन्द्र, श्रीमाल, सिन्धु, सूरसेन, सौराष्ट्र, यवन तथा हिमालय इन सैंतालिस जनपदों में से यशस्तिलक में कई एक का एक बार और अधिकांश का एक से अधिक बार उल्लेख हुआ है। इस परिच्छेद में इन सबका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद दो में यशस्तिलक में उल्लिखित चालीस नगर और ग्रामों का परिचय है। अहिच्छत्र, अयोध्या, उज्जयिनी, एकचक्रपुर, एकानसी, कनकगिरि, कंकाहि, काकन्दी, काम्पिल्य, कुशाग्रपुर, किन्नरगीत, कुसुमपुर, कौशाम्बी, चम्पा, चुंकार, ताम्रलिप्ति, पद्मावतीपुर, पद्मनिखेट, पाटलिपुत्र, पोदनपुर, पौरव, बलवाहनपुर, भावपुर, भूमितिलकपुर, उत्तरमथुरा, दक्षिण-मथुरा या मदुरा, मायापुरी, मिथिलापुर, माहिष्मती, राजपुर, राजगृह, वल्लभी, वाराणसी, विजयपुर, हस्तिनापुर, हेमपुर, स्वस्तिमति, सोपारपुर, श्रीसागर या श्रीसागरम्, सिंहपुर तथा शंखपुर, इन चालीस नगर और ग्रामों के विषय में यशस्तिलक में जानकारी आयी है। इस परिच्छेद में इनका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद तीन में यशस्तिलक में उल्लिखित बृहत्तर भारतवर्ष के पाँच देश- नेपाल, सिंहल, सुवर्णद्वीप, विजयार्ध तथा कुलूत का परिचय दिया गया है।

परिच्छेद चार में यशस्तिलक में उल्लिखित पन्द्रह वन और पर्वतों का परिचय है। सोमदेव ने कालिदासकानन, कैलास, गन्धमादन, नाभिगिरी, नेपालशैल, प्रागद्रि, भीमवन, मन्दर, मलय, मुनिमनोहरमेखला, विन्ध्य, शिखण्डिताण्डव, सुवेला, सेतुबन्ध और हिमालय का उल्लेख किया है। इन सबके विषय में इस परिच्छेद में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद पाँच में यशस्तिलक में उल्लिखित सरोवर तथा नदियों का परिचय दिया गया है। सोमदेव ने मानस या मानसरोवर झील तथा गंगा, यमुना, नर्मदा, जलवाहिनी, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, शोण, सिन्धु तथा सिप्रा नदी का उल्लेख किया है। इस परिच्छेद में इनके बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंचम अध्याय यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति विषयक है। यशस्तिलक संस्कृत के प्राचीन, अप्रसिद्ध, अप्रचलित तथा नवीन शब्दों का एक विशिष्ट कोश है। सोमदेव ने प्रयत्नपूर्वक ऐसे अनेक शब्दों का यशस्तिलक में संग्रह किया है। वैदिक काल के बाद जिन शब्दों का प्रयोग प्रायः समाप्त हो गया था, जो शब्द कोश ग्रन्थों में तो आये हैं, किन्तु जिनका प्रयोग साहित्य में नहीं हुआ या नहीं के बराबर हुआ, जो शब्द केवल व्याकरण ग्रन्थों में सीमित थे तथा जिन शब्दों का प्रयोग किन्हीं विशेष विषयों के ग्रन्थों में ही देखा जाता था, ऐसे अनेक शब्दों का संग्रह यशस्तिलक में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसे भी बहुत से शब्द हैं, जिनका संस्कृत साहित्य में अन्यत्र प्रयोग नहीं मिलता। कुछ शब्दों का तो अर्थ और ध्वनि के आधार पर सोमदेव ने स्वयं निर्माण किया है। लगता है सोमदेव ने वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, ज्योतिष तथा साहित्यिक ग्रन्थों से चुनकर विशिष्ट शब्दों की पृथक्-पृथक् सूचियां बना ली थीं और यशस्तिलक में यथास्थान उनका उपयोग करते गये। यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति के विषय में सोमदेव ने स्वयं लिखा है कि 'काल के कराल व्याल ने जिन शब्दों को चाट डाला उनका मैं उद्धार कर रहा हूँ। शास्त्र-समुद्र के तल में डूबे हुये शब्द-रत्नों को निकालकर मैंने जिस बहुमूल्य आभूषण का निर्माण किया है, उसे सरस्वती देवी धारण करे' (पृ० २६६ उ० प्र०)।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने ऐसे लगभग एक सहस्र शब्द दिये हैं। आठ सौ शब्द इस अध्याय में हैं तथा दो सौ से भी अधिक शब्द अन्य अध्यायों में यथास्थान दिये हैं। इस अध्याय में शब्दों को वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि श्रेणियों में वर्गीकृत न करके अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। शब्दों पर मैंने तीन प्रकार से विचार किया है—(१) कुछ शब्द ऐसे हैं, जिन पर विशेष प्रकाश डालना उपयुक्त लगा। ऐसे शब्दों का मूल संदर्भ, अर्थ तथा आवश्यक टिप्पणी दी गयी है। (२) सोमदेव के प्रयोग के आधार पर जिन शब्दों के अर्थ पर विशेष प्रकाश पड़ता है, उन शब्दों के पूरे संदर्भ दे दिये हैं। (३) जिन शब्दों का केवल अर्थ देना पर्याप्त लगा, उनका संदर्भ संकेत तथा अर्थ दिया है।

शब्दों पर विचार करने का आधार श्रीदेव कृत टिप्पण तथा श्रुतसागर की अपूर्ण संस्कृत टीका तो रहे ही हैं, प्राचीन शब्द कोश तथा मोनियर विलियम्स और प्रो० आप्टे के कोशों का भी उपयोग किया गया है। स्वयं सोमदेव का प्रयोग भी प्रसंगानुसार शब्दों के अर्थ को खोलता चलता है। श्लिष्ट, क्लिष्ट,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अप्रचलित तथा नवीन शब्दों के कारण यशस्तिलक दुरूह अवश्य लगता है, किन्तु यदि सावधानीपूर्वक इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो क्रम-क्रम से यशस्तिलक के वर्णन स्वयं ही आगे-पीछे के संदर्भों को स्पष्ट करते चलते हैं। इस प्रकार यशस्तिलक की कुञ्जी यशस्तिलक में ही निहित है। सोमदेव की इस बहुमूल्य सामग्री का उपयोग भविष्य में कोश ग्रन्थों में किया जाना चाहिए।

इस तरह उपर्युक्त पाँच अध्यायों के पच्चीस परिच्छेदों में प्रस्तुत प्रबन्ध पूर्ण होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय एक

यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशस्तिलक और सोमदेव सूरि

यशस्तिलक

सोमदेव सूरि कृत यशस्तिलक महाराज यशोधर के जीवनचरित्र को आधार बनाकर गद्य और पद्य में लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें आठ आश्वास या अध्याय हैं। पूरे ग्रन्थ में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष गद्य है। सोमदेव ने गद्य और पद्य दोनों को मिलाकर आठ हजार श्लोक प्रमाण बताया है।[१]

यशस्तिलक का रचनाकाल निश्चित है, इसलिए इसके अनुशीलन में वे अनेक कठिनाइयाँ नहीं आतीं, जो समय की अनिश्चितता के कारण प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुशीलन में साधारणतया उपस्थित होती हैं। सोमदेव ने यशस्तिलक के अन्त में स्वयं लिखा है कि चैत्र शुक्ल त्रयोदशी शक संवत् ८८१ (६५६ ई०) को जिस समय श्री कृष्णराजदेव पाण्ड्य, सिंहल, चोल, चेर आदि राजाओं को जीतकर मेलपाटी सेना शिविर में थे, उस समय उनके चरणकमलोपजीवी, चालुक्यवंशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र सामंत वद्दिग (वद्यग) की राजधानी गंगधारा में यह काव्य रचा गया।[२]

राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के एक दानपत्र में भी सोमदेव के विवरण के समान ही कृष्णराजदेव की दिग्विजय का उल्लेख है।[३] यह दानपत्र सोमदेव

---

१. एतामष्टसहस्रीम्। –पृ० ४१८ उत्त०

२. शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अंकतः (८८१) सिद्धार्थ-संवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्यां पाण्ड्य-सिंहल-चोल-चेरमप्रभृतीन्महीपतीन् प्रसाध्यमेल्पाटीप्रवर्धमानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपद्मोपजीविनः समधिगतपंचमहाशब्दमहासामन्ताधिपतेश्चालुक्यकुलजन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्वयगराजप्रवर्धमानवसुधारायां गंगधारायां विनिर्मापितमिदं काव्यमिति।—यश० उत्त०, पृ० ४१८

३. कृत्वादक्षिणदिग्जयोद्यतधिया चौलान्वयोन्मूलनम्।
तद्भूमिं निजभृत्यवर्गपरितश्चेरन्मपाण्ड्यादिकान्॥
येनोच्चैः सह सिंहलेन करदान् सन्मण्डलाधीश्वरान्।
न्यस्तः कीर्तिलतांकुरप्रतिकृतिस्तम्भश्च रामेश्वरे॥
—एपिग्राफिया इंडिका, भा० ४, अध्याय ६–७, दी करहाट प्लेट्स इन्सक्रिप्शन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के यशस्तिलक की रचना के कुछ ही सप्ताह पूर्व फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी शक संवत् ८८० (९ मार्च सन् ९५९ ई०) को मेलपाटी (वर्तमान मेलाडी जो उत्तर अर्काट की वांदिवाश तहसील में है) में लिखा गया था।[४]

राष्ट्रकूट मध्ययुग में दक्षिण भारत के महाप्रतापी नरेश थे। धारवाड़ कर्नाटक तथा वर्तमान हैदराबाद प्रदेश पर राष्ट्रकूटों का अखण्ड राज्य था। लगभग आठवीं शती के मध्य से लेकर दशमी शती के अन्त तक राष्ट्रकूट सम्राट न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत पश्चिम के अरब साम्राज्य में भी अत्यन्त प्रसिद्ध थे। अरबों के साथ उन्होंने विशेष मैत्री का व्यवहार रखा और उन्हें अपने यहाँ व्यापार की सुविधाएँ दीं। इस वंश के राजाओं का विरुद वल्लभराज प्रसिद्ध था जिसका रूप अरब लेखकों से बल्हरा पाया जाता है।[५]

राष्ट्रकूटों के राज्य में साहित्य, कला, धर्म और दर्शन की चतुर्मुखी उन्नति हुई। उस युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी। यशस्तिलक उसी युग की एक विशिष्ट कृति है। यह अपने प्रकार का एक विशिष्ट ग्रन्थ है। एक उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। कथा और आख्यायिका के श्लिष्ट, रोमांचकारी और रोचक वर्णन, गद्य और पद्य के सम्मिश्रण का रुचि वैचित्र्य, रूपक के प्रभावकारी और हृदयग्राही सरल कथनोपकथन, महाकाव्य का वृत्तविधान, रससिद्धि, अलंकृत चित्रांकन तथा प्रसाद और माधुर्य युक्त सरस शैली, सुरुचिपूर्ण कथावस्तु और साहित्यकार के दायित्व का कलापूर्ण निर्वाह, यह यशस्तिलक का साहित्यिक स्वरूप है। गद्य का पद्यों जैसा सरल विन्यास, प्राकृत छन्दों का संस्कृत में अभिनव प्रयोग तथा अनेक प्राचीन अप्रसिद्ध शब्दों का संकलन यशस्तिलक के साहित्यिक स्वरूप की अतिरिक्त विशेषतायें हैं। संस्कृत साहित्य सर्जन के लगभग एक सहस्र वर्षों में सुबन्धु, बाण और दण्डि के ग्रन्थों में गद्य का, कालिदास, भवभूति और भारवि के महाकाव्यों में पद्य का तथा भास और शुद्रक के नाटकों में रूपक रचना का जो विकास हुआ, उसका और अधिक परिष्कृत रूप यशस्तिलक में उपलब्ध होता है।

काव्य के विशेष गुणों के अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसी प्रचूर सामग्री है, जो इसे प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास की विभिन्न विधाओं से जोड़ती है,

---

४. वही

५. अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एन्ड देयर टाइम्स (विशेष विवरण के लिए)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरातत्त्व, कला, इतिहास और साहित्य की सामग्री के साथ तुलना करने पर इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता और भी परिपुष्ट होती है। एक बड़ी विशेषता यह भी है कि सोमदेव ने जिस विषय का स्पर्श भी किया उस विषय में पर्याप्त जानकारी दी। इतनी जानकारी कि यदि उसका विस्तार से विश्लेषण किया जाये तो प्रत्येक विषय का एक लघुकाय स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है। यशस्तिलक पर श्रीदेव कृत यशस्तिलकपंजिका नामक एक संक्षिप्त संस्कृत टीका है। इसे संस्कृत टिप्पण कहना अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि इनके समय का ठीक पता नहीं चलता, फिर भी ये सोमदेव से अधिक बाद के नहीं लगते। सोलहवीं शती में श्रुतसागर सूरि ने यशस्तिलकचंद्रिका नामक संस्कृत टीका लिखी। यह लगभग साढ़े चार आश्वासों पर है। संभवतया वे इसे पूरा नहीं कर सके। श्रीदेव ने पंजिका में यशस्तिलक के विषयों को इस प्रकार गिनाया है[७]—

१ छन्द, २ शब्द निघंटु, ३ अलंकार, ४ कला, ५ सिद्धान्त, ६ सामुद्रिक ज्ञान, ७ ज्योतिष, ८ वैद्यक, ९ वेद, १० वाद, ११ नाट्य, १२ काम, १३ गज, १४ अश्व, १५ आयुध, १६ तर्क, १७ आख्यान, १८ मंत्र, १९ नीति, २० शकुन, २१ वनस्पति, २२ पुराण, २३ स्मृति, २४ मोक्ष, २५ अध्यात्म, २६ जगत्स्थिति और २७ प्रवचन।

यदि श्रीदेव के अनुसार ही यशस्तिलक के विषयों का वर्गीकरण किया जाये तो इस सूची में कई विषय और जोड़ने होंगे। जैसे– भूगोल, वास्तुशिल्प, यन्त्रशिल्प, चित्रकला, पाक विज्ञान, वस्त्र और वेशभूषा, प्रसाधन सामग्री और आभूषण, कला-विनोद, शिक्षा और साहित्य, वाणिज्य और सार्थवाह, सुभाषित आदि।

इस सूची के कई विषयों का समावेश सोमदेव ने यशस्तिलक में प्रयत्नपूर्वक किया है। उनका उद्देश्य था कि दशमी शताब्दि तक की अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन तथा उस युग का सम्पूर्ण चित्र अपने ग्रन्थ में

---

७. छन्दः शब्दनिघंट्वलंकृतिकलासिद्धान्तसा-
मुद्रकज्योतिर्वैद्यकवेदवादभरतानंगद्विपाश्वायुधम्।
तर्काख्यानकमंत्रनीतिशकुनक्ष्मारुट्पुराणस्मृति-
श्रेयोऽध्यात्मजगत्स्थितिप्रवचनीव्युत्पत्तिरत्रोच्यते॥
—यशस्तिलकपंजिका श्लोक २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उतार दें। निःसन्देह सोमदेव को अपने इस उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिली। यशस्तिलक जैसे महनीय ग्रन्थ की रचना दशमी शती की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। सामग्री की इस विविधता और प्रचुरता के कारण यशस्तिलक को स्वयं सोमदेव के शब्दों में एक महान् अभिधान कोश कहना चाहिए।[८]

यशस्तिलक में सामग्री की जितनी विविधता और प्रचुरता है, उतनी ही उसकी शब्द सम्पत्ति और विवेचन शैली की दुरूहता भी। इसलिए जिस वैदुष्य और यत्न के साथ सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना की, शायद ही उससे कम वैदुष्य और प्रयत्न यशस्तिलक के हार्द को समझने में लगे। संभवतया इस दुरूहता के कारण ही यशस्तिलक साधारण पाठकों की पहुँच से दूर बना आया, पर दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत, राजस्थान और गुजरात के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध यशस्तिलक की हस्तलिखित पाण्डुलिपियां इस बात की प्रमाण हैं कि पिछली शताब्दियों मे भी यशस्तिलक का सम्पूर्ण भारतवर्ष में मूल्यांकन हुआ।

बीसवीं शती में पीटरसन और कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान यशस्तिलक की महत्ता और उपयोगिता की ओर आकर्षित हुआ है। भारतीय विद्वानों ने भी अपनी इस निधि की ओर अब दृष्टि डाली है।

सम्पूर्ण यशस्तिलक श्रुतसागर सूरि की अपूर्ण संस्कृत टीका के साथ दो जिल्दों में अब तक केवल एक बार लगभग साठ वर्ष पूर्व निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ था। तीन आश्वासों का पूर्व खण्ड सन् १९०१ में और पांच आश्वासों का उत्तर खण्ड सन् १९०३ में। पूर्व खण्ड सन् १९१६ में पुनर्मुद्रित भी हुआ था। इस संस्करण में पाठ की अनेक अशुद्धियां हैं। उत्तर खण्ड में तो अत्यधिक हैं। सन् १९४९ में बम्बई से केवल प्रथम आश्वास श्री जे० एन० क्षीरसागर द्वारा अंगरेजी टिप्पण आदि के साथ सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ था। सन् १९४९ में शोलापुर से प्रो० कृष्णकान्त हन्दिकी का 'यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर' प्रकाश में आया। इसमें प्रो० हन्दिकी ने यशस्तिलक की सांस्कृतिक–विशेषकर धार्मिक और दार्शनिक सामग्री का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

सन् १९६० में वाराणसी से पं० सुन्दरलाल शास्त्री ने हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम तीन आश्वासों का सम्पादन करके प्रकाशन किया है। अन्त में लगभग

---

८. अभिधाननिधानेऽस्मिन्। – पृ० ४१८ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उतने ही श्रीदेव के टिप्पण भी दे दिये हैं। इस संस्करण में सम्पादक ने मूल पाठ को प्राचीन प्रतियों से बहुत कुछ शुद्ध किया है।

पिछले ५–६ दशकों में पत्र-पत्रिकाओं में भी सोमदेव और यशस्तिलक पर विद्वानों के कई लेख प्रकाशित हुये हैं, जिनमें स्व० पं० नाथूराम प्रेमी, स्व० पं० गोविन्दराम शास्त्री, डॉ० वी० राघवन् तथा डॉ० ई० डी० कुलकर्णी के लेख विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

यशस्तिलक के अंतिम तीन आश्वासों का पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने संपादन और हिन्दी अनुवाद किया है, जो सन् १९६४ के अन्त में उपासकाध्ययन नाम से प्रकाशित हुआ है। प्रारम्भ में संपादक ने छयानबे पृष्ठों की हिन्दी प्रस्तावना भी दी है। पं० जिनदास शास्त्री, सोलापुर ने श्रुतसागर सूरि की टीका की पूर्ति स्वरूप संस्कृत टीका लिखी है, वह भी इसके अन्त में मुद्रित हुई है।

यशस्तिलक पर अब तक जितना कार्य हुआ उसका यह संक्षिप्त लेखा-जोखा है। यशस्तिलक की महनीयता को देखते हुये यह कार्य अत्यल्प है और इसके बाद भी यशस्तिलक में बहुत-सी सामग्री ऐसी बच रहती है जिसका विवेचन नितान्त आवश्यक है। और जिसके बिना यशस्तिलक की सम्पूर्ण सामग्री का भारतीय सांस्कृतिक इतिहास और साहित्य की नवीन उपलब्धियों में उपयोग नहीं किया जा सकता। प्रो० हन्दिकी ने अपने ग्रन्थ में यशस्तिलक के जिन विषयों की विवेचना की है, वह निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने जिस-जिस विषय को लिया है, उसके विषय में सोमदेव की ही तरह पूरी निष्ठा, विद्वत्ता और श्रमपूर्वक पर्याप्त और प्रामाणिक जानकारी दी है।

मेरी समझ में यशस्तिलक के सही अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। श्रीगणेश मंगलमय हुआ यह परम शुभ एवं आनंद का विषय है। प्रो० हन्दिकी जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे, तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा। यशस्तिलक तो विविध प्रकार की बहुमूल्य सामग्री का भंडार है। अध्येता ज्यों-ज्यों इसके तल में पैठता है, उसे और-और सामग्री उपलब्ध होती जाती है। इसी कारण स्वयं सोमदेव ने विद्वानों को निरन्तर आनुपूर्वी से इसका विमर्श करते रहने की मंत्रणा दी है (अजस्रमनुपूर्वशः कृती विमृशन्, यश० उत्त०, पृ० ४१८)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव सूरि

यशस्तिलक आचार्य सोमदेव का कीर्तिस्तंभ है। यह उनकी तलस्पर्शिनी विमल प्रज्ञा, बिम्बग्राहिणी सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा प्रशस्त प्रकाण्ड पांडित्य का मूर्तिमान स्मारक है। वे एक महान तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्वचिंतक और उच्चकोटि के धर्माचार्य थे। उनके लिए प्रयुक्त होने वाले स्याद्‌वादाचलसिंह, तार्किकचक्रवर्ती, वादीभपंचानन, वाक्कल्लोल-पयोनिधि, कविकुलराजकुंजर, अनवद्यगद्यपद्यविद्याधरचक्रवर्ती आदि विशेषण उनकी उत्कृष्ट प्रज्ञा और प्रभावकारी व्यक्तित्व के परिचायक हैं।[९]

सोमदेव ने यशस्तिलक में लिखा है कि वे देवसंघ के साधु श्री नेमिदेव के शिष्य तथा यशोदेव के प्रशिष्य थे।[१०]

सोमदेव ने अपना यशस्तिलक चालुक्यवंशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र वद्दिग की राजधानी गंगधारा में पूर्ण किया था। यह वंश राष्ट्रकूटों के अधीन सामन्त पदवीधारी था। अरिकेसरिन् तृतीय के दानपत्र में कहा गया है कि 'अरिकेसरी' ने अपने पिता वद्दिग के 'शुभधामजिनालय' नामक मन्दिर की मरम्मत आदि करके शक संवत् ८८८ (सन् ९६६ ई०) के बाद वैशाख मास की पूर्णिमा को बुधवार के दिन श्री सोमदेवसूरि को सब्विदेश सहस्रान्तर्गत रेपाक द्वादशों में का बनिक-टुपुल (वर्तमान बोंटुडपुल्ल, हैदराबाद के करीमनगर जिले में) नामक ग्राम त्रिभोगाभ्यन्तरसिद्धि और सर्वं नमस्य सहित जलधारा छोड़कर दिया।[११]

---

९. स्याद्‌वादाचलसिंह-तार्किकचक्रवर्ति-वादीभपंचानन-वाक्कल्लोलपयोनिधि-कविकुल-राजकुँजरप्रभृतिप्रशस्तिप्रशस्तालंकारेण। —नीतिवाक्यामृत प्रशस्ति।

१०. श्रीमानस्ति स देवसंघतिलको देवो यशः पूर्वकः,
शिष्यस्तस्य बभूव सद्‌गुणनिधिः श्रीनेमिदेवाह्वयः।
तस्याश्चर्यतपः स्थितेस्त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनाम्,
शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैष काव्यक्रमः॥
—यश० उत्त०, पृ० ४१८

११. निजपितुः श्रीमद्वद्यगस्य शुभधामजिनालयाख्यवस (तेः) खण्डस्फुटितनवसुधा-कर्मबलिनिवेद्यार्थं शकाब्देष्वष्टाशीत्यधिकेष्वष्टशतेषु गतेषु (प्रव)र्त्तमानक्षयसंवत्स-रवैसाखपो (पौ) र्णमास्या (स्यां) बुधवासरे तेन श्रीमदरिकेसरिणा अनन्तरोक्ताय तस्मै श्रीसोमदेवसूरये सब्विदेशसहस्रान्तर्गतरेपाकद्वादशग्रामीमध्येकुर्त्तुंवृत्ति वनि-कटुपुलनामा ग्रामः त्रिभोगाभ्यान्तरसिद्धिसर्वनमस्यस्सोदकधारन्दत्तः।
—जैन साहित्य और इतिहास में उद्धृत, पृ० १९५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस दानपत्र में भी सोमदेव को, यशस्तिलक के उल्लेख के समान ही नेमिदेव का शिष्य तथा यशोदेव का प्रशिष्य बताया है। अन्तर केवल इतना है कि सोमदेव ने यशोदेव को देवसंघ का लिखा है जब कि इस दानपत्र में उन्हें गौड़संघ का कहा गया है।[१२]

देवसंघ और गौड़संघ दो नाम एक ही मुनि संघ के प्रतीत होते हैं। संभवत: यशोदेव, नेमिदेव, सोमदेव आदि देवान्त नामों के कारण इस संघ का नाम देवसंघ पड़ा हो तथा देश के आधार पर, द्रविड़ देश का द्रविड़संघ, पुन्नाट देश का पुन्नाटसंघ, तथा मथुरा का माथुरसंघ आदि की तरह गौड़ देश के वासी होने से गौड़संघ नाम हो गया हो। अपने देश से बाहर जाने के बाद मुनिसंघ प्राय: उसी देश के नाम से प्रसिद्ध हो जाते थे।[१३]

यशस्तिलक के अतिरिक्त सोमदेव का दूसरा ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत उपलब्ध है। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र की तरह एक विशुद्ध राजनीतिक ग्रन्थ है। इसमें बत्तीस समुद्देश हैं, जिनमें राजनीति सम्बन्धी विषयों को सूत्रशैली में लिपिबद्ध किया गया है।

नीतिवाक्यामृत पर दो टीकायें हैं। एक प्राचीन संस्कृत टीका है। इसके लेखक का नाम और समय का पता नहीं चलता। मंगलाचरण से हरिबल नाम अनुमानित किया जाता है। टीका प्राचीन ज्ञात होती है। दूसरी टीका कन्नड़ कवि नेमिनाथ की है। यह संस्कृत टीका की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है।

नीतिवाक्यामृत मूल मात्र बंबई से सन् १८८० में प्रकाशित हुआ था। सन् १९२२ में माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बंबई से संस्कृत टीका सहित भी प्रकाशित हुआ। और सन् १९५० में पं० सुन्दरलाल शास्त्री ने मूल का हिन्दी अनुवाद के साथ भी प्रकाशन कराया। एक इटालियन अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि सोमदेव ने षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणिस्तव तथा महेन्द्रमातलिसंजल्प की भी रचना की थी।[१४]

---

१२. श्रीगौडसंघे मुनिमान्यकीर्तिनाम्ना यशोदेव इति प्रजज्ञे।–वही, श्लोक १५

१३. प्रेमी–जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, कि० २, पृ० ९३।

१४. इति……षण्णवतिप्रकरण-युक्तिचिन्तामणिस्तव-महेन्द्रमातलिसंजल्प यशोधर-महाराजचरितप्रमुखवेधसा सोमदेवसूरिणा विरचितं नीतिवाक्यमृतं समाप्त-मिति। –नीतिवाक्यामृत प्रशस्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चालुक्यवंशीय अरिकेसरिन् तृतीय के दान-पत्र में सोमदेव को स्याद्वादोपनिषद् का भी कर्ता कहा गया है।[१५] अब तक इन ग्रन्थों का कोई पता नहीं चला। कहा नहीं जा सकता कि ये महान् ग्रन्थ-रत्न काल के कराल गाल में समा गये या किसी सुनसान एवं उपेक्षित शास्त्र-भण्डार में पड़े किसी सहृदय अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सोमदेव सूरि और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति में एक और भी महत्त्वपूर्ण सूचना है। इसमें सोमदेव को 'वादीन्द्रकालानलश्रीमन्महेन्द्रदेवभट्टारकानुज'[१६] लिखा है। अर्थात् प्रतिपक्षी इन्द्र के लिए काल रूपी अग्नि के समान श्री महेन्द्रदेव महाराज के लघुभ्राता। इस पद में भट्टारक शब्द का प्रयोग आदरवाची है, जिसका अर्थ महाराज या सरकार बहादुर किया जा सकता है। शेष सब स्पष्ट है। देखना यह है कि ये इन्द्र तथा महेन्द्रदेव कौन थे?

नीतिवाक्यामृत के संस्कृत टीकाकार ने लिखा है कि नीतिवाक्यामृत की रचना कान्यकुब्ज (कन्नौज) नरेश महेन्द्रदेव के आग्रह पर की गयी।[१७]

यशस्तिलक से भी कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव के साथ सोमदेव का परिचय और सम्बन्ध प्रतीत होता है। यशस्तिलक के मंगल पद्य में श्लेष द्वारा कन्नौज और महेन्द्रदेव का उल्लेख किया गया है—

"श्रियं कुवलयानन्दप्रसादितमहोदयः।
देवश्चन्द्रप्रभः पुष्याज्जगन्मानसवासिनीम्॥"

इस पद्य के दो अर्थ हैं—एक चन्द्रप्रभ के पक्ष में और दूसरा कन्नौज नरेश देव या महेन्द्रदेव के पक्ष में।

---

१५. ···अपि च यो भगवानादर्शस्समस्तविद्यानां विरचयिता यशोधरचरितस्य कर्ता स्याद्वादोपनिषदः कवि (कवयि) ता चान्येषामपि सुभाषितानाम्...।
—प्रेमी–जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९०

१६. नीतिवाक्यामृत प्रश०, पृ० ४०६

१७. रघुवंशावर्थायिपराक्रमपालितस्य कर्णकुब्जेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाचार्यकृतार्थशास्त्रदुरवबोधग्रन्थगौरवखिन्नमानसेन सुबोधललितलघुनीतिवाक्यामृतरचनासु प्रवर्तितः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहला अर्थ–जिनका महान् उदय पृथ्वीमण्डल को आनन्दित करनेवाला है, ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान् संसार के मानस में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें।

दूसरा अर्थ–पृथ्वीमण्डल के आनन्द के लिए प्रसादित किया है कन्नौज (महोदय) को जिसने ऐसे महेन्द्रदेव संसार के मनुष्यों के मन में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें।

उक्त पद्य में प्रयुक्त 'महोदय' शब्द को मेदनी कोषकार भी कन्नौज के अर्थ में बताता है (महोदयः कान्यकुब्जे)। हेमनाममाला में भी कान्यकुब्ज को महोदय कहा गया है (कान्यकुब्जं महोदयम्)।

यशस्तिलक के एक दूसरे पद्य में भी सोमदेव ने अपना तथा महेन्द्रदेव का नाम एवं सम्बन्ध श्लिष्ट रूप में निर्दिष्ट किया है—

"सोऽयमाशार्पितयशः महेन्द्रामरमान्यधीः।
देयात्ते सततानन्दं वस्त्वभीष्टं जिनाधिपः॥" (१।२२०)

इस पद्य के भी दो अर्थ हैं–पहला जिनेन्द्रदेव के अर्थ में और दूसरा सोमदेव के पक्ष में।

पहला अर्थ–सभी दिशाओं में जिनका यश फैला है तथा समस्त नरेन्द्रों और देवेन्द्रों के द्वारा जिनके ज्ञान की पूजा की जाती है, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् निरन्तर आनन्द स्वरूप (मोक्ष रूपी) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

दूसरा अर्थ–समस्त दिशाओं में जिनकी कीर्ति फैल गयी है तथा महेन्द्रदेव के द्वारा जिनकी विद्वत्ता का सम्मान किया गया है, ऐसे सोमदेव निरन्तर आनन्द देनेवाली (काव्य रूप) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

तीसरा अर्थ महेन्द्रदेव के सम्बन्ध में भी हो सकता है। अर्थात् जिनका यश समस्त दिशाओं में फैल गया है तथा जिनकी बुद्धि का लोहा देवता लोग भी मानते हैं, ऐसे महेन्द्रदेव आप सबको निरन्तर आनन्द और अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।

इस पद्य के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर को मिलाने से 'सोमदेव' नाम निकलता है तथा द्वितीय चरण में महेन्द्र पद स्पष्ट है।

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार श्रुतसागर सूरि ने इस पद्य से संकेतित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होनेवाले सोमदेव नाम का तो टीका में उल्लेख किया है,[१८] किन्तु आश्चर्य है कि न तो श्लिष्टार्थ को ही लिखा और न महेन्द्रदेव के नाम का भी कोई संकेत किया, यही कारण है कि विद्वानों को इस पद्य में से महेन्द्रदेव नाम निकालना मुश्किल लगता है।[१९] इसी तरह प्रथम पद्य के द्वितीय अर्थ का भी टीकाकार ने कोई निर्देश नहीं किया।[२०]

महेन्द्रमातलिसंजल्प का संकेत

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति के उल्लेखानुसार सोमदेव ने 'महेन्द्रमातलि-संजल्प' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। यद्यपि यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ फिर भी इसके नाम से प्रतीत होता है कि यह एक राजनीति विषयक ग्रन्थ होगा, जिसमें महेन्द्रदेव और उनके सारथी के संवाद रूप में राजनीति सम्बन्धी विषयों का वर्णन होगा। 'मातलि' और 'महेन्द्र' दोनों ही शब्द श्लिष्ट हैं। 'मातलि' शब्द का प्रयोग इन्द्र के सारथी तथा सारथी मात्र के लिए भी होता है। इसी तरह 'महेन्द्र' शब्द देवराज इन्द्र तथा कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव दोनों का बोध कराता है।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि सोमदेव का कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव के साथ निकट का सम्बन्ध था। ये महेन्द्रदेव कौन थे, कब हुए तथा सोमदेव और इनके बीच किस-किस प्रकार के सम्बन्ध थे, इत्यादि बातों पर विचार करना आवश्यक है।

सोमदेव और महेन्द्रदेव के सम्बन्धों का ऐतिहासिक मूल्यांकन

कन्नौज के इतिहास में महेन्द्रदेव या महेन्द्रपालदेव नाम के दो राजा हुए हैं।[२१] महेन्द्रपाल देव प्रथम और महेन्द्रपाल देव द्वितीय।

---

१८. अस्य श्लोकस्य चतुर्षु चरणेषु पूर्वो वर्णो गृह्यते, तेन 'सोमदेव' इति नाम भवति। –यश० श्लो० २२० की सं० टी०, पृ० १९४।

१९. हन्दिकी–यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर, ४६४

२०. इन दोनों पद्यों के श्लिष्टार्थ का पता सर्वप्रथम स्व० प्रज्ञाचक्षु पं० गोविन्दराम जी शास्त्री ने लगाया था जिसका उल्लेख स्व० प्रेमी जी ने जैन साहित्य और इतिहास में किया है। शास्त्री जी ने बनारस आने पर मुझसे भी इसकी चर्चा की थी।

२१. दी एज ऑव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३, ३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महेन्द्रपालदेव प्रथम

महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय ८८५ ई० से ९०७-८ ईसवी तक माना जाता है। यह महाराज भोज ८३६-८८५ ई० के बाद राजगद्दी पर बैठा था। महाकवि राजशेखर को बालकवि के रूप में इसका संरक्षण प्राप्त था।[२३] राजशेखर त्रिपुरी के युवराजदेव द्वितीय के समय (९९० ई०) करीब ९० वर्ष की अवस्था में विद्यमान थे।[२४] सोमदेव ने अपने यशस्तिलक में महाकवियों के उल्लेख के प्रसंग में राजशेखर को अन्तिम महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है।[२५] यशस्तिलक को सोमदेव ने ९५९ ई० में रचकर समाप्त किया था।[२६] यह उनके परिपक्व जीवन की रचना है। यह बात उनके इस कथन से भी झलकती है कि जिस तरह गाय सूखा घास खाकर मधुर दूध देती है, उसी तरह मेरी बुद्धि रूपी गौ ने जीवन भर तर्क रूपी सूखी घास खायी, फिर भी सज्जनों के पुण्य से यह (यशस्तिलक) काव्य रूपी मधुर दुग्ध उत्पन्न हुआ।[२७] इतना होने पर भी यशस्तिलक की समाप्ति के समय सोमदेव को पचास वर्ष से अधिक का नहीं माना जा सकता, क्योंकि ९९० ई० में राजशेखर ९० वर्ष के थे और सोमदेव ने उन्हें महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है। यदि राजशेखर को सोमदेव से ८-१० वर्ष भी ज्येष्ठ न माना जाये तो सोमदेव द्वारा राजशेखर को महाकवि कहना कठिन है। सोमदेव स्वयं एक महाकवि थे। एक महाकवि के द्वारा दूसरे को महाकवि जितना आदर देने के लिए साधारणतया इतना अन्तर भी कम है।

इस प्रकार सोमदेव का आविर्भाव ९०८–९ ई० के आसपास मानना चाहिए। महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, ९०७-८ ई० तक माना जाता है। इस समय सोमदेव का या तो जन्म ही न हुआ होगा या फिर अवस्था अत्यल्प रही होगी। इसलिए इन महेन्द्रपालदेव के आग्रह पर नीतिवाक्यामृत की रचना का प्रश्न नहीं उठता।

---

२२. वही, पृ० ३३

२३. २४. दी क्रोनोलॉजिकल आर्डर ऑव राजशेखराज वर्क्स, पृ० ३६५-३६६

२५. यशस्तिलक, पृ० ११३ उत्त०

२६. वही पृ० ४१७ उत्त०

२७. आजन्मसमभ्यस्ताच्छुष्कात्तर्कात्तृणादिव ममास्य:।
मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यैः॥ यश० आ० १।१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महेन्द्रपालदेव द्वितीय

महेन्द्रपालदेव द्वितीय का समय ९४५-६ ई० माना जाता है।[२८] सोमदेव इस समय सम्भवतया ३५–३६ वर्ष के रहे होंगे। इसलिए महेन्द्रपालदेव द्वितीय और सोमदेव के पारस्परिक सम्बन्धों में कालिक कठिनाई नहीं आती।

इन्द्र तृतीय

प्रथम महेन्द्रदेव के पुत्र और द्वितीय महेन्द्रदेव के पितृव्य महीपालदेव (९१४-९१७ ई०) का राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय (नित्यवर्ष) के साथ युद्ध हुआ था। चंडकौशिक नाटक की प्रस्तावना में आर्य क्षेमीश्वर ने लिखा है—

"आदिष्टोऽस्मि श्रीमहीपालदेवेन यस्येमां पुराविदाः प्रशस्तिगाथामुदाहरन्ति—

यः संसृत्यप्रकृतिगहनामार्यचाणक्यनीतिं
जित्वा नन्दान्कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।
कर्णाणत्वं ध्रुवमुपगतानद्य तानेव हन्तुं
दौर्दाढ्यः सः पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेवः ॥"

अर्थात् उन महीपालदेव ने मुझे आज्ञा दी है, पुराविद लोग जिनकी इस प्रशस्ति गाथा को उद्धृत करते हैं कि जिस चन्द्रगुप्त ने स्वभाव से गहन चाणक्य-नीति का सहारा लेकर नन्दों को जीतकर कुसुमपुर (पटना) में प्रवेश किया; वही चन्द्रगुप्त कर्णाटक में जनमे हुए उन्हीं नन्दों (राष्ट्रकूटों) को मारने के लिए महीपालदेव के रूप में अवतरित हुआ है।

इससे ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूटों पर चढ़ाई करते समय महीपालदेव ने आर्य चाणक्य की नीति (अर्थशास्त्र) का अवलम्बन किया था और आर्य क्षेमीश्वर उसे प्रकृति गहन बतलाते हैं तब आश्चर्य नहीं कि महीपाल देव के उत्तराधिकारी महेन्द्रपालदेव ने सोमदेव से कह कर सरल नीतिग्रन्थ नीतिवाक्यामृत की रचना करायी हो।[२९]

नीतिवाक्यामृत का रचनाकाल

यद्यपि नीतिवाक्यामृत के रचनाकाल तथा रचना स्थान का ठीक पता नहीं

---

२८. दी एज़ ऑव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३७

२९. पं० नाथूराम प्रेमी—सोमदेव सूरि और महेन्द्रदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, किरण २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चलता फिर भी नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व की रचना है, यह उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निर्णीत किया जाता है।[३०]

यशस्तिलक राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के चालुक्य वंशीय सामन्त वद्यग के आश्रित गंगधारा में सन् ९५९ ई० में पूर्ण हुआ था जिसका उल्लेख सोमदेव ने स्वयं किया है। यशस्तिलक में सोमदेव के गुरु नेमिदेव को तिरानवे महावादियों को जीतने वाला कहा है जब कि नीतिवाक्यामृत में पचपन महावादियों को जीतने वाला। इससे नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व की रचना ठहरता है। नीतिवाक्यामृत की रचना के समय नेमिदेव ने पचपन महावादियों को पराजित किया हो उसके बाद यशस्तिलक की रचना के समय तक अड़तीस वादियों को और भी जीत लिया हो। यदि नीतिवाक्यामृत बाद में रचा गया होता तो ये संख्यायें विपरीत होतीं अर्थात् यशस्तिलक की पचपन और नीतिवाक्यामृत की तिरानवे।[३१]

दूसरे यदि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के बाद का होता तो चूंकि वह शुद्ध राजनीतिक ग्रन्थ है, इसलिए किसी राष्ट्रकूट या चालुक्य राजा के लिए ही लिखा जाता और उसका उल्लेख भी अवश्य होता, किन्तु ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व रचा गया।

उपर्युक्त साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में नीतिवाक्यामृत के टीकाकार का यह कथन जाँचने-देखने पर ठीक प्रतीत होता है कि प्रतिपक्षी इन्द्र के लिए कालाग्नि के समान कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव के आग्रह पर उनके अनुज सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत की रचना की।

लगता है महेन्द्रदेव द्वितीय के गद्दी पर बैठने के उपरान्त सोमदेव साधु हो गये हों। क्योंकि प्राचीन इतिहास में प्रायः ऐसा देखा गया है कि एक भाई के हाथ में शासन सूत्र आने पर दूसरा भाई यदि उसका विरोध नहीं करना चाहता तो संन्यस्त हो जाता था, या राज्य छोड़कर अन्यत्र चला जाता था। सोमदेव के साथ भी यही सम्भावना हो सकती है। या यह भी सम्भव है कि सोमदेव महेन्द्रदेव के सगे भाई न होकर दूर के रिश्ते के भाई रहे हों।

---

३०. डाक्टर वी० राघवन्–नीतिवाक्यामृत आदि के रचयिता सोमदेव सूरि, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १० किरण २

३१. ···त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनाम्–। –यश० पृ० ४५८

···पंचपंचाशन्महावादिविजयोपार्जितकीर्तिमन्दाकिनीपवित्रितत्रिभुवनस्य।

–नीति० प्रशस्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक अतिरिक्त प्रमाण के रूप में सोमदेव का देवान्त नाम भी इस बात का द्योतक है कि सोमदेव का गुर्जर प्रतिहार नरेशों से पारिवारिक सम्बन्ध रहा। यद्यपि साधु होने के बाद पहले का नाम प्रायः बदल दिया जाता है, किन्तु सम्भव है शब्द या अर्थ परिवर्तन के साथ सोमदेव ने किसी तरह अपना नाम भी सुरक्षित रख लिया हो।

यह कहा जा सकता है कि सोमदेव जिस संघ के साधु थे वह संघ ही देवान्त नाम वाला था। इसलिए सोमदेव का नाम भी देवान्त रखा गया। यह भी उतनी ही सम्भावना के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, जितनी सम्भावना के रूप में प्रथम बात।

अन्त में पर्भनी शिलालेख के उल्लेख पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। इस शिलालेख में सोमदेव के दादा गुरु को गौड़संघ का कहा गया है।[३२]

स्व० पण्डित नाथूराम प्रेमी श्रमणबेलगोला के शिलालेख में उल्लिखित गोल या गोल्ल से गौड़ की पहचान करते हैं। प्रो० हन्दिकी दक्षिण कनारा की गौड़ जाति से गौड़ संघ के सम्बन्ध की सम्भावना प्रकट करते हैं। वास्तव में सोमदेव और गुर्जर प्रतिहारों के सम्बन्धों पर विचार करते हुए ये दोनों सम्भावनाएँ ठीक नहीं लगतीं। कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का साम्राज्य दूर-दूर तक था। दो गौड़ जनपद इसके अन्तर्गत थे। पश्चिम बङ्गाल को भी उस समय गौड़ कहा जाता था और उत्तर कौशल अर्थात् अवध के एक भाग को भी। बहुत सम्भव है कि यशोदेव उत्तर कौशल के रहे हों। अथवा प्रो० हन्दिकी के सुझावानुसार यदि गौड़ संघ और यशोदेव का सम्बन्ध दक्षिण कनारा की गौड़ जाति से भी मान लिया जाय तो भी इससे सोमदेव के महेन्द्रदेव के अनुज होने न होने पर प्रभाव नहीं पड़ता। राष्ट्रकूट और गुर्जर प्रतिहारों के पारिवारिक सम्बन्ध इतिहास में सुविदित हैं। सम्भव है महेन्द्रदेव द्वितीय के गद्दी पर बैठने के बाद सोमदेव दक्षिण भारत चले गये हों और कालान्तर में वहीं गौड़ संघ में मुनि हो गये हों।

निष्कर्ष रूप में यह स्वीकार न भी किया जाये कि सोमदेव महेन्द्रदेव के अनुज थे, तो भी यशस्तिलक से यह स्पष्ट है कि सोमदेव का सम्बन्ध विराट

३२. श्री गौडसंघेमुनिमान्यकीर्तिनाम्ना यशोदेव इति प्रजज्ञे।
 –प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास में उद्धृत, पृ० ९०

३३. ओझा–राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्यशासन से दीर्घकाल तक रहा है। दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों के संपर्क में भी वे बहुत काल तक रहे प्रतीत होते हैं। यशस्तिलक में राज्यतन्त्र और उसके विभिन्न अवयवों के जो वर्णन हैं, वे सोमदेव के चित्रग्राहिणी प्रतिभा द्वारा स्वयं गृहीत चित्र हैं। इतने स्पष्ट और सांगोपांग वर्णन बिना इसके सम्भव न थे। बाण ने अपने युग के महान् प्रतापी सम्राट हर्ष के राज्यतन्त्र का चित्रांकन अपने हर्षचरित में किया था, सोमदेव ने अपने युग के महाप्रतापी राष्ट्रकूटों के राज्यतन्त्र का चित्रांकन अपने महनीय ग्रन्थ यशस्तिलक में किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद दो

यशस्तिलक की कथावस्तु और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

पहले बताया है कि पूरा यशस्तिलक आठ आश्वासों या अध्यायों में विभक्त है। प्रथम आश्वास कथावतार या कथा की पृष्ठभूमि के रूप में है और अन्त के तीन आश्वासों में उपासकाध्ययन अर्थात् जैन गृहस्थ के आचार का विस्तृत वर्णन है। यशोधर की वास्तविक कथा बीच के चार आश्वासों में स्वयं यशोधर के मुँह से कहलायी गयी है। बाण की कादम्बरी की तरह कथा जहाँ से आरम्भ होती है, उसकी परिसमाप्ति भी वहीं आकर होती है। महाराज शूद्रक की सभा में लाया गया वैशम्पायन शुक कादम्बरी की कथा कहना प्रारम्भ करता है और कथावस्तु तीन जन्मों में लहरिया गति से घूमकर फिर यथास्थान पहुँच जाती है। सम्राट मारिदत्त द्वारा आयोजित महानवमी के अनुष्ठान में अपार जन समुदाय के बीच बलि के लिए लाया गया परिव्रजित राजकुमार यशस्तिलक की कथा का आरम्भ करता है और रथ के चक्र की तरह एक ही फेरे में आठ जन्मों की कहानी पूरी होकर अपने मूल सूत्र से फिर जुड़ जाती है। आठ जन्मों की लम्बी कहानी का सूत्र यशस्तिलक के प्रासंगिक विस्तृत वर्णनों में कहीं खो न जाये, इसलिए संक्षिप्त कथा का जान लेना आवश्यक है। सम्पूर्ण कथावस्तु इस प्रकार है—

कथावस्तु

यौधेय नाम का एक जनपद था। उसकी राजधानी राजपुर थी। वहाँ मारिदत्त राज्य करता था। एक दिन उसे वीरभैरव नामक कौल आचार्य ने बताया कि चण्डमारी देवी के सामने सभी प्रकार के पशु-युगल के साथ सर्वाङ्ग सुन्दर मनुष्य युगल की अपने हाथ से बलि करने से विद्याधर लोक को जीतने वाले चक्र की प्राप्ति होती है। मारिदत्त विद्याधर लोक की विजय करने और वहाँ की कमनीय कामनियों के कटाक्षावलोकन की उत्सुकता को रोक न सका। उसने चण्डमारी के मन्दिर में महानवमी के आयोजन को अपूर्व उत्साह और धूमधाम के साथ मनाने की घोषणा कर दी। तैयारियाँ होने लगीं। छोटे-बड़े सभी तरह के पशुओं के जोड़े उपस्थित किये गये। कमी थी केवल सर्वाङ्ग सुन्दर मनुष्य युगल की। चारों ओर ऐसे युगल की खोज में राज्य कर्मचारी भेज दिये गये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसी समय राजधानी के निकट सुदत्त नाम के महात्मा आकर ठहरे। उनके साथ उनके दो अल्प वयस्क शिष्य भी थे। ये दोनों भाई-बहिन अल्प अवस्था में ही राज्य त्याग कर साधु हो गये थे। साधु वेश में उनका राजसी तेज और कमनीयता अक्षुण्ण थी। मध्याह्न में वे दोनों अपने गुरु की आज्ञा लेकर नगर में भिक्षा के लिए गये। वहाँ उनकी राज्य कर्मचारियों से भेंट हो गयी। राज्य कर्मचारी बिना किसी रहस्य का उद्घाटन किये ही बहाना बना कर उन दोनों को चण्डमारी के मन्दिर में ले गये।

मारिदत्त सर्वांग सुन्दर नर युगल की प्राप्ति से उल्लसित हो उठा। उसकी विद्याधर लोक को जीतने की इच्छा साकार जो होनी थी। हर्षातिरेक में उसने कोश से तलवार निकाल ली, किन्तु साधु वेश, सौम्य प्रकृति और मृत्यु के सामने खड़ा होने पर भी उनके अपूर्व धैर्य को देख कर उसका हाथ रुक गया। बोला—मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ। मुनिकुमार ने कहा—साधु का क्या परिचय। फिर भी कौतूहल हो तो सुनो। [प्रथम आश्वास]

भरत क्षेत्र में अवन्ति नाम का एक जनपद है। उसकी राजधानी उज्जयिनी शिप्रा नदी के किनारे बसी है। वहाँ राजा यशोर्ध राज्य करता था। उसकी चन्द्रमति नाम की रानी थी। उन दोनों के यशोधर नाम का एक पुत्र हुआ। एक दिन राजा ने अपने सिर पर सफेद बाल देखे। उन्हें देखकर उसे वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास ले लिया। यशोधर का राज्याभिषेक और अमृतमति के साथ पाणिग्रहण संस्कार शिप्रा के तट पर एक विशाल मण्डप में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। [द्वितीय आश्वास]

राज्य संचालन में यशोधर का जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा।

[तृतीय आश्वास]

एक दिन राजा यशोधर रानी अमृतमति के साथ विलास करके लेटा ही था कि रानी उसे सोया समझ धीरे से पलंग से उतरी और दासी के कपड़े पहन कर महल से निकल पड़ी। यशोधर इस रहस्य को जानने के लिए चुपके से उसके पीछे हो गया। उसने देखा कि रानी गजशाला में पहुँचकर अत्यन्त गन्दे विजयमकरध्वज नामक महावत के साथ नाना प्रकार से विलास कर रही है। उसके आश्चर्य, क्रोध और घृणा का ठिकाना न रहा। वह क्रोध से तिलमिला उठा और यह सोच कर कि दोनों का एक साथ ही काम तमाम कर दे, उसने कोश से तलवार निकाल ली। पर एक क्षण कुछ सोच कर उलटे पैर लौट पड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और महल में आकर पलंग पर पुनः लेट गया। महावत के साथ रति करने के बाद रानी लौट आयी और यशोधर के साथ पलंग पर इस तरह चुपके से सो गयी मानो कुछ हुआ भी न हो।

इस घटना से यशोधर के मन को बड़ी ठेस लगी। उसका दिल टूट गया। संसार की असारता के विचार उसके मन में बार-बार आने लगे।

सबेरे प्रतिदिन के अनुसार जब यशोधर राजसभा में पहुँचा तो उसकी माता चन्द्रमति ने उसे उदास देख कर उदासी का कारण पूछा। यशोधर ने बात टालने की दृष्टि से कहा कि उसने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखा है कि वह अपने राजकुमार यशोमति को राज्य देकर संन्यस्त हो वन को चला गया है। इसलिए वह अपनी कुल परम्परा के अनुसार राजकुमार को राज्य देकर साधु होना चाहता है।

यह सुनकर राजमाता चिन्तित हुई और उसने कुल देवी चंडमारी के मंदिर में बलि चढ़ाकर स्वप्न की शान्ति करने का उपाय बताया। यशोधर पशु हिंसा के लिए किसी भी मूल्य पर तैयार नहीं हुआ तो राजमाता ने कहा कि आटे का मुर्गा बना कर उसी की बलि करेंगे। यशोधर को विवश होकर यह मानना पड़ा। उसने सोचा कि कहीं राजमाता पुत्र के द्वारा अवज्ञा होने पर कोई अनिष्ट न कर बैठे, इसलिए उसने माँ की बात मान ली। एक ओर चंडमारी के मन्दिर में बलि का आयोजन, दूसरी ओर कुमार यशोमति के राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी।

अमृतमति को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो वह हृदय से प्रसन्न हो उठी। फिर भी दिखावा करती हुई बोली—स्वामिन्! मुझे छोड़कर आप संन्यास लें, यह ठीक नहीं। अतः कृपा करके मुझे भी अपने साथ वन ले चलें।

यशोधर कुलटा रानी की इस ढिठाई से तिलमिला उठा। उसे गहरी चोट लगी, फिर भी बात को पी गया। मन्दिर में जाकर उसने आटे के मुर्गे की बलि चढ़ायी। इससे उसकी माँ तो प्रसन्न हुई, किन्तु रानी को दुःख हुआ कि कहीं राजा का वैराग्य क्षणिक न हो। उसने बलि किये हुए उस आटे के मुर्गे के प्रसाद को पकाते समय उसमें विष मिला दिया, जिसके खाने से यशोधर और उसकी माँ, दोनों की मृत्यु हो गयी। [चतुर्थ आश्वास]

मृत्यु के बाद दोनों माँ और बेटे छः जन्मों तक पशुयोनि में भटकते रहे। पहले जन्म में यशोधर मोर हुआ और उसकी माँ चन्द्रमति कुत्ता। दूसरे जन्म में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यशोधर हिरण हुआ और चन्द्रमति साँप। तीसरे जन्म में वे शिप्रा नदी में जल जन्तु हुए। यशोधर एक बड़ी मछली हुआ और चन्द्रमति मगर। चौथे जन्म में दोनों अज युगल (बकरा-बकरी) हुए। पाँचवें जन्म में यशोधर पुनः बकरा हुआ तथा चन्द्रमति कलिंग देश में भैंसा हुई। छठे जन्म में यशोधर मुर्गा और चन्द्रमति मुर्गी हुई।

मुर्गा-मुर्गी का मालिक वसन्तोत्सव में कुक्कुट युद्ध दिखाने के लिए उन्हें उज्जयिनी ले गया। वहाँ सुदत्त नाम के आचार्य ठहरे हुए थे। उनके उपदेश से उन दोनों को अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो गया और उन्हें अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा। अगले जन्म में मरकर वे दोनों राजा यशोमति के यहाँ उसकी रानी कुसुमावलि के गर्भ से युगल भाई-बहन के रूप में पैदा हुए। उनके नाम क्रमशः अभयरुचि और अभयमति रखे गये।

एक बार राजा यशोमति सपरिवार आचार्य सुदत्त के दर्शन करने गया और वहाँ अपने पूर्वजों की परलोक यात्रा के सम्बन्ध में पूछा। आचार्य सुदत्त ने अपने दिव्यज्ञान के प्रभाव से जानकर बताया कि तुम्हारे पितामह यशोर्ध अपनी तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग में सुख भोग रहे हैं और तुम्हारी माता अमृतमति विष देने के पाप के कारण नरक में है। तुम्हारे पिता यशोधर तथा उनकी माता चन्द्रमति आटे के मुर्गे की बलि देने के पाप के कारण छः जन्मों तक पशुयोनि में भटककर अपने पाप का प्रायश्चित्त करके तुम्हारे पुत्र और पुत्री के रूप में उत्पन्न हुए हैं।

आचार्य सुदत्त ने उनके पूर्व जन्मों की कथा सुनायी जिसे सुनकर उन बालकों को संसार के स्वरूप का ज्ञान हो गया और इस डर से कि बड़े होने पर पुनः संसार चक्र में न फँस जायें, उन्होंने बाल्यावस्था में ही दीक्षा ले ली।

इतना कह कर अभयरुचि ने कहा, राजन्! हम दोनों वही भाई-बहन हैं। हमारे वे आचार्य सुदत्त इसी नगर के पास आकर ठहरे हैं। हम लोग उनकी आज्ञा लेकर भिक्षा के लिए नगर में आये थे कि आपके कर्मचारी हमें पकड़कर यहाँ ले आये। [पंचम आश्वास]

इतनी कथा पाँच आश्वासों में समाप्त होती है। इसके आगे तीन आश्वासों में सोमदेव ने उपासकाध्ययन (श्रावकाचार) का वर्णन किया है। बाणभट्ट की कादम्बरी की तरह यशस्तिलक की कथा का जहाँ से आरम्भ होता है वहीं उसकी परिसमाप्ति भी। कथा के सूत्र को जोड़ने के लिए सोमदेव ने आगे इतना और कहा है कि—राजा मारिदत्त यह वृत्तान्त सुनकर आश्चर्यचकित हो गया और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोला-मुनिकुमार, हमें शीघ्र ही अपने गुरु के निकट ले चलें। हमें उनके दर्शनों की तीव्र उत्कंठा हो रही है।

इसके बाद सब लोग आचार्य सुदत्त के पास पहुँचे और उनके उपदेश से प्रभावित होकर धर्म में दीक्षित हो गये। धर्म के प्रभाव से सारा यौधेय सुख, शान्ति और समृद्धि से ओतप्रोत हो गया।

यशस्तिलक की इस सम्पूर्ण कथावस्तु को सोमदेव ने एक स्थान पर केवल एक पद्य में संजो कर रख दिया है—

"आसीच्चन्द्रमतिर्यशोधरनृपस्तस्यास्तनूजोऽभवत्
तौ चण्ड्याः कृतपिष्टकुक्कुटबलीद्वेडप्रयोगान्मृतौ ॥
श्वा केकी पवनाशनश्च पृषतः ग्राहस्तिमिश्छागिका
भर्तास्यास्तनयश्च गर्वरपतिर्जातौ पुनः कुक्कुटौ ॥"

—पृ० २५६, उत्त०

चन्द्रमति नामकी रानी थी। उसका पुत्र यशोधर हुआ। उन दोनों ने चण्डमारी देवी के सामने आटे के मुर्गे की बलि दी और विष के दिये जाने से उन दोनों की मृत्यु हो गयी। इसके बाद अगले जन्मों में क्रम से कुत्ता और मोर, साँप और सेही, मगर और महामत्स्य, बकरा-बकरी, फिर बकरा-बकरी और अन्त में मुर्गा-मुर्गी हुए।

इस तरह यशस्तिलक की कथा को एक ओर एक पद्य में संग्रथित किया गया है, दूसरी ओर इसी कथा को पूरे यशस्तिलक में नियोजित किया गया है।

कथावस्तु की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

काव्य के माध्यम से जन-मानस में नैतिक जागरण की प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आयी है। काव्य से एक ओर पाठक का मनोरंजन होता रहता है, दूसरी ओर बिना किसी बोझ के अनजाने ही उसके मानस-पटल पर नैतिक धरातल की पृष्ठभूमि भी तैयार होती रहती है। इसीलिए मम्मट ने इसे कान्तासम्मित उपदेश कहा। जिस प्रकार कान्ता (स्त्री) अपने पति का मन बहलाती हुई खुशी-खुशी उससे अपनी बात मनवा लेती है, उसी प्रकार काव्य पाठक का मनोरञ्जन करता हुआ उसे सदुपदेश भी दे देता है।

काव्यशास्त्र की इस मौलिक प्रेरणा ने ही साहित्यकार पर सामाजिक चरित्र-विकास का उत्तरदायित्व ला दिया। फिर तो काव्य के माध्यम से धर्म और तत्त्वज्ञान की भी शिक्षा दी जाने लगी। महाकवि अश्वघोष के सौंदरानन्द महा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काव्य और बुद्धचरित की पृष्ठभूमि बौद्ध चिन्तन और तत्त्वज्ञान को जनमानस तक पहुँचाने की मूल प्रेरणा से ही निर्मित हुई है। जैन साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग इसी धरातल पर आधारित है।

सोमदेव सूरि का यशस्तिलक दशवीं शताब्दी (९५९ ई०) के मध्य में लिखा गया संस्कृत साहित्य का एक ऐसा ही ग्रन्थ है, जिसकी मूल प्रेरणा शुद्ध रूप से नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित हुई है। कथाकार को जनमानस में अहिंसा के उत्कृष्टतम रूप की प्रतिष्ठा करना अभीष्ट था, जिसे उसने एक लोकप्रिय कथा-पुरुष के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया। यशस्तिलक का चरितनायक सम्राट यशोधर हिंसा का तीव्र विरोधी है, इसलिए जब उसकी मां उससे पशुबलि देने की बात कहती है तो वह बिगड़ खड़ा होता है और कठोर शब्दों में बलि का खण्डन करता है। बाद में मां के आग्रह और तीव्र प्रेरणा के कारण आटे के मुर्गे की बलि देना मंजूर कर लेता है। बलि देने के तात्कालिक दुष्परिणाम स्वरूप यशोधर की रानी उस आटे के मुर्गे में विष मिलाकर मां-बेटे को बलि के प्रसाद के रूप में खिला देती है, जिससे उन दोनों की तत्काल मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के बाद दोनों छः जन्मों तक पशुयोनि में भटकते रहते हैं। अन्त में सद्-गुरु का सान्निध्य पाकर जब उन्हें अपने इस पाप का बोध होता है और उसके लिए वे पश्चात्ताप करते हैं तब कहीं उन्हें फिर से मनुष्य भव की प्राप्ति होती है।

इस तरह यशस्तिलक की कथावस्तु हिंसा और अहिंसा के द्वन्द्व की कहानी है। आचार्य सोमदेव एक उच्चकोटि के जैन साधु थे। अतएव उनका अहिंसा के प्रति तीव्र अनुराग स्वाभाविक था। कथा के माध्यम से वे अहिंसा संस्कृति को सम्पूर्ण जनमानस में बिठा देना चाहते थे। यशस्तिलक की कथा के द्वारा उन्होंने लोगों को दिखाया कि जब आटे के मुर्गे की भी हिंसा करने से लगातार छः जन्मों तक पशुयोनि में भटकना पड़ा तो साक्षात् पशु-हिंसा करने का कितना विषाक्त परिणाम होगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। कथावस्तु की यही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यशस्तिलक की कथा का नायक एक सम्राट है। साम्राज्य में कितने तरह की हिंसा नहीं होती? पशुओं की बात तो दूर रही, युद्धों में नर संहार की भी सीमा नहीं रहती। ऐसी स्थिति में एक आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण उसे छः जन्मों तक पशुयोनि में भटकना कहां तक तर्कसंगत है?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव का ध्यान उपर्युक्त तथ्य की ओर अवश्य गया होगा, क्योंकि अहिंसा संस्कृति के क्रमिक विकास को दृष्टि में रखते हुए उक्त कथावस्तु की योजना की गयी है। अहिंसा के उत्कृष्ट स्वरूप की साधना साधु ही कर सकता है जो त्रस और स्थावर समस्त जीवों की हिंसा से विरत है। गृहस्थ इतनी साधना नहीं कर सकता। उसे अपने आश्रित प्राणियों के भरण-पोषण के लिए नाना प्रकार का आरम्भ करना पड़ता है, तरह-तरह के उद्योग करने होते हैं तथा अपने विरोधियों का प्रतिरोध और विनाश करना होता है। वह यदि कुछ साधना कर सकता है तो केवल यह कि जानबूझकर (संकल्पपूर्वक) किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। इन चार प्रकार की हिंसाओं को शास्त्रीय शब्दों में निम्नलिखित नाम दिये गये हैं—

१. आरम्भी हिंसा, २. उद्योगी हिंसा, ३. विरोधी हिंसा, ४. संकल्पी हिंसा।

गृहस्थ इन चार प्रकार की हिंसाओं में से अंतिम अर्थात् संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है। यशस्तिलक के कथानायक ने संकल्पपूर्वक आटे के मुर्गे की बलि की थी, जिसका कि उसे त्यागी होना चाहिए था। यही कारण है कि उसे इसका विषाक्त फल भोगना पड़ा।

कथा की इस योजना के पीछे एक और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य छिपा हुआ है। यशोधर को उक्त हिंसा के प्रतिफल छः जन्मों तक पशुयोनि में ही क्यों भटकना पड़ा, नरक में भी तो जा सकता था ?

यशोधर ने आटे का मुर्गा चढ़ाकर उससे समस्त जीवों की बलि करने का फल प्राप्त होने की कामना की।[1] निःसन्देह यह देवता के साथ बहुत बड़ा छल था। छल-कपट (माया) तिर्यंचगति के कर्म बन्धन का कारण है (माया तैर्यग्योनस्य, तत्त्वार्थसूत्र ६।१६)। यही कारण है कि यशोधर को ऐसे तिर्यंचगति कर्म का बन्ध हुआ, जिसे वह छः जन्मों में भोग पाया।

इस प्रकार यशस्तिलक की कथावस्तु अहिंसा संस्कृति की विशाल पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित हुई है। इससे एक ओर सोमदेव के साहित्यकार ने जनमानस के

---

१. सर्वेषु सत्त्वेषु-हतेषु यन्मे भवेत्फलं देवि तदत्र भूयात्।
इत्याशयेन स्वयमेव देव्याः पुरः शिरस्तस्य चकर्त शस्त्र्या ॥
-यश० पृ० १६२ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चरित्र विकास की नैतिक जिम्मेदारी पूर्ण की, दूसरी ओर अहिंसा की प्रतिष्ठा से धार्मिक नेता का दायित्व।

एक बात और जो ध्यान में आती है वह यह कि संभवतया १० वीं शताब्दी में बलि प्रथा का बहुत ही जोर था। छोटे से छोटे पशु-पक्षी से लेकर बड़े से बड़े पशु की बलि देने में भी लोगों को हिचकिचाहट नहीं होती थी। दक्षिण भारत में जहाँ कौल और कापालिक सम्प्रदाय विशेष पनपे, वहाँ बलि प्रथा का जोर होना स्वाभाविक था। सोमदेव ने यशस्तिलक में जिस तीव्रता के साथ और जिन कठोर शब्दों में बलि प्रथा का विरोध किया है, वह कथावस्तु की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का दूसरा अङ्ग है। बलि प्रथा का विरोध करना अहिंसा के विकास के लिए नितांत आवश्यक था। उसी के लिए सोमदेव ने कथा के माध्यम से जन सामान्य के सामने बलि के दुष्परिणामों को प्रस्तुत किया और लोगों को यह महसूस करने के लिए बाध्य किया कि बलि करना निंद्य और निकृष्ट काम ही नहीं घृणास्पद, अतएव परित्याज्य भी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद तीन

यशोधरचरित्र की लोकप्रियता

यशोधरचरित्र मध्ययुग के साहित्यकारों का प्रिय और प्रेरक विषय रहा है। यद्यपि कथावस्तु के मूल उत्स के विषय में अभी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है, फिर भी अब तक उपलब्ध प्रकाशित तथा अप्रकाशित सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि लगभग सातवीं शती के अन्त से लेकर उन्नीसवीं शती तक यशोधरचरित्र पर ग्रन्थ रचना होती रही। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, गुजराती, तमिल, कन्नड़ आदि भारतीय भाषाओं में इस कथा को आधार बनाकर लिखे गये अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। अपभ्रंश जसहरचरिउ की भूमिका में प्रो० पी० एल० वैद्य ने उनतीस ग्रन्थों की सूचना दी है। इधर उपलब्ध जानकारी से यह संख्या चौवन तक पहुँच जाती है। अनेक शास्त्र-भण्डारों की सूचियाँ अभी तक नहीं बन पायीं, इसलिए अभी भी यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस सूची के अतिरिक्त और नवीन ग्रन्थ यशोधरचरित्र पर न मिलें। अब तक प्राप्त जानकारी का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला कहा (७७९ ई०) में प्रभंजन द्वारा रचित यशोधरचरित्र की सूचना दी है।[1] यद्यपि यह ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु यह सत्य है कि प्रभंजन ने यशोधरचरित्र की रचना की थी। वासवसेन ने भी प्रभंजन का उल्लेख किया है।[2]

२. हरिभद्र सूरि के प्राकृत ग्रन्थ समराइच्च कहा में यशोधर की कथा आयी है। हरिभद्र उद्योतन सूरि के गुरुओं में से थे। इनका समय आठवीं शती का मध्यकाल माना जाता है।

---

1. सत्तूण जो जसहरो जसहर-चरिएण जणवए पयडो।
कलि-मल-पभंजणो च्चिय पभंजणो आसि रायरिसी॥
—कुवलयमाला, पृ० ३।३१

२. सर्वशास्त्रविदां मान्यैः सर्वशास्त्रार्थपारगैः।
प्रभंजनादिभिः पूर्वं हरिषेणसमन्वितैः॥
—पी० एल० वैद्य —जसहरचरिउ, भूमिका, पृ० २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. हरिभद्र के बाद दशवीं शती में सोमदेव ने संस्कृत में विशालकाय यशस्तिलक लिखा।

४. सोमदेव के समकालीन विद्वान् पुष्पदन्त ने अपभ्रंश में जसहरचरिउ की रचना की।

५. पुष्पदन्त और सोमदेव के बाद वादिराजकृत यशोधरचरित्र की जानकारी मिलती है। श्रुतसागर ने वादिराज को सोमदेव का शिष्य बताया है।[3] स्वयं वादिराज की सूचना के अनुसार उन्होंने यशोधरचरित्र की रचना के पूर्व शक संवत् ९४७ (१०२५ ई०) में पार्श्वनाथचरित की रचना की थी।[4]

६. वादिराज के बाद वासवसेन का उल्लेख किया जाना चाहिए। वासवसेन ने संस्कृत में आठ अध्यायों में यशोधरचरित्र लिखा।

७. वासवसेन के समकालीन वत्सराज ने भी यशोधर-कथा पर ग्रन्थ लिखा। गन्धर्व कवि ने वासवसेन तथा वत्सराज दोनों का उल्लेख किया है। इसलिए इनका समय १४ वीं शती से पूर्व का अनुमाना जाता है।

८. वासवसेन ने अपने पूर्ववर्ती प्रभंजन और हरिषेण का उल्लेख किया है। हरिषेण के काव्य के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। संस्कृत कथाकोष के रचयिता हरिषेण से इनकी पहचान की जाती है किन्तु पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में निश्चित रूप से यह नहीं माना जा सकता कि वासवसेन के द्वारा उल्लिखित हरिषेण यही हैं।

९. वासवसेन की शैली और विधा पर ही सम्भवतया सकलकीर्ति ने अपना संस्कृत यशोधरचरित्र लिखा। सकलकीर्ति के शिष्य ज्ञानभूषण ने संवत् १५६० में अपनी तत्त्वज्ञानतरंगिणी की रचना की थी। इसी आधार पर सकलकीर्ति का समय १४५० ई० के लगभग अनुमाना जाता है।

१०. सकलकीर्ति की ही शैली और विधा पर सोमकीर्ति ने संस्कृत में यशोधरचरित्र की रचना की। स्वयं सोमकीर्ति ने इसका रचनाकाल संवत् १५३६ (१४७९ ई०) दिया है।

---

३. स वादिराजोऽपि सोमदेवाचार्यस्य शिष्यः। वादीभसिंहोऽपि मदीय शिष्यः श्री वादिराजोऽपि मदीय शिष्यः। इत्युक्तत्वाच्च।—यश० २।१२६ सं० टी०

४. श्री पार्श्वनाथकाकुत्स्थचरितं येन कीर्तितम्।
तेन श्रीवादिराजेनारब्धा याशोधरी कथा॥
—पी० एल० वैद्य—वही. पृ० २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११. माणिक्यसूरि ने संस्कृत के अनुष्टुप् पद्यों में १४ अध्यायों में यशोधर चरित्र की रचना की। इनके समय आदि के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। माणिक्यसूरि ने हरिभद्र को अपने पूर्ववर्ती रूप में स्मरण किया है।

१२. पद्मनाभ ने नौ अध्यायों में संस्कृत यशोधरचरित्र लिखा। इसकी प्राचीनतम प्रति संवत् १५३८ की मिलती है, जो आमेर (राजस्थान) के शास्त्र-भंडार में सुरक्षित है। इनके समय इत्यादि का ठीक पता नहीं चलता।

१३. पूर्णभद्र ने संस्कृत के ३११ पद्यों में संक्षेप में यशोधरचरित्र लिखा। इनके सम्बन्ध में भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती।

१४. क्षमाकल्याण ने संस्कृत गद्य में यशोधरचरित्र लिखा, जो कि आठ अध्यायों में समाप्त होता है। क्षमाकल्याण ने अपने यशोधरचरित्र के प्रारम्भ में हरिभद्र के प्राकृत यशोधरचरित्र का उल्लेख किया है।[१] क्षमाकल्याण ने अपनी कृति सं० १८३९ (१७८२ ई०) में पूर्ण की थी।

१५. भण्डारकर इंस्टीट्यूट में एक और पाण्डुलिपि यशोधरचरित्र की है, जिसके प्रारम्भ के कुछ पृष्ठ नहीं हैं और इसलिए उसके लेखक का भी पता नहीं चलता। ग्रन्थ ४ अध्यायों में समाप्त होता है। यह पाण्डुलिपि सन् १५२४ ई० की है।

रायबहादुर हीरालाल की ग्रन्थ-सूचि के अनुसार यशोधरचरित्र पर निम्न लिखित विद्वानों ने भी ग्रन्थ लिखे—

१६. मल्लिभूषण नं० ७७८८

१७. ब्रह्मनेमिदत्त नं० ७८००

१८. पद्मनाथ नं० ७८०५। सम्भवतया उपरि-उल्लिखित पद्मनाभ और पद्मनाथ एक ही हैं।

१९. श्रुतसागर ने चार अध्यायों में संस्कृत में यशोधरचरित्र लिखा। ये श्रुतसागर यशस्तिलक के टीकाकार ही हैं। संघ की प्रार्थना पर इन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति इस प्रकार दी गयी थी—

..श्रीमत्कुंदकुंदविदुषो देवेन्द्रकीर्तिर्गुरुः।
पट्टे तस्य मुमुक्षुरक्षणगुणो विद्यादिनंदीश्वरः॥

---

१. श्री हरिभद्रमुनीन्द्रैर्विहितं प्राकृतमयं तथान्यकृतम्
तदहम् गद्यमयं तत् कुर्वे सर्वावबोधकृते॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तत्पादपावनपयोधरमत्तभृंगः, श्रीमल्लिभूषणगुरुर्गरिमाप्रधानः।
सम्प्रेरितोऽहममुनाभयरुच्यभिख्ये भट्टारकेण चरिते श्रुतसागराख्यः॥[६]

इनका समय १६वीं शती माना जाता है।

२०. हेमकुंजर ने ३७० श्लोकों में संस्कृत में यशोधरकथा लिखी।

२१. जन्न कवि ने सन् १२०९ में गद्य और पद्य में चार अवतारों (अध्यायों) में कन्नड़ में यशोधरचरित्र लिखा।

२२. पूर्णदेव ने संस्कृत में यशोधरचरित्र लिखा। इसके रचनाकाल का पता नहीं चलता। सं० १८४४ की एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित है।[७]

२३. श्री विजयकीर्ति ने संस्कृत गद्य में यशोधरचरित्र लिखा। इसके रचनाकाल या लिपिकाल का पता नहीं चलता।[८]

२४. ज्ञानकीर्ति ने संवत् १६५९ में संस्कृत यशोधरचरित्र लिखा। इसकी प्राचीनतम प्रति संवत् १६६१ की उपलब्ध है। यह आमेर शास्त्र-भंडार में सुरक्षित है।[९]

२५-२८. बड़ा मंदिर, जयपुर के शास्त्र-भंडार में संस्कृत यशोधरचरित्र की चार ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनके लेखक का पता नहीं चलता। इनमें रचनाकाल भी नहीं है। एक का लिपिकाल संवत् १७१५ तथा एक का १८०१ दिया है। चारों की शास्त्र संख्या इस प्रकार हैं।[१०]

(१) वेष्टन संख्या १४४६ (संवत् १८०१ की प्रति)
(२) वेष्टन संख्या १४४८
(३) वेष्टन संख्या १४४९
(४) वेष्टन संख्या १४५० (संवत् १७५० की प्रति)

---

६. राजस्थान के शास्त्र-भण्डारों की सूची, भाग २, पृ० २८८
७. आमेर शास्त्र भण्डार सूची, पृ० ११७
८. वही
९. वही, पृ० ११६
१०. वही, पृ० २२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२९. देवसूरि ने ३५० श्लोकों में यशोधरचरित्र लिखा। इनके समय आदि का पता नहीं चलता (जैन ग्रन्थावलि, पृ० २३०)।

३०. सोमकीर्ति ने पुरानी हिन्दी मे यशोधररास लिखा। इसके रचना काल का पता नहीं चलता। यह संवत् १६६१ के लिखे एक गुटके में उपलब्ध है।[११]

३१. परिहरानन्द ने हिन्दी पद्यों में संवत् १६७० में यशोधरचरित लिखा। इसकी संवत् १८३९ की पाण्डुलिपि बधीचन्द्रजी का मंदिर, जयपुर में सुरक्षित है।[१२]

३२. साह लोहट ने पद्मनाभ के यशोधरचरित के आधार पर हिन्दी यशोधर-चरित्र लिखा। इसका रचनाकाल संवत् १७२१ है। इसकी संवत् १८०३ की प्रति उपलब्ध है।[१३]

३३. खुशालचन्द्र ने संवत् १७८१ में हिन्दी में यशोधरचरित्र लिखा। इसकी प्राचीनतम प्रति संवत् १८०१ की उपलब्ध है।[१४]

३४. अजयराज ने हिन्दी में यशोधर चोपई लिखी। इसकी संवत् १८३९ की पाण्डुलिपि उपलब्ध है।[१५]

३५. गारवदास ने हिन्दी पद्यों में यशोधरचरित्र लिखा। इसका रचनाकाल संवत् १५८१ है।[१६]

३६. पन्नालाल ने हिन्दी गद्य में यशोधरचरित्र लिखा। इसका रचनाकाल संवत् १९३२ है।[१७]

३७. एक प्रति हिन्दी यशोधरचरित्र की जैन मन्दिर संघी जी के शास्त्र भंडार, जयपुर में वेष्टन संख्या ६११ में है। इसके लेखक, रचनाकाल आदि का पता नहीं चलता।[१८]

---

११ वही, पृ० ३७६
१२. राजस्थान के शास्त्र-भंडारों की सूची, भाग ३ पृ०७१
१३. आमेर शास्त्र भंडार सूची, पृ० ११६
१४. वही
१५. राजस्थान के शास्त्र-भण्डारों की सूची, भाग ३, पृ० ७७
१६. वही, भाग ७, पृ० १८१
१७. वही, पृ० १८२
१८. वही, पृ० १८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३८. यशोधर-जयमाल नाम से हिन्दी में एक रचना एक गुटके में उपलब्ध है। इसके रचयिता या रचनाकाल का पता नहीं चलता।

३९. सोमदत्तसूरि ने हिन्दी में यशोधररास लिखा। इसके रचनाकाल आदि का पता नहीं चलता। यह बधीचन्दजी का मंदिर, जयपुर में गुटका संख्या ४८, वेष्टन संख्या १०१३ (ख) में सुरक्षित है।[१९]

४०. यशोधरचरित्र भाषा नाम से एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है, जिसके रचयिता आदि का पता नहीं चलता।

४१. पं० लक्ष्मीदास ने पुरानी हिन्दी में यशोधरचरित्र लिखा। लक्ष्मीदास ने अपनी कृति के प्रारम्भ में कहा है कि उन्होंने पद्मनाभ की शैली और विधा के आधार पर यशोधरचरित्र की रचना की।

४२. जिनचन्द्रसूरि ने पुरानी गुजराती में यशोधरचरित्र लिखा। सम्भवतया जिनचन्द्रसूरि १६वीं शती के विद्वान् थे।

४३. देवेन्द्र ने पुरानी गुजराती में यशोधररास लिखा।

४४. लावण्यरत्न ने सं० १५७३ (१५१६ ई०) में गुजराती में यशोधर-चरित्र लिखा।

४५. लावण्यरत्न के समान ही मनोहरदास ने भी सं० १६७६ (१६१९ ई०) में गुजराती में यशोधरचरित्र लिखा।

४६. ब्रह्मजिनदास ने सं० १५२० (१४६३ ई०) में यशोधररास लिखा।

४७. इसी तरह जिनदास ने सं० १६७० (१६१३ ई०) में यशोधररास लिखा।

४८. विवेकराज ने संवत् १५७३ में यशोधररास लिखा।

४९. यशोधरकथा चतुष्पदी के नाम से एक और गुजराती पाण्डुलिपि प्राप्त होती है। इसके रचयिता आदि का पता नहीं चलता।[२०]

५०. एक अज्ञात लेखक ने तमिल भाषा में यशोधरचरित्र लिखा। इसका समय १०वीं शताब्दी है और सम्भवतः यह वादिराज की कृति है।

---

१९ वही, भाग ३, पृ० १२६

२०. लिंबडीना जैन ज्ञानभण्डारनी हस्तलिखित प्रतियानुं सूचीपत्र, पृ० १२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५१. श्री चन्द्रनवर्णी ने कन्नड़ में यशोधरचरित्र लिखा। ये श्रुतमुनि के पौत्र प्रशिष्य शुभचन्द्र के पुत्र थे। रचनाकाल या लिपिकाल का पता नहीं चलता।[२१]

५२. कवि चन्द्रम ने भी कन्नड़ में यशोधरचरित्र लिखा। इनके भी समय आदि का पता नहीं चलता।[२२]

५३.-५४. इनके अतिरिक्त और भी दो पाण्डुलिपियाँ कन्नड़ में यशोधरचरित्र की उपलब्ध होती हैं। इनके रचयिता आदि का पता नहीं चलता।[२३]

---

२१. कन्नड़प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची, पृ० १५६

२२. वही

२३. वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय दो

यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्ण-व्यवस्था और समाज-गठन

यशस्तिलककालीन भारतीय समाज छोटे-छोटे अनेक वर्गों में बँटा हुआ था। आदर्श रूप में उन दिनों भी वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक मान्यताएँ प्रचलित थीं। यशस्तिलक से इस प्रकार की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। विभिन्न प्रसंगों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों तथा अपने-अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक सामाजिक व्यक्तियों के उल्लेख आये हैं। सोमदेव ने एकाधिक बार वर्णशुद्धि के विषय में भी सूचनाएँ दी हैं।[1]

वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक मान्यताओं का प्रभाव सामाजिक जीवन के रग-रग में इस प्रकार बैठ गया था कि इस व्यवस्था का घोर विरोध करने वाले जैन-धर्म के अनुयायी भी इसके प्रभाव से न बच सके। दक्षिण भारत में यह प्रभाव सबसे अधिक पड़ा, इसका साक्षी वहाँ उत्पन्न होने वाले जैनाचार्यों का साहित्य है। सोमदेव के पूर्व नवीं शताब्दि में ही आचार्य जिनसेन ने उन सभी वैदिक नियमोप-नियमों का जैनीकरण करके उन पर जैनधर्म की छाप लगा दी थी, जिन्हें वैदिक प्रभाव के कारण जैन समाज भी मानने लगा था। जिनसेन के करीब सौ वर्ष बाद सोमदेव हुए। वे यदि विरोध करते तो भी सामाजिक जीवन में से उन मान्यताओं का पृथक् करना सम्भव न था, इसलिए यशस्तिलक में उन्होंने यह चिन्तन दिया कि 'गृहस्थों का धर्म दो प्रकार का है—लौकिक तथा पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रित है तथा पारलौकिक आगमाश्रित, इसलिए लौकिक धर्म के लिए वेद (श्रुति) और स्मृतियों को प्रमाण मान लेने में कोई हानि नहीं है।'[2] प्राचीन जैन साहित्य की पृष्ठभूमि पर सोमदेव के इस चिन्तन का पर्यालोचन विशेष महत्व का है।

---

१. भजन्ति सांकर्यमिमानि देहिनां न यत्र वर्णाश्रमधर्मवृत्तयः।—पृ० १६
लोचनेषु वर्णसंकरो न कुलाचारेषु।—पृ० २०८
शुद्धवर्णाश्रमचरितविगतेतयः। – पृ० १८३ उत्त०

२. द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः॥
जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधाः।
श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः॥—पृ० ३७३ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्वर्ण

ब्राह्मण—यशस्तिलक में ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण (११६-११८, १२६ उत्त०), द्विज (९०, १०५, १०८, १०४ उत्त०, ४५७ पू०), विप्र (४५७ पू०), भूदेव (८८ उत्त०), श्रोत्रिय (१०३ उत्त०), वाडव (१३५ उत्त०), उपाध्याय (१३१ उत्त०), मौहूर्तिक (३१६ पू०१४० उत्त०), देवभोगी, (१४० उत्त०) तथा पुरोहित (३१६ पू०, ३४५ उत्त०) शब्द आये हैं। एक स्थान पर (२१०) त्रिवेदी ब्राह्मण का भी उल्लेख है।

उन दिनों समाज में ब्राह्मणों की खूब प्रतिष्ठा थी। राजा भी इस बात में गौरव अनुभव करता था कि ब्राह्मणों में उसकी मान्यता है।[३] पितृतर्पण आदि सामाजिक क्रिया-काण्डों में भी ब्राह्मण ही आगे रहता था।[४] श्राद्ध के लिए ब्राह्मणों को घर बुलाकर भोजन कराया जाता था।[५] विशिष्ट ब्राह्मणों को दान देने की प्रथा थी[६]। श्राद्ध तथा मृत्यु के बाद की अन्य क्रियाएँ करानेवाले ब्राह्मणों के लिए भूदेव शब्द आया है।[७] सम्भवतः श्रोत्रिय ब्राह्मण आचार की दृष्टि से सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे, किन्तु उनमें भी मादक द्रव्यों का उपयोग होने लगा था।[८] बलि आदि कार्य के विषय में पूरी जानकारी रखने वाले, वेदों के जानकार ब्राह्मणों को वाडव कहते थे।[९] दशकुमारचरित में भी ब्राह्मण के लिए वाडव शब्द का प्रयोग हुआ है।[१०] अध्यापन कार्य कराने वाले ब्राह्मण उपाध्याय कहलाते थे।[११] शुभ मुहूर्त का शोधन करने वाले ब्राह्मण मौहूर्तिक कहे जाते थे।[१२] मुहूर्त शोधन का कार्य करते समय वे उत्तरीय से अपना मुंह

---

३. त्रिवेदीवेदिभिर्मान्यः।—पृ० २१०

४. पितृसन्तर्पणार्थं द्विजसमाजसत्रमवतीकाराय समर्पयामास। -पृ० २१८ उत्त०

५. भुक्ता च श्राद्धामन्त्रितैर्भूदेवैः।--पृ० ८८

६. ददाति दानं द्विजपुंगवेभ्यः।—४१७

७. श्राद्धामन्त्रितैः भूदेवैः—पृ० ८८ पू०, कार्यान्तामनयोर्भूदेवसंदोहसाक्षिणी .. क्रियाः।--पृ० १२२ उत्त०।

८. अशुचिनि मदनद्रव्यैर्निपात्यते श्रोत्रियो यद्वत।--पृ० १०३ उत्त०

९. वेदविद्भिर्वाडवैः।--पृ० १३५ उत्त०

१०. वाडवाय प्रचुरतरं धनं दत्वा।--दशकुमार० १।५

११. अध्यापयन्नुपाध्यायः।—पृ० १३१ उत्त०

१२. राज्याभिषेकदिवसगणनाय मौहूर्तिकान्। पृ० १४० उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ढँक लेते थे।[१३] मन्दिर में पूजा के लिए नियुक्त ब्राह्मण देवभोगी कहलाता था।[१४] राज्य के मांगलिक कार्यों के लिए नियुक्त प्रधान ब्राह्मण पुरोहित कहलाता था।[१५] यह प्रातःकाल ही राज-भवन में पहुँच जाता था।

ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण और द्विज बहु प्रचलित शब्द थे। विप्र, श्रोत्रिय, वाडव, देवभोगी तथा त्रिवेदी का यशस्तिलक में केवल एक-एक बार उल्लेख हुआ है। मौहूर्तिक तथा भूदेव का दो-दो बार तथा पुरोहित का चार बार उल्लेख हुआ है।

क्षत्रिय—क्षत्रिय वर्ण के लिए क्षत्र और क्षत्रिय दो शब्दों का व्यवहार हुआ है। प्राणियों की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म माना जाता था[१६]। पौरुष सापेक्ष कार्य तथा राज्य संचालन क्षत्रियोचित कार्य माने जाते थे। सम्राट् यशोधर को अहिच्छेत्र के क्षत्रियों का शिरोमणि कहा गया है।[१७]

वैश्य—व्यापारी वर्ग के लिए यशस्तिलक में वैश्य, वणिक, श्रेष्ठी और सार्थवाह शब्द आए हैं। व्यापारी वर्ग राज्य में व्यापार करने के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए विदेशों से भी सम्बन्ध रखते थे। सुवर्णद्वीप जाकर अपार धन कमाने वाले व्यापारियों का उल्लेख आया है।[१८]

कुशल व्यापारी को राज्य की ओर से राज्यश्रेष्ठी पद दिया जाता था।[१९] उसे विशांपति भी कहते थे।[२०]

शूद्र—शूद्र अथवा छोटी जातियों के लिए यशस्तिलक में शूद्र, अन्त्यज तथा पामर शब्द आए हैं। अन्त्यजों का स्पर्श वर्जनीय माना जाता था। पामरों की सन्तान उच्च कार्य के योग्य नहीं मानी जाती थी।[२१]

---

१३ उत्तरीयदुकूलांचलपिहितबिम्बिना…मौहूर्तिकसमाजेन।—पृ० ३१६ पू०

१४ समाज्ञापय देवभोगिनम्।—पृ० १४० उत्त०

१५. द्वारे तवोत्सवमतिश्च पुरोहितोऽपि।—पृ० ३६१ पू०

१६ भूतसंरक्षणं हि क्षत्रियाणां महान्धर्मः।—पृ० ९५ उत्त०

१७. अहिच्छत्रक्षत्रियशिरोमणिः।—पृ० ५६७ पू०

१८ सुवर्णद्वीपमनुससार। पुनरगण्यपण्यविनिमयेन तत्रत्यमचिन्त्यमात्माभिमतवस्तुस्कन्धमादाय।—पृ० ३४५ उत्त०

१९. अजमारः……राजश्रेष्ठिन्—पृ० २६१ उत्त०

२०. सः विशांपतिरेवमूचे।—पृ० २६१ उत्त०

२१ अन्त्यजैः स्पृष्टाः।—पृ० ४५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य सामाजिक व्यक्ति

सामाजिक कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों में निम्नलिखित उल्लेख आये हैं—

१. **हलायुधजीवि** (५६) : हल चलाकर आजीविका करनेवाले ।

२. **गोप** (३९१) : कृषि करने वाले ।

गोप की पत्नी गोपी या गोपिका कहलाती थी । पत्नी पति के कृषि कार्य में भी हाथ बटाती थी । सोमदेव ने धान के खेतों में जाती हुई गोपिकाओं का उल्लेख किया है (शालिवप्रेषु यान्त्यः गोपिकाः, १६) । गोप और हलायुधजीवि में सम्भवतया यह अन्तर था कि गोप वे कहलाते थे, जिनकी अपनी निजी खेती होती थी तथा हलायुधजीवि उनको कहते थे, जो अपने हल ले जाकर दूसरों के खेत जोतकर अपनी आजीविका चलाते थे ।

३. **व्रजपाल** (५६) : गायें पालनेवाले ।

४. **गोपाल** (३४० उत्त०) : ग्वाला ।

ग्वालों की बस्ती को गोष्ठ कहते थे ।[२२] सम्भवतया व्रजपाल उन्हें कहते थे, जिनके पास गायों तथा अन्य पशुओं का पूरा व्रज (बड़ा भारी समुदाय) होता था तथा गोपाल वे कहलाते थे, जो अपने तथा दूसरों के पशु चराते थे ।

५. **गोध** (१३१ उत्त०) : गड़रिया ।

बकरियाँ तथा भेड़ें पालनेवाले को गोध कहते थे ।[२३]

६. **तक्षक** (२७१) : कारीगर या राजमिस्त्री ।[२४]

७. **मालाकार** (३९३) : माली ।

मालाकार या माली की कला का सोमदेव ने एक सुन्दर चित्र खींचा है । मन्त्री राजा से कहता है कि राजन्, मालाकार की तरह कंटकितों को बाहर रोककर या लगाकर, घनों को विरले करके, उखाड़े गये को पुनः रोपकर, पुष्पित हुए से फूल चुनकर, छोटों को बड़ाकर, ऊँचों को झुकाकर, स्थूलों को कृश करके तथा अत्यन्त उच्छृंखल या ऊबड़-खाबड़ को गिराकर पृथ्वी का पालन करें ।[२५]

---

२२. गोष्ठीनमनुसृतः ।—पृ० ३४० उत्त०

२३. तं गोधमेवमभ्यधात् ।—पृ० १३१ उत्त०

२४. कार्यं किमत्र सदनादिषु तक्षकाद्यैः ।—पृ० २७१

२५. वृक्षान्कण्टकिनो बहिर्नियमयन् विश्लेषयन्संहिता-
नुत्खातप्रतिरोपयन्कुसुमितां श्चिन्वंल्लघून्वर्धयन् ।
उच्चान्संनमयन्पृथूंश्च कृशयन्नत्युच्छ्रितान्पातयन्
मालाकार इव प्रयोगनिपुणो राजन्महीं पालय ॥—पृ० ३९३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८. कौलिक (१२६) : जुलाहा या बुनकर

कौलिक के एक औजार नलक का भी उल्लेख है। यह धागों को सुलझाने का औजार था जो एक ओर पतला तथा दूसरी ओर मोटा जंघाओं के आकार का होता था।[२६]

९. ध्वजिन् या ध्वज (४३०) : श्रुतदेव ने इसका अर्थ तेली किया है।[२७]

मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में सोम या सुरा वेचने वाले के अर्थ में ध्वज या ध्वजिन् शब्द का प्रयोग हुआ है।[२८]

१०. निपाजीव (३९०) : कुम्भकार।

निपाजीव निश्चल आसन पर बैठकर चक्र घुमाता तथा उस पर घड़े बनाता है। यशस्तिलक में एक मन्त्री राजा से कहता है कि हे राजन्, जिस प्रकार निपाजीव घड़ा बनाने के लिए निश्चल आसन पर बैठकर चक्र घुमाता है उसी तरह आप भी अपने आसन (सिंहासन या शासन) को स्थिर करके दिक्पालपुर रूपी घड़े बनाने के लिए अर्थात् चारों दिशाओं में राज्य करने के लिए चक्र घुमाओ (सेना भेजो)।[२९]

११. रजक (२५४) : धोबी अर्थात् कपड़े धोनेवाला।

रजक की स्त्री रजकी कहलाती थी। सोमदेव ने जरा (बुढापे) को रजकी की उपमा दी है, जिस तरह रजकी गन्दे कपड़ों को साफ कर देती है, उसी तरह जरा भी काले केशों को सफेद कर देती है।[३०]

१२. दिवाकीर्ति (४०३, ४३१) : नाई या चाण्डाल।

सोमदेव ने लिखा है कि दिवाकीर्ति को सेनापति बना देने के कारण कलिङ्ग में अनंग नामक राजा मारा गया था।[३१] मनुस्मृति में चाण्डाल अथवा नीच जाति के लिए दिवाकीर्ति शब्द आया है।[३२] नैषधकार ने नाई के अर्थ में इसका प्रयोग किया है।[३३] यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने भी दिवाकीर्ति

---

२६. कोलिकनलकाकारे ते जंघे सांप्रतं जाते।—पृ० १२६

२७. ध्वजकुलजातः तिलंतुदकुलोत्पन्नः।—पृ० ४३०

२८. सुरापाने सुराध्वजः, मनुस्मृतिः ४।८५, याज्ञवल्क्य स्मृतिः १।१४१

२९. निपाजीव इव स्वामिन्स्थिरीकृतनिजासनः।
चक्रं भ्रमय दिक्पालपुरभाजनसिद्धये।—पृ० ३९०

३०. कृष्णच्छविः साद्य शिरोरुहश्रीर्जरारजक्या क्रियतेऽवदाता।—पृ० २५४

३१. कलिंगेष्वनंगो नाम दिवाकीर्तेः सेनाधिपत्येन ..वधमवाप।—पृ० ४३१

३२. मनुस्मृतिः ५।८५

३३. दिनमिव दिवाकीर्तिस्तीक्ष्णैः क्षुरैः सवितुः करैः।—नैषध, १९।५५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अर्थ 'नाई तथा चाण्डाल दोनों किये हैं ।[३४] नाई के लिए नापित शब्द भी आता है (२४५ उत्त०) ।

१३. आस्तरक (४०३) : शय्यापालक ।

१४. संवाहक (४०३) : पैर दबानेवाला ।

दिवाकीर्ति, आस्तरक और संवाहक ये तीनों अलग-अलग राज परिचारक होते थे । सोमदेव ने तीनों का एक ही प्रसङ्ग में उल्लेख किया है । सम्भवतया दिवाकीर्ति का मुख्य कार्य बाल बनाना, आस्तरक का मुख्य कार्य बिस्तर, गद्दी आदि ठीक करना तथा संवाहक का मुख्य कार्य पैर दबाना, तैल मालिश करना आदि होता था । कौटिल्य ने आस्तरक तथा संवाहक दोनों का उल्लेख किया है ।[३५] समृद्ध परिवारों में भी ये परिचारक रखे जाते थे । चारुदत्त के संवाहक ने अपने स्वामी के धनहीन हो जाने पर स्वयमेव काम छोड़ दिया था ।[३६]

१५. धीवर (२१६, ३३५ उत्त०) : मछली पकड़ने वाले ।

धीवर के लिए कैवर्त शब्द (२१६, उत्त०) भी आया है । इनका मुख्य धन्धा मछली पकड़ना था । कैवर्तों के नव उपकरणों के नाम यशस्तिलक में आए हैं ।[३७]

१. लगुड—लाठी या डण्डा
२. गल—मछली मारने का लोहे का काँटा
३. जाल—मछली पकड़ने का जाल
४. तरी—नाव
५. तर्प—घास का बना घोड़ा
६. तुवरतरंग—तूबी पर बनाया गया फलक या पटिया
७. तरण्ड—फलक या तैरने वाला पटिया
८. वेडिका—छोटी नाव या डोंगी
९. उडुप—परिहार नौका

---

३४. दिवाकीर्तेर्नापितस्य ।—पृ० ४३१ सं० टी० । दिवाकीर्ति—चाण्डालस्य वा ।–४०३

३५. अर्थशास्त्र भाग १, अध्याय १२

३६. संवाहक :—चालित्तावशेशे अ तस्सि जूदोवजीवो म्हि शंवुत्ते ।
—मृच्छकटिक, अङ्क २

३७. कैवर्ताः—लगुडगलजालव्यग्रपाणयःतरीतर्पतुवरतरंगतरण्डवेडिकोडुपसम्पन्नपरिकराः ।—पृ० २१६ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६. चर्मकार (१२५) : चमार या चमड़े का व्यापार करनेवाला। चर्मकार के साथ उसके एक उपकरण दृति का भी उल्लेख है।[३८] दृति का अर्थ श्रुतसागर ने चर्मप्रसेविका किया है।[३९] दृति का अर्थ प्रायः पानी भरने वाला चमड़े का थैला या मसक किया जाता है।[४०] लगता है दृति कच्चे चमड़े को पकाने के लिए थैला बनाकर तथा उसमें पानी और अन्य पकाने वाली सामग्री भरकर टाँगे गये चमड़े को कहते थे। इसमें से पानी टपटप गिरता रहता है। देहातों में चमड़ा पकाने की यही प्रक्रिया है। सोमदेव के उल्लेख से भी लगभग इसी स्वरूप का बोध होता है।[४१] मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के उल्लेखों से भी इसका समर्थन होता है।[४२]

१७. नट या शैलूष (२२८ उत्त०, २६१)

इसका मुख्य पेशा तरह-तरह के चित्ताकर्षक वेष धारण करके लोगों को खेल दिखाकर आजीविका चलाना था।[४३] नटों के पेशे का एक पद्य में सम्पूर्ण चित्र खींचा गया है। नट के खेल में जोर-जोर से बाजा बजाया जाता था (आनकनिनदनदत् रम्यः)। स्त्रियाँ गीत गाती थीं (गीतकान्तः)। नट आभूषण पहने होता था, खसिकर गले का हार (हाराभिरामः) और जोर-जोर से नर्तन करता था (प्रोत्तालानर्तनीतिर्नट, २२८ उत्त०)।

१८. चाण्डाल (२५४, २५७)

एक उपमा में चाण्डाल का उल्लेख है। सफेद केश को चाण्डाल के दण्ड (डंडे) की उपमा दी गयी है।[४४] एक स्थान पर कहा गया है कि वर्णाश्रम, जाति, कुल आदि की व्यवस्था तो व्यवहार से होती है, वास्तव में राजा के लिए जैसा विप्र वैसा चाण्डाल।[४५]

---

३८. चर्मकारदृतिद्युतिम्।—पृ० १२५

३९. दृतिश्चर्मप्रसेविका।—वही, सं० टी०

४०. आप्टे—संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी

४१. यो कृशोऽभूत्पुरा मध्यो वलित्रयविराजित.।
सोऽद्य द्रवद्रसो धत्ते चर्मकारदृतिद्युतिम्॥—पृ० १२५

४२. इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेपादादिवोदकम्॥—मनुस्मृति, २।९९, याज्ञवल्क्य ३।२६

४३. शैलूषयोषिदिव संसृतिरेनमेषा, नाना विडम्बयति चित्रकरैः प्रपंचैः।
प्रपंचैर्नानावेषैः।—पृ० २६१, सं० टी०

४४. चाण्डालदण्ड इव।—पृ० २५४

४५. वर्णाश्रमजातिकुलस्थितिरेषा देव संवृतेर्नान्या।
परमार्थतश्च नृपतेः को विप्रः कश्च चाण्डालः॥—पृ० २५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी प्रसङ्ग में 'भाल' शब्द का उल्लेख है। श्रुतसागर ने उसका अर्थ चाण्डाल किया है।[४६] चाण्डाल अछूत माना जाता था और समाज में उसका अत्यन्त निम्न स्थान था। सोमदेव ने चाण्डाल का स्पर्श हो जाने पर मन्त्र जपने का उल्लेख किया है।[४७]

१६. शवर (२८१, उत्त० ६०)

शवर एक जंगली जाति थी। इसे भी अस्पृश्य माना जाता था।[४८] शवर की स्त्री को शवरी कहते थे। शवर परिवार गरीब होते थे। ठंड आदि से बचने के लिए उनके पास पर्याप्त वस्त्र आदि नहीं होते थे। सोमदेव ने लिखा है कि ठंड में प्रातःकाल शिशु को निश्चेष्ट देखकर शवरी उसे पिलाने के लिए हाथ में फलों का रस लिए उसे मरा हुआ समझकर रोती है।[४९]

२०. किरात (२२० उत्त०)

किरात भी एक जंगली जाति थी। इसका मुख्य पेशा शिकार था। यशस्तिलक में सम्राट यशोधर जब शिकार के लिए गये तब उनके साथ अनेक किरात शिकार के विविध उपकरण लेकर साथ में जाते हैं।[५०]

२१. वनेचर (५६)

वनेचर शब्द से ही यह स्पष्ट है कि यह जंगली जाति थी। किरातार्जुनीय में वनेचर का उल्लेख आया है।[५१]

२२. मातंग (३२७ उत्त०)

यह भी एक जंगली जाति थी। यशस्तिलक से ज्ञात होता है कि विन्ध्याटवी में मातङ्गों की बस्तियाँ थीं। इनमें मद्य-मांस का प्रयोग बहुत था। अकेला आदमी मिल जाने पर ये उसे भी मद्य-मांस पिला-खिला देते थे।[५२]

•

---

४६. प्रकृतिशुचिर्भालमध्येऽपि। भालमध्येऽपि चाण्डालमध्येऽपि।—पृ० ४५७ सं०टी०

४७. चाण्डालशवरादिभिः, आप्लुत्य दण्डवत् सम्यग्जपेन्मंत्रमुपोषितः।
—पृ० २८१, उत्त०

४८. वही

४९. प्रातर्डिम्भविचेष्टितुण्डकलनान्नीहारकालागमे,
हस्तन्यस्तफलद्रवा च शवरी वाष्पातुरं रोदिति।—पृ० ६०

५०. अनणुकोणोत्कृणितपाणिभिः किरातैः परिवृतः।—पृ० २२०

५१. सः वर्णिलिंगिः विदितः समाययौ, युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।—१।१

५२. विन्ध्याटवीविषये…मातङ्गैरुपवध्य…उक्तः।—पृ० ३२७ उत्त०

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव सूरि और जैनाभिमत वर्ण-व्यवस्था

सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक में जैन चिन्तकों के सामने सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में एक प्रश्न उपस्थित किया है—

> द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः।
> लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः॥
> जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधाः।
> श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः॥
>
> (पृ० २७३ उत्त०)

—गृहस्थों के दो धर्म हैं : एक लौकिक दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रित है और पारलौकिक आगमाश्रित। जातियाँ अनादि हैं तथा उनकी क्रियाएँ भी अनादि हैं, इसलिए इस विषय में श्रुति (वेद) और शास्त्रान्तर (स्मृति आदि) को प्रमाण मान लेने में हमारी क्या हानि है।

इस प्रसङ्ग में आये श्रुति और शास्त्र शब्द को अन्यथा न समझा जाये, इसलिए स्वयं सोमदेव ने उक्त दोनों शब्दों को स्पष्ट कर दिया है—

> श्रुतिर्वेदमिह प्राहुर्धर्मशास्त्रं स्मृतिर्मता।
>
> (पृ० २७८)

—वेद को श्रुति कहते हैं और धर्मशास्त्र को स्मृति।

उपर्युक्त प्रश्न को प्रस्तुत करने के बाद सोमदेव ने अपना निर्णय निम्नलिखित शब्दों में दे दिया है—

> सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
> यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥
>
> (पृ० ३७३)

—जिस विधि से सम्यक्त्व की हानि न हो तथा व्रत में दूषण न लगे, ऐसी प्रत्येक लौकिक विधि जैनों के लिए प्रमाण है।

इस पृष्ठभूमि पर विकसित होने वाला सोमदेव का चिन्तन उनके दूसरे ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत में अधिक स्पष्ट रूप से सामने आया है। उसके त्रयी समुद्देश में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया गया वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी वर्णन स्मृति प्रतिपादित तत्-तत् विषयों का सूत्रीकरण मात्र है। ब्राह्मण आदि चार वर्ण, उनके अलग-अलग कार्य, सामाजिक और धार्मिक अधिकार आदि का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।[१]

जैन सिद्धान्तों के साथ वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाले मन्तव्यों का किसी भी तरह सामंजस्य नहीं बैठता। सोमदेव स्वयं जैन सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा किया गया यह वर्णन सिद्धान्तों में अन्तर्विरोध उपस्थित करता हुआ प्रतीत होता है।

सोमदेव के पूर्वकालीन साहित्य को देखने से पता चलता है कि जैन चिन्तक बहुत पहले से ही सामाजिक वातावरण और वैदिक साहित्य से प्रभावित हो चले थे, उसी प्रभाव में आकर उन्होंने अनेक वैदिक मन्तव्यों को जैन साँचे में ढालने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि बाद के अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थों पर यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

मूल में जैनधर्म वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्ण और जाति शब्द नामकर्म के प्रभेदों में आये हैं। वहाँ वर्ण शब्द का अर्थ रंग है, जिसके कृष्ण, नील आदि पांच भेद हैं। प्रत्येक जीव के शरीर का वर्ण (रंग) उसके वर्ण-नामकर्म के अनुसार बनता है।[२] इसी तरह जाति नामकर्म के भी पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। संसार के सभी जीव इन पाँच जातियों में विभक्त हैं। जिसके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है उसकी एकेन्द्रिय जाति होगी। मनुष्य के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—ये पाँचों इन्द्रियाँ होतीं हैं, इसलिए उसकी जाति पंचेन्द्रिय है। पशु के भी पाँचों इन्द्रियाँ हैं, इसलिए उसकी भी पंचेन्द्रिय जाति है।[३] इस तरह जब जाति की दृष्टि से मनुष्य और पशु में भी भेद नहीं तब वह मनुष्य-मनुष्य का भेदक तत्त्व कैसे माना जा सकता है? वर्ण (रंग) की अपेक्षा अन्तर हो सकता है, किन्तु वह ऊँच-नीच तथा स्पृश्य-अस्पृश्य की भावना पैदा नहीं करता।

गोत्रकर्म के उच्च गोत्र और नीच गोत्र दो भेद भी आत्मा की आभ्यन्तर

---

१. तुलना, नीतिवाक्यामृत त्रयी समुद्देश तथा मनुस्मृति, अध्याय १०

२. कर्मविपाकनामक प्रथम कर्मग्रन्थ, गाथा ३९

३. वही, गाथा ३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ति की अपेक्षा किये गये हैं।[४] ये वर्ण, जाति और गोत्र धर्म धारण करने में किसी भी प्रकार की रुकावट पैदा नहीं करते। प्रत्येक पर्याप्तक भव्य जीव चौदहवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है।[५] पाँचवें गुणस्थान से आगे के गुणस्थान मुनि के ही हो सकते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह लोक में शूद्र कहलाता हो या ब्राह्मण, स्वेच्छा से धर्म धारण कर सकता है।

सैद्धान्तिक ग्रन्थों में सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी मन्तव्यों का वर्णन नहीं है। पौराणिक अनुश्रुति भी चतुर्वर्ण को सामाजिक व्यवस्था का आधार नहीं मानती।

अनुश्रुति के अनुसार सभ्यता के आदि युग में, जिसे शास्त्रीय भाषा में कर्मभूमि का प्रारम्भ कहा जाता है, ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य का उपदेश दिया। उसी आधार पर सामाजिक व्यवस्था बनी।[६] लोगों ने स्वेच्छा से कृषि आदि कार्य स्वीकृत कर लिये। कोई कार्य छोटा-बड़ा नहीं समझा गया। इसी तरह कोई भी कार्य धर्म धारण करने में रुकावट नहीं माना गया।

बाद के साहित्य में यह अनुश्रुति तो सुरक्षित रही, किन्तु उसके साथ में वर्ण-व्यवस्था का सम्बन्ध जोड़ा जाने लगा। नवमी शती में आकर जिनसेन ने अनेक वैदिक मन्तव्यों पर भी जैन छाप लगा दी।

जटासिंहनन्दि (७वीं शती, अनुमानित) ने चतुर्वर्ण की लौकिक और श्रौत-स्मार्त मान्यताओं का विस्तारपूर्वक खण्डन करके लिखा है कि—कृतयुग में तो वर्ण भेद था नहीं, त्रेतायुग में स्वामी-सेवक भाव आ चला था। इन दोनों युगों की अपेक्षा द्वापर युग में निकृष्ट भाव होने लगे और मानव समूह नाना वर्णों में विभक्त हो गया। कलियुग में तो स्थिति और भी बदतर हो गयी। शिष्ट लोगों ने क्रिया-विशेष का ध्यान रखकर व्यवहार चलाने के लिए दया, अभिरक्षा, कृषि और शिल्प के आधार पर चार वर्ण कहे हैं, अन्यथा वर्ण-चतुष्टय बनता ही नहीं।[७]

---

४. कषायप्राभृत, अध्याय १, सूत्र ८

५. वही, अध्याय १, सूत्र ८

६. स्वयंभूस्तोत्र, आदिनाथ स्तुति, श्लोक २

७. वरांगचरित २१।९-११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रविषेणाचार्य (६७६ ई०) ने पूर्वोक्त अनुश्रुति तो सुरक्षित रखी, किन्तु उसके साथ वर्णों का सम्बन्ध जोड़ दिया। उन्होंने लिखा है कि—ऋषभदेव ने जिन व्यक्तियों को रक्षा के कार्य में नियुक्त किया वे लोक में क्षत्रिय कहलाए, जिन्हें वाणिज्य, कृषि, गोरक्षा आदि व्यापारों में नियुक्त किया, वे वैश्य तथा जो शास्त्रों से दूर भागे और हीन काम करने लगे वे शूद्र कहलाए।[८]

ब्राह्मण वर्ण के विषय में एक लम्बा प्रसङ्ग आया है। जिसका तात्पर्य है कि ऋषभदेव ने यह वर्ण नहीं बनाया, किन्तु उनके पुत्र भरत ने व्रती श्रावकों का जो एक अलग वर्ग बनाया वही बाद में ब्राह्मण कहलाने लगा।[९]

हरिवंशपुराण में जिनसेन सूरि (७८३ ई०) ने रविषेणाचार्य के कथन को ही दूसरे शब्दों में दोहराया है।[१०]

इस प्रकार कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन करते रहने के बाद भी उसके साथ चतुर्वर्ण का सम्बन्ध जुड़ गया और उसके प्रतिफल सामाजिक जीवन और श्रौत-स्मार्त मान्यताएँ जैन समाज और जैन चिन्तकों को प्रभावित करती गयीं। एक शताब्दी बीतते-बीतते यह प्रभाव जैन जन-मानस में इस तरह बैठ गया कि नवमों शती में जिनसेन ने उन सब मन्तव्यों को स्वीकार कर लिया और उन पर जैनधर्म की छाप भी लगा दी। महापुराण में पूर्वोक्त अनुश्रुति को सुरक्षित रखने के बाद भी स्मृति-ग्रन्थों की तरह चारों वर्णों के पृथक्-पृथक् कार्य, उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकार, ५३ गर्भान्वय, ४८ दीक्षान्वय और ८ कर्त्रन्वय क्रियाओं एवं उपनयन आदि संस्कारों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है[११]।

जिनसेन पर श्रौत-स्मार्त प्रभाव की चरम सीमा वहाँ दिखाई देती है, जब वे इस कथन का जैनीकरण करने लगते हैं कि—"ब्रह्मा के मुँह से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई।" वे लिखते हैं कि ऋषभदेव ने अपनी भुजाओं में शस्त्र-धारण करके क्षत्रिय बनाए, ऊरु द्वारा यात्रा का प्रदर्शन करके वैश्यों की रचना की तथा हीन काम करने वाले शूद्रों को

---

८. पद्मपुराण, पर्व ३, श्लोक २५५-५८

९. वही, पर्व ४, श्लोक ९९-१२२

१०. हरिवंशपुराण, सर्ग ९, श्लोक ३३-४० ; सर्ग ११, श्लोक १०३-१०७

११. महापुराण, पर्व १६, श्लोक १७९-१९१, २४३-२५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पैरों से बनाया। मुख से शास्त्रों का अध्यापन कराते हुए भरत ब्राह्मण वर्ण की रचना करेगा।[१२]

एक तरफ समाज में श्रौतस्मार्त प्रभाव स्वयं बढ़ता जा रहा था दूसरे उस पर जैनधर्म की छाप लग जाने से और भी दृढ़ता आ गयी।

जिनसेन के करीब एक शती बाद सोमदेव हुए। वे जैनधर्म के मर्मज्ञ विद्वान् होने के साथ-साथ प्रसिद्ध सामाजिक नेता भी थे। उनके सामने यह समस्या थी कि जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त, सामाजिक वातावरण तथा जिनसेन द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यों का जैन चिन्तन के साथ कोई मेल नहीं बैठता। किन्तु जन-मानस में बैठे हुए संस्कारों को बदलना और एक प्राचीन आचार्य का विरोध करना सरल काम नहीं था। सोमदेव जैसे जन-नेता के लिए वह अभीष्ट भी न था। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने यह चिन्तन दिया कि गृहस्थों के दो धर्म मान लिए जाएँ—एक लौकिक और दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म के लिए वेद और स्मृति को प्रमाण मान लिया जाये और पारलौकिक धर्म के लिए आगमों को।

सोमदेव के ये मन्तव्य ऊपर से देखने पर जैन-चिन्तन के बिलकुल विपरीत लगते हैं, क्योंकि एक तो वेद और स्मृतियों की विचारधारा जैन-चिन्तन के साथ मेल नहीं खाती। दूसरे जैनागमों में गृहस्थधर्म और मुनिधर्म, ये दो भेद तो आते हैं,[१३] किन्तु गृहस्थों के लौकिक और पारलौकिक दो धर्मों का वर्णन यशस्तिलक के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हुआ।

अनायास ही यह प्रश्न उठता है कि क्या सोमदेव जैसा निर्भीक शास्त्रवेत्ता लौकिक और वैदिक प्रवाह में बहकर जैनधर्म के साथ इतना बड़ा अन्याय कर सकता है? यशस्तिलक के अन्तःपरिशीलन से ज्ञात होता है कि सोमदेव ने जो चिन्तन दिया, उसका शाश्वत मूल्य है तथा जैन-चिन्तन के साथ उसका किञ्चित् भी विरोध नहीं आता।

सोमदेव ने यशस्तिलक में अनेक वैदिक मान्यताओं का विस्तार के साथ खंडन किया है,[१४] इसलिए यह कहना नितान्त असङ्गत होगा कि वे वेद और स्मृति को प्रमाण मानते थे।

---

१२. तुलना—महापुराण, पर्व १६, श्लोक ३४३-३४६
ऋग्वेद, पुरुषसूक्त १०, ९०, १२
महाभारत, अध्याय २९६, श्लोक ५-६, पूना १९३२ ई०
मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ३१, बनारस १९३५ ई०

१३. चारित्रप्राभृत, गाथा २०

१४. यशस्तिलक उत्तरार्ध, अध्याय ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृहस्थों के दो धर्म व्रती और अव्रती सम्यग्दृष्टि के द्योतक हैं। अव्रती सम्यग्दृष्टि का चौथा गुणस्थान होता है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के दर्शन-मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से सम्यक्त्व तो होता है, किन्तु चारित्रमोहनीय की अप्रत्याख्यानावरण कषाय आदि प्रकृतियों के उदय होने से संयम बिलकुल नहीं होता। यहाँ तक कि वह इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा से भी विरत नहीं होता।[१५] सोमदेव द्वारा प्रतिपादित लौकिक धर्म को प्रमाण मानने वाला गृहस्थ जैन दृष्टि से इसी गुणस्थान के अन्तर्गत आता है।

पारलौकिक धर्म को स्वीकार करने वाले गृहस्थ के लिए सोमदेव ने स्पष्ट रूप से केवल आगमाश्रित विधि को ही प्रमाण बताया है। यह गृहस्थ सैद्धान्तिक दृष्टि से पञ्चम गुणस्थानवर्ती देशव्रती सम्यग्दृष्टि माना जाएगा। यहाँ दर्शन-मोहनीयकर्म की अप्रत्याख्यानावरण कषायों का भी उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाने से जीव देश-संयम का पालन करने लगता है।[१६] इस गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि केवल उसी लौकिक विधि को प्रमाण मानता है जिसके मानने से उसके सम्यक्त्व की हानि न हो तथा व्रत में दोष न लगे। सोमदेव ने भी इस बात को कहा है, जिसका उल्लेख ऊपर कर चुके हैं।

इस तरह सोमदेव ने जिस कुशलता के साथ उस युग के सामाजिक जीवन में प्रचलित मान्यताओं के साथ जैन चिन्तन के मौलिक सिद्धान्तों का निर्वाह किया, उसका शाश्वत मूल्य है। जिनसेन की तरह सोमदेव ने वैदिक मन्तव्यों को जैन साँचे में ढालने का प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत उन्हें वैदिक ही बताया। सामाजिक निर्वाह के लिए यदि कोई उन्हें स्वीकृत करता है तो करे, किन्तु इतने मात्र से वे जैन मन्तव्य नहीं हो जाते।

सोमदेव के चिन्तन की यह स्पष्ट फलश्रुति है कि सामाजिक जीवन के लिए किन्हीं प्रचलित लौकिक मूल्यों को स्वीकृत कर लिया जाये, किन्तु उनको मूल चिन्तन के साथ सम्बद्ध करके सिद्धान्तों की हानि नहीं करनी चाहिए। सामाजिक मूल्य परिवर्तनशील होते हैं। देश, काल और क्षेत्र के अनुसार उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। यह भी निश्चित है कि सैद्धान्तिक चिन्तन व्यवहार की कसौटी पर सर्वदा पूर्णरूपेण सही नहीं उतरता, किन्तु इतने मात्र से मूल सिद्धान्तों में परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

---

१५. गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा २५, २६, २९

१६. गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्रम-व्यवस्था और संन्यस्त व्यक्ति

सोमदेवकालीन समाज में आश्रम-व्यवस्था के लिए भी वैदिक मान्यताएँ प्रचलित थीं। यद्यपि यशस्तिलक में स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का उल्लेख नहीं है फिर भी आश्रम व्यवस्था की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

बाल्यावस्था को विद्याध्ययन का काल, यौवनावस्था को अर्थोपार्जन का काल तथा वृद्धावस्था को निवृत्ति का काल माना जाता था।[1]

गुरु और गुरुकुल विद्याध्ययन की धुरी थे। बाल्यावस्था विद्याध्ययन का स्वर्णकाल माना जाता था। यदि बाल्यकाल में विद्या नहीं पढ़ी तो फिर जीवन-भर प्रयत्न करते रहने के बाद भी विद्या आना कठिन है।[2] जिनकी विधिवत् शिक्षा नहीं होती या जो विद्याध्ययन काल में ही प्रभुता या लक्ष्मीसम्पन्न हो जाते हैं, वे बाद में निरंकुश भी हो जाते हैं।[3] राजपुत्र तथा जन साधारण सभी के लिए यह समान बात है।[4]

बाल्यावस्था या विद्याध्ययन के उपरान्त गोदान दिया जाता तथा विधिवत् गृहस्थाश्रम प्रवेश किया जाता था।[5] युवावस्था में लोग अपने गुरुजनों की सेवा का विशेष ध्यान रखते थे।[6]

वृद्धावस्था में समस्त परिग्रह त्यागकर संन्यस्त होना आदर्श था।[7] इस अवस्था में अधिकांशतया लोग घर छोड़कर तपोवन चले जाते थे।[8] चतुर्थ

१. बाल्यं विद्यागमैर्यत्र यौवनं गुरुसेवया।
सर्वसंगपरित्यागैः संगतं चरमं वयः॥ —पृ० १९८।

२. न पुनरायुः स्थितय इवानुपासितगुरुकुलस्य यत्नवत्योऽपि सरस्वत्यः।—पृ० ४३२

३. बालकाल एव लब्धलक्ष्मीसमागमः, असंजातविद्यावृद्धगुरुकुलोपासनः, निरंकुशतां नीयमानः।—पृ० २६

४. वही पृ० २३६–२३७

५. परिप्राप्तगोदानावसरश्च।—पृ० ३२७

६. यौवनं गुरुसेवया। —पृ० १९८

७. सर्वसंगपरित्यागैः संगतं चरमं वयः। –पृ० १९८

८. कुलवृद्धानां च प्रतिपन्न...तपोवनलोकत्वात्। पृ० २६
परंवयः परिणतिदूतीनिवेदितनिसर्गप्रणयायास्तपोवनाश्रमरमायाः। –पृ० २८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरुषार्थ (मोक्ष) की साधना करना इस अवस्था का मुख्य ध्येय था।[९] नवयुवक को प्रव्रजित होने का लोग निषेध करते थे।[१०]

प्रव्रजित होते समय लोग अपने परिवार के सदस्यों तथा इष्ट-मित्रों आदि से सलाह और अनुमति लेते थे। यशोधर कहता है कि नयी अवस्था होने के कारण माता, पत्नी (महारानी), युवराज (पुत्र), अन्तःपुर की स्त्रियाँ, पुरवृद्ध, मन्त्रिगण तथा सामन्त-समूह प्रव्रजित होने में तरह-तरह से रुकावट डालेंगे।[११] सम्राट यशोधर जब प्रव्रजित होने लगे तो उन्होंने अपने पुत्र को बुलाकर अपना मनोरथ प्रकट किया।[१२]

आश्रम-व्यवस्था के अपवाद

यद्यपि सामान्य रूप से यह माना जाता था कि बाल्यावस्था में विद्याध्ययन, युवावस्था में गृहस्थाश्रम प्रवेश तथा वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण करना चाहिए, किन्तु इसके अपवाद भी कम न थे। यशस्तिलक के प्रमुखपात्र अभयरुचि तथा अभयमति अपनी आठ वर्ष की अवस्था में ही प्रव्रजित हो गये थे।[१३] एक स्थल पर यशोधर श्रुति की साक्षी देता हुआ कहता है कि श्रुति का यह एकान्त कथन नहीं है कि 'बाल्यावस्था में विद्या आदि, यौवन में काम तथा वृद्धावस्था में धर्म और मोक्ष का सेवन करो, प्रत्युत यह भी कथन है कि आयु अनित्य है इसलिए यथा-योग्य रूप से इनका सेवन करना चाहिए।'[१४]

जैनागमों में बाल्यावस्था में प्रव्रजित होने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। अति-मुक्तककुमार इतनी छोटी अवस्था में साधु हो गया था कि एक बार वर्षा के पानी को बाँधकर उसमें अपना पात्र नाव की तरह तैराकर खेलने लगा था।[१५] गज-सुकुमार गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पूर्व ही संन्यस्त हो गये थे।[१६]

---

९. चिराय प्रार्थितचतुर्थपुरुषार्थसमर्थनमनोरथसाराः ।—पृ० २८४

१०. नवे च वयसि मयि संजातनिर्वेदे विधास्यन्ते...अन्तरायाः ।—पृ० ७०, उत्त०

११. वही, पृ० ७०-७१, उत्त०

१२. वही, पृ० २८४

१३. अष्टवर्षदेशीयतयार्हद्रूपायोग्यत्वादिमां देशयतिश्लाघनीयाशां दशामाश्रित्य ।
—पृ० २६५, उत्त०

१४. बाल्ये विद्यादीनर्थान् कुर्यात्, कामं यौवने स्थविरे धर्मं मोक्षं चैत्यपि नायमेकान्ततोऽनित्यत्वादायुषो यथोपपदं वा सेवेतेत्यपि श्रुतिः ।—पृ० ७६, उत्त०

१५. भगवती० ५।४

१६. अंतगडदसासुत्त, वर्ग ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैनधर्म सिद्धान्ततः भी आयु के आधार पर आश्रमों का वर्गीकरण नहीं मानता। सोमदेव ने इस तथ्य को यशस्तिलक में प्रकारान्तर से स्पष्ट किया है।[१७]

परिव्रजित या संन्यस्त व्यक्ति

परिव्रजित या संन्यस्त हुए लोगों के लिए यशस्तिलक में अनेक नाम आए हैं। ये नाम उनके अपने धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं—

१. आजीवक (४०६ उत्त०)

आजीवक सम्प्रदाय के साधुओं के साथ जैन श्रावक को सहालाप, सहावास तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया गया है।[१८]

यशस्तिलक में आजीवकों का उल्लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है, इससे यह ज्ञात होता है कि दशवीं शताब्दी तक आजीवक सम्प्रदाय के साधु विद्यमान थे।

आजीवक सम्प्रदाय के प्रणेता मंखलिपुत्त गोशाल भगवान् महावीर के समसामयिक तथा उनके विरोधी थे। जैनागमों में इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं।[१९]

आजीवकों की अपनी कुछ विचित्र-सी मान्यताएँ थीं। गोशाल पूर्ण नियतिवाद में विश्वास करते थे। 'जो होना है वही होगा' यह नियतिवाद की फलश्रुति है। गोशाल का कहना था कि 'सत्वों (जीवों) के क्लेश का कोई हेतु नहीं है। बिना हेतु और बिना प्रत्यय के सत्व क्लेश पाते हैं, स्वयं कुछ नहीं कर सकते, दूसरे भी कुछ नहीं कर सकते। सभी सत्व भाग्य और संयोग के फेर में छह जातियों में उत्पन्न होते हैं और सुख-दुःख भोगते हैं। सुख-दुःख द्रोण से तुले हुए हैं, संसार में घटना-बढ़ना, उत्कर्ष-अपकर्ष कुछ नहीं होता।'[२०]

२. कर्मन्दी (१३४, ४०८)

यशस्तिलक में कर्मन्दी का दो बार उल्लेख है। इसका अर्थ श्रुतदेव ने तप किया है।[२१] पाणिनि ने कर्मन्द भिक्षुओं का उल्लेख किया है।[२२] संभवतः जिस तरह पाराशर के शिष्य पाराशर्य, शुनक के शौनक आदि कहलाते थे उसी

---

१७. ध्यानानुष्ठानशक्त्यात्मा युवा यो न तपस्यति।
स: जराजर्जरान्येषां तपो विघ्नकर: परम्॥ पृ० ७७, उत्त०

१८. ...आजीवकादिभि: सहावासं सहालापं तत्सेवां च विवर्जयेत्।—पृ० ४०६, उत्त०

१९-२०. देखिए- मेरा लेख– 'महावीर के समकालीन आचार्य,' 'श्रमण' मासिक, महावीर जयन्ती अंक, १९६१

२१. कर्मन्दीव तपस्वीव, वही, सं० टी०

२२. कर्मन्दकृशाश्वादिनि: ।४।३।११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तरह कर्मन्द मुनि के शिष्य कर्मन्दी कहलाते होंगे। यशस्तिलक के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कर्मन्दी भिक्षु एकान्त रूप से मोक्ष की साधना में लगे रहते थे तथा स्वैरकथा और विषय-सुख में किञ्चित् भी रुचि नहीं दिखाते थे।[२३]

३. कापालिक (२८१ उत्त०)

कापालिक शैव सम्प्रदाय की एक शाखा के साधु कहलाते थे। सोमदेव ने कापालिक का सम्पर्क होने पर जैन साधु को मन्त्र-स्नान बताया है।[२४]

कापालिक साधु का एक सम्पूर्ण चित्र क्षीरस्वामी ने अपने प्रतीक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय (अध्याय ३) में प्रस्तुत किया है। एक कापालिक साधु स्वयं अपने विषय में इस प्रकार जानकारी देता है—कर्णिका, रुचक, कुण्डल, शिखा-मणी, भस्म और यज्ञोपवोत, ये छह मुद्राषट्क कहलाते हैं। कपाल और खट्वांक उपमुद्राएँ हैं। कापालिक साधु इनका विशेषज्ञ होता है तथा भगासनस्थ होकर आत्मा का ध्यान करता है। मनुष्य की बलि देकर शिव के भैरव रूप की पूजा की जाती है। भैरवी की भी खून के साथ पूजा की जाती है। कापालिक कपाल में से रक्त पान करते हैं।[२५]

४. कुलाचार्य या कौल (४४)

कापालिकों की तरह कौल भी शैव सम्प्रदाय की एक शाखा थी। सोमदेव ने कुलाचार्य का दो बार उल्लेख किया है (४४, २६९ उत्त०) मारिदत्त को एक कुलाचार्य ने ही विद्याधर लोक को जीतने वाली करवाल की प्राप्ति के लिए चण्ड-मारी को सभी जीवों के जोड़ों की बलि देने की बात कही थी।[२६]

सोमदेव के कथन के अनुसार कौल सम्प्रदाय की मान्यताएँ इस प्रकार थीं—सभी प्रकार के पेय-अपेय, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि में निःशंक चित्त होकर प्रवृत्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।[२७]

---

२३. एकान्ततः परमपदस्पृहयालुतया स्वैरकथास्वपि कर्मन्दीव न तृप्यति विषविष-मोल्लेखेषु विषयसुखेषु।—पृ० ४०८

२४. संगे कापालिकात्रेयी...। आप्लुत्य दण्डवत्सम्यग्जपेन्मन्त्रमुपोषितः।
—पृ० २८१, उत्त०

२५ उद्धृत—हान्दिकी-यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० ३५६

२६. विद्याधरलोकविजयिनः करवालस्य सिद्धिर्भवतीति वीरभैरवनामकात्कुला-चार्यकादुपश्रुत्य।—पृ० ४४

२७. सर्वेषु पेयापेयभक्ष्याभक्ष्यादिषु निःशङ्कचित्तोद्वृत्तात्, इति कुलाचार्याः।
—पृ० २६९, उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव के अनुसार कापालिक त्रिक मत को मानते थे। त्रिक मत के अनुसार मद्य-मांस पी-खाकर प्रसन्नचित्त होकर बायीं ओर स्त्री को बिठाकर स्वयं भी शिव और पार्वती के समान आचरण करता हुआ शिव की आराधना करे।[२८]

५. कुमारश्रमण (९२)

बाल्यवस्था में जो लोग साधु हो जाते थे उन्हें कुमारश्रमण कहा जाता था। सोमदेव ने कुमारश्रमण के लिए 'असंजातमदनफसङ्ग' विशेषण दिया है। एक स्थान पर श्रमणसंघ (९३) का भी उल्लेख है। उक्त दोनों स्थलों पर श्रमण शब्द जैन साधु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

६. चित्रशिखण्ड (९२)

चित्रशिखण्डि का अर्थ श्रुतदेव ने सप्तर्षि किया है। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ, ये सात ऋषि सप्तर्षि कहलाते थे। सोमदेव ने इसका विशेषण 'सब्रह्मचारिता' दिया है। ये सात ऋषि आचार, विचार और साधना में समान होने के कारण ही एक श्रेणी में बाँधे गये। इन ऋषियों के शिष्य भी संभवतः चित्रशिखण्डि के नाम से प्रसिद्ध हो गये हों।

७. जटिल (४०६ उत्त०)

यशस्तिलक में जैनों के लिए जटिलों के साथ आलाप, आवास और सेवा का निषेध किया गया है।[२९] जटिल भी शैव मत वाले साधु कहलाते थे।

८. देशयति (२६५, ४०६ उत्त०)

देशयति या देशव्रती एकादश प्रतिमाधारी जैन श्रावक को कहते हैं। मुनि के एकदेश संयम का पालन करने के कारण इसे देशव्रती कहा जाता है। यह श्रावक या तो दो चादर और एक लंगोटी रखता है या केवल एक लंगोटी मात्र। चादर और लंगोटी वाले को क्षुल्लक तथा केवल लंगोटी वाले को ऐलक कहा जाता है।

९. देशक (३७७ उत्त०)

जो जैन साधु पठन-पाठन का कार्य करते हैं उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। उपाध्याय के अर्थ में यशस्तिलक में 'देशक' शब्द आया है।

---

२८. तथा च त्रिकमतोक्ति —'मदिरामोदमेदुरवदनस्तरसरसप्रसन्नहृदयः सव्यपार्श्वविनिवेशितशक्तिः शक्तिमुद्रासनधरः स्वयमुमामहेश्वरायमाणः कृष्णया सर्वाणीश्वरमाराधयेदिति। -पृ० २६९, उत्त०

२९. जटिल जीवकादिभिः। सहावासं सहालापं तत्सेवां च विवर्जयेत्।—पृ० ४०६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०. नास्तिक (३०६ उत्त०)

सोमदेव ने जैनों के लिए नास्तिकों के साथ आलाप, आवास आदि का निषेध किया है। चार्वाक अथवा बृहस्पति के शिष्यों के लिए सम्भवतः यहाँ इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

अन्य साधुओं के लिए निम्नांकित नाम आए हैं—

११. परिव्राजक (३२७ उत्त०), परिव्राट (१३९ उत्त०)

१२. पारासर (९२) परासर ऋषि के शिष्य पारासर कहलाते थे।

१३. ब्रह्मचारी (४०८)

१४. भविल (४०८)

भविल शब्द का अर्थ श्रुतदेव ने महामुनि किया है।[३०] भविल साधु पैदल चलते थे तथा छोटे जीवों के प्रति महाकृपालु होने से लकड़ी की चप्पल (खड़ाउ) भी नहीं पहनते थे।[३१]

१५. महाव्रती (४९)

महाव्रती का दो बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में महाव्रती साधु अपने शरीर का मांस काटकर खरीद-बेच रहे थे।[३२] ये साधु हाथ में खट्वांग लिये रहते थे।[३३] कौल की तरह ये भी शैव मतानुयायी थे।

१६. महासाहसिक (४९)

महासाहसिक भी शैव होते थे। सोमदेव ने इनकी आत्मरुधिरपान जैसी भयंकर साधना का उल्लेख किया है।

१७. मुनि (५६, ४०४ उत्त०)

जैन साधु के लिए यशस्तिलक में अनेक बार मुनि पद का प्रयोग हुआ है। अभी भी जैन साधु मुनि कहलाते हैं।

१८. मुमुक्षु (४०९)

मोक्ष की ओर उन्मुख तथा अनवरत साधना में संलग्न साधु मुमुक्षु कहलाता

---

३०. भविल इव--महामुनिरिव पृ० ४०८; सं० टी०

३१. महाकृपालुतया सत्त्वसंमर्दभयेन पदात्पदमपि भ्रमन्भविल इव नादत्ते दारुपादपरित्राणम्।—पृ० ४०८

३२. महाव्रतिकवीरक्रयविक्रीयमाणस्ववपुर्वल्लूरम्।—पृ० ४९

३३. सा कालमहाव्रतिना खट्वांगकरंकतां नीता।—पृ० १२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। मुमुक्षु पर्व-त्यौहार के दिनों में भी मुट्ठीभर सब्जी या जौ के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते थे।[३४]

१९. यति (२८५ उत्त०, ३७२ उत्त०, ४०६ उत्त०)

यति शब्द का भी कई बार प्रयोग हुआ है। यह शब्द भी जैन साधु के लिए प्रयुक्त होता है। सोमदेव के उल्लेखानुसार यति अपने नियम और अनुष्ठान में बड़े पक्के होते थे।[३५] यति भिक्षा भी करते थे।[३६]

२० यागज्ञ (४०६ उत्त०)

सम्भवतः यज्ञ करने वाले वैदिक साधु यागज्ञ कहलाते थे। सोमदेव ने यागज्ञों के साथ जैनों को सहावास, सहालाप तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया है।[३७]

२१. योगी (४०९)

ध्यान में मस्त हुआ साधु योगी कहलाता था। सोमदेव ने लिखा है कि यह सोचकर कि दूसरे जीव को थोड़ा-सा भी दुःख पहुँचाने पर वह बोये गये बीज की तरह जन्मान्तर में सैकड़ों प्रकार से फल देता है, इसलिए योगी दयाभाव से तथा पापभीरु होने से वनस्पति के फल या पत्ते भी स्वयं नहीं तोड़ता।[३८]

२२. वैखानस (४०)

वैखानस साधुओं के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि ये बाल-ब्रह्मचारी होते थे तथा स्नान, ध्यान और मन्त्रजाप—खासतौर से अघमर्षण मन्त्रों का जाप करते थे।[३९]

---

३४. पर्वरसेष्वपि दिवसेषु मुमुक्षुरिव न शाकमुष्टेर्वापरमाहरत्याहारम्।—पृ० ४०९

३५. निजनियमानुष्ठानैकतानमनसि ..यतीश्वरे।—पृ० २८५, उत्त०

३६. गृहस्थो वा यतिर्वापि जैनं समयमाश्रितः।
यथाकालमनुप्राप्तः पूजनीयः सुदृष्टिभिः॥—पृ० ४०६

३७ शाक्यनास्तिकयागज्ञजटिलाजीवकादिभिः।
सहावासं सहालापं तत्सेवां च विवर्जयेत्॥—पृ० ४०६, उत्त०

३८. ईषदप्यशुभमन्यत्रोत्पादितमात्मन्युप्तबीजमिव जन्मान्तरे शतशः फलतीति दयालुभावाद्दुरितभीरुभावाच्च न दलं फलं वा योगीव स्वयमवचिनोति वनस्पतीन्।
—पृ० ४०९

३९. सर्वदा शुचिरिव ब्रह्मचारी तथापि लोकव्यवहारप्रतिपालनार्थं देवोपासनायामपि समाप्लुत्य वैखानस इव जपति जलजन्तूद्वेजनजनितकल्मषप्रघर्षणायाघमर्षणतन्त्रान्मन्त्रान्।—पृ० ४०८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२३ शंसितव्रत (४०८)

शंसितव्रत का अर्थ श्रुतदेव ने दिगम्बर साधु किया है। शंसितव्रत अशुभ का दर्शन या स्पर्श तो दूर रहा मन में उसके विचार आ जाने से भी भोजन छोड़ देते थे।[४०]

२४. श्रमण (९२, ९३) जैन साधु

दिगम्बर मुनि के अर्थ में श्रमण का प्रयोग हुआ है।[४१] श्रमणों का पूरा संघ[४२] गाँव, नगर आदि में विहार करता था।[४३] संघ में विविध विषयों में निष्णात अनेक साधु रहते थे।[४४]

२५. साधक (४९)

मन्त्र-तन्त्र आदि की सिद्धि के लिए विकट साधना करने वाले साधु साधक कहलाते थे। सोमदेव ने अपने सिर पर गुग्गुल जलाने वाले साधकों का उल्लेख किया है।[४५]

२६. साधु (३७७, ४०५, ४०७ उत्त०)

साधु शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है तथा सभी स्थानों पर जैन साधु के अर्थ में आया है।

२७. सूरि (३७७)

जैनाचार्य के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

इनके अतिरिक्त सोमदेव ने परिव्रजित व्यक्तियों के निम्नलिखित नामों की निरुक्तियाँ[४६] इस प्रकार दी हैं—

---

४०. आस्तां तावदशुभस्य दर्शनं स्पर्शनं च, किन्तु मनसाप्यस्य परामर्षे शंसितव्रत इव प्रत्यादिशत्याशम्।—पृ० ४०८

४१. श्रमण इव जातरूपधारिणः।—पृ० ९३

४२. अनूचानेन श्रमणसंघेन।—पृ० ९३

४३. विहरमाणः।—पृ० ८९

४४. वही

४५. साधकलोकनिजशिरोदह्यमानगुग्गुलरसम्।—४९

४६. तत्तद्गुणप्रधानत्वात्यतयोऽनेकधा स्मृताः।
निरुक्ति युक्तितस्तेषां वदतो मन्निबोधत॥
—कल्प ४४, श्लोक ८५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२८. जितेन्द्रिय

जो सब इन्द्रियों को जीतकर अपने द्वारा अपने को जानता है, वह गृहस्थ हो या वानप्रस्थ, उसे जितेन्द्रिय कहते हैं।[४७]

२९. क्षपण

जो मान, माया, मद और अमर्ष का नाश कर देता है उसे क्षपण कहते हैं।[४८]

३०. श्रमण

जगह-जगह विहार करके भी जो श्रान्त नहीं होता उसे श्रमण कहते हैं।[४९]

३१. आशाम्बर

जो लालसाओं को नाश अथवा प्रशान्त कर देता है उसे आशाम्बर कहते हैं।[५०]

३२. नग्न

जो सब प्रकार के परिग्रह से रहित होता है उसे नग्न कहते हैं।[५१]

३३. ऋषि

क्लेश समूह को रोकने वाले को मनीषिजन ऋषि कहते हैं।[५२]

३४. मुनि

आत्मविद्या में मान्य व्यक्ति को महात्मा लोग मुनि कहते हैं।[५३]

३५. यति

जो पाप रूपी बन्धन के नाश करने का यत्न करता है वह यति कहलाता है।[५४]

---

४७. जित्वेन्द्रियाणि सर्वाणि यो वेत्त्यात्मानमात्मना।
गृहस्थो वानप्रस्थो वा स जितेन्द्रिय उच्यते॥—कल्प ४४, श्लो० ८५८

४८. मानमायामदामर्षक्षपणात्क्षपणः स्मृतः।—कल्प ४४, श्लो० ८५९

४९. यो न श्रान्तो भवेद्भ्रान्तेस्तं विदुः श्रमणं बुधाः॥—वही

५०. यो हताशः प्रशान्ताशस्तमाशाम्बरमूचिरे।—कल्प ४४, श्लो० ८६०

५१. यः सर्वसङ्गसंत्यक्तः स नग्नः परिकीर्तितः॥—कल्प ४४, श्लो० ८६०

५२. रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः।—कल्प ४४, श्लो० ८६१

५३. मान्यत्वादात्मविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः॥—कल्प ४४, श्लो० ८६१

५४. यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत्।—कल्प ४४, श्लो० ८६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३६. अनगार

जो शरीररूपी घर में भी उदासीन होता है उसे अनगार कहते हैं।[५५]

३७. शुचि

जो आत्मा को मलिन करने वाले कर्मरूपी दुर्जनों से सम्पर्क नहीं रखता वह शुचि कहलाता है।[५६]

३८. निर्मम

जो धर्म और कर्म के फल के प्रति उदासीन है तथा अधर्माचारण से निवृत्त है, आत्मा ही जिसका परिच्छद है उसे निर्मम कहते हैं।[५७]

३९. मुमुक्षु

जो पुण्य और पाप दोनों कर्मों से रहित हैं वे मुमुक्षु कहलाते हैं।[५८]

४०. शंसितव्रत

जो ममता, अहंकार, मान, मद तथा मत्सर रहित है तथा निन्दा और स्तुति में समान बुद्धि रखता है, उसे शंसितव्रत कहते हैं।[५९]

४१. वाचंयम

जो आम्नाय के अनुसार तत्त्व को जानकर उसी का एक मात्र ध्यान करता है, उसे वाचंयम कहते हैं। पशु की तरह मौन रहने वाला वाचंयम नहीं।[६०]

४२. अनूचान

जिसका मन श्रुत (शास्त्र) में, व्रत में, ध्यान में, संयम में, नियम में तथा यम में संलग्न रहता है, उसे अनूचान कहते हैं।[६१]

---

५५. योऽनीहो देहगेहेऽपि सोऽनगारः सतां मतः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६२

५६. आत्मशुद्धिकरैर्यस्य न संगः कर्मदुर्जनैः।
स पुमान् शुचिराख्यातो नाम्बुसंप्लुतमस्तकः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६३

५७. धर्मकर्मफलेऽनीहो निवृत्तोऽधर्मकर्मणः।
तं निर्ममुशन्तीह केवलात्मपरिच्छदम् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६४

५८. यः कर्मद्वितयातीतस्तं मुमुक्षुं प्रचक्षते।—कल्प ४४, श्लो० ८६५

५९. निर्ममो निरहंकारो निर्मानमदमत्सरः।
निन्दायां संस्तवे चैव समधीः शंसितव्रतः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६६

६०. योऽवगम्य यथाम्नायं तत्त्वं तत्त्वैकभावनः।
वाचंयमः स विज्ञेयो न मौनी पशुवन्नरः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६७

६१. श्रुते व्रते प्रसंख्याने संयमे नियमे यमे।
यस्योच्चैः सर्वदा चेतः सोऽनूचानः प्रकीर्तितः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४३. अनाश्वान्

जो इन्द्रियरूपी चोरों का विश्वास नहीं करता तथा शाश्वत मार्ग पर दृढ़ रहता है, और सब प्राणी जिसका विश्वास करते हैं, उसे अनाश्वान् कहते हैं।[६२]

४४. योगी

जिसकी आत्मा तत्त्व में लीन है, मन आत्मा में लीन है और इन्द्रियाँ मन में लीन हैं, उसे योगी कहते हैं।[६३]

४५. पंचाग्नि-साधक

काम, क्रोध, मद, माया और लोभ ये पाँच अग्नियाँ हैं। जो इन पाँचों अग्नियों को अपने वश में कर लेता है, वह पंचाग्निसाधक है।[६४]

४६. ब्रह्मचारी

ज्ञान को ब्रह्म कहते हैं, दया को ब्रह्म कहते हैं, काम के निग्रह को ब्रह्म कहते हैं। जो आत्मा अच्छी रीति से ज्ञान की आराधना करता है, या दया का पालन करता है, या काम का निग्रह करता है, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं।[६५]

४७. शिखाच्छेदी

जिसने ज्ञानरूपी तलवार से संसाररूपी अग्नि की शिखा याने लपटों को काट डाला, उसे शिखाच्छेदी कहते हैं, सिर घुटाने वाले को नहीं।[६६]

४८. परमहंस

संसार अवस्था में कर्म और आत्मा, दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं। जो कर्म और आत्मा को दूध और पानी की तरह पृथक्-पृथक् कर देता है, वह

---

६२. योऽक्षस्तेनेष्वविश्वस्तः शाश्वते पथि निष्ठितः।
समस्तसत्त्वविश्वास्यः सोऽनाश्वानिह गीयते॥—कल्प ४४, श्लो० ८६९

६३. तत्त्वे पुमान्मनः पुंसि मनस्यक्षकदम्बकम्।
यस्य युक्तं स योगी स्यान्न परेच्छादुरीहितः॥—कल्प ४४, श्लो० ८७०

६४. कामः क्रोधो मदो माया लोभश्चेत्यग्निपंचकम्।
येनेदं साधितं स स्यात्कृती पंचाग्निसाधकः॥—कल्प ४४, श्लो० ८७१

६५. ज्ञानं ब्रह्म दया ब्रह्म ब्रह्म कामविनिग्रहः।
सम्यगत्र वसन्नात्मा ब्रह्मचारी भवेन्नरः॥—कल्प ४४, श्लो० ८७२

६६. संसाराग्निशिखाच्छेदो येन ज्ञानासिना कृतः।
तं शिखाच्छेदिनं प्राहुर्न तु मुण्डितमस्तकम्॥—कल्प ४४, श्लो० ८७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमहंस है। अग्नि की तरह सर्वभक्षी (जो मिल जाये वही खा लेने वाला) परमहंस नहीं है।[६७]

४९. तपस्वी

जिसका मन ज्ञान से, शरीर चारित्र से और इन्द्रियाँ नियमों से सदा प्रदीप्त रहती हैं, वही तपस्वी है, कोरा वेष बनाने वाला तपस्वी नहीं।[६८]

---

६७. कर्मात्मनोर्विवेक्ता यः क्षीरनीरसमानयोः ।
भवेत्परमहंसोऽसौ नाग्निवत्सर्वभक्षकः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७६

६८. ज्ञानैर्मनो वपुर्वृत्तैर्नियमैरिन्द्रियाणि च ।
नित्यं यस्य प्रदीप्तानि स तपस्वी न वेषवान् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद चार

पारिवारिक जीवन और विवाह

सोमदेवकालीन भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। अपने से बड़ों के लिए आदर तथा छोटों के लिए प्यार, इस प्रणाली का मुख्य रहस्य था। इसके बिना संयुक्त परिवार संभव न था। राज-परिवार तक में इस विशेषता का ध्यान रखा जाता था। यशोर्घ जब परिव्रजित होने लगे तो अपने पुत्र को बुलाकर स्नेह मिश्रित शब्दों में अपनी इच्छा व्यक्त की। पुत्र ने भी विनम्रतापूर्वक अपने विचार प्रस्तुत किये।[1] शासन-सूत्र संभालने के बाद भी यशोधर ने अपनी माता की इच्छाओं के आदर का पर्याप्त ध्यान रखा। यशोधर अपनी माता से कहता है कि यदि आप मुझ पर दुष्पुत्र होने का अपवाद न लगायें तो कुछ कहूँ।[2] इसी प्रसङ्ग में आगे चलकर बलि का तीव्र विरोधी होने पर भी यशोधर केवल इसलिए पिष्टकुक्कुट (आटे का मुर्गा) की बलि देना स्वीकार कर लेता है, क्योंकि आज्ञा न मानने पर अपना अपमान समझ कर वह (माँ) कोई भी अनिष्ट कर सकती थी।[3]

बड़े लोग भी अपने से छोटों की मर्यादा का ध्यान रखते थे। चन्द्रमती कहती है कि बाल्यावस्था में भले ही जबर्दस्ती, डर दिखाकर या कान खींचकर बच्चे से काम करा लें, किन्तु युवा होने पर तथा जो स्वयं शक्तिसम्पन्न और उच्चपद पर प्रतिष्ठित हो गया हो उसे न तो बलपूर्वक रोकना चाहिए, न काम करने के लिए जबर्दस्ती करना चाहिए।[4]

---

१. पृ० २८२-२८४

२. वदामि किंचिदहं यदि तत्र भवति मयि दुष्पुत्रापावादपरागं न विकिरति।
—पृ० ६१ उत्त०

३. परमपमानिता चेयं जरती न जाने किं करिष्यति...भवतु, भवत्येवात्र प्रमाणम्, ननु तवैव पूर्यन्तामत्र कामितानि।—पृ० १३८, १४०

४. गतः स कालः खलु यत्र पुत्रः स्वतन्त्रवृत्त्या हृदयेप्सितानि।
कार्याणि कार्येत् हठान्नयेन भयेन वा कर्णचपेटया वा॥
युवा निजादेशनिवेशितश्रीः स्वयंप्रभुः प्राप्तपदप्रतिष्ठः।
शिष्यः सुतो वात्महितैर्बलाद्धि न शिक्षणीयो न निवारणीयः॥—पृ० १२३ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारिवारिक सम्बन्ध चिर परिचित, सहज और स्वाभाविक हैं, फिर भी सोमदेव ने यशोर्घ राजा के परिवार का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह विशेष मनोहारी है। यशोर्घ के चन्द्रमति नामकी प्रियतमा थी। वह पतिव्रताओं में श्रेष्ठ थी। कामदेव के लिए रति थी, धर्मपरायण के लिए धर्मभूमि थी, गुणों की खान थी, कला का उत्पत्तिस्थान थी, शील का उदाहरण थी, पति की आज्ञा मानने और अवसरोचित कार्य करने में आचार्याणी थी। पति में एकनिष्ठ होने से उसका रूप, विनय से सौभाग्य तथा सरलता से कलाप्रियता उसके आभूषण बने।[५] यशोर्घ भी चन्द्रमति को बहुत मानता था। जैसे धर्म और दया, राज्य और नीति, तप और शान्ति, कल्पवृक्ष और कल्पलता एक दूसरे से अनन्य सम्बन्ध रखते हैं उसी तरह चन्द्रमति और यशोर्घ का भी अनन्य सम्बन्ध था।[६]

यशोर्घ और चन्द्रमती से यशोधर नाम का पुत्र हुआ। गर्भ से लेकर शिक्षा-दीक्षा पर्यन्त जो रोचक वर्णन सोमदेव ने किया है वह अन्यत्र देखने में कम आता है। चन्द्रमती ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा कि उसके गर्भ में इन्द्र पुत्र होकर आया है। प्रातःकाल उसने अपने प्रियतम को स्वप्न का वृत्तान्त बताया (पृ० २४-२५)। गर्भवृद्धि के साथ चन्द्रमति के शारीरिक परिवर्तन भी होने लगे। दोहद इत्यादि का सुन्दर वर्णन है। गर्भ की रक्षा कुशल वैद्यों के द्वारा की जाती थी। आठ महीने के पूर्व गर्भिणी स्त्री के लिए उच्च हास का निषेध किया गया है।[७]

प्रसूति का समय आने पर सूतिकासद्म (प्रसूतिगृह) की रचना की गयी। शुभ मुहूर्त में बालक का जन्म हुआ। पुत्ररत्न की प्राप्ति पर सहज ही परिवार में उल्लास का वातावरण होता है। और फिर यशोर्घ तो सम्राट था। गीत, नृत्य,

---

५. अहो महीपाल नृपस्य तस्य त्वद्वंशजा चन्द्रमति प्रियासीत्।
पतिव्रतत्वेन महीसपत्न्याः प्राप्तोपरिष्टात्पदवी यया हि।
साभूद्रतिस्तस्य मनोभवस्य धर्मावनि धर्मपरायणस्य।
गुणैकधाम्नो गुणरत्नभूमिः कलाविनोदस्य कलाप्रसूतिः॥
शीलेन दृष्टान्तपदं जनानां निदर्शनत्वं पतिसुव्रतेन।
पत्युर्निदेशावसरोपचारादाचार्यकं या च सतीषु लेभे॥
रूपं भर्तरिभावेन सौभाग्यं विनयेन च।
कलावत्त्वं ऋजुत्वेन भूषयामास ह्यात्मनः॥—पृ० २२२

६. वही,—पृ० २३०

७. मासोऽष्टमात्पूर्वमिदं त्वयोच्चैर्हासादिकं कर्म न देवि कार्यम्।—पृ० २२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वादित्र इत्यादि की परम्परा एक लम्बे समय तक चलती रही। स्थान-स्थान पर तोरण और पताकाएँ सजायी गयीं। यशोर्घ ने याचकों को वस्तु, वस्त्र और वाहन का मनचाहा दान दिया। ऐसा दान जिससे फिर कभी याचक को याचना न करना पड़े (पृ० २२७-२३१)।

जात-कर्म सम्पन्न हो जाने के बाद बालक का यशोधर नामकरण किया गया। बालक क्रम से वृद्धिङ्गत होने लगा। उत्तानशयन (ऊपर को मुँह करके सोना), दरहसित (मुस्कराना), जानुचंक्रमण (घुटनों के बल सरकना), स्खलित-गति (डगमगाते पैरों चलना) और गद्‌गदालाप (तुतलाते हुए बोलना) इत्यादि अवस्थाओं को क्रमशः पार किया। बाल्यावस्था के स्वरूप का अत्यन्त मनोरम चित्र सोमदेव ने खींचा है। बालक को पलने में सुलाया कि वह परेशान हो रोने लगा। किसी दूसरे ने उठाया भी तो भी मचलने लगा। प्यारवश पिता ने अपनी गोद में लिया तो सीने में दुग्धपान के लिए स्तन खोजने लगा। परेशान होकर अपना ही अंगूठा मुँह में दिया। और जब अंगूठे में से कुछ न निकला तो फूट-फूटकर रोने लगा। वह देखने में प्रिय लगता और कपोलों पर ज़रा-सा स्पर्श करते ही खिलखिलाकर हँस देता। पुरोहित ने स्वस्तिवाचन के अक्षत हाथ पर रखे नहीं कि कब के मुँह में डाल लिये (पृ० २३२-२३३)।

घुटनों के बल कुछ-कुछ चला, कुछ धात्री की उंगली पकड़कर चला और जैसे ही उँगली छोड़ी तो धड़ाम से गिरने को हुआ कि धात्री ने उठा कर गोद में ले लिया। गोद में उठाते ही उसने धात्री की चोटी खींचना शुरू कर दिया। बच्चों की बड़ी विचित्र स्थिति है। बालों के आभूषण को हाथों में पहना। हाथों के कड़ों को बालों में लगाया, और हाथ खाली हुए नहीं कि कमर से करधनी निकाल कर अपने ही हाथों अपने पैरों में बाँध ली। और तब निश्चेष्ट होकर रोते हुए उस बालक को देखना कितना प्रिय लगता है, और कितना अजीब भी। हर्ष और विषाद की वह सम्मिश्रित स्थिति केवल अनुभवगम्य ही है। सोमदेव ने लिखा है कि जिस घर के आँगन में बालक नहीं खेलते वह घर वन के समान है। उनका जन्म व्यर्थ है जिनके बालक न हुआ। उनके शरीर में अङ्ग-विलेपन कीचड़ पोतने के समान है जिनके वक्षस्थल पर धूलि-विधूसरित पुत्र की रज न लिपटी हो। चंचल काकपक्ष, ढेर-सा काजल लगी आँखें, बहुत देर तक खेलने से निकलता हुआ उच्छ्‌वास और काँपते हुए ओंठ तथा गोद में लेते ही पुलकित हुआ वदन, ऐसे बालकों का मुख चुम्बन करने का जिन्हें अवसर प्राप्त होता है वे धन्य हैं (पृ० २३२-२३५)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बालक तुतलाते बोलता है, कभी पिता को माँ और माँ को पिता कह देता है। धातृ जब बुलवाती है तो कुछ टूटे-फूटे शब्दों में बोलता है। कुछ सिखाने को बैठाओ तो नाराज होकर भाग जाता है। कहीं एक जगह नहीं बैठता, बुलाओ तो सुनता नहीं, फिर दौड़कर आता है और एक क्षण बाद फिर भाग जाता है (पृ० २३५)।

इस प्रकार बाल्यावस्था का चित्रण करने के उपरान्त चौल-कर्म और विद्याभ्यास का वर्णन किया गया है। विद्याभ्यास के बाद गोदान का निर्देश है (परिप्राप्तगोदानावसरश्च, पृ० २३७)।

सोमदेव ने एक सुखी पारिवारिक जीवन का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक ढंग से किया है।

स्त्री के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री के बिना संसार के सारे कार्य व्यर्थ हैं, घर जंगल के समान है और जिन्दगी बेकार।[८] एक तरफ सोमदेव ने स्त्री के बिना घर को जंगल और जीवन को व्यर्थ बताया, दूसरी ओर उसके निकृष्टतम स्वरूप का भी स्पष्ट चित्र खींचा है। अग्नि शान्त हो जाए, विष अमृत बन जाए, राक्षसियों को वश में कर लिया जाए, क्रूर जन्तुओं को भी सेवक बना लिया जाए, पत्थर भी मृदु हो जाए पर स्त्रियाँ अपने वक्र स्वभाव को नहीं छोड़तीं। यशस्तिलक के चौथे आश्वास में स्त्रियों के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है (पृ० ५३-६३ उत्त०)।

इसी प्रसङ्ग में यह भी कह देना उपयुक्त होगा कि सोमदेव स्त्रियों को विशेष शिक्षा देने के पक्षपाती नहीं हैं। उनका कहना है कि स्त्रियों को शिक्षित करना ठीक वैसे ही है जैसे साँप को दूध पिलाना।[९] स्त्रियों को धर्मसाधन में बाधा स्वरूप माना गया है।[१०] स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी (रसोईन), धातृ तथा भार्या स्वरूप का चित्रण किया गया है।[११]

---

८. यामन्तरेण जगतोः विफलाः प्रयासः, यामन्तरेण भवनानि वनोपमानि। यामन्तरेण हत संगति जीवितम् च।—पृ० १२६

९. इच्छन्गृहस्यात्मन एव शान्तिं स्त्रियं विदग्धां खलु कः करोति।
दुग्धेन यः पोषयते भुजंगीं पुंसः कुतस्तस्य सुमङ्गलानि॥—पृ० १५२ उत्त०

१०. द्वयमेव तपःसिद्धौ बुधाः कारणमूचिरे।
यदनालोकनं स्त्रीणां यच्च संग्लापनं तनोः॥—पृ० १५४

११. पृ० १५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाह

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारों की जानकारी आती है—एक स्वयंवर दूसरे परिवार द्वारा विवाह।

स्वयंवर

कन्या के परिणय योग्य हो जाने पर उसका पिता देश-विदेश के प्रतिष्ठित लोगों को उसके स्वयंवर की सूचना देता और तदनुसार किसी निश्चित दिन स्वयंवर का आयोजन किया जाता। स्वयंवर-मण्डप में जन-समुदाय उपस्थित होता। कन्या हाथ में वरमाला लेकर मण्डप में प्रवेश करती और अपनी रुचि के अनुसार किसी योग्य व्यक्ति के गले में वरमाला पहना देती।[१२]

स्वयंवर का प्रचार राजे-महाराजों में ही अधिक था। सम्भवतया कोई-कोई विशिष्ट सम्पन्न व्यक्ति भी स्वयंवर का आयोजन करते थे। स्वयंवर के आयोजन का सारा उत्तरदायित्व आदि से अन्त तक कन्या पक्ष वालों पर ही होता था।

परिवार द्वारा विवाह

दूसरे प्रकार के विवाह में वर के माता-पिता योग्य धात्री तथा पुरोहित को कन्या की खोज में भेजते थे। धात्री और पुरोहित का कार्य बहुत ही उत्तर-दायित्वपूर्ण था। एक तो यह कि योग्य कन्या की तलाश करे, दूसरे कन्या तथा उसके माता-पिता के मन में यह भावना उत्पन्न कर दे कि जिस व्यक्ति का वे प्रस्ताव कर रहे हैं, उससे अधिक योग्य व्यक्ति उस सम्बन्ध के लिए हो ही नहीं सकता। धात्री और पुरोहित की कुशलता से माता-पिता पहले किये गये निर्णय तक को वदल देते थे।[१३]

विवाह की आयु

बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष का युवक विवाह के योग्य माना जाता था।[१४] सोमदेव के बहुत पहले से बाल-विवाह की प्रवृत्ति चली आती थी। हिन्दू धर्मशास्त्र में कन्या के रजस्वला होने के पूर्व विवाह कर देना उचित माना जाता था। उत्तरकालीन स्मृति-ग्रन्थों में इस अवस्था में कन्या का विवाह न करने वाले अभिभावकों को अत्यन्त पाप का भागी बताया गया है।[१५]

---

१२. पृ० ७१, ४७८, ३५१ उत्त०

१३. पृ० ३५०-५१ उत्त०

१४. वही, पृ० ३१७

१५. बृहद्यम ३, २२, संवर्त १, ६७, यम १, २२, शंख १५, ८, उद्धृत, अल्तेकर– दी राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ४२-४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबरूनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग अपने लड़कों के विवाह का आयोजन करते थे, क्योंकि विवाह बहुत ही छोटी अवस्था में होते थे।[१६] एक स्थान पर यह भी लिखा है कि ब्राह्मणों में अरजस्वला कन्या को ही ग्रहण किया जाता था।[१७] गुप्तकाल में बाल-विवाह का प्रचलन रहा।[१८] आगे चलकर राष्ट्रकूटयुग में भी यही परम्परा चलती रही।[१९] सोमदेव ने स्पष्ट शब्दों में अपने दोनों ग्रन्थों में बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष के युवा को विवाह के योग्य बताया है।[२०]

देव, द्विज और अग्नि की साक्षि में माता-पिता कन्यादान करते थे।

स्वयंवर के अतिरिक्त कन्याओं को संभवतया वर पसन्द करने का अधिकार नहीं था। माता-पिता जिसके साथ विवाह कर दें, वही उन्हें स्वीकार करना पड़ता था। सोमदेव ने ऐसे सम्बन्धों की बुराइयों की ओर लक्ष्य दिलाया है। अमृतमति कहती है कि देव, द्विज और अग्नि के समक्ष माता-पिता द्वारा बेचे गये शरीर का पति मालिक हो सकता है, मन का नहीं। मन का स्वामी तो वही है जिसमें असाधारण प्रणय हो।[२१]

१६, एपिग्राफिया इंडिका, २ पृ० १५४

१७. वही पृ० १३१

१८. आर० एन० सालेटोरकर-लाइफ इन दी गुप्ता एज पृ० २८०-१०

१९. अल्तेकर-दी राष्ट्रकूटाज् एण्ड देयर टाइम्स पृ० ३४२-४३

२०. यशस्तिलक उत्त० पृ० ३१७, नीति० ३१,१

२१. देवद्विजाग्निसमक्षं मातापितृविक्रीतस्य कायस्यैव भवतीश्वरः, न मनसः। तस्य पुनः स एव स्वामी यत्रायमसाधारणः प्रवर्तते परं विश्रम्भविश्रमाश्रयः प्रणयः।—पृ० १४१ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाक-विज्ञान और खान-पान

यशस्तिलक में खान-पान सम्बन्धी बहुविध जानकारी आती है। इस सम्पूर्ण सामग्री की त्रिविध उपयोगिता है—

(१) यह सामग्री खाद्य और पेय वस्तुओं की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करती है।

(२) इस सामग्री से दशम शताब्दी में भारतीय परिवारों, खासकर दक्षिण भारत के परिवारों की खान-पान व्यवस्था का पता लगता है।

(३) ऋतुओं के अनुसार संतुलित एवं स्वास्थ्यकर भोजन की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

पाकविद्या

यशस्तिलक में षड्रसों का सर्वदा व्यवहार करते रहने को सुखावह बताया है (षड्रसाभ्यवहारस्तु सदा नृणां सुखावहः, पृ० ५१६)। मधुर, अम्ल, तिक्त, तीक्ष्ण, कषाय तथा क्षार—इन छः रसों का शुद्ध और संसर्गपूर्वक उपयोग करके ६३ प्रकार के व्यंजन तैयार हो सकते हैं (रसानां शुद्धसंसर्गभेदेन त्रिषष्टिव्यंजनोपदेशभाजः, पृ० ५२१)। सज्जन नाम के वैद्य ने इन ६३ प्रकार के भेदों का उपदेश दिया। श्रुतसागर ने संस्कृत टीका में ६३ भेद गिनाए हैं। सोमदेव ने एक प्रसंग में समस्त सूपशास्त्राधिगतपटु पोरोगव (प्रधान रसोइया) का उल्लेख किया है (पृ० २२२ उत्त०) तथा पकाने वाले रसोइयों को समस्त रसों की प्रसाधनविधि में निपुण बताया है (सकलरसप्रसाधनविधिव्यतिकराधिकविवेकेषु पाचकलोकेषु, पृ० २२२ उत्त०)।

भोजन बनाने के अनेक तरीके थे—घी में तलकर पकाना (सर्पिषिस्नाता, ५१७), अंगारों पर सेंक लेना (अंगारपाचितः, वही), रांधना (राद्धम्, ५१३), आधा रांधना (अर्धरद्ध, ४०४), पूरा नहीं सेकना (असमस्तसिद्ध, ४०४), थोड़ी-सी आँच मात्र दिखाना (ईषत्खिन्न, ४०५), कच्चा ही रहने देना (अपक्व. ४०५), बटलोई ढककर तथा अन्न को चलाकर अच्छी तरह पकाना (साधुपाक, ५०७), पकाते-पकाते पानी जला देना (पयसा विशुष्कम्, ५१६), पकाकर दही में डाल देना (दध्ना परिप्लुतम् ५१६), दाल इत्यादि के बने पदार्थों को कच्चे दूध, दही में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छोड़ देना (द्विदलं, ३३५ उत्त०), मिलाकर बनाना (मिश्रम्, ३३४ उत्त०), अकेला बनाना (अमिश्रम्, ३३४, उत्त०)।

बिना पकाई गयी खाद्यसामग्री

यशस्तिलक में वर्णित सम्पूर्ण खाद्यसामग्री निम्नप्रकार संकलित की जा सकती है—

१. गोधूम (५१५) : गेहूँ

२. यव (१५, ५१९) : जौ

३. दीदिवि (४०१) : लम्बे तथा उज्ज्वल चावल। सोमदेव ने इसे कामिनिजन के कटाक्षों की तरह अतिदीर्घ एवं उज्ज्वल कहा है।[1] दीदिवि मूलतः वैदिक शब्द है। ऋग्वेद (१, १, ८) में इसका चमकते हुए के अर्थ में प्रयोग हुआ है। अग्नि तथा बृहस्पति के विशेषण के रूप में भी इसका प्रयोग होता है।[2]

४. श्यामाक (४०६) : समा (साँवाँ)। सोमदेव ने श्यामाक के भात को सर्वपात्रीण (सभी साधुओं के द्वारा लेने योग्य) कहा है।[3] कालिदास ने शाकुन्तल में श्यामाक का उल्लेख किया है। कण्व के आश्रम में हरिणों को श्यामाक खिलाकर बढ़ाया गया था।[4] यजुर्वेद संहिताओं में इसके सबसे प्राचीन उल्लेख मिलते हैं। आपस्तम्भ में इसे बिना बोये उत्पन्न होनेवाला धान्य कहा है। इसका उपयोग साधु-संन्यासी लोग करते थे। श्यामाक के तीन प्रकारों का पता चलता है—(१) राज श्यामाक, (२) अंभ श्यामाक या तोय श्यामाक तथा (३) हस्ति श्यामाक। समा (साँवाँ) से इसकी पहचान की जाती है।[5] समा कोद्रव, बाजरा आदि की श्रेणी का सबसे छोटा धान्य है। इसका रंग साँवला होता है। उत्तर तथा मध्यभारत में कहीं-कहीं अभी भी लोग समा या साँवाँ पैदा करते हैं।

५. शालि (५१५-५१६) : एक विशेष प्रकार का सुगन्धित चावल।

६. कलम (५१५) : एक विशेष प्रकार का सुगन्धित चावल। यह धान्य पानी बरसते ही बो दिया जाता था। करीब एक फिट के पौधे होने पर उखाड़कर दूसरी जगह खेत में रोप दिये जाते थे। ठंड के महीनों (अगहन-पौष) तक यह धान्य तैयार हो जाता था।

---

१. कामिनीजनकटाक्षैरिवातिदीर्घविषदच्छविभिः।—पृ० ४०१
२. आप्टे–संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृ० ११६
३. सर्वपात्रीणः श्यामाकभक्तः।—पृ० ४०६
४. श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितो जहाति।—शाकुन्तल, ४।१३
५. ओमप्रकाश–फूड एण्ड ड्रिंक इन ऐंशिएन्ट इंडिया पृ० २६१

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कलम शालि का ही एक प्रकार था। जैनागमों में शालि के तीन भेद मिलते हैं—(१) रक्तशालि, (२) कलमशालि तथा (३) महाशालि। सुश्रुत ने शालि के १८ प्रकार गिनाए हैं। उवासगदसा (१, ३५) के अनुसार कलमशालि मगध में उत्पन्न होता था।[६] सोमदेव ने कलम को ठंड की ऋतु के भोजन में गिनाया है तथा शालि का उपयोग वर्षा और शरद् ऋतु के लिए निर्दिष्ट किया है।[७]

कलम की बालियाँ लम्बी-लम्बी होती थीं और पकने पर लटक जाती थीं।[८] कलम के खेत जब पकने लगते तब उनकी खास तौर से रखवाली करनी पड़ती थी। कालिदास ने गन्नों की छाया में बैठकर गाती हुई शालि की रखवाली करने वाली स्त्रियों का उल्लेख किया है।[९] भारवि तथा माघ ने भी कलम के खेतों की रखवाली करनेवाली स्त्रियों का उल्लेख किया है।[१०] एक ओर धूप से कलम के खेतों का पानी सूखने लगता, दूसरी ओर कलम पककर पीले होने लगते हैं।[११]

७. यवनाल (४०४) जुआर

८. चिपिट (४६६) चिउड़ा : धान को थोड़ा उबालकर मूसल या ढेंकी से कूट लेते हैं, ऐसा करने से धान का छिलका अलग हो जाता है तथा चावल अलग हो जाता है। इसे ही चिपट या चिउड़ा कहते हैं। बंगाल और बिहार में चिउड़ा खाने का बहुत रिवाज है। मध्यप्रदेश के रायगढ़, बिलासपुर, रायपुर, सरगुजा आदि जिलों में तथा उत्तरप्रदेश के कई जिलों में भी चिउड़ा खाने का रिवाज है। सम्पन्न परिवारों में चिउड़ा दही के साथ खाते हैं, गरीब तथा साधारण परिवारों में पानी में फुलाकर अथवा सूखा ही चिउड़ा गुड़, नमक, मिर्च तथा प्याज आदि के साथ खाया जाता है।

सोमदेव ने लिखा है कि तिरहुत के सैनिकों के मसूड़े निरन्तर चिउड़ा चबाते रहने के कारण छिल गये थे।[१२]

---

६. वही पृ० ५८, ५६, २६२

७. यशस्तिलक पृ० ५१५, ५१६

८. आपादपद्मप्रणता कलमा इव ते रघुम्।—रघुवंश, ४।३७

९. इक्षुच्छायानिषादिन्यः शालिगोप्यो जगुर्यशः।—रघुवंश, ४।२०

१०. सुतेन पाण्डोः कमलस्य गोपिकाम्।—किरात० ४।९

११. कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम्।—शिशु० ६।४९

उपैति शुष्यन्कलमः सहाम्भसा मनोभुवा तप्त इवाभिपाण्डुताम्।

—किरात० ४।३४

१२. अनवरतचिपिटचर्वणदीर्णदशनाग्रदेशैः।—यश० पृ०४६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिउड़ा का पुराना नाम पृथुक था। पृथुक का इतिहास ब्राह्मणकाल तक पहुँचता है। आजकल इसके बनाने की जो प्रक्रिया है, यही उस समय भी चलती थी।[१३]

९. **सक्तू** (५१२, ५१५) सत्तू : गेहूँ या जौ को भून कर उनमें भुजें हुए चने मिलाकर पीसे गये चूर्ण को सत्तू कहा जाता है। सत्तू का इतिहास वैदिक-युग तक पहुँचता है। ऋग्वेद (१०, ७१, २), तैत्तरीय ब्राह्मण (३,८, १४) आदि में इसके उल्लेख मिलते हैं।

सत्तू पानी में उसनकर पिण्ड के रूप में तथा पतला चाटने योग्य (अवलेह्य) बनाकर खाया जाता था। उत्तर काल में घी, गुड़, चीनी आदि के साथ में भी खाया जाने लगा (सुश्रुत ४६, ४१२)।[१४] वर्तमान में भी सत्तू खाने के यही तरीके प्रचलित हैं।

सोमदेव ने स्वास्थ्य की दृष्टि से पिण्डरूप अथवा दही के समान गाढ़ा सत्तू खाने का निषेध किया है।[१५]

१०. **मुद्ग** (५१५, ५१६) : मूँग

११. **माष** (५१२, ५१४) : उड़द

१२. **विरसाल** (४०४) : राजमाष

१३. **द्विदल** (३३५, उत्त०) : दाल, जिसके दो समान टुकड़े होते हों, ऐसा प्रत्येक अन्न द्विदल कहलाता है।

घृत, दधि, दुग्ध, मट्ठा आदि के गुण-दोष तथा उपयोग—विधि

घृत : घृत के गुणों का वर्णन करते हुए सोमदेव ने लिखा है कि वेद तथा आगमों के जानकारों ने घृत को साक्षात् आयु कहा है, वैद्य लोगों ने वृद्धत्व-नाशक होने से रसायन के लिए इसका विधान किया है, सारस्वतकल्प से निर्मल हुई बुद्धिवालों ने बुद्धि की सिद्धि (धियः सिद्धये) के लिए बताया है, ऐसा घृत द्रव स्वर्ण तथा केतकी के समान रस और छाया वाला उत्तम होता है। अर्थात् घृत आयुवर्द्धक, वृद्धतानिवारक तथा बुद्धि को निर्मल बनाता है।[१६]

दधि : दधि स्थूलता करता तथा वायु को दूर करता है। इसका सेवन

१३. ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन एंशिएन्ट इंडिया पृ० २९०

१४. वही पृ० २९१

१५. दधिवत्सक्तून्नाद्यात् ।—यश० पृ० ५१२

१६. पृ० ५१७, श्लोक ३६०, तुलना—'आयुर्वै घृतम्'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वसन्त, शरद् तथा ग्रीष्म को छोड़कर अन्य ऋतुओं में घृत (सर्पिः), सिता (शक्कर), आमला तथा मूँग के पानी के साथ करना चाहिए।[१७]

तक्र : दधि को मथकर तुरन्त जिसका नवनीत निकाल लिया गया है, ऐसा तक्र समगुण वाला होता है, बहुत देर तक मथा गया किसी भी दोष को उत्पन्न नहीं करता।[१८]

दुग्ध : दुग्ध साक्षात् जीवन ही है। जन्म के साथ ही दुग्ध-पान प्रारम्भ हो जाता है। गाय का धारोष्ण दुग्ध आयुष्य करनेवाला होता है। दूध प्रातः, सायं-काल, संभोग के अनन्तर तथा भोजन के बाद उपयुक्त मात्रा में पीना चाहिए।[१९]

जल : भोजन के प्रारम्भ में जल पीने से जठराग्नि नष्ट हो जाती है तथा कृशता आती है, अन्त में पीने से कफ बढ़ता है, मध्य में पीने पर समता तथा सुख करता है। एक साथ ही अधिक जल नहीं पीना चाहिए।[२०]

जल को अमृत भी कहते हैं और विष भी, इसका तात्पर्य यही है कि युक्ति-पूर्वक पिया गया जल अमृत तथा अयुक्ति या अव्यवस्थापूर्वक पिया गया जल विष के समान है।[२१]

ऋतुओं के अनुसार पेय जल : वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में कुआँ तथा झरने का, वर्षा में कुआँ, अथवा चुरी (कुण्ड) का, ठंड में सरसी (पोखरा) या तालाब का तथा शरद् ऋतु में सूर्य-चन्द्रमा की किरणों तथा वायु के झकोरों से शुद्ध हुए जल को पीना चाहिए।[२२]

संसिद्ध जल : हवा तथा धूप से स्वच्छ हुआ, रस तथा गंध रहित जल स्वभावतः पथ्य है, यदि ऐसा न मिले तो उबाला हुआ पीना चाहिए।[२३] सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से संसिद्ध किया जल २४ घंटे (अहोरात्र) के बाद नहीं पीना चाहिए, दिन में सिद्ध किया गया रात्रि में तथा रात्रि में सिद्ध किया जल दिन में नहीं पीना चाहिए।[२४]

---

१७. पृ० ५१७-१८, श्लोक ३६१
१८. पृ० ५१८, श्लोक ३६२
१९. वही, श्लोक ३६३
२०. श्लोक ३६७
२१. श्लोक ३६८
२२. श्लोक ३६९
२३. श्लोक ३७०
२४. श्लोक ३७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जल को संसिद्ध करने की प्रक्रिया के विषय में टीकाकार ने लिखा है कि जल से भरा हुआ घड़ा प्रातःकाल धूप में रखकर चार प्रहर रात्रि तक खुले आकाश में रखा रहने दिया जाए, यह जल सूर्येन्दु संसिद्ध कहलाता है।[२५]

मसाला

लवण (५१४)—नमक
दरद (४६४)—हींग
क्षपारस (४६४)—हलदी
मरिच (५१२)—मिरच
पिप्पली (५१२)—छोटी पीपल
राजिका (४०६)—राई

स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय

घृत (५१४, ५१६, ५१९)
आज्य (२५१, ४०१)
पृषदाज्य (३२४)
तैल (४०४, ५१४)
दधि (५१२, ५१४, ५१६, ५१७)
दुग्ध (५१८)
नवनीत (५१८)
तक्र (५१२, ५१९)
कलि या अवन्तिसोम (४०६, ५१२, ५१९)
नारिकेलिफलांभ (५१२)
पानक (५१५)
शर्कराढ्य (५१५)

मधुर पदार्थ

शर्करा (५१५)
सिता (५१६)
गुड़ (५१२)
मधु (५१२)
इक्षु (५१४)

---

२५. वही, संस्कृत टीका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साग—सब्जी तथा फल

१. पटोल (५१६)—परवल
२. कोहल (५१६)—कुम्हड़ा
३. कारवेल (५१६)—करेला
४. वृन्ताक (५१६)—बैंगन
५. वाल (५१६)
६. कदल (५१२)—केला
७. जीवन्ती (५१६)—डोडी
८. कन्द (५१२, ५१६)—सूरन
९. किसलय (५१५, ५१६)—कोमल पत्ते
१०. विष (५१५)—मृणाल
११. वास्तूल (५१६)—बथुआ
१२. तण्डुलीय (५१६)—चौराई
१३. चिल्ली (५१६)
१४. चिर्भटिका (४०५, ५१६)—कचरिया
१५. मूलक (४०५, ५१२)—मूली
१६. आर्द्रक (५१६)—अदरख
१७. धात्रीफल (५१६)—आँवला
१८. एर्वारु (४०४)—ककड़ी
१९. अलाबू (४०४)—लौकी (गोल)
२०. कर्कारु (४०५)—कलिगफल (संस्कृत टीका)
२१. मालूर (४०५)—बेल
२२. चक्रक (४०५)—खट्टे पत्तों का साग
२३. अग्निदमन (४०५)
२४. रिंगिणीफल (४०५)—भटकटैया
२५. अगस्ति (४०५)—अगस्त्य वृक्ष
२६. आम्र (४०५)—आम
२७. आम्रातक (४०५)—आमड़ा
२८. पिचुमन्द (४०५)—नीम
२९. सोभाजन (४०५)—सहजन
३०. वृहतीवार्ताक (४०५)—बड़ा बैंगन
३१. एरण्ड (४०५)—अंडी (रेंड़, रेंड़ी)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३२. पलाण्डु (४०५)—प्याज या लहसुन
३३. वल्लक (४०५)
३४. रालक (४०६)
३५. कोकुन्द (४०६)
३६. काकमाची (५१२)
३७. नागरंग (९५)
३८. ताल (९५)
३९. मन्दर (९५)—पारिजात (सं० टी०)
४०. नागवल्ली (९६)—पनवेल
४१. बाण (९६)—बीजवृक्ष (सं० टी०)
४२. आसन (९६)—रालवृक्ष (सं० टी०)
४३. पूग (९६)—सुपारी
४४. अक्षोल (९६)—अखरोट
४५. खर्जूर (९६)—खजूर
४६. लवली (९६)
४७. जम्बीर (९६)—जिमरिया
४८. अश्वत्थ (९६)—पीपल
४९. कपित्थ (९६)—कैंथ
५०. नमेरु (९६)
५१. राजादन (९६)—क्षीरवृक्ष
५२. पारिजात (९७)
५३. पनस (९७)
५४. ककुभ (९९)—अर्जुन वृक्ष
५५. वट (९९)
५६. कुरवक (९९)
५७. जम्बू (१००)—जामुन
५८. दर्दरीक (१०३)—दाडिम (अनार)
५९. पुण्ड्रेक्षु (१०३)—पोंडा
६०. मृद्वीका (१०३)—दाख
६१. नारिकेल (१०३)—नारियल
६२. उदुम्बर (३३० उत्त०)—ऊमर (गूलर)
६३. प्लक्ष (३३० उत्त०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तैयार की गयी सामग्री :

१. **भक्त** (५१६)—भात : पकाए गये चावलों को भात कहते हैं। भात के लिए यशस्तिलक में तीन शब्द आए हैं—१. दीदिवि (४०), २. भक्त (५१६) और ३. ओदन।

२. **सूप** (४०१, ५१६)—दाल : जिस अन्न के दो समान दल (टुकड़े) होते हैं, वह द्विदल कहलाता था। इसी का वर्तमान रूप 'दाल' पद में अवशिष्ट है। पकाई गयी दाल को सूप कहते थे। अच्छी तरह पकाई गयी दाल स्वर्ण के रंग की तरह पीली हो जाती है (कांचनच्छायापलापैः सूपैः, ४०१)।

३ **शष्कुली** (५१२)—खस्ता पूड़ी : शष्कुली चावल के आटे में तिल मिला कर घी अथवा तेल में पकाई जाती थी। यह कई प्रकार की बनती थी। बृहत्-संहिता (७६, ९) में कामोद्दीपन करने वाली शष्कुली का उल्लेख है। अंगविज्जा (पृ० १८२) में दीर्घ शष्कुलि का उल्लेख है।[२६] सोमदेव ने कांजी के साथ शष्कुली खाने का निषेध किया है।[२७] आगरा में अभी भी सावन-भादों में यह बनाई जाती है।

४. **समिध** (या सामिता) (५१६)—गेहूँ के आँटे की लप्सी : सामिता गेहूँ के आटे में मूँग भरकर बनाया गया खाद्य था (सुश्रुत, ४६, ३९८)।[२८]

५. **यवागू** (६९, ८८ उत्त०) : यवागू वैदिक काल से भारतीय भोजन का अङ्ग रही है। डॉ० ओमप्रकाश ने प्राचीन साहित्य के आधार पर इसके विषय में इस प्रकार जानकारी दी है—यजुर्वेद के अनुसार यवागू सम्भवतः जौ की बनती थी। महावग्ग (६, २४, ५) में इसे स्वास्थ्यकारक खाद्यान्न माना है। यवागू का एक विशेष प्रकार त्रिकटुक बीमारी में उपयोग किया जाता था। पाणिनि ने दो प्रकार की यवागू बतायी है—(१) पेया, (२) विलेपी। विलेपी को पाणिनि ने नखंपच कहा है। अङ्गविज्जा (पृ० १७९) में दूध, मक्खन तथा तेल डालकर बनायी गयी यवागू का उल्लेख है। सुश्रुत (४६, ३७६) ने फलों के रस से बनी यवागू को खाड यवागू कहा है।[२९]

---

२६. ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन एंशिएन्ट इंडिया, पृ० २८१
७. यशस्तिलक पृ० ५१२
२८. उद्धृत, ओमप्रकाश—वही. पृ० २८१
२९. ओमप्रकाश—वही, पृ० २८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव ने यवागू सामान्य (८८) तथा अपामार्ग यवागू (६९) का उल्लेख किया है। वसन्तिका कहती है कि मैं स्वप्न में यवागू बन गयी तथा माँ के द्वारा श्राद्ध के लिए आमन्त्रित ब्राह्मणों ने मुझे खा लिया।[३०] सोमदेव ने अपामार्ग यवागू को पचाना मुश्किल बताया है।[३१]

६. मोदक (८८, उत्त०)—लड्डू : चावल, गेहूँ अथवा दाल के आटे को भून कर घी, चीनी या गुड़ डाल कर गेंद के समान बनाए गये मिष्ठान्न को मोदक कहते थे।[३२] प्राचीन काल से मोदक बनाने का यही ढंग सुरक्षित चला आ रहा है।

७. परमान्न (४०२) : यशस्तिलक में परमान्न को अभिनव अङ्गना-सङ्गम की तरह अत्यन्त स्वादयुक्त तथा शर्करायुक्त कहा गया है।[३३] परमान्न चार भाग चावलों को बारह भाग दूध में पका कर उसमें छह भाग मक्खन तथा तीन भाग गुड़ या शर्करा मिला कर बनाया जाता था। (अङ्गविज्जा, पृ० २२०, भोजन-कुतुहल, पृ० २८)।[३४]

८. खाण्डव (४०२) : खाण्डव को यशस्तिलक में नर्तकी के विलास की तरह नेत्र, नासिका तथा रसना को आनन्द देने वाला कहा है।[३५] रामायण के उत्तरकाण्ड में यज्ञ के उपरान्त विभिन्न प्रकार के गौड (गुड़ से बने पदार्थ तथा खाण्डवों (खाण्ड से बने पदार्थों) को बाँटने का उल्लेख है।[३६] महाभारत में भी खाण्डव का उल्लेख है।[३७] अष्टांगसंग्रह (सू० ७) में इसे एक प्रकार का मुरब्बा कहा है। डॉ० ओमप्रकाश ने इन उल्लेखों का उपयोग करके भी खाण्डव का अत्यन्त सीधा-साधा अर्थ खाण्ड की मिठाई किया है।[३८] सोमदेव की साक्षी से

---

३०. स्वप्ने किलाहं यवागूरिव संवृतास्मि, भुक्ता च मन्मातुः श्राद्धामन्त्रितैर्भूदेवैः।
—पृ० ८८ उत्त०

३१. अपामार्गयवागूरिव लब्धापि न शक्यते परिणमयितुम्।—पृ० ६९ उत्त०

३२. ओमप्रकाश, वही, पृ० २८९

३३. अभिनवांगनासंगमैरिवातीवस्वादुभिः शर्करासंपर्कसमापन्नैः परमान्नैः।
—पृ० ४०२

३४. ओमप्रकाश, वही, पृ० २८९, ९०

३५. लासिकाविलासैरिव मनोहरैः समानीतनेत्रनासारसनानन्दभावैः खाण्डवैः।
—पृ० ४०१, ४०२

३६. विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च।—रामायण, उत्त० ९२।१२

३७. भक्ष्यखाण्डवरागाणाम्।—महाभारत, १४, ८९, ४१

३८. ओमप्रकाश, वही, पृ० २८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो खाण्डव की पहचान आयुर्वेदिक ग्रन्थों में आनेवाले 'षाडव' से करना चाहिए।[३९] षाडव में खट्टा, मीठा स्पष्ट प्रतीत होता था तथा कसैला और नमकीन कम। लगता है खांड की मात्रा अधिक होने के कारण यह खाण्डव कहा जाने लगा।

९. **रसाल** (७९ उत्त०)—शिखरणी : सोमदेव ने रसाल को 'सङ्कीर्णरसा' कहा है।[४०] अच्छी तरह जमे हुए दही में सफेद चीनी, घी, मधु तथा सोंठ और कालीमिर्च का चूर्ण कपड़छन करके डालकर कर्पूर से सुगन्धित करके रसाल तैयार किया जाता था।[४१]

१०. **आमिक्षा** (३२४) : उबाले गये दूध में दही डालकर आमिक्षा बनता था (श्रृते क्षीरे दध्नि क्षिप्तमामिक्षा कथ्यते बुधैः, सं० टी०)। आमिक्षा और पृषदाज्य की अग्नि में आहुति दी जाती थी (पृषदाज्येनामिक्षया च समेधितमहसम्, वही)। आमिक्षा और पृषदाज्य दोनों वैदिक शब्द थे। यजुर्वेद संहिताओं तथा सत्पथ-ब्राह्मण में इसके अनेक उल्लेख आते हैं।[४२]

११. **पक्वान्न** (४०२)—पकवान : पक्वान्न के लिए सोमदेव ने प्रियतमा के अधरों के समान स्वादयुक्त कहा है (प्रियतमाधरैरिव स्वादमानैः पक्वान्नैः, वही)। पक्वान्न का प्रयोग सामान्य रूप से घृत या तेल में बने हुए पकवानों के लिए हुआ है।

१२. **अवदंश** : मन को प्रीति उत्पन्न करने वाली रसदार सब्जियों को सोमदेव ने स्त्रियों के कैतव की उपमा दी है।[४३] श्रुतसागर ने अवदंश का अर्थ भक्ति-

---

३९. चरक० सं० २७।१८०, सुश्रुत सं० ४६।३७८

४०. रसालामिव संकीर्णरसासरालाम्।—पृ० ७९ उत्त०

४१. अर्धाढकं सुचिरपर्युषितस्य दध्नः खण्डस्य षोडशपलानि शितप्रभस्य।
सर्पिः पलं मधुपलं मरिचद्विकर्षं शुण्ठ्याः पलार्धमपि चार्धपलं चतुर्णाम्॥
श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणिपुष्टा कर्पूरधूलिसुरभीकृतभाण्डसंस्था।
एषा वृकोदरकृता सरसा रसाला यास्वादिता भगवता मधुसूदनेन॥
—उद्धृत –वही, सं० टी०
अपक्वतक्रं सव्योष चतुर्जातगुडकम्। सजीरकं रसालं स्यान्मज्जिका शिखरिणी॥
सव्योषम-शुण्ठीपिप्पलीमरिचयुक्तम्। चतुर्जातम् एलालवंगकंकोलनागपुष्पाणि॥
वैजयन्ती, उद्धृत, ओमप्रकाश—वही, पृ० १०५, फुटनोट ३

४२. ओमप्रकाश—वही, पृ० २८४

४३. स्त्रीकैतवैरिव जनितस्वान्तप्रीतिभिर्बहुरसवशैरवदंशैः।—पृ० ४०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिक्तसंयुक्तवनस्पतिव्यंजन किया है।[४४] मानसोल्लास में व्यंजन के बारे में कहा है कि—चावल के धोवन में चिंचा, दही, मट्ठा तथा चीनी मिलाकर इलायची का चूर्ण तथा अदरख का रस मिलाए तथा हींग का छौंक लगाए, उसे व्यंजन कहते हैं।[४५]

१३. **उपदंश** (४०४)—सब्जी
१४. **सर्पिषिस्नात** (५२७)—घी में तले गये पदार्थ
१५. **अंगारपाचित** (५१७)—अङ्गारों पर पकाए गये पदार्थ
१६. **दध्नापरिप्लुत** (५१६)—दही में डूबे हुए पदार्थ
१७. **पयसा विशुष्क** (५१६)—सूखी सब्जी आदि
१८. **पर्पट** (५१६)—पापड़

सोमदेव ने अमीर तथा गरीब दोनों परिवारों के खान-पान का सुन्दर चित्र खींचा है।

अमीर परिवारों में दीदिवि, अनेक प्रकार की दालें, प्रचुर मात्रा में आज्य, रसीले अवदंश, खाण्डव, पक्वान्न, दही, दुग्ध, परमान्न आदि खाने-पीने का प्रचार था। जल भी कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से युक्त करके पीते थे।[४६] सोमदेव ने अत्यन्त मनोरंजक ढंग से इस प्रसंग को प्रस्तुत किया है—

''देशान्तर प्रवास के बाद दूत लौटा। सम्राट ने परिहास में पूछा—'शंखनक, तुम्हारी वह तोंद कहाँ गयी?' शंखनक बोला—देव, तोंद हम गरीबों के कहाँ रखी, तोंद तो उनकी फूटती है, जिनको रोज-रोज कामिनी-कटाक्षों की तरह लम्बे-लम्बे एवं उज्ज्वल दीदिवि (सुगन्धित चावलों का भात) खाने को मिलते हैं, जिनको विरहणियों के हृदयों के समान गरम-गरम तथा सोने के रंग को मात करनेवाली दालें उपलब्ध होती हैं, कान्ता के मुख की तरह प्रांजलि-पेय सुगन्ध वाला प्रचुर मात्रा में आज्य प्राप्त होता है, स्त्री के कैतवों के समान मन को प्रसन्न करने वाले रसीले अवदंश मिलते हैं, नर्तकी के विलास की तरह मनोहर नेत्र,

---

४४. अवदंशैः शालनकैः भक्तिसिक्तसंयुक्तवनस्पतिव्यंजनैः।—वही, सं० टी०

४५. तण्डुलक्षालितं तोयं चिंचाम्लेन विमिश्रितम्।
ईषत्तक्रेण संयुक्तं सितया सह योजितम्॥
एलाचूर्णसमायुक्तमार्द्रकस्य रसेन च।
धूपितं हिंगुनां सम्यक् व्यंजनं परिकीर्तितम्॥
—मानसोल्लास, भा० ३, १५७८-७९

४६. पृ० ४६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नासिका तथा रसना को आनन्द प्रदान करने वाले खाण्डव प्राप्त होते हैं, प्रियतमा के अधरों के समान आस्वादन करने योग्य पक्वान्न उपलब्ध होते हैं, तरुणी के पयोधरों के समान सुजाताभोग एवं स्तब्ध (कठोर) दही मिलता है, प्रणयिनी के विलोकन की तरह मधुरकान्ति एवं स्निग्ध दुग्ध उपलब्ध होता है, अभिनव अंगना की तरह अतीव स्वादु शर्करायुक्त परमान्न प्राप्त होते हैं, तथा मैथुनरस-रहस्य की तरह सम्पूर्ण शरीर के सन्ताप को दूर करने वाला कर्पूरयुक्त जल पीने को मिलता है।"[४७]

गरीब परिवारों में यवनाल का भात, राजमाष की दाल, अलसी आदि का तेल, काँजी, मट्ठा तथा अनेक प्रकार के फल एवं पत्तों के साग खाने का रिवाज था।[४८] उपर्युक्त वर्णन की तरह सोमदेव ने एक गरीब परिवार के खान-पान का भी चित्र प्रस्तुत किया है। सम्राट ने शंखनक से पूछा—"आज कहीं हस्तमुख संयोग हुआ या नहीं?" शंखनक बोला—"देव, हुआ है। सुनिए—मक्खी के मुण्डों की तरह काले-काले तुषयुक्त गन्दे, पुराने, टूटे यवनालों का भात मिला, उसमें भी अनेक कंकण थे, पिछले दिन की राजमाष की दाल मिली, जिसमें से अत्यन्त दुर्गन्ध आती थी, उसमें चूहे के मूत्र की तरह जरा-सा अलसी का तेल टपका दिया था, अधपके ऐवारु की बहुत सारी सब्जी मिली, आधे राँधे गये अलाबु की बहुत-सी फाँकें तथा कुछ पके हुए कर्कारु के कड़े-कड़े टुकड़े मिले, बड़े-बड़े बेल, मूली, चक्रक, बिना फूटी कचरियाँ, कच्चे अर्क, अग्निदमन, रिंगिणी-फल, अगस्ति, आम्र, आम्रातक, पिचुमन्द तथा कन्दल उपलब्ध हुए, कई दिनों की माँग-माँग कर इकट्ठी की गयी आम्लखलक मिली, खूब पके, बड़े-बड़े बैंगन, सोभाजन, कन्द, सालनक, एरण्ड, पलाण्डु, मुण्डिका, वल्लक, रालका, तथा कोकुन्द प्राप्त हुए, बहुत-सी राई डाली हुई कांजी तथा खारा पानी पीने को मिला। मुझसे कुछ भी नहीं खाया गया, न भूख मिटी। उसी की घरवाली ने छिपाकर रखा हुआ थोड़ा-सा श्यामाक का भात तथा खट्टे दही का मट्ठा दिया, जिससे जिन्दा बचा रहा।"[४९]

मांसाहार

सोमदेव जैन साधु थे। अहिंसा के चरम विकास में आस्था रखने वाला

४७. पृ० ४०२
४८. पृ० ४०३
४९. वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैनधर्म मांसाहार का स्पष्ट निषेध करता है, यही कारण है कि सोमदेव ने भी मांसाहार का घोर विरोध किया है। इतना होने पर भी यह नहीं माना जा सकता कि सोमदेव के युग में मांसाहार नहीं था। यशस्तिलक में ऐसे अनेक प्रसंग आए हैं जिनसे मांसाहार का पता चलता है।

कौल-कापालिक संप्रदायों में मांसाहार और मद्य का व्यवहार धार्मिक क्रियाओं के रूप में अनुमत था,[५०] इसलिए उन संप्रदायों में मांस का व्यवहार स्वाभाविक था। जलचर, थलचर तथा नभचर सभी प्राणियों का मांस खाया जाता था। देवी के नाम पर तो ये मनुष्य तक की बलि कर देते थे। बहुत सम्भव है कि प्रसाद के रूप में मनुष्य का भी मांस खा लेते हों। अपना मांस काट काट-काटकर क्रय-विक्रय करने का उल्लेख है।[५१]

चण्डमारी के मन्दिर में बलि के लिए निम्नलिखित पशु-पक्षी लाए गये थे।[५२]

(१) मेष, महिष, मय, मातंग (गज), मितंद्रु (अश्व)।

(२) कुम्भीर, मकर, सालूर (मेंढक), कुलीर (केंकड़ा), कमठ और पाठीन।

(३) भेरुण्ड, क्रौंच, कोक, कुर्कुट, कुरर, कलहंस।

(४) चमर, चमूरु, हरिण, हरि (सिंह), वृक, वराह, वानर, गोखुर।

कौलों में तो कच्चे मांस खाने तक का रिवाज था।[५३]

क्षत्रिय तथा ब्राह्मण जातियों में भी मांसाहार का चलन था। यशस्तिलक में राजमाता कहती है कि पिष्टकुक्कुट की बलि देकर उसके अवशिष्ट भाग को मांस मानकर हमारे साथ खाओ।[५४]

अमृतमति तो अत्यन्त मांसप्रिय थी। जिस मेमने को अतिशय प्यार के साथ राजभवन में पाला गया था उसे भी उसने नहीं बचने दिया।[५५]

---

५०. रण्डाचण्डा दिक्खिया धम्मदारा मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए च।
भिक्खा भोज्जं चम्मखण्डं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स न होइ रम्मो॥
—कर्पूरमंजरी, १।२३

मज्जं मंसं मिट्ठं भक्खं भक्खियं जीवसोक्खं च।
कउले धम्मे विसरे रम्मे तं जि हो सग्गमोक्खं॥—भावसंग्रहं, १८३

५१. क्रियविक्रीयमाणस्ववपुर्वल्लूरम्।—यश० पृ० ४६

५२. पृ० १४४

५३. पिशुरार्पितजरूथमन्थरकपालशकलम्।—पृ० ४८

५४. पिष्टकुक्कुटेन बलिमुपकल्प्य तदवशिष्टं पिष्टं मांसमिति च परिकल्प्य मया सहावश्यं प्राशनीयम्।—पृ० १३५ उत्त०

५५. जांगलभक्षणाक्षिप्तचित्तया।—पृ० २२७ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशोमति की महारानी कुसुमावली को दोहद उ हुआ था कि भोजनालय में मांस नहीं आना चाहिए।[५६] सम्राट के भोजनालय में मांस पकाने की शिक्षा (पिशितपाकोपदेश, २२२ उत्त०) देनेवाले विद्यमान थे। इस सबसे स्पष्ट है कि क्षत्रिय परिवारों में मांस का व्यवहार होता था।

ब्राह्मणों में साधारणतया मांसभक्षण का रिवाज हो या नहीं, यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर मांस खाने का अत्यधिक प्रचार था। सम्राट के यहाँ जब विशाल मत्स्य और मगर पकड़ कर लाए तो उन्हें देख कर सम्राट ने उन्हें पितरों के संतर्पण के लिए ब्राह्मणों को दे दिया।[५७] इतना ही नहीं, वे सब प्रतिदिन उनमें से अपने उपयोग के योग्य मांस काटते थे।[५८]

एक कथा में याज्ञिक पर आक्षेप किया गया है कि उसने यज्ञ के नाम पर अनेक निरीह पशुओं को खा डाला।[५९]

सोमदेव ने वैदिक साहित्य से ऐसे अनेक पद्य उद्धत किये हैं, जिनसे यज्ञ तथा श्राद्ध में मांस के प्रयोग का पता चलता है।

मनु ने मधुपर्क, यज्ञ तथा पितृ एवं देवता के निमित्त मांस का प्रयोग शास्त्र सम्मत बताया है।[६०] यज्ञ के लिए मांस प्रयोग के समर्थन में वैदिक मान्यताओं का विस्तार से वर्णन किया है।[६१] मांस के समर्थकों का तो यहाँ तक कहना है कि जो व्यक्ति मांस के बिना भोजन करता है, क्या वह गोबर नहीं खाता।[६२]

श्राद्ध में मांस के विवेचन के लिए सोमदेव ने मनुस्मृति के पाँच पद्य (३।२६७-२७१) उद्धृत किये हैं, जिनमें कहा गया है कि पितृ लोक मात्स्य, हारिण, औरभ, शाकुनि छाग, पार्ष, एण, रोरव, वाराह, माहिष, शश, कूर्म, गव्यण,

---

५६. देव, प्रतिबन्ध्यतां महानसेषु क्रव्यागमः।—पृ० २६०, उत्त०

५७. महीपतिरवलोक्य पितृसंतर्पणार्थं द्विजसमाजसत्ररसवतीकाराय समर्पयामास।
—पृ० २१८ उत्त०

५८. तत्र च तदुपयोगमात्रतया प्रत्यहमुत्कृत्यमानकायैकदेशः।—वही

५९. अन्ये खलु ते वराकतनयः। मखमिषेण भवता भक्षिताः।—पृ० १३२ उत्त०

६०. मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणी।
अत्रैवपशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनु॥—पृ० ९० उत्त०। मनु० ५।४१

६१. वही, पृ० ११६-१८

६२. ये भुंजते मांसरसेन हीनं ते भुंजते किं नु न गोमयेन।—पृ० १२६ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पायस तथा वार्धीण मांस से क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नव, दश, ग्यारह पूरा वर्ष तथा बारह वर्ष तक के लिए तृप्त होते हैं।[६३]

छोटी जातियों में भी मांस का व्यवहार रहा होगा, किन्तु उसके उल्लेख नाम मात्र को ही है। चण्डकर्मा मुर्गी पालता था। एक प्रसंग में वह मुनिराज के समक्ष कहता है कि हिंसा हमारा कुल धर्म है।[६४] सम्भवतः धीवर (२१६, ३३५, उत्त०) चर्मकार (१२५), चाण्डाल (२५४), अन्त्यज (४५७), भाल (४५७), शबर (२३१ उत्त०), किरात (२२० उत्त०), वनेचर (५६) तथा निषादों (६०२, उत्त०) में भी मांस का व्यवहार होता था।

मांसाहार निषेध—सोमदेव ने मांसाहार का घोर विरोध किया है। उनका कहना है कि लोग इन्द्रिय लोलुपता तथा अपने स्वार्थ के कारण मांस खाते हैं, उसके साथ धर्म और आगम को व्यर्थ ही जोड़ रखा है।[६५] सोमदेव ने उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध किया है कि तिल या सरसों के बराबर भी मांस खानेवाला यावच्चन्द्रदिवाकर नरक की यातनाएँ सहता है।[६६] मांस खाने के संकल्प मात्र से होने वाले दुष्परिणाम का वर्णन एक लम्बी कथा में किया गया है।[६७] सम्पूर्ण यशस्तिलक भी एक प्रकार से इसी परिणाम की कहानी है।

---

६३ द्वौमासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन च।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनैव पञ्च वै॥
षटमासांश्छागमासेन पार्षतेन हि सप्त वै।
अष्टावेणस्य मासेन रौरवेण नवैव तु॥
दशमासास्तु तृप्यन्ति वाराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मस्य मासेन मासानेकादशैव तु॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा।
वार्धीणस्य मासेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥—पृ० १२७-१२८ उत्त०

६४. हिंसास्माकं कुलधर्मः।—पृ० २५८ उत्त०

६५. मांसं जिघत्सेद्यदि कोऽपि लोकः किमागमस्तत्र निदर्शनीयः।
लोलेन्द्रियैर्लोकमनोनुकूलैः स्वाजीवनायागम एष सृष्टः॥
—पृ० १३० उत्त०

६६. तिलसर्षपमात्रं यो मांसमश्नाति मानवः।
स श्वभ्रान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
—पृ० १३० उत्त०

६७. अध्याय ७, कल्प २४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मांसाहार समर्थक कहते हैं कि मुद्ग (मूंग) और माष (उड़द) आदि भी तो मय (ऊँट) और मेष (भेड़) आदि के समान ही जीवस्थान होने से मांस ही हैं। उनमें अन्तर क्या है।[६८]

सोमदेव ने इस कथन का व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर दृढ़तापूर्वक खण्डन किया है। उन्होंने लिखा है कि यह जरूरी नहीं कि जो जीव शरीर हो वह मांस ही हो, इसके विपरीत मांस तो जीव-शरीर है ही, उसी प्रकार जिस प्रकार नीम का वृक्ष वृक्ष है ही, किन्तु जो वृक्ष है वह नीम ही हो, यह जरूरी नहीं। गाय का दूध शुद्ध है, किन्तु गोमांस नहीं। सर्प का रत्न विष को नाश करता है, किन्तु विष विपदकारक है। किसी-किसी वृक्ष के पत्र तो आयुष्य के कारण होते हैं, किन्तु जड़ें मृत्युकारी।[६९]

६८. जीवयोग्या विशेषेण मयमेषादिकायवत्।
मुद्गमाषादिकायोऽपि मांसमित्यपरे जगुः॥—पृ० ३३० उत्त०

६९. मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसम्।
यद्वन्निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्बः॥—पृ० ३३१ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या

खान-पान और स्वास्थ्य का अनन्य सम्बन्ध है। उपनिषदों में आता है कि अन्न से ही व्यक्ति दृष्टा, श्रोता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता और विज्ञाता बनता है। आहार शुद्धि पर विचार शुद्धि आधारित है। विचार शुद्धि से स्मृति और स्मृति से मोक्ष होता है। अन्न से ही प्रजा उत्पन्न होती है और जीती है।[१]

इसी तरह जल को अमृत और विष दोनों कहा गया है, उचित समय पर उचित मात्रा में पिया गया जल अमृत है और अनुचित समय में अव्यवस्थित रूप से पिया गया विष।[२] इसलिए स्वास्थ्य के लिए खान-पान में सन्तुलन एवं व्यवस्था आवश्यक है।

मनुष्यों की प्रकृति विभिन्न प्रकार की होती है। ऋतु परिवर्तन के साथ प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए सोमदेव ने विभिन्न प्रकृति तथा ऋतुओं के अनुसार खान-पान की जानकारी दी है।[३]

जठराग्नि—जठराग्नि चार प्रकार की होती है—मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम। मन्द अग्नि वाले को लघु (हलका), तीक्ष्ण अग्नि वाले को गुरु (भारी) विषम अग्नि वाले को स्निग्ध तथा सम अग्नि वाले को सम पदार्थ खाना चाहिए।

प्रकृति परिवर्तन—ऋतुओं के अनुसार मनुष्य की प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है, वात, पित तथा कफ कभी संचित, कभी प्रकुपित (जागृत) तथा

---

१. अथान्नस्यै दृष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बौद्धा भवति, कर्त्ता भवति, विज्ञाता भवति।—छान्दो० ७, ९, १
आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः, स्मृतिलम्भः सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।—वही, ७, २६, २
अन्नाद्वै प्रजा प्रजायन्ते—अथान्नेनैव जीवन्ति।—तैत्तरीय० २, २
उद्धृत, डॉ० ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन एन्शियण्ट इंडिया, इंट्रोडक्शन, फुटनोट

२. अमृतं विषमिति चेतत् सलिलं निगदन्ति विदिततत्त्वार्थः।
युक्त्या सेवितममृतं विषमेतदयुक्तितः पीतम्।—यश० ३।३६८

३. पृ० ५१३, श्लोक ३४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कभी प्रशान्त होते हैं, इसलिए विभिन्न ऋतुओं के अनुसार ही भोजन करना चाहिए वात आदि के संचय, प्रकोप तथा प्रशमन का क्रम निम्न प्रकार है[४]—

दोष नाम	संचय	प्रकोप	प्रशमन
कफ	शिशिर	वसन्त	ग्रीष्म
वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद
पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त

ऋतु-चर्या—उपर्युक्त प्रकार मे प्रकृति परिवर्तन को ध्यान में रखकर भोजन-पान की व्यवस्था बनाना चाहिए। यशस्तिलक में विभिन्न ऋतुओं के भोजन-पान के लिए निम्न प्रकार जानकारी दी है [५]—

ऋतु	खाद्य-पेय
शरद	स्वादु (मधुर), तिक्त, काषाय
वर्षा	मधुर, नमकीन, अम्ल (खट्टा)
वसन्त	तीक्ष्ण, तिल, काषाय
ग्रीष्म	प्रशम रस वाले अन्न

इस प्रकार के भोजन-पान के लिए सोमदेव ने ऋतुओं के अनुसार खान-पान तथा उपभोग्य सामग्री का विवरण इस प्रकार दिया है[६]—

ऋतु	खाद्य-पेय तथा उपभोग्य सामग्री
शिशिर	ताजा भोजन, क्षीर (दुग्ध), उड़द, इक्षु, दधि, घृत और तैल के बने पदार्थ, पुरन्ध्री।
वसन्त	जौ और गेहूँ का बना प्रायः रूक्ष भोजन
ग्रीष्म	सुगन्धित चावलों का भात, घी डली हुई मूँग की दाल, विष (कमल नाल), किसलय (मधुर पल्लव), कन्द, सत्तू, पानक (ठंडाई) आम, नारियल का पानी तथा चीनी डला पानी या दूध।

---

४. शिशिरसुरभिघर्मेष्वातपाम्भः शरत्सु, क्षितिप जलशरद्धेमन्तकालेषु चैते।
कफपवनहुताशाः संचयं च प्रकोपं प्रशममिह भजन्ते जन्मभाजां क्रमेण॥
—पृ० ५१४, श्लोक ३४८

५. पृ० ५१४, श्लोक ३४६

६. पृ० ५१४, श्लोक ३५०-५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्षा	पुराने चावल, जौ तथा गेहूँ के बने पदार्थ ।
शरद	घृत, मूँग, शालि, लप्सी, दूध के बने पदार्थ (खीर आदि), परवल, दाख (अंगूर), आँवला, ठंडी छाया, मधुर रस वाले पदार्थ, कन्द, कोंपल, रात्रि में चन्द्रकिरणें ।

उपर्युक्त विवेचन के बाद सोमदेव ने कहा है कि ऋतुओं के अनुसार रसों को कम ज्यादा मात्रा में उपयोग में लाना चाहिए । वैसे छह रसों का व्यवहार सर्वदा सुखकर होता है ।[७]

भोजन-पान के सम्बन्ध में अन्य जानकारी

भोजन का समय—भोजन के समय के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि चारायण के अनुसार रात्रि में भोजन करना चाहिए, निमि के अनुसार सूर्यास्त होने पर, धिषण के अनुसार दोपहर को तथा चरक के अनुसार प्रातःकाल, किन्तु मेरे विचार से तो भोजन का समय वही है जब भूख लगी हो । भूख के बिना ही जो लालचवश आकंठ भोजन करता है, वह व्याधियों को सोये हुए सर्पों की तरह जगाता है ।[८]

कुछ लोगों का कहना है कि जो चक्रवाक पक्षी की तरह दिन में मैथुन करते हैं वे रात्रि में भोजन कर सकते हैं, किन्तु जो चकोर की तरह रात्रि में रमण करते हैं उन्हें दिन में भोजन करना चाहिए ।[९]

रात्रि में भोजन का निषेध करने वाले कुछ लोगों का कहना है कि सूर्य के चले जाने से हृदय कमल तथा नाभिकमल बन्द हो जाते हैं, इसलिए रात्रि में नहीं खाना चाहिए ।[१०]

विशेष—देवपूजा, भोजन तथा शयन खुले आकाश में, अन्धेरे में, संध्याकाल में तथा बिना वितान (चंदोवे) वाले घर में नहीं करना चाहिए ।[११]

सह भोजन—लोगों के साथ में भोजन करते समय उनके पहले ही भोजन समाप्त कर देना चाहिए अन्यथा उनका दृष्टि-विष (नजर) लग जाता है ।[१२]

---

८. पृ० ५०९, श्लोक ३२८, ३२९

९ पृ० ५१०, श्लोक ३३०

१०. पृ० वही, श्लोक ३३१

११. पृ० वही, श्लोक ३३३

१२. पृ० वही, श्लोक ३३[illegible]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आहार, निद्रा और मलोत्सर्ग के समय शंकित तथा बाधायुक्त मन होने पर अनेक प्रकार के बड़े-बड़े रोग हो जाते हैं।[१३]

भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति—भोजन करते समय उच्छिष्ट भोजी, दुष्ट प्रकृति, रोगी, भूखा तथा निन्दनीय व्यक्ति पास में नहीं होना चाहिए।[१४]

अभोज्य पदार्थ—विवर्ण, अपक्व, सड़ा-गला, विगन्ध (जिसकी गन्ध बदल गयी हो), विरस, अतिजीर्ण, अहितकर तथा अशुद्ध अन्न नहीं खाना चाहिए।[१५]

भोज्य पदार्थ—हितकारी, परिमित, पक्व, नेत्र-नासा तथा रसना इन्द्रिय को प्रिय लगने वाला सुपरीक्षित भोजन न जल्दी-जल्दी और न धीरे-धीरे अर्थात् मध्यमगति से करना चाहिए।[१६]

विषयुक्त भोजन—विषयुक्त भोजन को देखकर कौआ और कोयल विकृत शब्द करने लगते हैं, नकुल और मयूर आनन्दित होते हैं, क्रौंच पक्षी अलसाने लगता है, ताम्रचूड (मुर्गा) रोने लगता है, तोता वमन करने लगता है, बन्दर मल कर देता है, चकोर के नेत्र लाल हो जाते हैं, हंस की चाल डगमगाने लगती है तथा भोजन पर मक्खियाँ भी नहीं बैठतीं। जिस तरह नमक डालने से अग्नि चटचटाती है, उसी तरह विषयुक्त अन्न के सम्पर्क से भी चटचटाने लगती है।[१७]

भोजन के विषय में अन्य नियम—पूनः गर्म किया हुआ भोजन, अंकुर निकले हुए अन्न तथा दस दिन तक काँसे के बर्तन में रखा गया घी नहीं खाना चाहिए।

दही और छाँछ के साथ केला, दूध के साथ नमक, कांजी के साथ कचौड़ी (शष्कुलि), गुड़, पीपल, मधु तथा मिर्च के साथ काकमाची (मकोय) तथा मूली के साथ उड़द की दाल, दही की तरह गाढ़ा सत्तू तथा रात्रि में कोई भी तिल विकार (तिल के बने पदार्थ) नहीं खाना चाहिए।[१८]

घृत तथा जल को छोड़कर रात्रि में बने हुए सभी पदार्थ, केश या कीटयुक्त पदार्थ तथा फिर से गरम किया गया भोजन नहीं करना चाहिए।

---

१३. पृ० वही, श्लोक ३३४
१४. पृ० वही, श्लोक ३३५
१५. पृ० वही, श्लोक ३३६
१६. पृ० ५१०, श्लोक ३३७
१७. पृ० वही, श्लोक ३३८-४०
१८. पृ० वही, श्लोक ३३८–४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्यशन, लघ्वशन, समशन तथा अध्यशन नहीं करना चाहिए। प्रत्युत बल और जीवन प्रदान करने वाला उचित भोजन करे।

अत्यशन—भूख से अधिक खाना

लघ्वशन—भूख से कम खाना

समशन—पथ्य तथा अपथ्य दोनों खाना

अध्यशन—अजीर्ण होने पर भी खाना

इन सबका त्याग करे।[१९]

भोजन करने की विधि—भोजन में स्वादु (मधुर) तथा स्निग्ध पदार्थ प्रारम्भ में, भारी, नमकीन तथा अम्ल (खट्टा) मध्य में, रुक्ष और द्रव पदार्थ बाद (अन्त) में खाना चाहिए। खाने के तुरन्त बाद कुछ भी नहीं खाना चाहिए।[२०]

छोटा बैंगन, कोहल (कुम्हड़ा), कारवेल (करेला), चिल्ली, जीवन्ती (डोडी), वास्तूल, तण्डुलीय (चौलाई), तुरन्त सेंका गया पापड़, ये खाद्य सामग्री के अङ्ग हैं, यदि अदरख की फांकें मिल जाएँ तब तो कहना ही क्या।[२१]

भोजन में सर्वदा चतुर्थांश साग-सब्जी खाना चाहिए। दही में तैरते हुए (दध्ना परिप्लुतं) तथा तले हुए (पयसा विशुष्कं) पदार्थ नहीं खाना चाहिए।[२२] बिना उबाला गया दूध दस घड़ी तक तथा उबाला गया बीस घड़ी तक पथ्य है। दही जब तक उज्ज्वल सुगन्धित तथा रसयुक्त (रूपामोदरसाढ्यं) हो, तभी तक भोज्य है।[२३] सोमदेव कहते हैं कि पकवान तभी तक स्वादयुक्त लगते हैं जब तक अंगारों पर सेंके गये घृत-स्नात (सर्पिषि स्नाताः) गरमागरम पदार्थ नहीं खाये जाते।[२४]

ज्यादा मीठा खाने से मन्दाग्नि हो जाती है, अधिक नमकीन खाने से दृष्टि-मान्द्य हो जाता है तथा अधिक खटाई और तीक्ष्ण पदार्थ शरीर को जीर्ण कर देते हैं। अधिक उष्ण पदार्थ (सोंठ, पीपल, मिरिच आदि) ज्यादा खाने से शरीर

---

१९. पृ० ५१३ श्लोक ३४५
२०. पृ० वही, श्लोक ३४६
२१. पृ० ५१६, श्लोक ३५६
२२. पृ० ५१६, श्लोक ३५७
२३. पृ० ५१७, श्लोक ३५८
२४. पृ० ५१७ श्लोक ३५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में दाह होता है तथा काषाय पदार्थ अधिक मात्रा में खाने से पित्त कुपित होता है।[२५]

भोजन के तत्काल बाद काम, कोप, आतप, आयास, यान, वाहन तथा अग्नि का सेवन नहीं करना चाहिए।[२६]

रात्रिशयन या निद्रा—स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त नींद लेना आवश्यक है। सुख की नींद सोकर जागने पर मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं, पेट हलका हो जाता है तथा पाचन क्रिया ठीक रहती है।[२७] जिस तरह खुली स्थाली (बटलोई) में अन्न ठीक से नहीं पकता उसी प्रकार नींद लिए बिना सम्यक् पाचन नहीं होता।[२८] अच्छी नींद लेने से श्रम भी दूर हो जाता है (निद्राविद्राणितश्रमः, ५०८)।

नीहार या मलमूत्र-विसर्जन—शौच तथा लघुशंका की बाधा होने पर उसकी निवृत्ति शीघ्र कर लेना चाहिए। प्रवाह के वेग को रोकने से भगन्दर हो जाता है।[२९]

अभ्यंग तथा उद्वर्तन—तेल-मालिश के लिए प्राचीन शब्द अभ्यंग था। अभ्यंग श्रम तथा वायु को दूर करता है, शक्ति का सञ्चार करता है तथा शरीर को दृढ़ (मजबूत) बनाता है।[३०] उद्वर्तन या उबटन शरीर में कान्ति लाता है, चर्बी, कफ तथा आलस को दूर करता है।[३१]

---

२५. पृ० ५१७, श्लोक ३६४-६५

२६. पृ० ५१७, श्लोक ३७३

२७. अधिगतसुखनिद्रः सुप्रसन्नेन्द्रियात्मा, सुलघुजठरवृत्तिर्भुक्तपंक्ति दधानः।
—पृ० ५०७

२८. स्थाल्यां यथानावरणाननायामघट्टितायां च न साधुपाकः।
अनाप्तनिद्रस्य तथा नरेन्द्र व्यायामहीनस्य च नान्नपाकः॥—वही

२९. भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले।—पृ० ५०९

३०. अभ्यंगः श्रमवातहः बलकरः कायस्य दार्ढ्यावहः।—पृ० ५०८
तुलना—अभ्यंगो वातकफहृच्छ्रमशान्तिबलं सुखम्।
निद्रावर्णमृदुत्वायुष्कुरुते देहपुष्टिकृत्॥
—भाव प्र० भा० १, पृ० ११५, श्लो० ६८

३१. स्यादुद्वर्तनमंगकान्तिकरणं मेदः कफालस्यजित्।—पृ० ५०८
तुलना—उद्वर्तनं कफहरं मेदोघ्नं शुक्रदं परम्।
बल्यं शोणितकृच्चापि त्वक्प्रासादमृदुत्वकृत्॥—वही, पृ० ११६।७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्नान—ऋतु के अनुसार ठंडे या गरम जल से किया गया स्नान आयु को बढ़ाता है, हृदय को प्रसन्न करता है तथा शरीर की खुजली और परिश्रम को दूर करता है।[३२]

परिश्रम करने तथा धूप में से आने के तत्काल बाद तथा इन्द्रिय और चित्त में जिस समय व्याकुलता हो उस समय स्नान तथा खान-पान नहीं करना चाहिए।[३३]

धूप में से आकर तत्काल पानी पीने से दृष्टि मन्द हो जाती है, परिश्रम करने के तुरन्त बाद भोजन करने से वमन होने लगता है और ज्वर हो जाता है, शौच की बाधा होने पर भी भोजन करने से गुल्म हो जाता है।[३४]

स्नानोपरान्त विधिपूर्वक देवपूजा आदि कार्य करके स्वच्छ वेष धारण करे तथा प्रसन्न मन से अतिथि-सत्कार करके आप्त (विश्वस्त) व्यक्तियों के साथ उतना भोजन करे, जिससे सायंकाल फिर से भूख लग जाए।[३५]

स्वच्छ वेष धारण करने तथा एकान्त में और आप्तजनों के साथ में भोजन करने के कई कारण हैं, जिनका आयुर्वेद में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।[३६]

---

३२. आयुष्यं हृदयप्रसादि वपुषः कण्डूक्लमच्छेदि च,
स्नानं देव यथार्तुसेवितमिदं शीतैरशीतैर्जलैः ॥—पृ० ५०८
तुलना—दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम् ।
कण्डूक्लमश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मनुत् ॥

३३. श्रमघर्मार्तदेहानामाकुलेन्द्रियचेतसाम् ।
तव देव द्विषां सन्तु स्नानपानादनक्रियाः ॥—पृ० ५०८

३४. दृग्मान्द्यभागात्तपितोऽम्बुसेवी श्रान्तः कृताशो वमनज्वरार्हः ।
भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले गुल्मी जिहत्सुर्विहिताशनश्च ॥—पृ० ५०९

३५. स्नानं विधाय विधिवत्कृतदेवकार्यः संतर्पितातिथिजनः सुमनाः सुवेषः ।
आप्तैर्वृतो रहसि भोजनकृत्तथा स्यात् सायं यथा भवति भुक्तिकरोऽभिलाषः ॥
—पृ० ५०९

३६. यशस्यं काम्यमायुष्यं श्रीमदानन्दवर्धनम् ।
स्वच्छं वशीकरं रुच्यं नवनिर्मलमम्बरम् ॥
कदाऽपि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम् ।
तत्तु कण्डूकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम् ॥
—भाव प्र० भा० १, पृ० ११८, श्लो० ६२, ६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यायाम—पाचन क्रिया ठीक से रहे इसलिए व्यायाम करना आवश्यक है। जिस तरह बिना चलाए बटलोई में अन्न ठीक नहीं पक सकता उसी तरह व्यायाम न करने पर पाचन क्रिया ठीक नहीं होती।[३७]

रोग और उनकी परिचर्या

यशस्तिलक में निम्नलिखित रोगों के बारे में जानकारी दी गयी है—

(१) अजीर्ण (५१९, पू०)
(२) दृग्मान्द्य (५०९, पू०, ५१८, पू०)
(३) वमन (५०९, पू०)
(४) ज्वर (५०९, पू०)
(५) भगन्दर (५०९, पू०)
(६) गुल्म (५०९, पू०)
(७) कोथ (११२ पू०)—कुष्ट
(८) कण्डू (५०८, पू०)-—खुजली
(९) अग्निमान्द्य (५१८, पू०)
(१०) शरीर कृशहोना (५१८, पू०)
(११) देहदाह (५१८, पू०)
(१२) सितश्वित (उत्त०२२३)—सफेद कुष्ट, बहने वाला

अजीर्ण—अजीर्ण के लिए सोमदेव ने दो नाम दिये हैं—(१) विदाहि, (२) दुर्जर।

कारण—अजीर्ण का मुख्य कारण उचित नींद न लेना तथा व्यायाम न करना है। जिस तरह खुली हुई बटलोई में बिना चलाये अन्न ठीक से नहीं पकता ठीक उसी तरह निद्रा न लेने से तथा व्यायाम न करने से पाचन क्रिया भी ठीक नहीं होती।[३८]

पितृमातृसुहृद्वैद्यपाकक्रुद्धं सबर्हिणाम्।
सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा॥
आहारं तु रहः कुर्यान्निर्हारमपि सर्वदा।
उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशे हीयते श्रियः॥

—वही, पृ० १२२-२३, श्लो० १२०-२२

३७. देखिए, उद्धरण संख्या २८
३८ वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार—अजीर्ण चार प्रकार का बताया गया है—[३९]

(१) जौ इत्यादि हलके पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(२) गेहूँ इत्यादि पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(३) दाल इत्यादि दो दल वाले पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

(४) घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के खाने से उत्पन्न।

परिचर्या—इन चार प्रकार के अजीर्ण को दूर करने के लिए यशस्तिलक में क्रम से चार साधन बताए गये हैं—[४०]

(१) जौ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए ठंडा पानी पिए।

(२) गेहूँ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए गर्म (क्वथित) जल पिए।

(३) दाल आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए अवन्तिसोम (कांजी) पिए।

(४) घृत इत्यादि से उत्पन्न अजीर्ण के लिए कालसेय (तक्र) पिए।

दृग्मान्द्य—यशस्तिलक में दृग्मान्द्य के दो कारण बताए हैं—नमक या नमकीन पदार्थ अधिक खाना तथा धूप में से आकर तुरन्त पानी पी लेना।[४१]

सोमदेव ने स्पष्ट रूप से दृग्मान्द्य को दूर करने के उपाय नहीं बताए, फिर भी उसके कारणों में ही दूर करने के उपायों की भी अभिव्यक्ति है। दृग्मान्द्य न हो इसके लिए व्यक्ति को उपर्युक्त दोनों बातों का बचाव रखना चाहिए।

वमन—सोमदेव ने लिखा है कि थका हुआ व्यक्ति यदि तुरन्त भोजन कर ले तो वमन होने लगता है।[४२]

ज्वर—ज्वर के लिए भी यही कारण दिया है।[४३]

भगन्दर—भगन्दर का कारण सोमदेव ने 'स्यन्दविबन्ध' अर्थात् मल के वेग को रोकना बताया है।[४४] भावप्रकाश में मल के वेग को रोकने से भगन्दर

---

३९. यवसमिथविदाहिष्वम्बुशीतं निषेव्यं, क्वथितमिदमुपास्यं दुर्जरेऽन्ने च पिष्टे।
भवति विदलकालेऽवन्तिसोमस्य पानं घृतविकृतिषु पेयं कालसेयं सदैव॥
—पृ० ५१६

४०. वही, पृ० ५१६

४१. समधिकलवणान्नप्राशनाद्दृष्टिमान्द्यम्।—पृ० ५१८
दृग्मान्द्यभागात्तपितोऽम्बुसेवी।—पृ० ५०६

४२. श्रान्तः कृताशो वमनज्वरार्हः।—पृ० ५०९

४३ वही, पृ० ५०६

४४. भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले।—पृ० ५०६
तुलना—शुक्रमलमूत्रमरुद्वेगसंरोधोऽश्मरीभगंदरगुल्माशंसां हेतुः।—नीति० दि० ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अतिरिक्त आटोप (पेट में गुड़गुड़ शब्द होना) शूल, परिकर्तन (गुदा में कतरने के सदृश पीड़ा), मलावरोध, ऊर्ध्ववात (डकार आना) तथा मुख से मल निकलने लगना आदि रोग बताए हैं।[४५]

वैद्यक शास्त्र में भगन्दर को महाभयंकर रोग बताया गया है। भावप्रकाश में इसके विषय में निम्नप्रकार से जानकारी दी गयी है—

पूर्वरूप—भगन्दर जब होने वाला होता है तो कमर तथा शिर में सूई चुभने के समान पीड़ा, दाह तथा खुजली आदि पूर्वरूप होते हैं।[४६]

लक्षण—गुदा के पार्श्व में दो अंगुल स्थान में पीड़ा करने वाली फटी हुई फुंसियाँ इत्यादि कई प्रकार का भगन्दर होता है। भारतीय वैद्यक में पाँच भेद बताए हैं—(१) वातिक, (२) पैत्तिक, (३) श्लैष्मिक, (४) सन्निपातिक तथा (५) शल्यज।[४७]

पाश्चात्य वैद्यक में भगन्दर को 'फिस्चुला इन एनो' कहते हैं। इनके भी कई भेद होते हैं।[४८]

गुल्म—यशस्तिलक में गुल्म का कारण शौच की बाधा होने पर भी भोजन करना बताया है।[४९] भावप्रकाश में अध्यशन आदि मिथ्या आहार तथा बलवान के साथ कुश्ती लड़ना आदि गुल्म के कारण बताये हैं।[५०]

गुल्म हृदय तथा नाभि के बीच में संचरणशील अथवा अचल तथा बढ़ने-घटने वाली गोलाकार ग्रन्थि को कहते हैं।[५१]

---

४५. आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च संगः पुरीषस्य तथोऽर्ध्ववातः।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य॥
—भा० भा० १, पृ० १०६, श्लो० १८

४६. कटीकपालनिस्तोददाहकण्डुरुजादयः।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे॥
गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिण्डकार्तिकृत्।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेया स च पंचविधो भवेत्॥
—वही, भाग २, चि० भ० श्लो० १,२

४७ वही

४८. विस्तार के लिए देखें, भाव० भा० २, पृ० ५३६

४९. गुल्मी जिहत्सुर्विहिताशनश्च।—पृ० ५०६, पू०

५०. दुष्टवातादयोत्यर्थमिथ्याहारविहारतः।—भाव०, भाग २, गुल्मा०, श्लो० १

५१. हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाचलः।
वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः॥—वही, श्लोक ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय वैद्यक में गुल्म के पाँच भेद बताए गये हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) त्रिदोषज तथा (५) रक्तज।[५२]

पाश्चात्य वैद्यक में गुल्म को अवडामिनल ट्यूमर कहते हैं। ट्यूमर प्रायः दो प्रकार के होते हैं—(१) सामान्य और (२) घातक। इनके अनेक अवान्तर भेद होते हैं।[५३]

सितश्वित—सफेद कुष्ट जिससे पीब बहती रहती है तथा अत्यन्त दुर्गन्ध आती है उसे यशस्तिलक में सितश्वित कहा है। अमृतमति को यह भयंकर रोग हो गया था। परिवार के लोग भी नाक बन्द करके उसके पास आते थे।[५४] सोमदेव ने इसका दूसरा नाम साधारणतया कुष्ट भी दिया है।[५५]

औषधियाँ—यशस्तिलक में अनेक प्रकार की औषधियों के उल्लेख हैं। शिखण्डिताण्डवमण्डन नामक वन के विस्तृत वर्णन में ही लगभग २० औषधियों के नाम गिनाए हैं। यह वर्णन किसी आयुर्वेदिक उद्यान के वर्णन से कम नहीं है। औषधियों की जानकारी इस प्रकार है—

*मागधी[५६]—छोटी पीपल
अमृता—गुरुचि
सोम, विजया—हरड़
जम्बूक
सुदर्शना
मरुद्भव
अर्जुन
अभीरु—शतावरी
लक्ष्मी—एरण्डशृंगी
वृती
तपस्विनी—मुण्डी कह्लार आदि
चन्द्रलेखा—वाकुची

---

५२. वही, श्लोक १
५३. वही, श्लोक ५ की व्याख्या
५४. संपन्नासितश्वितगात्रीमनवरतदरदेहद्रवास्वादासीदन्मन्दमक्षिकाक्षेपक्षोभपात्रीमति-पूतिपूयपिहितनासिकसविधसंचरितपरिवाराम्।—पृ० २२३ उत्त०
५५. सकलकुष्ठाधिष्ठानम्।—वही
५६. *चिह्नान्तर्गत औषधियाँ, पृ० १६४-१६७ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलि—विभीतक
अर्क—आक
अरिभेद—विट्खदिर
शिवप्रिय—धतूरा
*गायत्री—खदिर
ग्रन्थिपर्ण[५७]—गाथियन
पारदरस[५८]—पारा

आयुर्वेदविशेषज्ञ आचार्य

यशस्तिलक में आयुर्वेदविशेषज्ञ आचार्यों में काशिराज, चारायण, निमि धिषण तथा चरक का उल्लेख है।[५९]

काशिराज—काशिराज को श्रुतसागर ने धन्वन्तरि कहा है।[६०]

यह उल्लेख विशेष महत्व का है। निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित सुश्रुतसंहिता की संस्कृत भूमिका में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अनपेक्षित होने से उसे यहाँ पुनरुक्त नहीं किया गया।

निमि—इनमें संभवतया निमि सर्वाधिक प्राचीन हैं। इनका कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं होता, किन्तु अन्य ग्रन्थों में उल्लेख आये हैं। चरक संहिता में निमि को विदेहराज कहा है।[६१] वाग्भट ने अष्टांगहृदय में, क्षीरस्वामी ने अमरकोष की टीका (२।५।२८) में तथा डल्हण ने सुश्रुतसंहिता की टीका में निमि का उल्लेख किया है। निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित इन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि निमि के उल्लेख अन्य ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

चारायण—चारायण का आयुर्वेदाचार्य के रूप में अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता। वात्स्यायन ने कामसूत्र (१।१।१२) में चारायण को वाभ्रव्य पांचाल-कृत कामसूत्र के एक अध्याय को स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में रचने वाला कहा है। सोमदेव ने चारायण का जो उल्लेख किया है, वह भी वात्स्यायन के कामसूत्र में

---

५७. पृ० ४७०, पू०, विवेचन के लिए देखें—के० के० हन्दिकी, यशस्तिलक एंड इंडियन कल्चर, पृ० ९२, फुटनोट १।
५८. पृ० ११२, पृ०
५९. पृ० २३७, ५०९ सं० पू०, पृ० २९७ उत्त०
६०. काशिराजो धन्वन्तरिः।—पृ० २३७ सं० टी०
६१. सप्तरसा इति निमिर्वैदेहः।—सूत्रस्थान, अ० २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध होता है।[६२] सोमदेव के ही दूसरे ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत में चारायण के कई उद्धरण आये हैं, किन्तु वे सभी नीतिविषयक होने से, यह कहना कठिन है कि चारायण ने किसी वैद्यक ग्रन्थ की रचना की हो।

धिषण—धिषण का अर्थ श्रुतसागर ने बृहस्पति किया है। बृहस्पतिकृत वैद्यक ग्रन्थ का पता नहीं चलता।

चरक—चरककृत चरकसंहिता वैद्यक शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आजकल यह वैद्यक का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ माना जाता है।

---

६२. सार्थं चारायणस्य। १।४।०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वस्त्र और वेषभूषा

यशस्तिलक में भारतीय तथा विदेशी वस्त्रों के अनेक उल्लेख हैं। इन उल्लेखों से एक ओर प्राचीन भारतीय वेशभूषा का पता चलता है, दूसरी ओर प्राचीन भारत के समृद्ध वस्त्रोद्योग एवं विदेशी व्यापारिक सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ता है। भारतीय साहित्य में वस्त्रों के अनेक उल्लेख मिलते हैं, किन्तु यशस्तिलक के उल्लेखों की यह विशेषता है कि उनसे कई एक वस्त्रों की सही पहचान पहले पहल होती है। इन वस्त्रों को मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) सामान्य वस्त्र।

(२) पोशाकें या पहनने के वस्त्र।

(३) अन्य गृहोपयोगी वस्त्र।

सामान्य वस्त्रों में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका, दुकूल, अंशुक और कौशेय आते हैं। पोशाकों में कंचुक, वारबाण, चोलक, चण्डातक, पट्टिका, कोपीन, वैकक्ष्यक, उत्तरीय, परिधान, उपसंव्यान, निचोल, उष्णीष, आवान, चीवर और कर्पट का उल्लेख है। कुछ अन्य गृहोपयोगी वस्त्रों में हंसतूलिका, उपधान, कन्था, नमत और वितान आए हैं। इन वस्त्रों का विशेष परिचय निम्न-प्रकार है—

१. सामान्य वस्त्र

सामान्य वस्त्रों में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल और रल्लिका का उल्लेख यशस्तिलक में एक साथ हुआ है। सभामण्डप में जाते समय सम्राट यशोधर ने देखा कि घोड़ों को उक्त वस्त्रों की जीनें पहनाई गयी हैं।[१]

नेत्र—श्रुतसागर ने नेत्र का अर्थ पतला पट्टकूल किया है।[२] नेत्र के विषय में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन तथा जायसी के पदमावत में सर्वप्रथम विशेष रूप से प्रकाश डाला है।

---

१. नेत्रचीनचित्रपटीपटोलरल्लिकाद्यावृतदेहानां...वाजिनाम्।

—यश० सं० पू०, पृ० ३६८

२. नेत्राणां सूक्ष्मपट्टकूलवारलानाम्।—वही सं० टीका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेत्र एक प्रकार का महीन रेशमी वस्त्र था। यह कई रंगों का होता था। इसके थानों में से काटकर तरह-तरह के वस्त्र बना लिये जाते थे। यह चीन देश से भारत में आता था। प्राचीन भारतीय साहित्य में नेत्र का उल्लेख सबसे पहले कालिदास ने किया है।[३] बाणभट्ट ने नेत्र के बने विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का कई बार उल्लेख किया है। मालती धुले हुए सफेद नेत्र का बना केंचुली की तरह हलका कंचुक पहने थी।[४] हर्ष निर्मल जल से धुले हुए नेत्रसूत्र की पट्टी बाँधे हुए एक अधोवस्त्र पहने थे।[५]

बाण ने एक अन्य प्रसंग पर अन्य वस्त्रों के साथ नेत्र के लिए भी अनेक विशेषण दिये हैं—साँप की केंचुली की तरह महीन, कोमल केले के गाभे की तरह मुलायम, फूँक से उड़ जाने योग्य हलके तथा केवल स्पर्श से ज्ञात होने योग्य।[६] बाण ने लिखा है कि इन वस्त्रों के सम्मिलित आच्छादन से हजार-हजार इन्द्र-धनुषों जैसी कान्ति निकल रही थी।[७] इस उल्लेख से रंगीन नेत्र का पता लगता है। बाण ने छापेदार नेत्र के भी उल्लेख किये हैं। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर खम्भों पर छापेदार नेत्र लपेटा गया था।[८] एक अन्य स्थान पर छापेदार नेत्र के बने सूथनों का उल्लेख है।[९] सम्भवतः नेत्र की बुनावट में ही फूलपत्तियों की भाँत डाल दी जाती थी।

उद्योतनसूरि (७७९ ई०) कृत कुवलयमाला में एक वणिक् कहता है कि वह महिस और गवय लेकर चीन गया और वहाँ से गंगापटी तथा नेत्र वस्त्र लाया।[१०]

वर्णरत्नाकर में चौदह प्रकार के नेत्रों का उल्लेख है।[११]

---

३. नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम्।—रघुवंश, ७।२९

४. धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेणाप्रपदीनकंचुकेन।—हर्षचरित, पृ० ३१

५. विमलपयोधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा।—वही, पृ० ७२

६. नेत्रैश्च निर्मोकनिभैः, अकठोररम्भागर्भकोमलैः, निश्वासहार्यैः, स्पर्शानुमेयैः वासोभिः।—वही, पृ० १४३।

७. स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव संछादितम्।—हर्षचरित, पृ० १४३।

८. उच्चित्रनेत्रपटवेष्ट्यमानैश्च स्तम्भैः।—वही, १४३

९. उच्चित्रनेत्रसुकुमारस्वस्थानस्थगितजंघाकाण्डैः।—वही, पृ० २०६

१० अहं चीण-महाचीणेसु गओ महिस गवले घेत्तूण, तत्थ गंगावडिओ णेत्त पट्टाइयं घेत्तूण लद्धलाभो णियत्तो।—कुवलयमाला कहा, पृ० ६६

११. हरिणा, वेंगना, नखी, सर्वाङ्ग, गुरु, शुचीन, राजन, पंचरंग, नील, हरित, पीत, लोहित, चित्रवर्ण, एवम्विध चतुर्दश जाति नेत देखु।—वर्णरत्नाकर, पृ० २२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौदहवीं शती तक बंगाल में नेत अथवा नेत्र एक मजबूत रेशमी कपड़े को कहते थे। इसकी पाचूडी पहनी और बिछाई जाती थी।[१२]

पदमावत के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि सोलहवीं शती तक नेत्र का प्रचार था। जायसी ने तीन बार नेत्र अथवा नेत का उल्लेख किया है। रतनसेन के शयनागार में अगरचन्दन पोतकर नेत के परदे लगाये गये थे।[१३] पदमावती जब चलती थी तो नेत के पाँवड़े बिछाए जाते थे।[१४] एक अन्य प्रसंग में भी मार्ग में नेत बिछाने का उल्लेख है (नेत बिछावा बाट, ६४१।८)।

भोजपुरी लोकगीतों में नेत का उल्लेख प्रायः आता है।[१५] बंगला में भी नेत के उल्लेख मिलते हैं।[१६]

चीन—चीन का अर्थ श्रुतसागर ने चीन देश में उत्पन्न होनेवाले वस्त्र से किया है।[१७] सोमदेव के बहुत समय पहले से भारतीय जन चीन देश से आनेवाले वस्त्रों से परिचित हो चुके थे। डॉ० मोतीचन्द्र ने भारतीय वेशभूषा में चीन देश से आनेवाले वस्त्रों के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। मध्य एशिया के प्राचीन पथ पर बने हुए एक चीनी रक्षागृह से एक रेशमी थान मिला, जिस पर ई० पू० पहली शताब्दी की ब्राह्मी में एक पुरजा लगा हुआ था। यह इस बात का द्योतक है कि भारतीय व्यापारी चीनी-रेशमी कपड़े की खोज में चीन की सीमा तक इतने प्राचीन काल में पहुँच गये थे।[१८]

चीन देश से आनेवाले वस्त्रों में सबसे अधिक उल्लेख चीनांशुक के मिलते

---

१२. तमोनाशचन्द्रदास – आसपेक्ट्स आफ बंगाली सासायटी फ्राम बंगाली लिटरेचर, पृ० १८०–१८१

१३. ओवरि जूड़ि तहाँ सोवनारा। अगर पोति सुख नेत ओहारा॥
अग्रवाल—पदमावत, ३३६।५

१४. पालक पांव कि आछहि पाटा। नेत बिछाइअ जौं चल बाटा॥—वही, ४८५।७

१५. राजा दशरथ द्वारे चित्र रेहल, ऊपर नेत फहरासु है।—जनपद, वर्ष १, अंक ३, अप्रैल, १९३९, पृ० ५२

१६. नेतेर आंचले चर्ममंडित करिया घर घर वासिनी पोशे, अर्थात् नेत के आँचल में चमड़े से ढँकी हुई स्त्रीरूपी व्याघ्री घर-घर में पाली जा रही है।
धर्मपाल में गोरखनाथ का गीत, उद्धृत, अग्रवाल—पदमावत, पृ० ३३६

१७. चीनानां चीनदेशोत्पन्नवस्त्राणाम्।—यश० सं० पू०, पृ० ३३६, सं० टी०

१८. सर आरल स्टाइन—एशिया मेजर, हर्थ एनिवर्सरी वालुम १९२३, पृ० ३६७-३७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं।[१९] यह एक रेशमी वस्त्र था। बृहत्कल्पसूत्र भाष्य में इसकी व्याख्या कोशकार नामक कीड़े से अथवा चीन जनपद के बहुत पतले रेशम से बने वस्त्र से की गयी है।[२०]

चीनांशुक के अतिरिक्त चीन और वाह्लीक से भेड़ों के ऊन, पश्म (रांकव), रेशम (कीटज) और पट्ट (पट्टज) के बने वस्त्र आते थे। ये ठीक नाप के, खुशनुमा रंगवाले तथा स्पर्श करने में मुलायम होते थे। इन देशों से नमदे (कुट्टीकृतं), कमल के रंग के हजारों कपड़े, मुलायम रेशमी कपड़े तथा मेमनों की खालें भी आती थीं।[२१]

चित्रपटी—यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने चित्रपटी का अर्थ रंग-बिरंगे सूक्ष्म वस्त्र से किया है।[२२] डॉ० अग्रवाल ने लिखा है कि चित्रपटी या चित्रपट वे जामदानी वस्त्र ज्ञात होते हैं, जिनमें बुनावट में ही फूल-पत्तियों की भाँत डाल दी जाती थी। बंगाल इन वस्त्रों के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। बाणभट्ट ने लिखा है कि प्राग्ज्योतिषेश्वर (आसाम) के राजा ने श्रीहर्ष को उपहार में जो बहुमूल्य वस्तुएँ भेजीं उनमें चित्रपट के तकिए भी थे, जिनमें समूर या पक्षियों के बाल या रोएँ भरे थे।[२३]

पटोल—पटोल का अर्थ टीकाकार ने पट्टकूल वस्त्र किया है।[२४] गुजरात में अभी भी पटोला नामक साड़ी बनती है तथा इसका व्यवहार होता है। इस साड़ी को लड़की का मामा विवाह के अवसर पर उसे भेंट करता है। यह साड़ी बांधनू रंगने की विधि से रंगे गये ताने-बाने से बनती है। इसकी बुनावट में सकरपारे पड़ते हैं, जिनके बीच में तिपतिए फूल होते हैं। कभी-कभी

---

१९. आचारांग २,१४,६। भगवती ९,३३,६। अनुयोगद्वार ३६, निशीथ ७,११। प्रश्नव्याकरण ४,४ इत्यादि।

२०. कोशिकाराख्यः कृमिः तस्माज्जातम्, अथवा चीनानाम् जनपदः तत्र यः श्लक्ष्णतरपटः तस्माज्जातम्।—बृहत्कल्प० ४,३६६२

२१. प्रमाणरागस्पर्शाढ्यं वाल्हीचीनसमुद्भवम्। और्णं च राकवं चैव कीटजं पट्टजं तथा।
कुट्टीकृतं तथैवात्र कमलाभं सहस्रशः। श्लक्ष्णं वस्त्रमकर्पासमाविकं मृदुचाजिनम्॥
—महाभा० सभा पर्व, ५१।२७

२२. चित्रा नानाप्रकारा याः पट्यः सूक्ष्मवस्त्राणि।—यश० सं० पृ०, पृ० ३६८, सं० टी०

२३. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १६८

२४. पटोलानि च पट्टकूलवस्त्राणि।—यश० सं० पू० पृ० ३६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलंकारों में हाथियों की पंक्ति, पेड़-पौधे, मनुष्य-आकृतियाँ और चिड़ियाँ भी होती हैं।[२५]

रल्लिका—रल्लिका का अर्थ श्रुतसागर ने रक्त कंबल किया है।[२६] रल्लक एक प्रकार का मृग या जंगली भेड़ होती थी, जिसके ऊन से यह वस्त्र बनता था। सोमदेव ने जंगल का वर्णन करते हुए सेही के द्वारा परेशान किये जाते रल्लकों का उल्लेख किया है।[२७]

रल्लिका या रल्लक को अमरकोषकार ने भी एक प्रकार का कम्बल कहा है।[२८] जिस समय युवांग च्वांग भारत आया उस समय भारतवर्ष में इस वस्त्र का खूब प्रचार था। उसने अपने यात्रा-विवरण में होलाली अर्थात् रल्लक का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि यह वस्त्र किसी जंगली जानवर के ऊन से बनता था। यह ऊन आसानी से कत सकता था तथा इससे बने वस्त्रों का काफी मूल्य होता था।[२९]

सोमदेव ने एक अन्य प्रसंग पर और अधिक स्पष्ट किया है कि रल्लकों के रोओं से कम्बल बनाए जाते थे, जिनका उपयोग हेमन्त ऋतु में किया जाता था।[३०]

दुकूल—सोमदेव ने दुकूल का कई बार उल्लेख किया है। राजपुर में दुकूल और अंशुक की वैजयन्तियाँ (पताकाएँ) लगाई गयी थीं।[३१] राज्याभिषेक के बाद सम्राट यशोधर ने धवल दुकूल धारण किये[३२], वसन्तोत्सव के अवसर पर गोरोचना से पिंजरित दुकूल धारण किये[३३] तथा सभामंडप (दरबार) में जाते समय उद्गमनीय मंगल-दुकूल पहिने।[३४] अन्य प्रसंगों में भी दुकूल के उल्लेख हैं।

---

२५. वाट—इंडियन आर्ट एट दी देहली एक्जिबिशन, पृ० २५६-२५६।
उद्धृत, मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५।

२६. रल्लिकाश्च रक्तादिकंबलविशेषाः।—यश० सं० पू०, पृ० ३६८, सं० टी०

२७ क्वचिन्निःशल्यशल्लकशलाकाजालकील्यमानरल्लकलोकलोकम्।
—यश० उत्त० पृ० २००

२८. अमरकोश, २।६।११६

२९. वाटर्स—युवांगच्वांग्स ट्रावल्स इन इंडिया, भाग १, लन्दन १६०४।
प्रा० २०। उद्धृत, डॉ० मोतीचन्द्र—भारतीय वेषभूषा से।

३०. रल्लकरोमनिष्पन्नकम्बललोकलीलाविलासिनी…हेमने मरुति।
—यश० सं० पू० ५७५

३१. दुकूलांशुकवैजयन्तीसंततिभिः।—यश० सं० पू० पृ० १६

३२ धृतधवलदुकूलमाल्यविलेपनालंकारः।—वही, पृ० ३२३

३३. त्वं देव देहेऽभिनवे दधानो, गोरोचना पिंजरिते दुकूले।—वही, पृ० ५६२

३४. गृहीतोद्गमनीयमंगलदुकूल।—वही, उत्त० पृ० ८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचारांग के संस्कृत व्याख्याकार शीलांकाचार्य ने दुकूल को बंगाल में पैदा होनेवाली एक विशेष प्रकार की रूई से बननेवाला वस्त्र कहा है[३५], किंतु यह व्याख्या बारहवीं शती की होने से विश्वसनीय नहीं है। निशीथ के चूर्णिकार ने दुकूल को दुकूल नामक वृक्ष की छाल को कूट कर उसके रेशे से बनाया जानेवाला वस्त्र कहा है।[३६]

अर्थशास्त्र से दुकूल के विषय में कुछ और भी जानकारी मिलती है। इसके अनुसार बंगाल में बननेवाला दुकूल सफेद और मुलायम होता था। पौंड्र देश के दुकूल गहरे नीले और चिकने होते थे तथा सुवर्णकुड्या के दुकूल ललाई लिए होते थे।[३७] कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि दुकूल तीन तरह से बुना जाता था तथा बुनाई के अनुसार उसके एकांशुक, अध्यर्धांशुक, द्वयंशुक तथा त्र्यंशुक ये चार भेद होते थे।[३८]

डॉ० अग्रवाल ने हर्षचरित में दुकूल के विषय में एक प्रश्न उठाया है। उन्होंने लिखा है कि 'सम्भवतः कूल का अर्थ देश्य या आदिम भाषा में कपड़ा था, जिससे कोलिक (हि० कोली) शब्द बना। दोहरी चादर या थानके रूप में विक्रयार्थ आने के कारण यह द्विकूल या दुकूल कहलाने लगा।'[३९] साहित्यिक सामग्री की साक्षीपूर्वक इस विषय पर विचार करने से उनके इस कथन का समर्थन होता है।

सोमदेव ने तीन बार सम्राट यशोधर को दुकूल पहनने का उल्लेख किया है। वसन्तोत्सव के समय तो निश्चित रूप से सम्राट ने दो दुकूल धारण किये थे, क्योंकि यहाँ पर सोमदेव ने 'दुकूले' इस द्विवचन का प्रयोग किया है।[४०]

दूसरे प्रसंग में उद्गमनीय मंगल दुकूल कहा है।[४१] अमरकोषकार ने लिखा है कि धुले हुए वस्त्रों के जोड़े को (दो वस्त्रों को) उद्गमनीय कहते हैं।[४२] इससे

---

३५. दुकूलं गौणविषयविशिष्टकार्पासिकम्।—आचारांग २, वस्त्र० सू० ३६८ सं०टी०

३६. दुगुल्लो रुक्खो तस्स वागो घेत्तुं उदूखले कुट्टिज्जति पाणिएण ताव जाव भूसीभूतो ताहे कज्जति एतेसु दुगुल्लो।—निशीथ ७, १०-१२

३७. वांगकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं, पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धं, सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम्। —अर्थशास्त्र, २।११

३८. मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च। एतेषामेकांशुकमध्यर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति।—वही, २।११

३९. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६

४०. गोरोचनापिंजरिते दुकूले।—यश० सं० पू०, पृ० ५६२

४१. गृहीतोद्गमनीयमंगलदुकूलः।—यश० उत्त० पृ० ८१

४२. तत्स्यादुद्गमनीयं यद्धौतयोर्वस्त्रयोर्युगम्।—अमरकोष २, ६, ११२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही तात्पर्य निकलता है कि सम्राट ने इस प्रसंग में भी दुकूल का जोड़ा पहना था। तीसरे स्थल पर दुकूल का विशेषण 'धवल' दिया है।[४३] इस समय भी सम्राट ने दुकूल का जोड़ा ही पहना होगा अन्यथा सोमदेव अधोवस्त्र के लिए किसी अन्य वस्त्र का उल्लेख अवश्य करते।

गुप्तयुग में किनारों पर हंस-मिथुन लिखे हुए दुकूल के जोड़े पहनने का आम रिवाज था। बाण ने लिखा है कि शूद्रक ने जो दुकूल पहिन रखे थे वे अमृत के फेन के समान सफेद थे। उनके किनारों पर गोरोचना से हंस-मिथुन लिखे गये थे तथा उनके छोर चमर से निकली हुई हवा से फड़फड़ा रहे थे।[४४] युद्ध-क्षेत्र को जाते समय हर्ष ने भी हंस-मिथुन के चिह्नयुक्त दुकूल का जोड़ा पहना था।[४५] आचारांग (२, १५, २०) में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हंस दुकूल का जोड़ा पहनाया था वह इतना पतला था कि हवा का मामूली झटका उसे उड़ा ले जा सकता था। उसी बुनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे। वह कलाबत्तू के तार से मिला कर बना था और उसमें हंस के अलंकार थे। अंतगडदसाओ (पृ० ३२) के अनुसार दहेज में कीमती कपड़ों के साथ दुकूल के जोड़े भी दिए जाते थे।[४६] कालिदास ने भी हंस चिह्नित दुकूल का उल्लेख किया है।[४७] किन्तु उससे यह पता नहीं चलता कि दुकूल एक था या जोड़ा था। इसी तरह भट्टिकाव्य में भी दो बार दुकूल शब्द आया है[४८] परन्तु उससे भी इसके जोड़े होने या न होने पर प्रकाश नहीं पड़ता। गीत-गोविन्द में करीब चार बार से भी अधिक दुकूल का उल्लेख हुआ है[४९], उसी में एक बार 'दुकूले' इस द्विवचन का भी व्यवहार हुआ है।[५०]

---

४३. धृतधवलदुकूलमाल्यविलेपनालंकार: ।—यश० सं० पू०, पृ० ३२३

४४. अमृतफेनधवले गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्यन्ते चारुचमरवायुप्रनर्तितान्त-देशे दुकूले वसानम् ।—कादम्बरी, पृ० १७

४५. परिधाय राजहंसमिथुनलक्ष्मणि सदृशे दुकूले ।—पृ० २०२

४६. उद्धृत, मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० १४७-१४८

४७. आमुक्ताभरण: स्रग्वी हंसचिन्हदुकूलवान् ।—रघुवंश, १७।२५

४८. उदक्षिपन्पट्टदुकूलकेतून् ।—भट्टिकाव्य, ३।३४, अथ स वल्कदुकूलकुथादिभि: ।
—वही, १०।१

४९. शिथिलीकृतं जघनदुकूलम् ।—गीतगोविन्द, २, ६, ३
श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।—वही, १२,२२,३
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसिदुकूलम् ।—वही, १२, २३, ३

५०. मंजुलवंजुलकुंजगतं विचकर्ष करेण दुकूले । वही १४,६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस विवरण से इतना तो निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि दुकूल जोड़े के रूप में आता था। इसका एक चादर पहनने और दूसरा ओढ़ने के काम में लिया जाता था। दुकूल के थान को काटकर अन्य वस्त्र भी बनाए जाते थे। बाण ने दुकूल के बने उत्तरीय, साड़ियाँ, पलंगपोश, तकियों के गिलाफ आदि का वर्णन किया है[५१]।

दुकूल के विषय में एक बात और भी विचारणीय है। बाद के साहित्यकारों तथा कोषकारों ने क्षौम और दुकूलको पर्याय माना है। स्वयं यशस्तिलक के टीकाकार ने दुकूल का अर्थ क्षौमवस्त्र किया है[५२]। अमरकोषकार ने भी दुकूल को पर्याय माना है।[५३] वास्तव में दुकूल और क्षौम एक नहीं थे। कौटिल्य ने इन्हें अलग-अलग माना है।[५४] बाण ने क्षौम की उपमा दूधिया रंग के क्षीरसागर से तथा अंशुक की सुकुमारता की उपमा दुकूल की कोमलता से दी है।[५५]

इस तरह यद्यपि क्षौम और दुकूल एक नहीं थे फिर भी इनमें अन्तर भी अधिक नहीं था। दुकूल और क्षौम दोनों एक ही प्रकार की सामग्री से बनते थे। इनमें अन्तर केवल यह था कि जो कुछ मोटा कपड़ा बनता वह क्षौम कहलाता तथा जो महीन बनता वह दुकूल कहलाता। दुकूल की व्याख्या करने के बाद कौटिल्य ने लिखा है कि इसी से काशी और पांड्रदेश के क्षौम की भी व्याख्या हो गयी।[५६] गणपति शास्त्री ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मोटा दुकूल ही क्षौम कहलाता था।[५७] हेमचन्द्राचार्य ने इसे और भी अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने लिखा है कि क्षुमा अतसी (अलसी) को कहते हैं, उससे बना वस्त्र क्षौम कहलाता है। इसी तरह क्षुमा से (अलसी से) रेशे निकालकर जो वस्त्र बनता है वह दुकूल कहलाता है।[५८] साधुसुन्दरगणि ने भी लिखा है

---

५१. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६
५२. दुकूलं क्षौमवस्त्रम्।—यश० सं० प्र०, पृ० ४६२ सं० टीका
५३. क्षौमं दुकूलं स्यात्।—अमरकोष २, ६, ११३
५४. अर्थशास्त्र २, ११
५५. क्षीरोदायमानं क्षौमैः।—हर्षचरित. पृ० ६०
चीनांशुकसुकुमारे ......दुकूलकोमले।—वही, पृ० ३६
५६. तेन काशिकं पौण्ड्रकं च क्षौमं व्याख्यातम्।—अर्थशास्त्र, २, ११
५७. स्थूलं दुकूलमेव हि क्षौममिति व्यपदिश्यते।—वही, सं० टी०
५८. क्षुमातसी तस्या विकारः क्षौमम्, दुह्यते क्षुमाया आकृष्यते दुकूलम्।—अभिधान-चिन्तामणि, ३।३३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि दुकूल अलसी से बने कपड़े को कहते हैं।[५९] भारतवर्ष के पूर्वी भागों में (आसाम-बंगाल) में यह क्षुमा या अलसी नामक घास बहुतायत से होती थी। बंगाल में इसे कांखुर कहा जाता था।[६०] दुकूल और क्षौम इसी घास के रेशों से बनने वाले वस्त्र रहे होंगे।

सोमदेव ने दुकूल का कई बार उल्लेख किया है, किन्तु क्षौम का एक बार भी नहीं किया। सम्भव है सोमदेव के पहले से ही दुकूल और क्षौम पर्यायवाची माने जाने लगे हों और इसी कारण सोमदेव ने केवल दुकूल का प्रयोग किया हो। सोमदेव के उल्लेखों से इतना अवश्य मानना चाहिए कि दशवीं शताब्दी तक दुकूल का खूब प्रचार था तथा वह वस्त्र, संभ्रान्त और बेशकीमती माना जाता था।

अंशुक—यशस्तिलक में कई प्रकार के अंशुक का उल्लेख है—अंशुक सामान्य या सफेद अंशुक[६१], कुसुम्भांशुक या ललाई लिए हुए रंग का अंशुक[६२], कार्दमिकांशुक अर्थात् नीला या मटमैले रंग का अंशुक।[६३]

अंशुक भारत में भी बनता था तथा चीन से भी आता था। चीन से आने वाला अंशुक चीनांशुक कहलाता था। भारतीय जन दोनों प्रकार के अंशुकों से बहुत काल से परिचित हो चुके थे। चीनांशुक के विषय में ऊपर चीन वस्त्र की व्याख्या करते हुए विशेष लिखा जा चुका है, अतएव यहाँ केवल अंशुक या भारतीय अंशुक के विषय में विचार करना है।

कालिदास ने सितांशुक,[६४] अरुणांशुक,[६५] रक्तांशुक,[६६] नीलांशुक,[६७] तथा श्यामांशुक[६८] का उल्लेख किया है। सम्भवतः अंशुक पहले सफेद बनता था, बाद

---

५९. दुकूलमतसीपटे।—शब्दरत्नाकर, ३।२१९

६०. डिक्शनरी आफ इकनोमिक प्रॉडक्ट्स, भा० १, पृ० ४६८-४६९।
उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६-७७

६१. सितपताकांशुक।—यश० उत्त०. पृ० १३

६२. कुसुम्भांशुकपिहितगौरीपयोधर।—वही. पृ० १४

६३. कार्दमिकांशुकाधिकृतकायपरिकरः।—वही, पृ० २२०

६४. सितांशुका मंगलमात्रभूषणा।—विक्रमोर्वशी, ३, १२

६५. अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः।—रघुवंश. ९, ४३

६६. ऋतुसंहार. ६, ४. २६

६७. विक्रमोर्वशी, पृ० ६०

६८. मेघदूत, पृ० ४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में उसकी विभिन्न रंगों में रँगाई की जाती थी। कार्दमिकांशुक का अर्थ यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कस्तूरी से रँगा हुआ वस्त्र किया है।[६९] कात्यायन के अनुसार भी शकल और कर्दम से वस्त्र रँगने का रिवाज था, जिन्हें शाकलिक या कार्दमिक कहते थे (४।२।२ वा०)।[७०]

बाणभट्ट ने अंशुक का कई बार उल्लेख किया है। वे इसे अत्यन्त पतला और स्वच्छ वस्त्र मानते थे।[७१] एक स्थान पर मृणाल के रेशों से अंशुक की सूक्ष्मता का दिग्दर्शन कराया है।[७२] बाण ने फूल-पत्तियों और पक्षियों की आकृतियों से सुशोभित अंशुक का भी उल्लेख किया है।[७३]

प्राकृत ग्रन्थों में 'अंसुय' शब्द आता है। आचारांग में अंशुक और चीनांशुक दोनों का पृथक्-पृथक् निर्देश है।[७४] बृहत्-कल्पसूत्र-भाष्य में भी दोनों को अलग-अलग गिनाया है।[७५]

प्राचीन भारतवर्ष में दुकूल के बाद सबसे अधिक व्यवहार अंशुक का ही देखा जाता है। सोमदेव के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि दशवीं शताब्दी में अंशुक का पर्याप्त प्रचार था।

कौशेय—कौशेय का उल्लेख सोमदेव ने विभिन्न देशों के राजाओं द्वारा भेजे गये उपहारों में किया है। कोशल नरेश ने सम्राट यशोधर को कौशेय वस्त्र उपहार में भेजे।[७६]

कौशेय शहतूत की पत्ती खाकर कोश बनानेवाले कीड़ों के रेशम से बनाए जानेवाले वस्त्र का नाम था।[७७] देशी भाषा में अब इसका 'कोशा' नाम शेष रह गया है। कोशा तैयार करने की वही पुरानी प्रक्रिया अब भी अपनाई जाती है। कोशा मँहगा, खूबसूरत तथा चिकना वस्त्र होता है। मँहगा होने के कारण जन-साधारण इसका सदा उपयोग नहीं कर पाते, फिर भी विशेष अवसरों के लिए

---

६९. कार्दमिकं कर्दमेण रक्तम्।—यश० उत्त० पृ० २२०, सं० टी०
७०. उद्धृत, अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २२५
७१. सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञावितानेनेवांशुकेनाच्छादितशरीरा।—हर्षचरित, पृ० ९
७२. विषतन्तुमयेनांशुकेन।—वही, पृ० १०
७३. बहुविधकुसुमशकुनिशतशोभितादतिस्वच्छादंशुकात्।—वही, पृ० ११४
७४. अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा।—आचारांग, २, वस्त्र०, १४, ६
७५. अंसुग चीणंसुगे च विगलेंदो।—बृहत् कल्पसूत्र०, ४, ३६६१
७६. कौशेयैः कौशलेन्द्रः।—यश० सं० पू०, पृ० ४७०
७७. मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोशे के वस्त्र बनवा कर रखते हैं। बुन्देलखण्ड में अभी भी कोशे के साफे बाँधने का रिवाज है।

कौशेय के विषय में कौटिल्य ने कुछ अधिक जानकारी दी है। अर्थशास्त्र में लिखा है कि पत्रोर्ण की तरह कौशेय की भी चार योनियाँ होतो हैं अर्थात् कौशेय के कीड़े नागवृक्ष, लिकुच, बकुल तथा वट के वृक्षों पर पाले जाते हैं और तदनुसार कौशेय भी चार प्रकार का होता है। नागवृक्ष पर पैदा किया गया पीतवर्ण, लिकुच पर पैदा किया गया गेहुआँ रंग का, बकुल पर पैदा किया गया सफेद तथा वट पर पैदा किया गया नवनीत के रंग का होता है। कौशेय चीन से भी आता था।[७८]

२. पोशाकें या पहनने के वस्त्र

पोशाक या पहनने के वस्त्रों में कंचुक,[७९] वारबाण[८०] तथा चोलक[८१] का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कंचुक—कंचुक एक प्रकार का कोट होता था, किन्तु सोमदेव ने चोली अर्थ में कंचुक का प्रयोग किया है। खेतों में जाती हुई कृषक वधुएँ कंचुक पहने थीं, जों कि उनके घटस्तनों के कारण फटे जा रहे थे।[८२] यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कंचुक का अर्थ कूर्पासक किया है।[८३]

वारबाण—वारबाण का उल्लेख यशस्तिलक में अमृतमती के वर्णन के प्रसंग में आया है। अमृतमती जब अष्टवक्र के साथ रति करके लौटी और जा कर यशोधर के साथ लेट गयी, उस समय जोर-जोर से चल रहे उसके श्वासोच्छ्वास से उसका वारबाण कंपित हो रहा था।[८४] श्रुतदेव ने वारबाण का अर्थ कंचुक किया है।[८५] अमरकोषकार ने भी कंचुक और वारबाण को एक माना

---

७८. नागवृक्षो लिकुचो वकुलो वटश्च योनयः। पीतिका नागवृक्षिका, गोधूमवर्णा लौकुची, श्वेता वाकुली, शेषा नवनीतवर्णा।......तथा कौशेयं चीनपटाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः। —अर्थशास्त्र, २, ११

७९. पीनकुचकुम्भदर्पत्रुटत्कंचुकाः।—यश० सं० पू०, पृ० १६

८०. निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तालितवारबाणम्।—वही, उत्त० पृ० ५१

८१. आप्रपदीनचोलकस्खलितगतिवैलक्ष्य......।—वही, सं० पू० पृ० ४६६

८२. देखिए— उद्धरण संख्या ७९

८३. कंचुकानि कूर्पासकाः।—यश० सं० पू०, पृ० १६ सं० टी०

८४. निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तालितवारबाणम्।—यश० उत्त०, पृ० ५१

८५. वारबाणं कंचुकम्।—वही, सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है।[८६] किन्तु वास्तव में वारबाण कंचुक की तरह का होकर भी कंचुक से भिन्न था। यह कंचुक की अपेक्षा कुछ कम लम्बा, घुटनों तक पहुँचने वाला कोट था।

काबुल से लगभग २० मील उत्तर खेरखाना से चौथी शती की एक संगमरमर की मूर्ति मिली है। वह घुटने तक लम्बा कोट पहने हैं, जो वारबाण का रूप है।[८७] ठीक वैसा ही कोट पहने अहिच्छत्रा के खिलौनों में एक पुरुष मूर्ति मिली है।[८८]

मथुरा कला में प्राप्त सूर्य और उनके पार्श्वचर दण्ड और पिंगल की वेशभूषा में जो ऊपरी कोट है वह वारबाण ही ज्ञात होता है। मथुरा संग्रहालय, मूर्ति सं० १२५६ की सूर्य की मूर्ति का कोट उपर्युक्त खेरखाना की सूर्य-मूर्ति के कोट जैसा ही है। मूर्ति सं० ५१३ की पिंगल की मूर्ति भी घुटने तक नीचा कोट पहने है। मथुरा में और भी आधे दर्जन मूर्तियों में यह वेशभूषा मिलती है।[८९]

वारबाण भारतीय वेशभूषा में सासानी ईरान की वेशभूषा से लिया गया। वारबाण पहलवी शब्द का संस्कृत रूप है। इसका फारसी स्वरूप 'बरवान' (Barwan) अरमाइक भाषा में 'बरपानक' (Varpanak) सीरिया की भाषा में इन्हीं से मिलता-जुलता 'गुरमानका' (Gurmanaka) और अरबी में 'जुरमानकह' (Zurmanaqah) रूप मिलते हैं, जो सब किसी पहलवी मूल शब्द से निकले होने चाहिए।[९०]

भारतीय साहित्य में वारबाण के उल्लेख कम ही मिलते हैं। कौटिल्य ने ऊनी कपड़ों में वारबाण की गणना की है।[९१] कालिदास ने रघु के योद्धाओं को वारबाण पहने हुए बताया है।[९२] मल्लिनाथ ने वारबाण का अर्थ कंचुक किया है।[९३] बाणभट्ट ने सेना में सम्मिलित हुए कुछ राजाओं को स्तवरक के बने वारबाण पहने बताया है।[९४] दधीचि का अंगरक्षक सफेद वारबाण पहने

---

८६. कञ्चुको वारबाणो स्त्री।—अमरकोष. २, ८, ६४

८७. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५०

८८. अग्रवाल—अहिच्छत्रा के खिलौने, चित्र ३०५, पृ० १७३, ऐन्शेएट इंडिया

८९. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५०, फुटनोट ८६

९०. ट्रांजेक्शन ऑफ दी फिलोलॉजिकल सोसायटी ऑफ लन्दन, १९४५, पृ० १५४, फुटनोट, हेनिंग। उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५१

९१......वारबाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं च आविकम्।—अर्थशास्त्र, २९, ११

९२. तद्योधवारबाणानाम्।—रघुवंश, ४।५५

९३. वारबाणानां कंचुकानाम्।—वही, सं० टी०

९४. तारमुक्तास्तवकितस्तवरकवारबाणैश्च।—हर्षचरित, पृ० २०६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था।[९५] कादम्बरी में भी बाणभट्ट ने वारबाण का उल्लेख किया है। चन्द्रापीड जब शिकार खेलने गया तब उसने वारबाण पहन रखा था। मृग-रक्त के सैकड़ों छींटें पड़ने से उसकी शोभा द्विगुणित हो गयी थी।[९६] मृगया से लौटकर चन्द्रापीड परिजनों के द्वारा लाये गये आसन पर बैठा और वारबाण उतार दिया।[९७]

उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वारबाण केवल जिरह-बख्तर के लिए नहीं, बल्कि साधारण वस्त्र के लिए भी आता था। कौटिल्य के उल्लेखानुसार तो वारबाण ऊनी भी बनते थे। बाणभट्ट को वारबाण की जानकारी हर्ष के दरबार में हुई होगी। भारतवर्ष में यह वस्त्र कब से आया, यह कहना मुश्किल है, किन्तु इसके अत्यल्प उल्लेखों से लगता है कि वारबाण का प्रयोग प्राय: राजघरानों तक ही सीमित रहा। सम्भव है अधिक मँहगा होने से इसका प्रचार जनसाधारण में न हो पाया हो। सोमदेव के उल्लेख से इतना निश्चय अवश्य हो जाता है कि दशवीं शताब्दी तक भारतीय राज्यपरिवारों में वारबाण का व्यवहार होता आया था तथा कंचुक की तरह वारबाण भी स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे।

चोलक—चोलक का उल्लेख सोमदेव ने सेनाओं के वर्णन के प्रसंग में किया है। गौड़ सैनिक पैरों तक लम्बा (आप्रपदीन) चोलक पहने थे।[९८] संस्कृत टीकाकार ने चोलक का अर्थ कूर्पासक किया है,[९९] किन्तु देखना यह है कि टीकाकार इन वस्त्रों के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किए बिना ही कुछ भी अर्थ कर देता है। ऊपर कंचुक के लिए कूर्पासक कहा है यहाँ चोलक के लिए। वास्तव में ये सभी वस्त्र अलग-अलग तरह के थे।

चोलक एक प्रकार का वह कोट था, जो कंचुक या अन्य सब प्रकार के वस्त्रों के ऊपर पहना जाता था। यह एक संभ्रान्त और आदरसूचक वस्त्र समझा जाता था। उत्तर-पश्चिम भारत में सर्वत्र नौशे के लिए इस वेश का रिवाज लोक में अभी भी है, जिसे चोला कहते हैं। चोला ढीला-ढाला गुल्फों तक लम्बा खुले गले का पहनावा है, जो सब वस्त्रों के ऊपर पहना जाता है।[१००]

---

९५. धवलवारबाणधारिणम्। - वही, पृ० २४
९६. मृगरुधिरलवशतशबलेन वारबाणेन।--कादम्बरी, पृ० २१५
९७. परिजनोपनीत उपविश्यासने वारबाणमवतार्य। —वही, पृ० २१६
९८. आप्रपदीनचोलकस्खलितगतिवैलक्ष्य।—यश० सं० पू०, ४६६
९९. चोलकः कूर्पासकः।—वही सं० टी०
१००. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संभवतः मध्य एशिया से आनेवाले शक लोग इस वेश को भारत में लाये, और उनके द्वारा प्रचारित होकर यह भारतीय वेशभूषा में समा गया।[१०१]

मथुरा संग्रहालय में जो कनिष्क की मूर्ति है उसमें नीचे लम्बा कंचुक और ऊपर सामने से धुराधुर खुला हुआ एक कोट दिखाया गया है, जिसकी पहचान चोलक से की जा सकती है।[१०२] मथुरा से प्राप्त हुई सूर्य की कई मूर्तियों में भी इसी प्रकार के खुले गले का ऊपरी पहरावा पाया जाता है। चष्टन की मूर्ति का भी ऊपरी लम्बा वेश चोलक ही ज्ञात होता है। इसका गला सामने से तिकोना खुला है। कनिष्क और चष्टन के चोलकों में अन्तर है। ये दोनों दो प्रकार के हैं। कनिष्क का धुराधुर बीच में खुलने वाला है और चष्टन का दुपरती, जिसका ऊपर का परत बायीं तरफ से खुलता है तथा बीच में गले के पास तिकोना भाग खुला दिखाई देता है। कनिष्क की शैली का चोलक मथुरा संग्रहालय की डी० ४६ संज्ञक मूर्ति में और भी स्पष्ट है।[१०३]

मध्य एशिया से लगभग सातवीं शती का एक ऐसा ही, पुरुष का चोलक प्राप्त हुआ है, जिसका गला तिकोना खुला है।[१०४] चष्टन-शैली के चोलक का एक सुन्दर नमूना लाप मरुभूमि से प्राप्त मृण्मय मूर्ति के चोलक में उपलब्ध है। यह उत्तरी वाईवंश (३८६-५३५) के समय का है।[१०५]

बाणभट्ट ने राजाओं के वेशभूषा में चीन-चोलक का उल्लेख किया है।[१०६]

चण्डातक—चण्डातक का उल्लेख सोमदेव ने चण्डमारी देवी का वर्णन करते हुए किया है। गीला चमड़ा ही उस देवी का चण्डातक था।[१०७]

चण्डातक का अर्थ अमरकोषकार ने आधे जांघों तक पहुँचने वाला अधोवस्त्र

---

१०१. अग्रवाल वही, पृ० १५१। मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० १६१

१०२. मथुरा म्युजियम हैंडबुक, चित्र ४, उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५१

१०३. अग्रवाल—वही, पृ० १५२

१०४. वायवी सिलवान—इन्वेस्टिगेशन ऑफ सिल्क फ्राम एड्सन गोल एण्ड लापनार (स्टाकहोम, १९४९), प्ले० ८-ए। उद्धृत, अग्रवाल—वही, पृ० १५२

१०५. वायवी सिलवान—वही, पृ० ८३; चित्र सं० ३२। उद्धृत, अग्रवाल—वही, पृ० १५२

१०६. चापचितचीनचोलकैः।—हर्षचरित, पृ० २०६

१०७. चण्डातकमार्द्रचर्माणि।—यश० सं० पू०, पृ० १५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया है।[१०८] यह एक प्रकार का जांघिया या घंघरीनुमा वस्त्र था, जिसे स्त्री और पुरुष दोनों पहनते थे।[१०९]

उष्णीष—शिरोवस्त्र में सोमदेव ने उष्णीष और पट्टिका का उल्लेख किया है। उत्तरापथ के सैनिक रंग-विरंगा उष्णीष पहने थे।[११०] दक्षिणापथ के सैनिकों ने बालों को पट्टिका से कसकर बान्ध रखा था।[१११]

सोमदेव के उल्लेख से उष्णीष के आकार-प्रकार या बाँधने के ढंग पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता, केवल इतना ज्ञात होता है कि उष्णीष कई रंग के बनते थे। सम्भव है इनकी रंगाई बाँधनू के ढंग से की जाती हो। बुन्देलखण्ड के लोकगीतों में पंचरंग पाग (उष्णीष) के उल्लेख आते हैं।

डॉ० मोतीचन्द्र ने साहित्य तथा भरहुत, साँची और अमरावती की कला में अंकित अनेक प्रकार के उष्णीषों का वर्णन भारतीय वेशभूषा में किया है।

कौपीन—कौपीन का उल्लेख सोमदेव ने एक उपमालंकार में किया है। दाक्षिणात्य सैनिक जांघों से इकदम सटा हुआ वस्त्र पहने थे, जिससे वे कौपीन-धारी वैखानस की तरह लगते थे।[११२]

कौपीन एक प्रकार का छोटा चादर कहलाता था, जिसका उपयोग साधु पहनने के काम में करते थे।

उत्तरीय—उत्तरीय का उल्लेख भी तीन बार हुआ है। मुनिकुमारयुगल शरीर की शुभ्र प्रभा के कारण ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे उन्होंने दुकूल का उत्तरीय ओढ़ रखा हो।[११३] कुमार यशोधर के राज्याभिषेक का मुहूर्त निकालने के लिए जो ज्योतिषी लोग इकट्ठे हुए थे वे दुकूल के उत्तरीय से अपने मुँह ढँके थे।[११४]

राजमाता चन्द्रमति ने संध्याराग की तरह हलके लाल रंग का उत्तरीय ओढ़ रखा था (सन्ध्यारागोत्तरीयवसनाम्, उत्त० ८२)। ओढ़नेवाले चादर को उत्तरीय कहा जाता था। अमरकोषकार ने उत्तरीय को ओढ़ने वाले वस्त्रों में गिनाया है।[११५]

---

१०८. अधोरुकं वरस्त्रीणां स्याच्चण्डातकमस्त्रियाम्।—अमरकोष, २, ६, ११६

१०९. मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० २३

११०. भागभागार्पितानेकवर्णवसनवेष्टितोष्णीषम्।—यश० सं० पू० पृ० ४६५

१११. पट्टिकाप्रतानघटितोद्भटजूटम्। पृ० ४६१

११२. आवंक्षणोत्क्षिप्तनिविडनिवसनं सकौपीनं वैखानसवृन्दमिव।—पृ० ४६२

११३. वपुप्रभापटलदुकूलोत्तरीयम्।—पृ० १५६

११४. उत्तरीयदुकूलांचलपिहितबिम्बिना। - पृ० ३१६

११५. संव्यानमुत्तरीयं च।—अमरकोष, २, ६, ११८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीवर—एक उपमा अलंकार में चीवर का उल्लेख है। चीवर की ललाई से अन्तःकरण के अनुराग की उपमा दी गयी है।[११६]

बौद्ध भिक्षुओं के पहिनने-ओढ़ने के काषाय वर्ण के चादर चीवर कहलाते थे। महावग्ग में चीवरक्खन्धकं नाम का एक स्वतन्त्र प्रकरण है, जिसमें भिक्षुओं के लिए तरह-तरह की कथाओं के माध्यम से चीवरों के विषय में ज्ञातव्य सामग्री प्रस्तुत की गयी है।[११७] चीवर कपड़ों के अनेक टुकड़ों को एक साथ सिलकर बनाए जाते हैं।

अवान—आश्रमवासी तपस्वियों के वस्त्रों के लिए यशस्तिलक में अवान शब्द आया है।[११८]

परिधान—अधोवस्त्रों में सोमदेव ने परिधान और उपसंव्यान शब्दों का उल्लेख किया है। एक उक्ति में सोमदेव कहते हैं कि जो राजा अपने देश की रक्षा न करके दूसरे देशों को जीतने की इच्छा करता है वह उस पुरुष के समान है जो धोती खोल कर सिर पर साफा बाँधता है।[११९] अमरकोषकार ने नीचे पहननेवाले वस्त्रों में परिधान की गणना की है।[१२०] बुन्देलखण्ड में अभी भी धोती को पर्दनी या परदनिया कहा जाता है, जो इसी परिधान शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है।

उपसंव्यान—उपसंव्यान का दो बार उल्लेख है। एक कथा के प्रसंग में एक अध्यापक बकरा खरीदता है और अपने शिष्य से कहता है, कि इसे उपसंव्यान से अच्छी तरह बाँधकर लाना।[१२१] यहाँ पर संस्कृत टीकाकार ने उपसंव्यान का अर्थ उत्तरीय वस्त्र किया है।[१२२]

राजमाता ने सभामंडप में जाते समय उपसंव्यान धारण किया था (अरुणमणिमौलिमयूखोन्मुखराजिरंजितोपसंव्यानाम्, उत्त० ८२)। यहाँ संस्कृत टीकाकार ने अधोवस्त्र ही अर्थ किया है।

---

११६. चीवरोपरागनिरतान्तःकरणेन।—यश० उत्त०, पृ० ८

११७. महावग्ग, चीवरक्खन्धकं

११८. अपरगिरिशिखराश्रयाश्रमवासतापसावानवितानितधातुजलपाटलपटप्रतानस्पृशि।—यश० उत्त०, पृ० ५।

११९. अकृत्वा निजदेशस्य रक्षां यो विजिगीषते।
स: नृप: परिधानेन वृत्तमौलिः पुमानिव॥—यश० सं० ६०, पृ० ७४

१२०. अन्तरीयोपसंव्यानपरिधानान्यधोंशुके।—अमरकोष, २. ६, ११७

१२१. तदतियत्नमुपसंव्यानेन वद्ध्वानीयताम्।—यश० उत्त० पृ० १३२

१२२. उपसंव्यानेन उत्तरीयवस्त्रेण।—वही, सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिधान और उपसंव्यान में क्या अन्तर था, यह स्पष्ट नहीं होता।[१२३] अमरकोषकार ने दोनों को अधोवस्त्र कहा है। हेमचन्द्र ने भी दोनों को अधोवस्त्र कहा है।[१२४] यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार के एक स्थान पर अधोवस्त्र और एक स्थान पर उत्तरीय अर्थ करने से प्रतीत होता है कि टीकाकार को उपसंव्यान के अर्थ का ठीक पता नहीं था। अमरकोषकार ने अधोवस्त्र के लिए उपसंव्यान और उत्तरीय के लिए संव्यान[१२५] पद दिया है। सम्भवतः इसी शब्द व्यवहार से भ्रमित होकर टीकाकार ने यह अर्थ कर दिया।

गुह्या—गुह्या का उल्लेख शंखनक नामक दूत के वर्णन में हुआ है। शंखनक ने पुराने गोन की गुह्या पहन रखी थी।[१२६] गुह्या का अर्थ श्रुतसागर ने कच्छोटिका किया है।[१२७]

बुन्देलखण्ड में बिना सिले वस्त्र को लंगोट की तरह पहनने को कछुटिया लगाना कहते हैं। यहाँ गुह्या से सोमदेव का यही तात्पर्य प्रतीत होता है।

हंसतूलिका—हंसतूलिका का उल्लेख सोमदेव ने अमृतमति महारानी के भवन के प्रसंग में किया है। अमृतमति के पलंग पर हंसतूलिका बिछी थी, जिस पर तरंगित दुकूल का चादर बिछा था।[१२८] संस्कृत टीकाकार ने हंसतूलिका का अर्थ प्रास्तरण विशेष किया है।[१२९]

उपधान—तकिए के लिए सोमदेव ने अत्यन्त प्रचलित संस्कृत शब्द उपधान का प्रयोग किया है। अमृतमती के अन्तःपुर में पलंग के दोनों ओर दो तकिए रखे थे, जिससे दोनों किनारे ऊँचे हो गये थे।[१३०]

कन्था—यशस्तिलक में कन्था का उल्लेख दो बार आया है। शीतकाल के वर्णन में सोमदेव ने लिखा है कि इतने जोरों की ठंड पड़ रही थी कि

---

१२३. देखिये—उद्धरण १२०

१२४. परिधानं त्वधोंशुकम्, अन्तरीयं निवसनमुपसंव्यानमित्यपि, ।—अभिधान चिन्तामणि, ३।३३६-३३७

१२५. संव्यानमुत्तरीयं च ।—अमरकोष, २।६।११८

१२६. पटच्चरणपर्याणगोणीगुह्यापिहितमेहनः ।—यश० सं० पू०. पृ० ३९८

१२७. गुह्या कच्छोटिका ।—वही. सं० टी०

१२८. तरंगितदुकूलपटप्रसाधितहंसतूलिकम् ।--यश० उत्त०. पृ० ३०

१२९. हंसतूलिका प्रास्तरणविशेषः ।—वही, सं० टी०

१३०. उपधानद्वयोत्तम्भितपूर्वापरभागम् ।—यश० उत्त०, पृ० ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गरीब परिवारों में पुरानी कन्थाएँ चिथड़ी हुई जा रही थीं।[१३१] एक अन्य स्थल पर दुःस्वप्न के कारण राज्य छोड़ने के लिए तत्पर सम्राट यशोधर को राजमाता समझाती है कि जूं के भय से क्या कन्था भी छोड़ दी जाती है।[१३२]

कन्था, जिसे देशी भाषा में कथरी कहा जाता है, अनेक पुराने जीर्ण-शीर्ण कपड़ों को एक साथ सिल कर बनाए गये गद्दे को कहते हैं। गरीब परिवार, जो ठंड से बचाव के लिये गर्म या रूई भरे हुए कपड़े नहीं खरीद सकते, वे कन्थाएँ बना लेते हैं। ओढ़ने और बिछाने दोनों कामों में कन्थाओं का उपयोग किया जाता है। मोटी होने से इन्हें जल्दी से धोना भी मुश्किल होता है, इसी कारण इनमें जूँ भी पड़ जाती है।

नमत—यशस्तिलक में नमत[१३३] (हि० नमदा) का उल्लेख एक ग्राम के वर्णन के प्रसंग में आया है। उज्जयिनी के समीप में एक ग्राम के लोग नमदे और चमड़े की जीनें बना कर अपनी आजीविका चलाते थे।[१३४] संस्कृत टीकाकार ने नमत का अर्थ ऊनी खेस या चादर किया है।[१३५]

नमदे भेड़ों या पहाड़ी बकरों के रोएँ को कूट कर जमाए हुए वस्त्र को कहते हैं। काश्मीर के नमदे अभी भी प्रसिद्ध हैं।

निचोल—यशस्तिलक में निचोल के लिए निचल शब्द आया है।[१३६] संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर निचोल का अर्थ कंचुक किया है[१३७] तथा दूसरे स्थान पर प्रावरण वस्त्र किया है।[१३८] पं० सुन्दरलाल शास्त्री ने भी इसी के आधार पर हिन्दी अनुवाद में भी उक्त दोनों ही अर्थ कर दिये हैं।[१३९] प्रसंग की दृष्टि से निचल का अर्थ कंचुक यहाँ ठीक नहीं बैठता। अमरकोषकार ने

---

१३१. शिथिलयति दुर्विधकुटुम्बेषु जरत्कन्थापटच्चराणि।—यश० सं० पू०, पृ० ५७

१३२. भयेन किं मन्दविसर्पिणीनां कन्थां त्यजन्कोऽपि निरीक्षितोऽस्ति।
—यश० उत्त०, पृ० ८९

१३३. मुद्रित प्रति का तमत पाठ गलत है।

१३४. नमताजिनजेणाजीवनोटजाकुले।—यश० उत्त०, पृ० २१८

१३५. नमतम् ऊर्णामयास्तरणम्।—वही, सं० टी०

१३६. जगद्वलयनीलनिचलेषु, निचलसनाथनृपतिचापसंपादिषु।
—यश० सं०, पृ० ७१-७२

१३७. नीलनिचलः कृष्णवर्णनिचोलकः कंचुकः।—वही, सं० टी०

१३८. निचलसनाथानि प्रावरणवस्त्रसहितानि।—वही, सं० टी०

१३९. सुन्दरलाल शास्त्री—हिन्दी यशस्तिलक, पृ० ४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निचोल का अर्थ प्रच्छदपट अर्थात् बिछाने का चादर किया है।[१४०] क्षीरस्वामी ने इसे और भी अधिक स्पष्ट किया है कि जिससे शय्या आदि प्रच्छादित की जाए उसे निचोल कहते हैं।[१४१] शब्दरत्नाकर में भी निचोलक, निचुलक, निचोल, निचोलि और निचुल ये पाँच शब्द प्रच्छादक वस्त्र के लिए आये हैं।[१४२] यही अर्थ यशस्तिलक में भी उपयुक्त बैठता है। सोमदेव ने लिखा है कि काले-काले मेघ पृथ्वीमण्डल पर इस तरह छा गये, जैसे नीला प्रच्छदपट बिछा दिया हो।[१४३]

वितान—यशस्तिलक में सिचयोल्लोच तथा वितान शब्द आए हैं। सोमदेव ने लिखा है कि राजपुर में गगनचुम्बी शिखरों पर लगे हुए सुवर्ण-कलशों से निकलने वाली कान्ति से आकाश-लक्ष्मी के भवन में सिचयोल्लोच-सा बन रहा था।[१४४]

एक दूसरे प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि अस्ताचल पर रहनेवाले साधुओं ने अपने अवान सूखने के लिए वितान की तरह डाल रखे थे।[१४५] चण्डमारी के मन्दिर में पुराने चमड़े के बने वितान का उल्लेख है।[१४६]

अमरकोष में उल्लोच और वितान समानार्थी शब्द हैं।[१४७]

---

१४०. निचोलः प्रच्छदपटः।—अमरकोष, २, ६, ११६

१४१. निचोलते अनेन निचोलः, येन तूलशय्यादि प्रच्छाद्यते।—वही, सं० टी०

१४२ निचोलको निचुलको निचोलं च निचोल्यपि।
निचुलो वसत्थिकायां स्मृता पर्यस्तिकायुतः॥—शब्दरत्नाकर, ३, २२५

१४३. पयोधरोन्नतिजनितजगद्वलयनीलनिचलेषु।—यश० सं० पू०. पृ० ७१

१४४. अप्रतनरत्नचयनिचितकांचनकलशविसरदविरलकिरणजालजनितान्तरिक्षलक्ष्मीनिवासविचित्रसिचयोल्लोचैः।—यश० सं० पू०, पृ० १८-१९

१४५. अपरगिरिशिखराश्रयाश्रमावासतापसावानविताननितधातुजलपाटलप्रतानस्पृशि।
—यश० उत्त०, पृ० ५

१४६. जीर्णचर्मविनिर्मितवितानम्।—यश० सं० पू०, पृ० ४८

१४७. अस्त्री वितानमुल्लोचो।—अमरकोष, २, ६, १२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आभूषण

यशस्तिलक में सोमदेव ने शरीर के विभिन्न अंगों में धारण किये जाने वाले विभिन्न अलंकारों या आभूषणों का उल्लेख किया है। शिरोभूषण में क्रिरीट, मौलि, पट्ट, मुकुट और कोटीर, कर्णाभरणों में अवतंस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल तथा कुण्डल, गले के आभूषणों में एकावली, कण्ठिका, मौक्तिक-दाम तथा हारयष्टि, भुजा के आभूषणों में कंकरण और वलय, अंगुली के आभूषण में उर्मिका तथा अंगुलीयक, कमर के आभूषणों में काँची, मेखला, रसना तथा सारसना और पैर के आभूषणों में मंजीर, हिंजीरक, नूपुर, हंसक तथा तुलाकोटि के उल्लेख हैं। भारतीय अलंकारशास्त्र की दृष्टि से यह सामग्री विशेष महत्व की है। विशेष विवरण निम्नप्रकार है—

शिरोभूषण

शिरोभूषण में किरीट, मौलि, पट्ट, और मुकुट का उल्लेख है।

किरीट—किरीट का दो बार उल्लेख हुआ है। मंगलपद्य में कहा गया है कि जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों का प्रतिबिम्ब नमस्कार करते हुए इन्द्र के किरीट में पड़ रहा था।[1] दूसरे प्रसंग में मुनिमनोहर नामक मेखला को अटवी रूप लक्ष्मी के किरीट की शोभा के समान कहा गया है।[2]

मौलि—मौलि का उल्लेख भी दो बार हुआ है। राजपुर के उद्यान को महादेव के मौलि के समान कहा गया है।[3] एक प्रसंग में राजाओं के मौलियों का उल्लेख है। पाँचाल नरेश के दूत से यशोधर का एक योद्धा कहता है कि यदि कोई राजा हठ के कारण अपना मौलि यशोधर के चरणों में नहीं झुकाता तो युद्ध में उसका सिर काट लूँगा।[4]

---

१. त्रिविष्टपाधीशकिरीटोदयकोटिषु।—सं० पू०, पृ० २
२. किरीटोच्छ्र्य: इवाटवीलक्ष्म्या:।—पृ० १३२
३. ईशानमौलिमिव।—पृ० ६५
४. हठविलुठितमौलि:।—पृ० ५५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पट्ट—पटबन्ध उत्सव के प्रसंग में पट्ट का उल्लेख है।[५] पट्ट सिर पर बाँधने का एक विशेष प्रकार का आभूषण था। यह प्रायः सोने का होता था जो उष्णीष या शिरो-भूषा के ऊपर बाँधा जाता था। केवल राजा, युवराज, राजमहिषी और सेनापति को पट्ट बाँधने का अधिकार था। बृहत्संहिता (४८·२-४) में पाँच प्रकार के पट्टों की लम्बाई, चौड़ाई और शिखा का विवरण दिया गया है। पाँचवें प्रकार का पट्ट प्रसाद-पट्ट कहलाता था, जो सम्राट की कृपा से किसी को भी प्राप्त हो सकता था।[६]

मुकुट—एक प्रसंग में महासामन्तों के मुकुटों का उल्लेख है।[७]

कर्णाभूषण

कर्ण के आभूषणों में अवतंस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल तथा कुण्डल का उल्लेख है।

अवतंस—अवतंस प्रायः पल्लवों अथवा पुष्पों का बनता था। यशस्तिलक में विभिन्न प्रसंगों पर पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल, कुवलय तथा कैरव के बने अवतंसों के उल्लेख आये हैं। एक स्थान पर रत्नावतंस का भी उल्लेख है।

पल्लवावतंस—प्रमदवन की क्रीड़ाओं के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि कपोलों पर आये हुए स्वेदबिन्दु रूप मंजरी-जाल से कामिनियों के अवतंस-पल्लव पुष्पित से हो गये थे।[८] यन्त्रधारागृह के प्रसंग में भी अवतंस किसलय का उल्लेख है।[९]

पुष्पावतंस—राजपुर की कामिनियाँ कचनार के विकसित हुए पुष्पों में चम्पा के पुष्प लगाकर अवतंस बनाती थीं।[१०] उत्पल के अवतंसों को छूती हुई कुन्तल वल्लरी ऐसी प्रतीत होती थी जैसे उत्पल पर भौंरे बैठे हों।[११] कानों में पहने

---

५. पट्टबन्धविवाहोत्सवाय।—पृ० २८८
पट्टबन्धोत्सवोपकरणसंभारः।—पृ० २८६

६. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५५

७. महासामन्तमुकुटमाणिक्य...।—यश० सं० पू०, पृ० ३३६

८. कपोलतलोल्लसत्स्वेदजलमंजरीजालकुसुमितावतंसपल्लवाभिः।—पृ० ३८

९. वल्लभावतंसकिसलयाश्वासम्।—पृ० ५३१

१०. चम्पकचितविकचकचनारविरचितावतंसेन।—पृ० ११६

११. कर्णावतंसोत्पलश्लिष्टेन्दिन्दिरसुन्दरद्युतिः कुन्तलवल्लरी।—पृ० १२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए अवतंसोत्पल विरह की अवस्था में मुकुलित हो जाते थे।[१२] मुनिकुमार युगल कोई अलंकार नहीं पहने थे, फिर भी कानों पर पड़ रही अपने नीले नेत्रों की कान्ति से लगते थे मानों कुवलय के अवतंस पहने हों।[१३] एक स्थान पर उत्प्रेक्षालंकार में कुवलयावतंस का उल्लेख है।[१४] यन्त्रधारागृह में यन्त्रस्त्री को भी कुवलय के अवतंस पहनाए गये थे।[१५]

उत्पल और कुवलय दोनों नीले कमल के नाम हैं,[१६] इसलिए उपर्युक्त काव्यालंकारों के साथ उनका सामंजस्य बैठाया गया है।

कैरव[१७] अर्थात् सफेद कमल के अवतंस का भी एक प्रसंग में उल्लेख है।[१८] यहाँ सोमदेव ने अवतंस के लिए केवल वतंस शब्द का प्रयोग किया है। भागुरि के अनुसार 'अव' और 'अपि' उपसर्गों के अकार का लोप हो जाता है। एक स्थान पर रत्नावतंस का उल्लेख है (धर्मरत्नावतंसः, सं० पू० ५६६)।

अवतंस पहनने का रिवाज सम्भवतः कर्णाटक तथा बंगाल में अधिक था, क्योंकि सोमदेव ने एक प्रसंग पर मारिदत्त राजा को कर्नाटक देश की कामिनियों के लिए अवतंस के समान[१९] तथा एक अन्य प्रसंग में बंगाल की वनिताओं के कर्णावतंसों की तरह बताया है।[२०] एक स्थान पर पद्मावतंस का उल्लेख है (पद्मावतंसरमणीरमणीयसारः, ५९७, पू०)।

कर्णपूर—कर्णपूर का उल्लेख चार बार हुआ है। एक स्थान पर स्त्रियों के मधुरालाप को कर्णपूर के समान बताया है।[२१] दूसरे प्रसंग में सूक्त गीतामृत को कर्णपूर की तरह स्वीकृत करते हुए लिखा है।[२२] यन्त्रधारागृह के प्रसंग में मरुए

---

१२. मुकुलितं कर्णावतंसोत्पलैः।—पृ० ६१३

१३. अनवतंसमपि कुवलयितकर्णम्।—पृ० १५६

१४. कुवलयैः कर्णावतंसोदयैः।—पृ० ६१२

१५. कुवलयेनावतंसापितेन।—पृ० ५३१

१६. स्यादुत्पलं कुवलयमथ नीलाम्बुजन्म च।—अमरकोष, १-६३७

१७. सिते कुमुदकैरवे।—वही, १-६-३८

१८. कैरवावतंसः। – पृ० ६१०

१९. कर्णाटयुवतिसुरतावतंस।—पृ० १८०

२०. बंगीवनिता श्रवणावतंस।—पृ० १८८

२१. स्मरसारालापकर्णपूरैः।—पृ० २४

२२. सूक्तगीतामृतरसं कर्णपूरतां नयन्।—पृ० ३६६

CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के फूल से बने कर्णपूर का उल्लेख है।[२३] यशोधर को दशार्ण देश की स्त्रियों के लिए कर्णपूर कहा है (सं० पू० पृ० ५६८)। संस्कृत टीकाकार ने कर्णपूर का पर्याय कर्णावतंस दिया है।[२४]

कर्णपूर के लिए देशी भाषा में कनफूल शब्द चलता है (कर्णपूर > कर्णफूल > कनफूल) । कर्णपूर या कनफूल विकसित पुष्प या कुड्मल के आकार के बनते हैं।

कर्णिका—यशस्तिलक में कर्णिका का केवल एक बार उल्लेख है। द्रामिल सैनिक अपने लम्बे-लम्बे कानों में सोने की कर्णिका पहने थे।[२५] सोमदेव ने लिखा है कि सुवर्ण कर्णिकाओं से निकलने वाली किरणें कपोलों पर पड़ती थीं, जिससे लगता था कि कपोलों पर फूले हुए कनेर के उपवन की रचना की गयी है।[२६] इस उपमा से लगता है कि कर्णिका कनेर के फूल के आकार की बनती होगी। अमरकोषकार ने कर्णिका और तालपत्र को पर्याय माना है।[२७] क्षीरस्वामी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि कर्णिका तालपत्र की तरह सोने की भी बनती थी।[२८] इससे स्पष्ट है कि कर्णिका तालपत्र की तरह गोल आभूषण था, आजकल इसे तरोना कहते हैं।

कर्णोत्पल—ऊपर उत्पल के अवतंसों का वर्णन किया गया है; कर्णोत्पल का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने यौधेय की कृषक वधुओं के नेत्रों की उपमा विकसित हुए कर्णोत्पल से दी है।[२९]

कर्णोत्पल सम्भवतः उत्पल अर्थात् नीले कमल का बनता था अथवा उसी आकार का सोने आदि का भी बनता हो। अजन्ता के चित्रों में भी कर्णोत्पल का चित्रांकन हुआ है।[३०]

---

२३. कर्णपूरमरुबकोद्भेदसुन्दरगण्डमण्डलाभिः।—पृ० ५३२
२४. कर्णपूरं कर्णाभरणं श्रवणावतंसः।—सं० टी० पृ० २४
२५. अतिप्रलम्बश्रवणदेशदोलायमानस्फारसुवर्णकर्णिका।—पृ० ४६३
२६. सुवर्णकर्णिकाकिरणकोटिकमनीयमुखमण्डलतयाकपोलस्थलीपरिकल्पितप्रफुल्लकर्णिकारकाननमिव।—पृ० ४६३
२७. कर्णिका तालपत्रं स्यात्।—अमरकोष, २,६,१०३
२८. कर्णालंकारस्तालपत्रवत्सौवर्णोऽपि। वहीं, सं० टी०
२९. विकचकर्णोत्पलस्पर्धितरलेक्षणाः।—यश० पृ० १५
३०. औंधकृत अजन्ता, फलक ३३। उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन फलक २०, चित्र ७८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुण्डल—यशस्तिलक में कुण्डल का उल्लेख तीन बार हुआ है। शंखनक कपास के कुड्मल की आकृति के बने कुण्डल पहने था।[३१] स्वयं सम्राट यशोधर ने चन्द्रकान्त के बने कुण्डल धारण किये थे।[३२] मुनिकुमार युगल बिना आभूषणों के ही अपने कपोलों की कान्ति से ऐसे लगते थे मानों कानों में कुण्डल धारण किये हों।[३३]

शंखनक के 'तूलिनीकुसुमकुड्मल' के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कुण्डल कई आकृतियों के बनते थे। अमरकोषकार के अनुसार कुण्डल कान को लपेट कर पहना जाता था।[३४] बुन्देलखण्ड में कहीं-कहीं अभी भी ऐसे कुण्डलों का रिवाज है। इनमें गोल बाली तथा सोने की इकहरी लड़ी लगी होती है। लड़ी को कानों के चारों ओर लपेट लिया जाता है तथा बाली को कान के निचले हिस्से में छिद्र करके पहना जाता है। अजन्ता की कला में इस तरह के कुण्डल का चित्रांकन देखा जाता है।[३५]

गले के आभूषण

गले के आभूषणों में एकावली, कण्ठिका, मौक्तिकदाम, हार तथा हारयष्टि के उल्लेख हैं।

एकावली—सम्राट यशोधर के पिता जब संन्यस्त होने लगे तो उन्होंने अपने गले से एकावली निकालकर यशोधर के गले में बाँध दी।[३६] यह एकावली उज्ज्वल मोती को मध्यमणि के रूप में लगा कर बनायी गयी थी (तारतरल-मुक्ताफलाम् २८८)।[३७] सोमदेव ने इसे समस्त पृथ्वीमण्डल को वश में करने के लिये आदेशमाला के समान कहा है (अखिलमहीवलयवश्यतादेशमालामिव, २८८)।

---

३१. तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृतिजातुषोत्कर्षितकर्णकुण्डलः।—यश० सं० पू०, पृ० ३९८

३२. चन्द्रकान्तकुण्डलाभ्यामलंकृतश्रवणः। पृ० ३६७

३३. कपोलकान्तिकुण्डलितमुखमण्डलम्। पृ० १५६

३४. कुण्डलं कर्णवेष्टनम्।—अमरकोष, २.६,१०३

३५. औंधकृत अजन्ता फलक ३२, उद्धृत,
अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, फलक २०, चित्र ७८

३६. आदाय स्वकीयात् कण्ठदेशात्...एकावली बबन्ध।—यश० सं० पू०, पृ० २८८

३७. तरलोहारमध्यगः।—अमरकोष, २, ६, १५५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस विशेषण को समझने के लिए किंचित् पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। वास्तव में यह विशेषण अपने साथ एक परम्परा लिए है। गुप्तयुग से ही विशिष्ट आभूषणों के बारे में तरह-तरह की किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी थीं। बाण ने एकावली के विषय में एक मनोरंजक प्रसंग दिया है—

दिवाकरमित्र ने हर्षको एकावली के सम्बन्ध में एक रहस्यपूर्ण बात बतायी—"तारापति चन्द्रमा ने यौवन के उन्माद में बृहस्पति की स्त्री तारा का अपहरण किया और स्वर्ग से भाग कर उसके साथ इधर-उधर घूमता रहा। देवताओं के समझाने-बुझाने से उसने तारा को तो बृहस्पति को वापिस कर दिया, किन्तु उसके विरह में जलता रहा। एक बार उदयाचल से उठते हुए उसने समुद्र के विमल जल में पड़ी अपनी परछाई देखी, और काम भाव से तारा के मुख का स्मरण करके विलाप करने लगा। समुद्र में इसके जो आँसू गिरे उन्हें सीपियाँ पी गयीं और उनके भीतर सुन्दर मोती बन गये। उन मोतियों को पाताल में वासुकि नाग ने किसी तरह प्राप्त किया और उन मुक्ताफलों को गूंथकर एकावली बनायी, जिसका नाम मंदाकिनी रखा। सब ओषधियों के अधिपति सोम के प्रभाव से वह अत्यन्त विषघ्नी है और हिमरूपी अमृत से उत्पन्न होने के कारण सन्ताप-हारिणी है। इसलिए विष-ज्वालाओं को शान्त करने के लिए वासुकि सदा उसे पहने रहता था। कुछ समय बाद ऐसा हुआ कि नाग लोग भिक्षु नागार्जुन को पाताल में ले गये और वहाँ नागार्जुन ने वासुकि से उस माला को माँग कर प्राप्त कर लिया। रसातल से बाहर आकर नागार्जुन ने मन्दाकिनी नामक वह एकावली माला अपने मित्र त्रिसमुद्राधिपति सातवाहन नाम के राजा को प्रदान की और वही माला शिष्य-परम्परा द्वारा हमारे हाथ में आयी।"[३८] (हर्ष० २५१)

सोमदेव के समय तक सम्भवतया ऐसी मान्यताएँ चलती रहीं, जिसे सोमदेव ने संकेत मात्र से कह दिया।

एकावली मोतियों की इकहरी माला को कहते थे।[३९] गुप्तकालीन शिल्प की मूर्तियों और चित्रों में इन्द्रनील की मध्यगुरिया सहित मोतियों की एकावली बराबर पायी जाती है।[४०]

---

३८. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १९७

३९. एकावल्येकयष्टिका।—अमरकोष, २, ६, १०६

४०. अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १९८। फलक २४, चित्र ६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कण्ठिका—कण्ठिका का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख हुआ है। शंकनक ने अनेक तरह की जड़ें मंत्रित करके लपेटी हुई कण्ठिका पहन रखी थी।[४१] दाक्षिणात्य सैनिक अनेक प्रकार के चित्र विचित्र गुरियों की बनी तीन लड़ियों की कण्ठिकाएँ पहने थे।[४२]

हार—हार का उल्लेख यशस्तिलक में सात बार हुआ है। राजपुर की स्त्रियाँ उदारहार पहनती थीं।[४३] ग्रीष्म ऋतु की भयंकर धूपरूप अग्नि के सम्पर्क से नायिकाओं के मौक्तिक हार फूटे जा रहे थे (तीव्रातपातंकपावकसम्पर्कस्फुटन्मौक्तिकविरहणीहृदयहारे, सं० पू० ५२२)। पाण्ड्य जनपद का राजा सम्राट यशोधर को प्राभृत में देने के लिए मुक्ताफल के मध्यमणि वाला हार लेकर उपस्थित हुआ।[४४] यहाँ सम्भवतया हार से प्रयोजन एकावली से है। वैतालिकों ने तारहारस्तनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने की यशोधर महाराज से प्रार्थना की।[४५] तारोत्तरल हारों की कान्ति से चन्द्रमा का प्रकाश सान्द्र (घना) हो गया।[४६] विरहणी नायिका की कंपकपी से हार चंचल हो उठे।[४७] किसी विरहणी नायिका ने बन्धु-बान्धवों के कहने से आभूषण पहने भी तो कटि की करधनी गले में और गले का हार नितम्ब में पहन लिया।[४८] यशोधर ने सभामण्डप में जाने के पूर्व मुक्ताफल का हार पहना (गुणवतां वर हर, कण्ठे गृहीत्वा मुक्ताफलभूषणानि)।

हारयष्टि—हारयष्टि का उल्लेख दो बार हुआ है। गुल्फों तक लटकती हुई हारयष्टियों से टूट-टूट कर गिरने वाले मोतियों का समूह ऐसा लगता था मानों होनेवाली संग्राम विजय पर देवांगनाओं ने पुष्प बिखेर दिये हों।[४९]

---

४१. अनेकजटाजातिजटितकण्ठिकावगुण्ठनजठरकण्ठनालः।—यश० पृ० ३६८
४२. किर्मीरमणिविनिर्मितत्रिशरकण्ठिकम्।—पृ० ४६२
४३. उदारहार निर्भरीचित...।—पृ० २४, उदारा अतिमनोहरा।—सं० टी०
४४. तरलगुलिकहारप्राभृतव्यग्रहस्तः।—पृ० ४६६
४५. तारहारस्तनीनाम्।—पृ० ५३४
४६. हारैस्तारोत्तरलरुचिभिः।—पृ० ६१०
४७. उत्तारहारतरलं स्तनमण्डलं च।—पृ० ६१६
४८. कण्ठे कांचिगुणोऽर्पितः परिहितः हारो नितम्बस्थले।—पृ० ६१७
४९. आपतन्मुक्ताफलप्रकराभिरासनहारयष्टिभिरागामिजन्यजयसमयावसरसुरसुन्दरीकरविकीर्णकुसुमवर्षमिव।—पृ० ५५५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन्त्रधारागृह के प्रसंग में मोगरक के कुड्मलों की बनी हारयष्टि का उल्लेख है।[५०]

मौक्तिकदाम—यशस्तिलक में मौक्तिकदामका उल्लेख केवल एक बार हुआ है। विरहणी नायिका के गले की मौक्तिकमाला चूर-चूर हो गयी।[५१] यन्त्रधारा-गृह के प्रसंग में कुसुमदाम का भी उल्लेख है।[५२]

भुजा के आभूषण

यशस्तिलक में भुजा के आभूषणों में अंगद और केयूर का उल्लेख है।

अंगद—अंगद का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। शंखनक बेर के बराबर बड़ा त्रापुष मणि (सीसे का गुरिया) लगाकर बनाया गया अंगद पहने था।[५३]

केयूर—केयूर का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है। राजपुर की स्त्रियाँ लाल कमल में श्वेत कमल लगाकर केयूर बना लेती थीं।[५४] विरह की अवस्था में स्त्रियाँ बाहु का केयूर पैरों में और पैरों के नूपुर बाहु में पहन लेती थीं।[५५]

अंगद और केयूर में क्या अन्तर था, इसका पता यशस्तिलक से नहीं चलता। अमरकोषकार ने दोनों को पर्याय माना है।[५६] क्षीरस्वामी ने केयूर और अंगद की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि 'के बाहूशीर्षे यौति केयूरम्'[५७] अर्थात् जो भुजा के ऊपरी छोर को सुशोभित करे उसे केयूर कहते हैं तथा जो 'अंगं दयते अंगदम्'—अर्थात् जो अंग को निपीड़ित करे वह अंगद।

पुरुष और स्त्री दोनों अंगद पहनते थे।

कलाई के आभूषण

कंकण और वलय—कलाई के आभूषणों में कंकण और वलय के उल्लेख हैं। स्त्री और पुरुष दोनों कंकण पहनते थे। यौधेय जनपद के कृषकों की स्त्रियाँ

---

५०. विचकिलमुकुलपरिकल्पितहारयष्टिभिः।—पृ० ५३२
५१. कण्ठे मौक्तिकदामभिः प्रदलितम्।—पृ० ६१२
५२. शिरीषकुसुमदामसंदामित... ।—पृ० ५३२
५३. कुवलीफलस्थूलत्रापुषमणिविनिर्मितांगद।—पृ० ३९८
५४. सौगन्धिकानुबद्धकमलकेयूरपर्यायिणा।—पृ० १०६
५५. केयूरं चरणे धृतं विरचित हस्ते च हिंजीरिकम्।—पृ० ६१७
५६. केयूरमंगदं तुल्ये।—अमरकोष, २, ६, १०७
५७. वही, सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोने के कंकण पहनती थीं।[५८] यशोधर ने भी सभामण्डप में जाने के पूर्व कंकण पहने (निधाय करे कंकणालंकारम्)। एक अन्य प्रसंग में यशोधर को 'कनककंकण-वर्ष' कहा है (पृ० ५६६)।

वलय का उल्लेख तीन बार हुआ है। शंखनक भैंसे के सींग के बने वलय पहने था।[५९] एक स्थान पर यशस्तिलक का नायक यशोधर कहता है कि टूटे हुए दिल को स्फटिक के फूटे हुए वलय की तरह कौन मूर्ख धारण किए रहेगा।[६०] यन्त्रधारागृह के प्रसंग में मृणाल के बने वलय का उल्लेख है।[६१] चतुर्थ उच्छ्वास में दाँत के बने वलय का उल्लेख है (दन्तवलयेन, उत्त० ६९)।

अंगुलियों के आभूषण

उर्मिका—यशस्तिलक में अंगूठी के लिए उर्मिका तथा अंगुलीयक शब्द आये हैं। यशोधर रत्न की बनी उर्मिका पहने था।[६२] उर्मि का अर्थ भँवर है। भँवर के समान कई चक्कर लगा कर बनायी गयी अंगूठी को उर्मिका कहते थे। बुन्देल-खण्ड में आजकल इसे छला कहा जाता है।

उर्मिका का उल्लेख बाणभट्ट ने भी किया है। सावित्री दाहिने हाथ में शंख की बनी उर्मिका पहने थी।[६३]

अंगुलीयक—अंगुलीयक का केवल एक बार उल्लेख आया है। चौथे आश्वास में एक गडरिया अंगुलीयक के बदले में बकरा देने के लिए तैयार है।[६४]

कटि के आभूषण

कटि के आभूषणों के लिए कांची, मेखला, रसना, सारसना तथा घर्घर-मालिका नाम आये हैं।

कांची—कांची का उल्लेख तीन बार हुआ है। यौधेय की कृषक बधुएँ खेतों

---

५८. कनकमयकंकणाः......गोपिकाः।—पृ० १५

५९. .....गवलवलयावरुण्डनः।—पृ० ३९८
गवलवलयानां महिषशृंगकटकानाम्।—सं० टी०

६०. को नु खलु विघटितं चेतः स्फटिकवलयमिवमुधापि संधातुमर्हति।-उत्त०पृ० ७७

६१. मृणालवलयालंकृतकलाचींदेशाभिः।—पृ० ५३२

६२. सरत्नोर्मिकाभरणः।—पृ० ३६७

६३. कम्बुनिर्मितोर्मिका।—हर्षचरित, पृ० १०

६४. प्रसादीकरोत्यंगुलीयकम्।—उत्त०, पृ० १३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में काम करने जाते समय अपनी ढीली-ढाली कांची को बार-बार हाथ से ऊपर चढ़ाती थीं, जिससे उनका ऊरु प्रदेश दिख जाता था।[६५] विपरीत रति में कांची जोर-जोर से हिलने लगती थी।[६६] विरहणी नायिका कमर की कांची गले में डाल लेती थी।[६७] तीनों प्रसंगों पर श्रुतसागर ने कांची का पर्याय कटि = मेखला दिया है। एक स्थान पर कांची के लिए कांचिका भी कहा गया है (हंसावली-कांचिका, पृ० ५०३)

मेखला—मेखला का उल्लेख पाँच बार हुआ है। मुखर मणिमेखलाओं के शब्द से पंचमालिप्ति नामक राग द्विगुणित हो गया था।[६८] यहाँ श्रुतसागर ने मेखला का पर्याय रसना दिया है।[६९] इसी प्रसंग में सिन्दुवार की माला लगाकर केले के कोमल पत्तों को बनायी गयी मेखला (कदलीप्रवालमेखला) का उल्लेख है।[७०] शंखनक ने मथानी की पुरानी रस्सी को मेखला की तरह पहन रखा था (पुराणतरमन्दीरमेखला, पृ० ३९८)। समुद्र की उपमा मेखला से दी है (महीं च रत्नाकरवारिमेखलाम्, उत्त० पृ० ८७)।

रसना—रसना का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। वह भी हारयष्टि के वर्णन में प्रसंगवश आ गया है। सोमदेव ने आरसना अर्थात् रसना पर्यन्त लटकती हुई हारयष्टि का वर्णन किया है।[७१] यहाँ श्रुतसागर ने आरसन का अर्थ आगुल्फलम्ब किया है।

अमरकोषकार ने उपर्युक्त तीनों को पर्याय माना है।[७२] सोमदेव के उपर्युक्त उल्लेखों से लगता है कि कांची एक लड़ी की ढीली-ढाली करधनी होना चाहिए तथा मेखला छुद्र घंटिकाएँ लगी हुई। उपर्युक्त उल्लेखों में कांची के लिए कांचीगुण पद आया है तथा मेखला के लिए मुखरमणिमेखला कहा गया है। एक स्थान पर मेखला को मणिकिंकणी युक्त भी बताया गया है।[७३]

---

६५. कांचिकोल्लासवशदर्शितोरुस्थलाः।—पृ० १५
६६. पुरुषरतनियोगव्यग्रकांचीगुणानाम्।—पृ० ५३७
६७ कण्ठे कांचिगुणोऽर्पितम्।—पृ० ६१७
६८. मुखरमणिमेखलाजालवाचालितपंचमालिप्तिः।—पृ० १००
६९. मेखलाजालानि रसनासमूहाः।—सं० टी०, पृ० १००
७० सिन्दुवारसरसुन्दरकदलीप्रवालमेखलेन।—पृ० १०६
७१. आरसनहारयष्टिभिः।—पृ० ५५५
७२. स्त्रीकट्यां मेखला कांची सप्तकी रशना तथा।—अमरकोष, २, ६, १०८
७३. मेखलमणिकिंकणीजालवदनेपु।—पृ० ६ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारसना—चण्डमारी के लिए कहा गया है कि मृतक प्राणियों की आतें ही उसकी सारसना थी।[७४]

घर्घरमालिका—यशोधर जब बालक था, तो खेल-खेल में दाई की कमर से घर्घरमालिका को निकाल कर पैरों में बाँध लेता था।[७५]

पैर के आभूषण

पैर के आभूषण के लिए यशस्तिलक में पाँच शब्द आये हैं—(१) मंजीर, (२) हिंजीरक, (३) नूपुर, (४) तुलाकोटि, (५) हंसक।

मंजीर—सोमदेव ने मणिमंजीर का उल्लेख किया है।[७६] मंजीर को पहनकर चलने से जो मधुर झन-झन शब्द होते थे उन्हें शिंजित कहते थे।[७७] मंजीर रस्सी सहित मथानी को कहते हैं, इसी की समानता के कारण इसका नाम मंजीर पड़ा। मंजीर वजन में हलके तथा भीतर से पोले होते थे। उनमें भीतर बहुमूल्य मोती आदि भरे जाते थे। माड़वार में अभी भी इस तरह के आभूषण पहनने का रिवाज है (शिवराम०, अमरावती०, पृ० ११४)।

हिंजीरक—हिंजीरक का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। विरहणी स्त्रियाँ हाथ का केयूर चरण में तथा चरण का हिंजीरक हाथ में पहन लेती थीं।[७८] हिंजीरक का पर्याय श्रुतसागरदेव ने नूपुर दिया है। यशस्तिलक से इस पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता।

नूपुर—नूपुर का भी एक बार ही उल्लेख हुआ है।[७९] श्रुतसागर ने यहाँ नूपुर का पर्याय मंजीर दिया है।[८०] नूपुर पहनकर चलने से मधुर शब्द होता था। नूपुर जल्दी पहने या उतारे जा सकते थे। अमरावती की कला में एक दासी थाली में नूपुर लिए प्रतीक्षा करती खड़ी है कि जैसे ही अलक्तक मंडन समाप्त हो, वह नूपुर पहनाए।

तुलाकोटि—तुलाकोटि का दो बार उल्लेख है। तुलाकोटि के शब्द को

---

७४. सारसना मृतकान्त्रच्छेदाः।—पृ० १५०

७५. मुक्त्वा घर्घरमालिकां कटितटाद्बध्वा च तां पादयोः।—पृ० २३४

७६. रमणीमणिमंजीरशिंजित......।—पृ० ३५

७७. झणझणायमाननमणिमंजीरशिंजित... ..।—पृ० १०१

७८. केयूरं चरणे धृतं विरचितं हस्ते च हिंजीरकम्।—पृ० ६१७

७९. यत्रालितौ नूपुरौ।—पृ० १२६

८०. नूपुरौ मंजीरौ।—सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव ने 'क्वणित' कहा है।[८१] बारविलासिनियों के वाचाल तुलाकोटियों के क्वणित से क्रीड़ा-हंस आकुलित हो रहे थे।[८२] एक स्थान पर नीलमणि के बने तुलाकोटि का उल्लेख है (नीलोपलतुलाकोटिषु, उत्त० पृ० ९)।

तुलाकोटि का उल्लेख बाण ने भी हर्षचरित (पृ० १६३) में किया है। तुलाकोटि आन्ध्र में प्रचलित नूपुरों से मेल खाते हैं। इनके दोनों किनारे तुला अर्थात् तराजू की डंडी के समान किंचित् घनाकार होते हैं (शिवराम०–अमरावती०, पृ० ११४)। इसी कारण इसका नाम तुलाकोटि पड़ा।

हंसक—हंसक का उल्लेख भी एक बार ही हुआ है। शंखनक कांसे के बने हंसक (कंसहंसक) पहने था।[८३] हंसक के शब्द को सोमदेव ने रसित कहा है।[८४] हंसक से तात्पर्य उन बाँके नुपुरों से था जिनकी आकृति गोल न होकर बाँकी मुड़ी हुई होती थी। आजकल इन्हें बाँक कहते हैं।[८५]

---

८१. वाचालतुलाकोटिक्वणिताकुलितविनोदवारलम्।--पृ० ३४५

८२. वही

८३ कंसहंसकरसितवाचालचरण······।--पृ० ३९९

८४. वही

८५. अग्रवाल- हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६७, फलक ६, चित्र ३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद नौ

केश-विन्यास, प्रसाधन सामग्री तथा पुष्प प्रसाधन

केश-विन्यास

यशस्तिलक में केश-विन्यास और केश-प्रसाधन सम्बन्धी प्रभूत सामग्री है। प्राचीन भारत में इस कोमल कला का विशेष प्रचार था। साहित्य और पुरातत्व की सामग्री में इसका समान रूप से अंकन हुआ है।

यशस्तिलक में सोमदेव ने केशों के लिए अलक, कुन्तल, केश, चिकुर, कच और जटा शब्दों का प्रयोग किया है। स्नान के अनन्तर केशों को सर्वप्रथम धूप के सुगन्धित धुएँ से सुखा लिया जाता था, उसके बाद चूर्ण, सिन्दूर, पल्लव, पुष्प, पुष्पमाला, मंजरी आदि के द्वारा कलात्मक ढंग से सँवार कर बाँधा जाता था। सँवारे हुए केशों में सोमदेव ने अलकजाल, कुन्तलकलाप, केशपाश, चिकुरभंग, धम्मिल्लविन्यास, मौलिबन्ध, सीमन्तसन्तति, वेणिदण्ड, जूट तथा कबरी का वर्णन किया है। इनकी विशेष जानकारी निम्न प्रकार है

केश धूपाना—स्नान के बाद केश सँवारने के पूर्व उन्हें सुगन्धित धूप के धुएँ से सुखाने का सोमदेव ने दो बार उल्लेख किया है।[1] कालिदास ने केशों को धूपाने की प्रक्रिया का विशेष वर्णन किया है। धूपित करने से स्नानार्द्र केश भभरे हो जाते थे और उनमें धूप की सुगन्धि व्याप्त हो जाती थी। कालिदास ने धूपित केशों को 'आश्यान' कहा है।[2] धूप से सुगन्धित किये जाने के कारण इन्हें धूपवास भी कहते थे।[3]

केश सुवासित करने की यह प्रक्रिया केश-संस्कार कहलाती थी।[4] कालिदास की नायिकाएँ अटारी पर गवाक्षों के पास बैठकर केश-संस्कार करती थीं, जिससे गवाक्षों से निकलनेवाले सुगन्धित धुएँ को देखकर मार्ग से चलने वाले

---

१. अविरतदह्यमानकालागुरुधूपधूमोद्गमारभ्यमाणदिग्विलासिनीकुन्तलजालम्।
—पृ० ३६८; अलकधूपधूमेषु। पृ० ८, उत्त०

२. तं धूपाश्यानकेशान्तम्।—रघुवंश, १७।२२। आश्यान-शोषित, सं० टी०

३. स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासम्।—वही १६।५०

४. केशसंस्कारधूमैः।—मेघदूत १।३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोग यह अनुमान सहज ही लगा लेते थे कि कोई नायिका केश-संस्कार कर रही है।[५]

अलकजाल--यशस्तिलक में बालों के लिए अलक शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अलक चूर्ण विशेष के द्वारा घुंघराले बनाए गये बालों को कहते थे।[६] सोमदेव ने इस चूर्ण को पिष्टातक नाम दिया है। पिष्टात या पिष्टातक कुंकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों को पीसकर बनाया जाता था।[७] पिष्टातक के प्रयोग द्वारा घुंघराले बनाकर सँवारे गये बालों को अलकजाल कहते थे। सोमदेव ने लिखा है कि सैनिक प्रयाण से उठी हुई धूलि ने ककुभांगनाओं के अलक-प्रसाधन के लिए पिष्टातक चूर्ण का काम किया।[८] अलकों में चूर्ण के प्रयोग की सूचना कालिदास ने भी दी है। इस तरह घुंघराले बनाए गये बालों को सँवार कर उनमें पत्र-पुष्प लगा लिए जाते थे।[१०]

अलकजाल को छल्लेदार या घूँघरदार केश रचना कहा जा सकता है। अंगरेजी लेखों में जिन्हें Spiral या Frizzled locks कहा जाता है वह उसके अत्यन्त निकट है। अलकजाल के अनेक प्रकार राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त खिलौनों में देखे जाते हैं। जैसे--(१) शुद्ध घूँघर, (२) छतरीदार घूँघर, (३) चटुलेदार घूँघर, (४) पटियादार घूँघर। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इनका विशेष विवेचन किया है।[११]

कुन्तलकलाप—यशस्तिलक में कुन्तल शब्द भी बालों के लिए कई बार आया है। 'कुन्तलकलाप' इस सम्मिलित पद का प्रयोग केवल तीन बार हुआ है। कलाप मयूर को भी कहते हैं तथा समूह अर्थ में भी आता है।[१२] कुन्तल-कलाप में स्थित 'कलाप' शब्द में इन्हीं की ध्वनि है। बालों को इस तरह सँवार

---

५. जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपैः।—वही, १।३२

६. अलकाश्चूर्णकुन्तलः।—अमरकोष २, ६, ९६

७. पिष्टेन कुंकुमचूर्णादिनातति पिष्टातः।—अमरकोष, २, ६, १३९, सं० टी०

८. ककुंभागनालकप्रसाधनपिष्टातकचूर्णः। - यश० पृ० ३३८

९. अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः।—रघुवंश, ४।५४

१०. विकचविचकिलालीकीर्णलोलालकानाम्।—यश०, पृ० ५३४

११. अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन,
कला और संस्कृति, पृ० २४६

१२. कलापः संहते बर्हे तूणीरे भूषणे हरे।—विश्वलोचन
कलापो बर्हितूणयोः। संहतौ भूषणे कांच्याम्।—अनेकार्थसंग्रह ३।२००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर बाँधना जिससे कलापिन् (मयूर) के पंखों की तरह सुन्दर दिखने लगे, कुन्तलकलाप कहलाता था। सोमदेव ने कुटज के कुड्मल और मल्लिका के पुष्प लगाकर बालों को कुन्तलकलाप के ढंग से सजाने का वर्णन किया है।[१३]

कुन्तलकलाप को गूँथने के लिए शिरीष के पुष्पों की माला का उपयोग किया जाता था।[१४] संभवतया पहले बालों को शिरीष की माला से सुविभक्त करके बाँध लिया जाता था, बाद में उसके बीच-बीच में कुटज कुड्मल और मल्लिका के पुष्पों को इस तरह से खोंसते थे, जिससे मयूरपिच्छ के ताराओं की पूर्ण अनुकृति हो जाये। राजघाट से प्राप्त मिट्टी के खिलौनों में कुछ मस्तकों में इस प्रकार का केश-विन्यास देखा जाता है। इन खिलौनों में माँग के दोनों ओर कनपटी तक लहराती हुई शुद्ध पटिया मिलती हैं और वे ही छोर पर ऊपर को मुड़कर घूम जाती हैं। देखने में ये ऐसी मालूम होती हैं जैसे मोर की फहराती हुई पूँछ।[१५] कुन्तलकलाप की ठीक पहचान इसी तरह के केश-विन्यास से करना चाहिए।

मानसार के अनुसार कुन्तल नामक केश-प्रसाधन का अंकन लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्ति के मस्तक पर किया जाता है।[१६]

केशपाश—यशस्तिलक में शिखण्डित केशपाश का उल्लेख हुआ है।[१७] 'केशपाश' में पाश शब्द समूहवाची भी है और उत्कृष्टवाची भी।[१८]

केशपाश बालों के उस विन्यास को कहते थे, जिसमें पुष्प और पत्तों युक्त मंजरी से सजाकर बालों को इस तरह से बाँधा जाता था, जिससे वे मुकुट की तरह दिखने लगें। यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने इस अर्थ को समझाने का प्रयत्न किया है—'मरुवकोद्भेदैः सुगन्धपत्रमंजरीभिर्विदर्भिता गुम्फिता ये दमनकाण्डाः- सुगन्धपत्रस्तम्भाः तैः शिखण्डितो मुकुटितः केशपाशः।'[१९] सम्भवतया

---

१३. कुटजकुड्मलोल्वणमल्लिकानुगतकुंतलकलापेन।—यश० सं० पू०, पृ० १०५

१४. शिरीषकुसुमदाम दामितकुन्तलकलापाभिः।—वही, पृ० ५३२

१५ अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन, कला और संस्कृति, पृ० २४८-४६

१६. उद्धृत, जे० एन० बनर्जी—दी डवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४

१७. शिखण्डितकेशपाशेन।—यश० सं० पू०, पृ० १०५

१८. प्रशस्ताः केशाः केशपाशः।—अमरकोष, २, ६, ९७, सं० टी०
पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थ।—वही २, ६, ९८

१६. यश० सं० पू०, पृ० १०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केशपाश में पुष्प और पत्र युक्त मंजरियों से बनाए गये गुलदस्तेनुमा पुष्पालंकार केशों में खोंस लिए जाते थे, जिससे वे शिखंडित अर्थात् मुकुट की तरह दिखने लगते थे।

मानसार के अनुसार इस तरह के केश-विन्यास का अंकन सरस्वती और सावित्री की मूर्तियों के मस्तक पर किया जाता है।[२०]

चिकुरभंग—केशों के लिए चिकुर शब्द का भी प्रयोग सोमदेव ने कई बार किया है। सम्भवतया पतले केशों को चिकुर कहते थे। अमरकोषकार ने चञ्चल का पर्याय चिकुर दिया है।[२१] चिकुरों को जब पत्र, पुष्प और मालाओं द्वारा सजा लिया जाता था तब उसे चिकुरभंग कहते थे। सोमदेव ने शतपत्री पुष्पों की मालाओं से बाँधे गये तथा तमाल पुष्पों के गुच्छों से सजाए गये चिकुरभंग का वर्णन किया है।[२२]

चिकुरों की कृष्णता की ओर भी सोमदेव ने विशेष रूप से ध्यान दिलाया है। प्रमदवन में सप्तच्छद वृक्षों की छाया कामियों के चिकुरों की कान्ति से कलुषित-सी हो गयी थी।[२३] एक अन्य प्रसंग में चिकुरों को निसर्ग कृष्ण कहा है।[२४]

धम्मिल्लविन्यास--यशस्तिलक में धम्मिल्लविन्यास का उल्लेख दो बार हुआ है। सोमदेव ने मुनिमनोहर नामक मेखला को नागनगरदेवता के धम्मिल्ल-विन्यास की तरह कहा है।[२५]

धम्मिल्लविन्यास मौलिवद्ध केश रचना को कहते थे।[२६] इस प्रकार से संभाले गये पुरुष के बाल मौलि तथा स्त्री के धम्मिल्ल कहलाते हैं (शिवराममूर्ति–अमरावती०, पृ० १०६)। बालों का जूड़ा बनाकर उसे माला से बाँध दिया जाता था। जूड़ा के भीतर भी माला गूँथी जाती थी। कालिदास ने 'मुक्तागुणोन्नद्ध अन्तर्गतस्रजमौलि' का उल्लेख किया है।[२७] बाण ने माला के छूट जाने से

---

२०. उद्धृत, जे० एन० बनर्जी—दी डवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४
२१. चपलश्चिकुरः समौ।—अमरकोष, ३, १, ४६
२२. तापिच्छगुलुच्छविच्छुरितशतपत्रीस्रक्सन्नद्धचिकुरभंगिना।
—यश० सं० पू० पृ० १०५
२३. चिकुरकान्तिकलुषितसप्तच्छदच्छायाभिः।—वही, पृ० ३८
२४. कामिनीनां चिकुरेषु निसर्गकृष्णता।—वही, पृ० २०७
२५. धम्मिल्लविन्यास इव नागनगरदेवतायाः।—पृ० १३२
२६. धम्मिल्लाः संयताः कचाः।—अमरकोष, २, ६, ९७
२७. रघुवंश १७।२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धम्मिल्लों के खुल जाने का वर्णन किया है।[२८] सोमदेव ने एक प्रसंग में पाटली के पुष्पों से सुगन्धित धम्मिल्ल का उल्लेख किया है।[२९]

धम्मिल्लविन्यास की इस कला का चित्रण अजन्ता के चित्रों में भी हुआ है। कुछ चित्रों में स्त्री मस्तकों पर बाँधे हुए केशों का एक बड़ा जूड़ा मिलता है।[३०]

राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त खिलौनों में धम्मिल्लविन्यास के अनेक प्रकारों का अंकन हुआ है। कुछ खिलौनों में दाएँ-बाएँ और ऊपर तीन जूड़े या त्रिमौलि विन्यास पाया जाता है। किन्हीं मस्तकों में सिर के ऊपर शृङ्गाटक या सिंघाड़े की तरह त्रिमौलि की रचना करके माँग के बीच में सिरमौर, माथे पर मौलिबन्ध और उसके नीचे दोनों ओर अलकावली छिटकी हुई दिखाई गयी है।[३१]

गुप्तकाल की पत्थर की मूर्तियों में धम्मिल्लविन्यास का एक और प्रकार मिला है। सिर के ऊपर गोल टोपी की तरह मौलिबन्ध और दक्षिण-वाम पार्श्व में उससे निसृत दो माल्यदाम लटकते रहते हैं। राजघाट के एक मृण्मय स्त्री मस्तक में जो इस समय लखनऊ के अजायब घर में है, भी यह रचना मिली है। कुछ मस्तक ऐसे भी मिले हैं जिनमें दक्षिणभाग में जटाजूट तथा वाम में अलकावली का प्रदर्शन है।[३२]

मौली—मौली बन्ध केश रचना का एक उपमा में उल्लेख है (ईशानमौलिमिव, सं० पू०, पृ० ९५)।

सीमन्तसन्तति—यशस्तिलक में सीमन्त का उल्लेख कई बार हुआ है, किन्तु सीमन्तसन्तति का उल्लेख केवल एक बार ही हुआ है।[३३]

सीमन्त बालों को बीच से विभक्त करके दोनों ओर सँवारने को कहते हैं। सोमदेव ने 'सीमन्तेषु द्विधा भावो'[३४] कहकर इसकी सूचना भी दी है।

सीमन्तसंतति सम्भवतया केशविन्यास के उस प्रकार को कहते थे जिसमें मुख्य

---

२८. विस्रंसमानैर्धम्मिल्लतमालपल्लवैः।—हर्ष० ४।१३३
२९. पाटलीप्रसवसुरभितधम्मिल्लमध्याभिः।—यश० सं० पू० ४३२
३०. राजा सा० औंधकृत अजन्ता फलक ६८
उद्धृत, अग्रवाल—कला और संस्कृति, पृ० २५१
३१. अग्रवाल-राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन, कला और संस्कृति, पृ० २५१
३२. वही, पृ० २५२
३३. सीमन्तसंततिना।—यश० सं० पू० पृ० १०५
३४. वही पृ० २०७

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप से सीमन्त (माँग) पर ध्यान दिया जाता था। मस्तक के बीच से केशों को द्विधा विभक्त करके इस तरह सँवारा जाता था जिससे बीच में राजपथ के समान साफ और सीधी माँग दिखने लगे। माँग या सीमन्त निकालने के बाद उसमें विभिन्न पुष्पों से निकाले गये पराग को सिन्दूर का स्थानीय करके भरा जाता था। सोमदेव ने प्रियालकमंजरी के कणों को कर्णिकार के केसर में मिलाकर सीमन्त को प्रसाधित करने का वर्णन किया है।[३५]

वेणिदण्ड—वेणिदण्ड का एक बार उल्लेख है।[३६] बालों को संवारकर या बिना संवारे ही इकहरी चोटी बाँधना वेणीदण्ड कहलाता था।

जूट—बालों को ऊपर को समेट कर कपड़े की पट्टी से बाँधना जूट कहा जाता था। बालों को इकट्ठा करके बाँधने को आजकल भी जूड़ा बाँधना कहा जाता है। सोमदेव ने लिखा है कि दाक्षिणात्य सैनिक उत्कट जूट बाँधे थे जो गेड़े के सींग की तरह लगता था।[३७]

कबरी—कबरी का एक बार उल्लेख है।[३८] बालों को साधारणतया संभालकर बाँधने को कबरी कहते थे।

प्रसाधन-सामग्री

यशस्तिलक में प्रसाधन-सामग्री की जानकारी इस प्रकार दी है—

१. अंजन—(लोचनांजनमार्गेषु, पृ० ९, उत्त०)

२. कज्जल—(नेत्रैः कज्जलपांसुलैः, पृ० ६११),
(नेत्रैः कज्जलितैः, वही, सं० पृ० ६१६)

३. अगुरु—(१) कृष्णागुरु—(कृष्णागुरुपिंजरितकर्णपालीषु, पृ० ९ उत्त०)
(२) कालागुरु—(कालागुरुधूपधूमधूसरित, वही, पृ० २८)

४. अलक्तक—(यत्रालक्तकमण्डनं विरचितम्, पृ० १२६)
(यावकपुनरुक्तकान्तिप्रभावेषु पादपल्लवेषु, पृ० ९ उत्त०)

५. कुंकुम— (कुंकुमपंकरागे, पृ० ६१)
(काश्मीरैः कीरनाथः, पृ० ४७०)
(घुसृणरसारुणित, पृ० २८ उत्त०)

---

३५. प्रियालकमंजरीकणकल्पितकर्णिकारकेसरविराजितसीमन्तसंततिना। पृ० १०५
३६. शौर्यश्रीवेणीदण्डानुकारिणा।—पृ० २७
३७. पृ० ४६१
३८. कबरीनिगूढेनासिपत्रेण।—पृ० १५३, उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. कर्पूर— (कर्पूरदलदन्तुरित, पृ० २८ उत्त०)
(कर्पूरपरागरुचो, पृ० २१२)

७. चन्द्रकवल—(अमरसुन्दरीवदनचन्द्रकवलाः, पृ० ३३८)
(चिताभसितानि चन्द्रकवलाः, पृ० १५०)

८. तमालदलधूलि—(तमालदलधूलिधूसरितरोमराजिनि, पृ० ९ उत्त०)

९. ताम्बूल— (हस्ते कृत्य च ताम्बूलम्, पृ० ८१ उत्त०)

१०. पटवास— (वनदेवतापटवासाः, पृ० ३३८)

११. पिष्टातक— (ककुभंगनालकप्रसाधनपिष्टातकचूर्णाः पृ० ३३८)
(प्रसवपरागपिष्टातकितदिग्देवतासीमन्तसंतानम्, पृ० ९४)

१२. मनःसिल— (मनःसिलाधूलिलीले; पृ० ४ उत्त०)

१३. मृगमद— (मृगमदैरेष नेपालपालः, पृ० ४७०)

१४. यक्षकर्दम— (यक्षकर्दमखचितजातरूपभित्तिनि, पृ० २८. उत्त०)
यक्षकर्दम कर्पूर, कस्तूरी, अगुरु और कंकोल को मिलाकर बनाए गये अनुलेपन द्रव्य को कहते थे (अमरकोष २।६।१३३)। अमृतमति के अन्तःपुर की सुवर्ण-भित्तियों पर यक्षकर्दम का लेप किया गया था (यक्षकर्दमखचितजातरूप-भित्तिनि, २८।२ उत्त०)। धन्वन्तरि ने कुंकुम, कस्तूरी, कपूर, चन्दन और अगुरु से बनी महासुगन्धि को यक्षकर्दम कहा है (उद्धृत– अग्रवाल– कादम्बरी : एक सां० अध्ययन)। काव्यमीमांसा में इसे चतुःसमसुगन्धि कहा है (१८।१००)। दोहाकोश (पृष्ठ ५५) और पदमावत (२७६।४) में भी इसे चतुःसमसुगन्धि कहा है।

१५. हरिरोहण—गोशीर्षचन्दन (तपश्चर्यानुरागेणैव हरिरोहणेनांगरागम्, पृ० ८१ उत्त०)

१६. सिन्दूर— (पृ० ५ उत्त०, पृ० ७८)

पुष्प-प्रसाधन

पुष्प, प्रसाधन-सामग्री का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। दक्षिण भारत में प्राचीन काल से ही पुष्प-प्रसाधन की कोमल कला चली आयी है। अभी भी वहाँ इसके अनेक रूप देखे जाते हैं। सोमदेव ने यशस्तिलक में दक्षिण भारतीय संस्कृति का विशेष चित्रण किया है। इसलिए सहज ही पुष्प-प्रसाधन सम्बन्धी सामग्री भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचुर मात्रा में आयी है। सोमदेव ने पुष्प और पत्तों से बने निम्नलिखित आभूषणों का उल्लेख किया है—

१. **अवतंसकुवलय**[३९]—कुवलय पुष्प को अवतंस के स्थान पर कान में पहना जाता था। आभूषणों के प्रकरण में लिखा जा चुका है कि यशस्तिलक में पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल तथा कैरव के बने अवतंसों के उल्लेख हैं।[४०]

२. **कमलकेयूर**[४१]—कमल को केयूर के स्थान पर पहना जाता था। केयूर का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार आया है। एक स्थान पर लाल कमल में श्वेत-कमल लगा कर केयूर बनाने का उल्लेख है। आभूषणों के प्रकरण में इस सम्बन्ध में विशेष लिखा जा चुका है।

३. **कदलीप्रवालमेखला**—सिन्धुवार की माला लगा कर केले के कोमल पत्तों की मेखला बनाई जाती थी। इसे कदलीप्रवालमेखला कहते थे।[४२] कटि के आभूषणों में मेखला का महत्त्वपूर्ण स्थान था। सोमदेव ने चार प्रकार के कटि के आभूषणों का वर्णन किया है जिसे आभूषणों के प्रसंग में लिख चुके हैं।

४. **कर्णोत्पल**[४३]—कान में पहने जाने वाले आभूषणों में अधिकांश फूल और पत्तों के ही बनाए जाते थे। उत्पल नीले कमल को कहते हैं। नीले कमल को कान में पहनने का रिवाज था।

५ **कर्णपूर**[४४]—कर्णपूर का उल्लेख यशस्तिलक में चार बार हुआ है। उसमें से एक प्रसंग में मरुवे के फूल से बने कर्णपूर का उल्लेख है। कर्णपूर को देशी भाषा में कनफूल कहा जाता है। (कर्णपूर > कर्णफूल > कनफूल) अलंकारों के प्रकरण में इस सम्बन्ध में और भी लिखा है।

६. **मृणालवलय**—मृणाल के बने हुए वलय हाथों में पहनते थे। सोमदेव ने दो बार मृणालवलय का उल्लेख किया है।[४५]

---

३९. ८।८ उत्त०
४०. ५७।२, हिन्दी
४१. वही, हिन्दी
४२. सिन्धुवारसरसुन्दरकदलीप्रवालमेखलेन, वही ५७।२ हिन्दी
४३. सं० पू० पृ० १५
४४. कर्णपूरमरुवकोद्भेदसुन्दरगण्डमण्डलाभिः पृ० ३५६।८
४५. ५७।१ हिन्दी ३५६।८, हिन्दी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. पुन्नागमाला[४६]—पुन्नाग के फूलों की माला बनाकर गले में पहनी जाती थी।

८. बन्धूकनूपुर[४७]—बन्धूक पुष्पों के नूपुर बना कर पहने जाते थे।

९. शिरीषजंघालंकार[४८]—शिरीष पुष्पों का कोई अलंकार बना कर सम्भवत: जाँघों में पहना जाता था, जिसे शिरीषजंघालंकार कहते थे।

१०. शिरीषकुसुमदाम[४९]—शिरीष के फूलों की एक प्रकार की माला बना कर गले में पहनी जाती थी।

११. विचकिलहारयष्टि—मोंगरे के पुष्पों की एक प्रकार की माला जिसे हारयष्टि कहा जाता था गले में पहनते थे। मोंगरे के कुड्मलों की हारयष्टि[५०] बनती थी तथा फूले हुए मोंगरों के फूलों को बालों में सजाया जाता था।[५१]

१२. कुरवक मुकुलस्रक[५२]—कुरवक के कुड्मलों की चमचमाती हुई लम्बी माला बना कर पहनी जाती थी जिसे 'कुवलयमुकलस्रकतारहार' कहते थे। हार के विषय में विशेष आभूषणों के प्रकरण में लिखा गया है।

---

४६. ५७।१, हिन्दी
४७. ५७।३, हिन्दी
४८. ५७।२, हिन्दी
४९. ३५६।७, हिन्दी
५०. ३५६।७, हिंन्दी
५१. ३५७।६, हिन्दी
५२. वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा और साहित्य विषयक सामग्री यशस्तिलक में पर्याप्त एवं महत्त्वपूर्ण है। बाल्यावस्था शिक्षा की उपयुक्त अवस्था मानी जाती थी।[१] गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श था। मारिदत्त के माता-पिता उसकी छोटी अवस्था में ही संन्यस्त हो गये थे, इस कारण गुरुकुल में जाकर मारिदत्त की शिक्षा नहीं हो पायी थी।[२] यशोधर की शिक्षा समान वय वाले सचिव पुत्रों के साथ हुई थी।[३] विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक था कि खूब मन लगाकर पढ़े, विनयपूर्वक रहे और नियम सम्पन्न हो।[४] विद्याध्ययन समाप्त होने के बाद गोदान किया जाता था।[५]

शिक्षा के अनेक विषय थे। सोमदेव ने अमृतमति महारानी की द्वारपालिका को समस्त देशों की भाषा तथा वेष का जानकार कहा है।[६] आचार्य सुदत्त के संघ में जो विद्वान् मुनि थे उनमें कोई समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे, कोई पुराणों में पारंगत थे। कोई तर्कविद्या में निष्णात थे, कोई नव्यानव्यकाव्य में। कोई ऐन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनीय आदि व्याकरण के पंडित थे।[७] यशोधर ने जिन विद्याओं में नैपुण्य प्राप्त किया था उनका विवरण सोमदेव ने इस प्रकार दिया है—प्रजापति की तरह सब वर्णों में, पारिरक्षक की तरह प्रसंख्यान में, पूज्यपाद की तरह शब्दशास्त्र में, स्याद्वादेश्वर की तरह धर्माख्यान में, अकलंक की तरह प्रमाणशास्त्र में, पणिपुत्र की तरह पदप्रयोग में, कवि की तरह राजनीति में, रोमपाद की तरह गजविद्या में, रैवत की तरह अश्वविद्या में,

---

१. बाल्यं विद्यागमैर्यत्र।—पृ० १९८

२. कुलवृद्धानां च प्रतिपन्नपितृवनतपोवनलोकत्वादसंजातविद्यावृद्धगुरुकुलोपासनः।
—पृ० २६

३. सवयः सचिवकुलकृतानुशीलनः।—पृ० २३६

४. स्वाध्यायधीर्नियमवान्विनयोपपन्नः।—पृ० २३७

५. सकलविद्याविदाश्चर्यप्रवणनैपुण्यमहमाश्रितः परिप्राप्तगोदानावसरश्च।—वही

६. निःशेषविषयभाषावेषधिषणया।—पृ० २४ उत्त०

७. पृ० ८९-९०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरुण की तरह रथविद्या में, परशुराम की तरह शस्त्रविद्या में, शुकनाश की तरह रत्नपरीक्षा में, भरत की तरह संगीतक मत में, त्वष्टकि की तरह चित्रकला में, काशीराज की तरह शरीरोपचार में, काव्य की तरह व्यूहरचना में, दत्तक की तरह कामशास्त्र में तथा चन्द्रायणीश की तरह अपर कलाओं में।[८]

अन्य प्रसंगों में भी विभिन्न शास्त्र और शास्त्रकारों के उल्लेख हैं। सबका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

व्याकरण

व्याकरण शास्त्रकारों में सोमदेव ने इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनि तथा पतंजलि का उल्लेख किया है। इस प्रसंग में पणिपुत्र नाम भी आया है।

इनमें कुछेक नाम वर्तमान में अपरिचित से हो गये हैं और उनके शास्त्र भी उपलब्ध नहीं होते। वास्तव में ये सभी प्रचीन महान् वैयाकरण थे और सोमदेव के उल्लेखानुसार कम से कम दशमी शती तक तो इनके शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता ही था। १०५३ ई० के मूलगुण्ड शिलालेख में चान्द्र, कातन्त्र, जैनेन्द्र शब्दानुशासन तथा ऐन्द्र व्याकरण और पाणिनि का उल्लेख है।[९] तेरहवीं शती में वोपदेव ने अपने कविकल्पद्रुम के प्रारम्भ में आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है, जिनमें इन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनि और जैनेन्द्र का नाम आता है। कल्पसूत्र की टीका में समयसुन्दरगणि (१७वीं शती) ने अठारह वैयाकरणों में इन्द्र और आपिशल को भी गिनाया है। यद्यपि बाद के इन उल्लेखों से यह कहना कठिन है कि सत्रहवीं शती तक उपर्युक्त सभी व्याकरण उपलब्ध थे, फिर भी इतना निश्चित है कि ये सब व्याकरण के महान् आचार्य माने जाते थे। सोमदेव ने जिनका उल्लेख किया है उनके विषय में किंचित् और जानकारी इस प्रकार है—

---

८. प्रजापतिरिव सर्ववर्णागमेषु, पारिरक्षक इव प्रसंख्यानोपदेशेषु, पूज्यपाद इव शब्देतिह्येषु, स्याद्वादेश्वर इव धर्माख्यानेषु, अकलंकदेव इव प्रमाणशास्त्रेषु, पणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु, कविरिव राजराद्धान्तेषु, रोमपाद इव गजविद्यासु, रैवत इव हयनयेषु, अरुण इव रथचर्यासु, परशुराम इव शब्दाधिगमेषु, शुकनाश इव रत्नपरीक्षासु, भरत इव संगीतकमतेषु, त्वष्टकिरिव विचित्रकर्मसु, काशिराज इव शरीरोपचारेषु, काव्य इव व्यूहरचनासु, दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु, चन्द्रायणीश इवापरास्वपिकलासु।—पृ० २३६-३७

९. एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १६, भाग २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्र और उनका ऐन्द्र व्याकरण

ऐन्द्र व्याकरण अब तक उपलब्ध नहीं हुआ, किन्तु कातन्त्र व्याकरण को ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर रचा गया माना जाता है। इन्द्र का वैयाकरण के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तरीयसंहिता में आता है।[१०] नैषधकार ने भी नैषध (१०।१३५) में इन्द्र का उल्लेख किया है। तेरहवीं शताब्दी के अन्त में चण्डुपंडित ने भी इन्द्र का उल्लेख किया है।[११]

तिब्बती परम्परा में इन्द्रगोमिन् के इन्द्रव्याकरण की जानकारी मिलती है और नैपाल के बौद्धों में इसका पठन-पाठन बताया जाता है।[१२] वास्तव में इन्द्र-व्याकरण के विषय में अभी पर्याप्त छानबीन की आवश्यकता है।

आपिशल और उनका आपिशलि व्याकरण

आपिशल का उल्लेख पाणिनि ने 'वा सुप्यापिशलेः' कहकर अष्टाध्यायी में किया है। महाभाष्य (४।२।४५, ४।१।१४) काशिका (६।२।३६, ७।३।९५) तथा न्यास में भी आपिशल के कई उल्लेख आये हैं। आपिशल का अध्ययन करने वाली ब्राह्मणी आपिशला कहलाती थी।[१३] आपिशल को पढ़ने वाले छात्र भी आपिशल कहलाते थे।[१४] काशिका की वृत्ति (१।३।२२) में जैनेन्द्र बुद्धि ने भी आपिशल का उल्लेख किया है। कातन्त्र सम्प्रदाय के व्याकरण में भी आपिशल का उल्लेख मिलता है।[१५] आपिशल का कोई ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

चन्द्र और उनका चान्द्रव्याकरण

बौद्ध चन्द्रगोमिन् का चन्द्रवृत्तिक ही सोमदेव द्वारा उल्लिखित चान्द्रव्याकरण ज्ञात होता है। यह ५वीं शती की रचना मानी जाती है। लिपजिग से इसका प्रकाशन भी हो चुका है।[१६]

---

१०. वेलवलकर—सिस्टम्स ऑव संस्कृत ग्रामर, पृ० १०

११. तादृक्कृतव्याकरणः तादृक्कृतं ऐन्द्रं व्याकरणम्।

१२. विंटरनित्ज, उल्लिखित हन्दिकी।—यश० पृ० ४४३

१३. आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला ब्राह्मणी, महाभाष्य ४।१।१४

१४. अधीयतेऽन्तेवासिनस्तेऽप्यापिशलाः।—आपिशलैर्वा छात्रा आपिशला इति।
—काशिका ६।२।३६

१५. "द्वितीयैनेन" की टीका में दुर्गासिंह—आपिशलीयव्याकरणे समयादीनां कर्म-प्रवचनीयत्वं दृष्टमिति मतम्।

१६. वेलवलकर, वही पृ० ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पणिपुत्र या पाणिनि

सोमदेव ने यशोधर को पणिपुत्र की तरह पदप्रयोग में निपुण कहा है। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनों ने ही पणिपुत्र का अर्थ पाणिनि किया है। अष्टाध्यायी के रचयिता पाणिनि की माँ का नाम दाक्षी था। सोमदेव के उल्लेखानुसार उनके पिता का नाम पणि या पाणि था। तेलुगु के श्रीनाथ और पेदन के ग्रन्थों में पाणिनि को पाण्निसुनु कहा है।[१७]

इस प्रकार यह यशस्तिलक का सन्दर्भ पाणिनि के सम्बन्ध में ज्ञात तथ्यों में एक और नयी कड़ी जोड़ता है।

पूज्यपाद देवनन्दि और उनका जैनेन्द्र व्याकरण

पूज्यपाद का सोमदेव ने दो बार उल्लेख किया है। पूज्यपाद देवनन्दि का जैनेन्द्र व्याकरण प्रसिद्ध है। इनका समय पाँचवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। जैनेन्द्र व्याकरण के अतिरिक्त पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि प्रसिद्ध है। यह उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र की प्रथम संस्कृत टीका है।

पूज्यपाद देवनन्दि एक अच्छे दार्शनिक भी थे, किन्तु व्याकरणाचार्य के रूप में वे और भी अधिक प्रसिद्ध हुए। एक स्वतन्त्र व्याकरण-सिद्धान्त-निर्माता के रूप में उन्हें माना जाता था और इसीलिए 'पूज्यपाद की तरह व्याकरणविशेषज्ञ' एक कहावत-सी चल पड़ी थी। श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में इस तरह के उल्लेख मिलते हैं। शक संवत् १०३७ के एक शिलालेख में मेघचन्द्र को पूज्यपाद की तरह सर्वव्याकरण विशेषज्ञ कहा है। इसी तरह जैनेन्द्र और श्रुतमुनि को भी पूज्यपाद की तरह व्याकरणविशेषज्ञ कहा गया है।[१८] स्वयं सोमदेव ने यशोधर को शब्दशास्त्र में पूज्यपाद की तरह कहा है।

पतंजलि

पतंजलि का उल्लेख एक श्लेष में आया है।[१९]

---

१७. राघवन्—ग्लीनिग्ज़ फ्राम सोमदेव सूरीज यशस्तिलकचम्पू, दी जरनल ऑफ दी गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद, जिल्द १, भाग ३, मई १६४४.

१८. सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादः स्वयम्—श्लो० ३०
—जैनेन्द्रे पूज्य (पादः), श्लो० २३
—शब्दे श्रीपूज्यपादः, श्लो० ४०
—जैन शिलालेख संग्रह, पृ० ६२, ११९, २०२

१९. शब्दशास्त्रविद्याधिकरणव्याकरणपतंजल।—पृ० ३१६, उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गणितशास्त्र

गणितशास्त्र को सोमदेव ने प्रसंख्यान शास्त्र कहा है। पारिरक्षक प्रसंख्या-नोपदेश के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनों ने पारिरक्षक का अर्थ यति या संन्यासी किया है। सम्भवतः पाणिनि द्वारा उल्लिखित भिक्षुसूत्र के कर्ता का नाम पारिरक्षक रहा हो।

प्रमाणशास्त्र और अकलंक

सोमदेव ने यशोधर को प्रमाणशास्त्र में अकलंक की तरह कहा है। अकलंक जैन-न्याय या प्रमाणशास्त्र के प्रतिष्ठापक विद्वान् माने जाते हैं। ८वीं शती के यह एक महान् आचार्य थे। अनेक ग्रन्थों तथा शिलालेखों में अकलंक के उल्लेख मिलते हैं। तत्त्वार्थवार्तिक, अष्टशती, लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, सिद्धि-विनिश्चय तथा प्रमाणसंग्रह अकलंक की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। सौभाग्य से सभी के समालोचनात्मक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।[२०]

राजनीतिशास्त्र

सोमदेव ने यशोधर को नीतिशास्त्र और व्यूहरचना में कवि की तरह कहा है।[२१] श्रीदेव ने कवि का अर्थ बृहस्पति तथा श्रुतसागर ने शुक्र किया है।

एक अन्य प्रसंग में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाजरचित नीतिशास्त्रों का उल्लेख है।[२२] दुर्भाग्य से अभी तक इनमें से किसी का भी स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ, किन्तु सोमदेव के उल्लेख से यह सुनिश्चित है कि दशमी शती में सभी ग्रन्थ प्राप्त थे और उनका पठन-पाठन भी होता था।

गजविद्या तथा रोमपाद

यशोधर को गजविद्या में रोमपाद की तरह कहा है। अंग नरेश रोमपाद को पालकाप्य मुनि ने हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा दी थी।[२३]

रोमपाद के अतिरिक्त सोमदेव ने गजशास्त्रविशेषज्ञ आचार्यों में इभचारी,

---

२०. भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित

२१. कविरिव राजराद्धान्तेषु, काव्य इव व्यूहरचनासु।—पृ० २३६

२२. गुरुशुक्रविशालाक्षपरीक्षितपाराशरभीमभीष्मभारद्वाजादिप्रणीतनीतिशास्त्रश्रवण-सनाथम्।—पृ० ४७१

२३. हस्त्यायुर्वेद, आनन्दाश्रम सीरीज़ २६, मातंगलीला १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याज्ञवल्क्य, वाद्धलि (वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है।[२४]

दुर्भाग्य से इनमें से किसी का भी स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता, पर सोमदेव के उल्लेख से यह महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है कि इन सभी के गजशास्त्र उपलब्ध थे।

अश्वविद्या और रैवत

रैवत अश्वविद्या-विशेषज्ञ माने जाते थे, इसीलिए सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है। यशस्तिलक के दोनों टीकाकारों ने रैवत को सूर्य का पुत्र बताया है। मार्कण्डेयपुराण (७५।२४) में भी रैवत या रैवन्त को सूर्य और बडवा का पुत्र कहा गया है तथा गुह्यक मुख्य और अश्ववाहक बताया है। अश्वकल्याण के लिए रैवत की पूजा भी की जाती है (देखिए, जयदत्त—अश्वचिकित्सा, बिब० इंडिका १८८६, ८, पृ० ८५-८)।

अश्वविद्या विशेषज्ञों में सोमदेव ने शालिहोत्र का भी उल्लेख किया है (१७३ हि०)। शालिहोत्रकृत एक संक्षिप्त रैवत-स्तोत्र प्राप्त होता है (तंजौर ग्रन्थागार, पुस्तक सूची, पृ० २०० तथा कीथ का इंडिया आफिस केटलाग पृ० ७५८)।[२५]

रत्नपरीक्षा और शुकनाश

सोमदेव ने यशोधर को रत्नपरीक्षा में शुकनाश की तरह कहा है। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनों ने शुकनाश का अर्थ अगस्त्य किया है। रत्नपरीक्षा का एक उद्धरण भी यशस्तिलक में आया है—

"न केवलं तच्छुभकृन्नृपस्य मन्ये प्रजानामपि तद्विभूत्यै।
यद्योजनानां परतः शताद्धि सर्वाननर्थान् विमुखी करोति॥"

यह पद्य बुद्धभट्टकृत रत्नपरीक्षा में उपलब्ध होता है। गरुडपुराण (पूर्व खण्ड अध्याय ८ से ८०) में यह ग्रन्थ शामिल है। भोजकृत युक्तिकल्पतरु में उद्धृत गरुडपुराण के उद्धरणों में भी यह पद्य मिलता है।

वैद्यक और काशिराज

सोमदेव ने यशोधर को शरीरोपचार में काशिराज की तरह कहा है। श्रुतसागर ने काशिराज का अर्थ धन्वन्तरि किया है।

---

२४. पृ० २६१

२५. राघवन्—ग्ली० फ्रा० यश०, वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य प्रसंगों में चारायण, निमि, धिषण तथा चरक के भी उल्लेख हैं। इन विद्वानों के वैद्यक ग्रन्थ दशमी शती में उपलब्ध थे और उनका पठन-पाठन भी होता था। स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या परिच्छेद में इनके विषय में और भी जानकारी दी गयी है।

संसर्गविद्या या नाट्यशास्त्र

भरत और उनके नाट्यशास्त्र का उल्लेख यशस्तिलक में कई बार आया है। एक श्लेष में नाट्यशास्त्र को सोमदेव ने संसर्गविद्या कहा है (भावसंकरः संसर्गविद्यासु, पृ० २०२)। श्रीदेव और श्रुतसागर दोनों ने ही संसर्गविद्या का अर्थ भरत अर्थात् नाट्यशास्त्र किया है। कला-परिच्छेद में भरत तथा नाट्यशास्त्र के उल्लेखों के विषय में विचार किया गया है।

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्र

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्रविषयक उल्लेख भी यशस्तिलक में यत्र-तत्र आये हैं। कला और शिल्प अध्याय में उनका विवेचन किया गया है।

कामशास्त्र

कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुसिद्धान्त कहा है और दत्तक को उसका विशेषज्ञ बताया है (दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु, वही)। वात्स्यायन ने कामसूत्र में दत्तक का उल्लेख किया है।

सोमदेव ने कामसूत्र का दो बार और भी उल्लेख किया है।[२६] वास्तव में कामसूत्र में वर्णित विभिन्न चेष्टाओं तथा कामक्रीड़ाओं आदि का विवरण यशस्तिलक की अनेक उपमा-उत्प्रेक्षाओं तथा श्लेषों में आया है।

रति-रहस्य और उसकी रत्नदीप टीका

एक श्लेष में सोमदेव ने कोकक्कृत रतिरहस्य और उस पर रत्नदीप नामक टीका का उल्लेख किया है।[२७]

चौसठ कलाएँ

यशस्तिलक में चौसठ कलाओं का एक साथ तो उल्लेख नहीं है, किन्तु विभिन्न

---

२६. न क्षमश्चिरपरिचितकामसूत्रायाः ।—पृ० ४५ हि०
शृङ्गारवृत्तिभिरुदाहृतकामसूत्रम् ।—१।७३

२७. चरणनखसंपादितरतिरहस्यरत्नदीपविरचनैः ।—पृ० २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसंगों पर उनमें से कई का उल्लेख है। सोमदेव ने यशोधर को चन्द्रायणीश की तरह अपरकलाओं में निष्णात कहा है।[२८] सम्भवतः अपर कलाओं से तात्पर्य यहाँ ६४ कलाओं से है।

पत्रच्छेद

चौसठ कलाओं में पत्रच्छेद भी एक कला मानी जाती है। पत्तों में कैंची से तरह-तरह के नमूने काटना पत्रच्छेद है। वात्स्यायन ने कामसूत्र (१।३।१६) में इसे विशेषकच्छेद्य कहा है। विशेषकर प्रणय-प्रसंगों में इस कला का उपयोग किया जाता था। वात्स्यायन ने लिखा है—पत्रच्छेद्य में अपने अभिप्राय के सूचक मिथुन का अंकन करके प्रेमी या प्रेमिका के पास भेजना चाहिए।[२९]

भोगावलि या राजस्तुतिविद्या

राजा की स्तुति में लिखी गयी प्रशंसात्मक कविता भोगावलि, विरुदावलि या रंगघोषणा कहलाती है। यशस्तिलक में भोगावलि का तीन बार उल्लेख है (पृ० २४९, ३५१, ३९९)। राजदरबारों में भोगावली पाठक हुआ करते थे।

काव्य और कवि

यशस्तिलक में सोमदेव ने बीस से भी अधिक महाकवियों का उल्लेख किया है—ऊर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ और राजशेखर। इनमें कई-एक कवि जितने प्रसिद्ध और परिचित हैं उतने ही कई-एक अप्रसिद्ध और अपरिचित। नारायण सम्भवतः वेणीसंहार के कर्ता भट्टनारायण हैं और कुमार जानकीहरण के कर्ता कुमारदास। भास के विषय में निश्चित रूप से कहना कठिन है कि ये प्रसिद्ध नाटककार भास हैं अथवा अन्य। भास का महाकवि के रूप में एक अन्य प्रसंग (पृ० २५१ उत्त०) में भी उल्लेख है और उनका एक पद्य भी उद्धृत किया है।

कण्ठ कवि का प्राचीन कवियों में कोई पता नहीं चलता। क्षीरस्वामीकृत क्षीरतरंगिनी में कण्ठ को संस्कृत धातु विशेषज्ञ के रूप में अनेक बार उद्धृत किया है। सम्भव है ये यही कण्ठ महाकवि हों। ऊर्व सम्भवतः वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि में उल्लिखित और्व हैं।

---

२८. चन्द्रायणीश इव अपरास्वपि कलासु।—पृ० २३७

२९. पत्रच्छेद्यक्रियायां च स्वाभिप्रायसूचकं मिथुनमस्या दर्शयेत।—३।४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाणभट्ट तथा उनकी कादम्बरी का एक स्थान पर और भी उल्लेख है। कादम्बरी से एक वाक्य भी उद्धृत किया गया है।[३०]

माघ का भी एक बार उल्लेख है। यशोधर को माघ के समान बताया है।[३१]

भर्तृहरि के नीतिशतक और शृङ्गारशतक से एक-एक पद्य बिना उल्लेख के उद्धृत किया गया है।[३२]

जिन कवियों के विषय में हमें अन्यत्र जानकारी नहीं मिलती ऐसे कवियों में निम्नलिखित उल्लेख्य हैं—

ग्रहिल के नाम से शिव-स्तुति रूप दो पद्य (पृ० २५५ उत्त०) उद्धृत हैं।

नीलपट के नाम से (पृ० २५२ उत्त०) एक पद्य उद्धृत है। सम्भवतः यह नीलपट सदुक्तिकर्णामृत में उल्लिखित नीलभट्ट हैं।

वररुचि के नाम से (पृ० ९९ उत्त०) एक पद्य उद्धृत है। यद्यपि यह पद्य निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित भर्तृहरि के नीतिशतक में पाया जाता है, किन्तु वास्तव में यह नीतिशतक का प्रतीत नहीं होता, क्योंकि एक तो अन्य संस्करणों में भी नहीं है, दूसरे जब सोमदेव को भर्तृहरि और उनके साहित्य की जानकारी थी तो वे भर्तृहरि का पद्य वररुचि के नाम से क्यों उद्धृत करते।

अन्य उल्लेख

एक पद्य में त्रिदश, कोहल, गणपति, शंकर, कुमुद तथा कैकट का उल्लेख है।[३३] इनके विषय में अन्यत्र कोई जानकारी अभी नहीं मिलती।

दार्शनिक और पौराणिक साहित्य

दार्शनिक और पौराणिक साहित्य के अनेक उल्लेख यशस्तिलक में आये हैं। प्रो० हन्दिकी ने इनका विस्तार से विवेचन किया है, इसलिए उसे यहाँ पुनरुद्धृत नहीं किया गया।

---

३०. आहारः साधुजनविनिन्दितो मधुमांसादिरिति...बाणेन।—पृ० १०१ उत्त०

३१. सुकविकाव्यकथाविनोददोहदमाघ।

३२. स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य—इत्यादि
नमस्यामोदेवान्ननुहतविधे, इत्यादि।—पृ० २५२ उ०

३३. वृत्तिच्छेदस्त्रिदशविदुषः कोहलस्यार्थहानि-
र्मानग्लानिर्गणपतिकवेः शंकरस्याशुनाशः।
धर्मध्वंसः कुमुदकृतिनः कैकटेश्च प्रवासः
पापादस्मादिति समभवद्देव देशे प्रसिद्धिः॥—पृ० ४५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गज-विद्या

यशस्तिलक में गज-विद्या विषयक प्रचुर सामग्री है। गजोत्पत्ति की पौराणिक अनुश्रुति, उत्तम गज के गुण, गजों के भद्र, मन्द, मृग तथा संकीर्ण भेद, गजों की मदावस्था, उसके गुण, दोष और चिकित्सा, गजशास्त्र के विशेषज्ञ आचार्य, गज परिचारक, गज-शिक्षा इत्यादि का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह वर्णन मुख्य रूप से तीन प्रसंगों में आया है—

(१) मारिदत्त हाथियों के साथ खेला करता था (सामजैः सह चिक्रीड, ३१)।

(२) यशोधर के पट्टबन्ध उत्सव पर अनेक गुण संयुक्त गज उपस्थित किया गया (आकरस्थानमिव गुणरत्नानाम्, २९९)।

(३) सम्राट् यशोधर ने स्वयं गजशिक्षाभूमि पर जाकर गजों को शिक्षित किया (करिविनयभूमिषु स्वयमेव वारणान्विनिन्ये, ४८२)। हथिनि पर सवारी की (कृतकरेणुकारोहणः, ४९२), गजक्रीडास्थली में गजक्रीड़ा देखी (प्रधावधरणिषु करिकेलिरदर्शम्, ५०५) तथा दन्त-वेष्टन किया (कोशारोपणमकरवम्, ५०६)।

प्रथम प्रसंग में गजशास्त्र सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

यशोधर के पट्टबन्धोत्सव के लिए जो हाथी लाया गया उसका वर्णन निम्न-प्रकार किया गया है (पृष्ठ २९१–२९९)—

'हे राजन्, यह गज कलिंगवन में उत्पन्न, ऐरावत कुल, प्रचार से सम, देश से साधारण, जन्म से भद्र, संस्थान से समसम्बद्ध, उत्सेध (ऊर्ध्वता), आयाम (दीर्घता) तथा परिणाह (वृत्तता) से सम-सुविभक्त शरीर, आयु से दो दशाओं को भोगता हुआ, अंग से स्वायत-व्यायत छवि, वर्ण, प्रभा और छाया से आशंसनीय, आचार, शील, शोभा और आवेदिता से कल्याण, लक्षण और व्यंजन से प्रशस्त, बल, वर्ष्म (शरीर), वय और वेग से उत्तम, ब्रह्मांश, गति, सत्त्व, स्वर और अनूक से प्रियालोक, विनायक (गणेश) की तरह मोटा-चौड़ा मुँह, तालु में अशोक पुष्प की तरह अरुण, अन्तर्मुख में कमलकोश की तरह शोण प्रकाश, उरोमणि, विक्षोभ-कटक, कपोल तथा सृक्व में पीन और उपचितकाय, सुप्रमाण कुंभ, ऋजु-पूर्ण तथा ह्रस्व कन्धरा, अलि के समान नीले और मेघ के समान घने तथा स्निग्ध केश, समसूद्गतव्यूढ मस्तक, अनल्प आसनस्थान, डोरी चढ़ाये गये धनुष की तरह अनुवंश (रीढ़), अजकुक्षि, अनुपदिग्ध पेचक, कुछ उठी हुई, जमीन को छूती हुई बैल की पूँछ के समान पूँछ, अभिव्यक्त पुष्कर (शुण्डाग्रभाग), वराह के जघन के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समान अपरदेश (पश्चिम भाग), आम्र-पल्लव के समान कोश, समुद्ग और कूर्म की आकृति के समान गात्र और अपर तल, अष्टमी के चन्द्रमा की तरह निश्चल एवं परस्पर संलग्न विंशतिनखमयूख वाला है। क्रम से पृथु, वृत्त, आयत और कोमलता से पूर्ण, होनेवाले अनेक युद्धों में प्राप्त विजय की गणना-रेखाओं के समान कतिपय बलियों (सिकुड़नों) द्वारा अलंकृत, मद झराते, मृदु, दीर्घ और विस्तृत अंगुली वाले कर (सूड़) से यहाँ-वहाँ बिखेरे गये वमथु (मुख के) जल की फुहार से मानो इस पट्टबन्ध उत्सव के सुअवसर पर दिग्पालों की पुरन्ध्रियों को मुक्ताफल के उपहार बाँट रहा हो। निरन्तर उड़ रहे मलयज, अगुरु, कमल, केतकी, नीलकमल और कुमुद की सुगंधि सरीखे मद और वदन की सुगंधि से मानो, आपके ऐश्वर्य को देखने के लिए अवतीर्ण देवकुमारों को अर्घ्र दे रहा हो। मेघ की तरह गंभीर और मधुर ध्वनि तुल्य वृंहित द्वारा समस्त यागनागों में श्रेष्ठता प्रमाणित कर रहा हो। घन और स्निग्ध भौंह वाले स्थिर, प्रसन्न, आयत, व्यक्त, रक्त, शुक्ल, कृष्ण दृष्टि वाले मणि की कान्ति सदृश नेत्र-युगल के अरविन्द-पराग सदृश पिंगल कटाक्षपात द्वारा मानो ककुभांगनाओं के लिए पिष्टातक चूर्ण बिखेर रहा हो। किंचित् दक्षिण की ओर उठे हुए, ताम्रचूड़ (मुर्गा) के पिछले पैरों की पिछली अंगुलियों की तरह सुशोभित सम, सुजात और मधु की कान्ति सदृश दोनों खीसों द्वारा मानो स्वर्गदर्शन के कुतूहलवाली आपकी कीर्ति के लिए सोपान बना रहा हो। असिर, अतल, प्रलम्ब और सुकुमार उदय वाले कर्णताल द्वय के द्वारा मानो आनन्द दुंदुभि के नाद को पुनरुक्त (द्विगुणित) कर रहा हो। ऊँचाई के कारण पर्वत की चोटियों को नीचा दिखा रहा हो। सरस्वती के हास का उपहास करने वाले देह प्रभापटल के द्वारा स्वकीय शरीराश्रित वीरलक्ष्मी के निकट में श्वेत कमल का मानो उपहार चढ़ा रहा हो। ध्वज, शंख, चक्र, स्वस्तिक, नंद्यावर्त विन्यास तथा प्रदक्षिणावर्त वृत्तियों वाली सूक्ष्ममुख स्निग्ध रोमराजि द्वारा अति सूक्ष्म विन्दुमाला द्वारा यथोचित शरीरावयवों पर विन्यस्त है। महोत्सव पूजा युक्त विजयलक्ष्मी के निवास की तरह है। इस प्रकार अन्य बहल, विपुल, व्यक्त, संनि-वेश से मनोहर मान, उन्मान, प्रमाण युक्त चारों प्रकार के प्रदेशों द्वारा अनून और अनतिरिक्त, सप्तप्रकार की स्थिति द्वारा नृप तथा महामात्य के सप्त समुद्र पर्यंत शासन की घोषणा करता हुआ, द्वादश क्षेत्रों में शुभ फल को व्यक्त करने वाले अवयव वाला, सिद्ध योगी की तरह रूपादि विषयों में शान्त, दिव्यर्षि की तरह सर्वज्ञ, असितर्ति (अग्नि) की तरह तेजस्वी, कुलीन की तरह उदय और प्रत्यय से विशुद्ध, अधोक्षज (विष्णु) की तरह कामवन्त, अमृत की कान्ति की तरह असंताप,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयोधनाग्रेसर की तरह मनस्वी, अनाद्यून (अल्पभोजी) की तरह सुभग तथा अन्य गुणरत्नों की भी खान है।'

इस विवरण के बाद करिकलाभ नामक बन्दी ने गजप्रशंसापरक चौबीस पद्य पढ़े।

उपर्युक्त वर्णन में गज-शास्त्र सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों की जानकारी दी गयी है। गजशास्त्र में गज के निम्नलिखित बाह्य और अंतरंग गुणों का विचार किया जाता है—

(१) **उत्पत्ति-स्थान**—किस वन में पैदा हुआ है।

(२) **कुल**—ऐरावत आदि किस कुल का है।

(३) **प्रचार**—सम या विषम कैसा प्रचार है, अर्थात् केवल सम प्रदेश में गमन कर सकता है या विषम में भी।

(४) **देश**—किसी देश विशेष में ही रह सकता है या कहीं भी।

(५) **जाति**—भद्र, मन्द, मृग आदि में से किस जाति का है।

(६) **संस्थान**—शारीरिक गठन कैसा है।

(७-९) **उत्सेध, आयाम, परिणाह**—ऊँचाई, लम्बाई तथा मोटाई कैसी है।

(१०) **आयु**—आयु की द्वादश दशाओं में से किसमें है (दस वर्ष की एक दशा होती है, सं० टी०)।

(११) **छवि**—शरीर में स्वायत-व्यायत (ऊँची तथा तिरछी) बलि रहित छवि (त्वचा) है।

(१२) **वर्ण**—शुद्ध, व्यामिश्र तथा अन्तर्वर्ण के तीन-तीन भेदों में से कौन सा वर्ण है।

(१३) **प्रभा**—प्रभा कैसी है।

(१४) **छाया**—पार्थवी, औदकी, आग्नेयी, वायव्य तथा तामसी छाया में से कौनसी छाया है।

(१५) **आचार**—कायगत आचार कैसा है।

(१६) **शील**—मनोगत शील (स्वभाव) कैसा है।

(१७) **शोभा**—लोहित, प्रतिच्छन्न, पक्षलेपन, समकक्ष; समतल्प, व्यतिकर्ण तथा द्रोणिका (सं० टी०) में से कौन सी है। चौथी शोभा श्रेष्ठ मानी जाती है।

(१८) **आवेदिता**—अर्थवेदिता।

(१९-२०) **लक्षण-व्यंजन**—कर, रदन आदि लक्षण तथा विन्दु, स्वस्तिक आदि व्यंजन (सं० टी०) कैसे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२१-२४) **बल, धर्म, वय और जव**—उत्तम, मध्यम तथा अधम बल।
(२५) **अंश**—ब्रह्मादि अंशों में से किस अंश वाला है।
(२६) **गति**—कैसा चलता है।
(२७) **रूप**—रूप कैसा है।
(२८) **सत्त्व**—सत्त्व कैसा है।
(२९) **स्वर**
(३०) **अनूक**
(३१) **तालु**
(३२) **अन्तरास्य**—मुँह का भीतरी भाग
(३३) **उरोमणि**—हृदय
(३४) **विक्षोभकटक**—श्रोणिफलक
(३५) **कपोल**
(३६) **सृक्व**
(३७) **कुम्भ**—सिर
(३८) **कन्धरा**—ग्रीवा
(३९) **केश**
(४०) **मस्तक**
(४१) **आसनावकाश**—बैठने का स्थान (पीठ)
(४२) **अनुवंश**—रीढ़
(४३) **कुक्षि**—काँख
(४४) **पेचक**—पूंछ का मूल भाग
(४५) **वालधि**—पूंछ
(४६) **पुष्कर**—शुण्डाग्रभाग
(४७) **अपर**—पुट्ठे
(४८) **कोश**—भेद

करिकलाभ नामक बन्दी ने जो चौबीस पद्य पढ़े उनमें भी गजशास्त्र सम्बन्धी कई सिद्धान्त प्रतिफलित होते हैं।

गजोत्पत्ति

गजोत्पत्ति के सम्बन्ध में यशस्तिलक में तीन पौराणिक तथ्यों का उल्लेख हुआ है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) जिस अण्डे से सूर्य उत्पन्न हुआ था, उसी के एक टुकड़े को हाथ में लेकर ब्रह्मा ने सामवेद के पदों को गाते हुए गजों को उत्पन्न किया।[३४]

(२) गजों की उत्पत्ति साम से हुई।[३५]

(३) अमित बल वाले तथा विशालकाय होने पर भी गजों के शान्त रहने का कारण मुनियों का शाप तथा इन्द्र की आज्ञा है।[३६]

उक्त बातों का समर्थन पालकाप्य के गजशास्त्र से पूर्णरूपेण हो जाता है। उसमें अंग नरेश के पूछने पर गजोत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है—'ब्रह्मा ने पहले जल रचा, फिर उसमें वीर्य डाला, वह सोने का अण्डा बन गया, उससे भूत (पंच भूत) उत्पन्न हुए, अण्डे का सबसे देदीप्यमान अंश अदिति को दिया, उसने सूर्य को जना। आधे कपाल को दायें हाथ में लेकर सामवेद को गाते हुए गज को उत्पन्न किया।[३७]

पालकाप्यचरित्र के प्रसंग में सामगायन नामक महर्षि द्वारा पालकाप्य के जन्म की एक अद्भुत कथा आयी है—सामगायन महर्षि के आश्रम के पास एक बार एक गजयूथ पहुँच गया। रात्रि में महर्षि को स्वप्न में एक सुन्दर यक्षिणी दिखी। महर्षि ने उठकर आश्रम के बाहर जाकर पेशाब किया। एक हथिनी ने वह पी लिया। उसके गर्भ रह गया। वह हथिनी वास्तव में एक कन्या थी, जो मातंग महर्षि के शाप के कारण हथिनी हो गयी थी। उसने पालकाप्य को

---

३४. यस्माद्भानुरभूत्ततोऽण्डशकलाद्धस्ते धृतादात्मभू-
गायन्सामपदानि यान्गणपतेर्वक्त्रानुरूपाकृतीन्।—पृ० २९९, पू०

३५. सामोद्भवाय शुभलक्षणलक्षिताय।—पृ० ३००

३६. महान्तोऽमी सन्तोऽप्यमितबलसंपन्नवपुषो,
यदेवं तिष्ठन्ति क्षितिपशरणे शान्तमतयः।
तदत्र श्रद्धेयं गजनयबुधैः कारणमिदं,
मुनीन्द्राणां शापः सुरपतिनिदेशश्च नियतम्॥—पृ० ३०७

३७. अथ दक्षिणहस्तस्थात्कपालादसृजन्मृगम्।
अभिगायन्नचिन्त्यात्मा सप्तभिस्सामभिर्विधिः॥—गजशास्त्र, गजोत्पत्ति, १।१
सूर्यस्याण्डकपालमादिमुनिभिः संदर्शितं तेजसं,
पाणिभ्यां परिगृह्य सप्रणववाक् सव्ये कपालं करे।
धृत्वा गायति सप्तधा कमलजे सामानि तेभ्योऽभवन्,
मत्तास्सप्तमतंगजाः प्रणवतश्चान्योऽष्टधा सम्भवः॥—वही, पृ० १८, श्लोक २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्म दिया।[३८] सोमदेव ने 'सामोद्भवाय' कहकर इसी पौराणिक अनुश्रुति की ओर ध्यान दिलाया है।

पालकाप्यचरित्र के ही प्रसंग में मुनियों के शाप तथा इन्द्र की आज्ञा का भी उल्लेख है—'प्राचीन काल में हाथी स्वेच्छा से मनुष्य तथा देवलोक में विचरते थे। उन्हीं दिनों हिमालय की तराई में एक वटवृक्ष के नीचे दीर्घतपा महर्षि तप करते थे। एक बार गजयूथ वटवृक्ष पर उतरा। सारे हाथी एक ही शाखा पर बैठ गये। शाखा टूट पड़ी और हाथियों सहित नीचे आ गिरी। महर्षि ने क्रोधित होकर शाप दिया—'यथेच्छ विहार से च्युत होकर मनुष्यों की सवारी होओ'।[३९]

उपर्युक्त कन्या के शाप के विषय में पालकाप्य में कहा गया है कि इन्द्र ने मतंग महर्षि को तप से डिगाने के लिए गुणवती नाम की कन्या भेजी थी, जिसे महर्षि ने हस्तिनी होने का शाप दे दिया।[४०] इसके अतिरिक्त पालकाप्य के गज-शास्त्र में दीर्घतप, अग्नि, वरुण, भृगु तथा ब्रह्मा के शाप का विस्तार के साथ विवेचन किया है।[४१]

सोमदेव ने 'मुनींद्राणां शापः', 'सुरपतिनिदेशश्च' पद में इन्हीं बातों की सूचनाएँ दी हैं।

गज के भेद—गज के निम्नलिखित भेदों के विषय में सोमदेव ने विशेष जानकारी दी है—

भद्र—भद्र जाति के हाथी में सोमदेव ने निम्नलिखित लक्षण बताए हैं—

(१) चौड़ा सीना, (२) मस्तक में अनेक रत्न, (३) स्थूल या बृहत्काय, (४) निश्चल और सुडौल शरीर, (५) ललित गति, (६) अन्वर्थवेदिता, (७) लम्बी

---

३८. तं मां विद्धि महाराज प्रसूतं सामगायनात्।—इत्यादि,
गजशास्त्र, श्लो० ६६-६१

३९. बलदर्पोच्छ्रयाः नागाः मम शापपरिग्रहात्,
विमुक्ता कामचारेण भविष्यथ न संशयः।
नराणां वाहनत्वं च तस्मात् प्राप्स्यथ वारणाः।—इत्यादि,
वही, श्लो० ४६-५५

४०. धर्मविघ्नकरी मत्वा शक्रेण प्रहितां स्वयम्।
ततः शशाप संक्रुद्धस्तापसस्तु स कन्यकाम्॥
अरण्ये विचरस्येका यस्मान्मानुषवर्धिते।
तस्मादरण्यनिचये करेणुत्वं भविष्यति॥—वही, श्लोक ७३, ७४

४१. गजशास्त्र, तृतीय प्रकरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूँड, (८) सुगन्धित श्वासोच्छ्वास, (९) सुन्दर कोश (पोते), (१०) रक्तोष्ठ, (११) कुलीन, (१२) स्वयं के चिंघाड़ने की प्रतिध्वनि से मुदित होने वाला, (१३) सुन्दर मस्तकवाला, (१४) क्षमाशील, (१५) अपूर्व शोभायुक्त तथा, (१६) पैरों में झुर्रियाँ रहित।[४२]

पालकाप्य के गजशास्त्र में भी भद्र हस्ति के प्रायः यही लक्षण बताए हैं।[४३] प्राकृत ग्रन्थ णाणांग में भी चार प्रकार के हाथियों का वर्णन आया है। वहाँ भी भद्र गज के प्रायः यही लक्षण बताये हैं।[४४]

मन्द—यशस्तिलक के अनुसार मन्द गज में निम्न लक्षण होने चाहिए—

(१) निविड बन्ध, (२) भयरहित, (३) विनम्र, (४) उन्नत मस्तक, (५) कार्यभारक्षम, (६) बहुत कम थकने वाला, (७) मण्डल-युक्त, (८) गम्भीरवेदी, (९) पृथु, (१०) झुर्रियों युक्त तथा, (११) सान्द्रपर्व।[४५]

पालकाप्य के गजशास्त्र में भी किंचित् परिवर्तन के साथ यही लक्षण दिये हैं।[४६]

मृग—मृग जाति के गज में सोमदेव के अनुसार निम्न लक्षण पाये जाते हैं—

(१) कुटिलहृदय, (२) दुष्टबुद्धि, (३) ह्रस्व हृदयमणि; (४) छोटी सूँड,

---

४२. व्यूढोरस्कः प्रभूतान्तरमणिरतनुः सुप्रतिष्ठांगबन्धः
स्वाचारोऽन्वर्थवेदी सुरभिमुखमरुद्दीर्घहस्तः सुकोशः।
आताम्रोष्ठः सुजातः प्रतिरवमुदितश्चारुशीर्षोद्गमश्री
क्षान्तस्तत्कान्तलक्ष्मीः शमितवलिमदः शोभते भूप भद्रः॥
—यश० सं० पू० पृ० ४९२

४३. धैर्यं शौर्यं पटुत्वं च विनीतत्वं सुकर्मता।
अन्वर्थवेदिता चैव भयरूपेष्वमूढता॥
सुभगत्वं च वीरत्वं भद्रस्यैते गुणास्मृताः।—गजशास्त्र, पृ० ६३, श्लोक १, २

४४. मधुगुलियपिंगलक्खो, अणुपुव्वसुजायदीहलंगूलो।
पुरओ उदग्गधीरो सव्वंग समाहिओ भद्दो।—णाणांग अ० ४, उ० २, पृ० २८८

४५. योऽच्छिद्रस्त्वयि वीतभीरवनतः पश्चात्प्रसादात्पुनः
किंचित्ते पुरतः समुच्छ्रितशिराः कार्येषु भारक्षमः।
सोऽत्यश्रम एव मण्डलयुतो गम्भीरवेदी पृथुः,
मन्देभानुकृतिर्वलीरितवपुः स्यात्सान्द्रपर्वा नृपः॥—यश०, वही, पृ० ४९३

४६. विपुलतरकर्णवदनाः महोदराः स्थूलपेचकविषाणाः।
बहुबललम्बमांसा हर्यक्षाः कुंजरा मन्दाः॥—गजशास्त्र, पृ० ६७, श्लोक १८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५) स्थूल दृष्टि, (६) अल्पकान्ति, (७) शोकालु, (८) भार ढोने में असमर्थ, (९) हीन और दुर्बल शरीर तथा (१०) मृग के समान गमन करने वाला।[४७]

पालकाप्य ने भी इसी प्रकार के लक्षण किंचित् परिवर्तन के साथ बताये हैं।[४८]

संकीर्ण—भद्र, मन्द और मृग जाति के गजों के कुछ-कुछ लक्षण जिसमें पाये जायें उसे संकीर्ण गज कहते हैं।[४९] सोमदेव ने लिखा है कि यशोधर की गजशाला में शारीरिक और मानसिक गुणों से संकीर्ण अनेक प्रकार के गज थे।[५०] पालकाप्य के गजशास्त्र में अठारह प्रकार के संकीर्ण गज बताये गये हैं।[५१]

यागनाग—यशोधर के राज्याभिषेक के अवसर पर यागनाग का उल्लेख है।[५२] यागनाग उस श्रेष्ठ गज को कहते थे जिसमें निम्नलिखित चौदह गुण पाये जायें—

(१) कुल, (२) जाति, (३) अवस्था, (४) रूप, (५) गति, (६) तेज, (७) बल, (८) आयु, (९) सत्त्व, (१०) प्रचार, (११) संस्थान, (१२) देश, (१३) लक्षण, (१४) वेग।[५३]

---

४७ ये वारत्वयि बहुलीकमनसः सेवासु दुर्मेधसो,
ह्रस्वोरोमगणयः करेषु तनवः स्थूलेक्षणाः शत्रवः।
तैर्नाथालपतनुच्छविप्रभृतिभिः शोकालुभिर्दुर्भरैः,
संक्षिप्तैरणुवंशकैर्मृगसमं प्रायः समाचर्यते॥—यश० वही, पृ० ४६४

४८. कृशांगुलीवालधिवक्त्रमेढो. लवूदरः क्षामकपोलकण्ठः।
विस्तीर्णकर्णस्तनुदीर्घदन्तः स्थूलेक्षणो यस्स गजो मृगाख्यः॥
—गजशास्त्र, श्लो० ३२

४९. संकीर्णस्त्रिगुणो मतः।—गजशास्त्र. पृ० ७१, श्लोक ४२
एए सिंहहत्थीणं थोवं थोवं तु जो अणुहरइ हत्थी।
रूवेण व सीलेण च सो संकिण्णोत्ति णायव्वो॥
—ठाणांग, अ० ४, उच्छे० २, सू० ३४८

५०. द्वारि तव देव बद्धाः संकीर्णाश्चेतसा च वपुषा च।
शत्रव इव राजन्ते बहुभेदाः कुंजराश्चेते॥—यश० वही, पृ० ४६४

५१. गजशास्त्र पृ० ७१, श्लोक ४२ से ७४

५२. यागनागस्य तुरगस्य च।—सं० पू०, पृ० २८८

५३. कुलजातिवयोरूपैश्चारवर्ष्मबलायुषाम्। सत्वप्रचारसंस्थानदेशलक्षणरंहसा॥
एषां चतुर्दशानां तु यो गुणानां समाश्रयः। स राज्ञो यागनागः स्याद्भूरिभूतिसमृद्धये॥
—गजशास्त्र, पृ० १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मदावस्थाएँ तथा उनका उपचार

यशस्तिलक में हाथियों की सात मदावस्थाओं का वर्णन किया गया है—

(१) संजाततिलका, (२) आर्द्रकपोलका, (३) अधोनिबन्धिनी, (४) गन्धचारिणी, (५) क्रोधिनी, (६) अतिवर्तिनी, (७) संभिन्नमदमर्यादा।[५४]

संस्कृत टीकाकार ने इनके समर्थन में एक पद्य उद्धृत किया है।[५५] पालकाप्य के गजशास्त्र में किंचित् परिवर्तन के साथ उक्त नाम आये हैं तथा उनका विस्तार से वर्णन किया गया है।[५६] यशोधर महाराज के वसुमतितिलक, पट्टवर्धन, उद्धतांकुश, परचक्रप्रमर्दन, अहितकुलकालानल, चर्चरीवतंस तथा विजयशेखर नामक गज क्रम से इन मदावस्थाओं में विद्यमान थे।[५७]

उपचार—मदावस्थाओं के उपचार के लिए यशस्तिलक में चिकित्सा का निम्नप्रकार बताया है—

(१) सोत्तालवृंहण, (२) संचय, (३) व्यास्तार, (४) मुखवर्धन, (५) कटवर्धन, (६) कटशोधन, (७) प्रतिभेदन, (८) प्रवर्धन, (९) वर्णाकर, (१०) गन्धकर, (११) उद्दीपन, (१२) ह्रासन, (१३) विनिवर्तन, (१४) प्रभेदन।[५८]

एक-एक मदावस्था के लिए क्रमशः दो-दो उपचार किये जाते थे।

पालकाप्य ने गजशास्त्र में मद-चिकित्सा के यही प्रकार बताये हैं।[५९]

गजशास्त्र-विशेषज्ञ आचार्य

गजशास्त्र के प्राचीन आचार्यों में सोमदेव ने इभचारी, याज्ञवल्क्य, वाद्धलि

---

५४. यश० सं० पू० पृ० ४६१

५५. संजाततिलकापूर्वा द्वितीयार्द्रकपोलका। तृतीयाधोनिबद्धा च चतुर्थीगन्धचारिणी॥
पंचमीक्रोधनी ज्ञेया षष्ठी चैव प्रवर्तिका। स्यात्संभिन्नकपोला च सप्तमी सर्वकालिका॥
प्राहुः सप्तमदावस्था मदविज्ञानकोविदाः।—सं० टी० पृ० ४६५

५६. गजशास्त्र पृ० ११६, श्लोक ८३-१०४

५७. यश० पू० पृ० ४६५

५८. पृ० ४६५

५९. वृहणैः कवलैर्वृष्यैस्तथा संचयकारकैः। विस्तारकारकैश्चान्यैर्मुखवर्धनकैरपि॥
करवृद्धिकरैर्योगैः कटवृद्धिकरैरपि। प्रभेदनैर्बन्धनैश्च गन्धवर्णकरैस्तथा॥
दोषोत्पादनकैः पिण्डैर्जातिधात्वनुसारतः। गजानुपचरेद्राजा प्रयत्नादन्नपानकैः॥
—गजशास्त्र, पृ० १५४, श्लोक १३-१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है।[६०] इभचारी से प्रयोजन संभवतया पालकाप्य से है। पालकाप्य के चरित में गजों के साथ में संचरण की विशेषता का उल्लेख किया गया है।[६१] नीलकंठ ने मातंगलीला में एक आचार्य को 'मातंगचारी' कहा है (श्लो० ५), संभवतया वहाँ भी नीलकंठ का प्रयोजन पालकाप्य से ही है।

सोमदेव ने यशोधर को गजविद्या में रोमपाद की तरह कहा है (रोमपाद इव गजविद्यासु, २३६)। अंग नरेश रोमपाद को पालकाप्य ने हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा दी थी। हस्त्यायुर्वेद में इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन है।[६२]

गज-परिचारक

गज-परिचारकों में सोमदेव ने निम्नलिखित पाँच का उल्लेख किया है—

(१) अमृतगणाधिप या गज वैद्य (२९१),

(२) महामात्र (२३३ हि०),

(३) अनीकस्थ (२३३ हि०),

(४) आधोरण (३०) तथा

(५) हस्तिपक या लेसिक (४५ उत्त०)।

गज शिक्षा

गजों को गजशिक्षाभूमि में (करिविनयभूमिषु, ४८२) ले जाकर शिक्षित किया जाता था। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है (४८२ से ४९१)।

गज-दर्शन और उसका फल

सोमदेव ने लिखा है कि गजशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने साम पदों का गायन करते हुये गणेश के मुँह की आकृति वाले गजों का निर्माण किया था। अतएव जो राजा ब्रह्मपुत्र गजों का पूजन-दर्शन करता है उसकी केवल युद्ध में विजय ही नहीं होती, प्रत्युत वह निश्चय ही सार्वभौम राजा होता है। इसलिए साम से उत्पन्न, शुभ लक्षण युक्त, दिव्यात्मा, समस्त देवों के निवासस्थान, कल्याण, मंगल और महोत्सव के कारण गजश्रेष्ठ को नमस्कार हो, यह कहकर नमस्कार करे।

---

६०. इभचारियाज्ञवल्क्यवाद्धलिनरनारदराजपुत्रगौतमादिमहामुनिप्रणीतमतंगजेनिह्य।
—यश० पृ० २९१

६१. दीर्घकालतपोवीर्यान्मौनमास्थायसुव्रतः। चरिष्यति गजैः सार्धम् ...।
—गजशास्त्र, पृ० ११, श्लो० ७१

६२. हस्त्यायुर्वेद, आनन्दाश्रम सीरिज २६, मातंगलीला १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उषःकाल में जागे हुए प्रसन्न इन्द्रिय और शरीर वाले गज का प्रातःकाल दर्शन करने से, सूर्य के दर्शन की तरह दुःस्वप्न, दुष्टग्रह तथा दुष्टचेष्टा का नाश होता है। जो नृप यज्ञ-दीक्षित तथा जिसके कानों में मन्त्रोच्चार किया गया है, ऐसे गज की पूजा करते हैं, उनके मंगल को तथा शत्रु के नाश को गज अपने मद, बृंहित, कान्ति, चेष्टा तथा छाया इत्यादि के द्वारा व्यक्त करता है (पृ० २९९ से ३०१)।

गजशास्त्र के कतिपय अन्य विशिष्ट शब्द

वल्लिका (३०, ५००) = लोहे की साँकल
वाहरिका (३०) = पिछाड़ी लगाने की खूँटी
आलानस्तंभ (३०) = हाथी को बाँधने का खंभा
अर्गला (३१) = आगर (लंबी लकड़ी)
निकाच (३१) = शरीर बाँधने की रस्सी
दमकलोक (४८५) = गज शिक्षक
स्थापना (४८५) = गज शिक्षा के समय की गयी एक विशिष्ट विधि
वीत (५००) = अंकुश का बार
सृणि (५००) = अंकुश
वंश (५०१) = हाथी दौड़ने का मैदान, प्रधाव भूमि
कल्पना (५०५) = खीसों का मढ़ना, इसे ही कोशारोपण भी कहते हैं (५०६)।
दान (५०३) = मद
हस्त (४८४, ५०३) = सूँड़, इसे कर भी कहते हैं (२८)।
बमुथु (२७) = सूँड़ के द्वारा उछाले गये जल कण

यशस्तिलक में हाथी के निम्नलिखित नाम आये हैं—

(१) हस्ती (३०४, ३०२, २६८, ४९७)
(२) गज (२९०, २९९, ३०२, ३०५, ३०६, ३०७, ४८२, ४८४, ४८८, ४६१, ४९७, ४९९, ५००, ५०१, ५०६)
(३) नाग (२८८)
(४) मातंग (३०४)
(५) कुंजर (४६१, ४९४, ५०५)
(६) करि (२९, २१४, २५३), ३००, ३०१, ३०३, ३०५, ३०६, ४८२, ४८९, ४९६, ४९७, ४९८, ५०१, ५०५, ५०६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(७) इभ (४९७, ४९९, ५०३)
(८) मतंगज (३०६)
(९) वारण (२९९, ३०२, ३०४, ४९७)
(१०) द्विरद (२९, ४८५, ४९५, ४९८)
(११) द्विप (२९, ४८६)
(१२) मृग (४९४)
(१३) सामज (३१, ३५३, ४८४, ४८६, ४८८, ४९१)
(१४) सिन्धुर (३०४)
(१५) करटी (१७, ४९, ३०१, ४९९)
(१६) वेदण्ड (२६१, ४९४)
(१७) संकीर्ण (४९४)
(१८) स्तम्बेरम (५०५)
(१९) कुंजर (४९१, ४६४, ५०५)
(२०) रदनि (४९८)
(२१) कुंभी (५०३)
(२२) भद्र (४६२)
(२३) मन्द (४९३)
(२४) शुण्डाल (३०५)
(२५) सारंग (३४९)
(२६) वामन (१९६ उत्त०)
(२७) दन्ति (१९४ उत्त०)

इनमें से निम्नलिखित पन्द्रह नाम हस्त्यायुर्वेद में भी आये हैं—

(१) हस्ती, (२) दन्ति, (३) गज, (४) नाग, (५) मातंग, (६) कुंजर, (७) करि, (८) इभ, (९) मतंगज, (१०) वारण, (११) द्विरद, (१२) द्विप, (१३) मृग, (१४) सामज, (१५) अनेकप।

---

६३. हस्ती दन्ती गजो नागो मातंगः कुंजरः करी।
इभो मतंगजश्चैव वारणो द्विरदद्विपः॥
मृगोऽथ सामजश्चैव तथा चानेकपः स्मृतः।
इति पंचदशैतानि नामान्युक्तानि पण्डितैः॥
—हस्त्यायुर्वेद, पृ० ४५३, श्लो० १८, १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्व-विद्या

पट्टबन्ध उत्सव के उपरान्त महाराज यशोधर के समक्ष विजयवैनतेय नामक अश्व उपस्थित किया गया। इस अश्व के वर्णन में अश्वशास्त्र विषयक पर्याप्त जानकारी दी गयी है। शालिहोत्र नामक अश्वसेना-प्रमुख इस अश्व का वर्णन निम्नप्रकार करता है—

राजन्, आश्चर्यजनक शौर्य द्वारा समस्त शत्रुसमूह को जीतने वाले अश्व-विद्याविदों की परिषद् ने तत्रभवान् देव के योग्य अश्व के विषय में इस प्रकार कहा है—यह अश्व आपके ही सदृश सत्व से वासव, प्रकृति से सुभगालोक, संस्थान से सम, द्वितीय दशा को प्राप्त, दशों दशाओं का अनुभव करने वाला, छाया से पार्थिव, बल से वरीयांस, अनूक से कंठीरव, स्वर से समुद्रघोष, कुल से काम्बोज, जव (वेग) में वाजिराज, आपके यश की तरह वर्ण में श्वेत, चित्त की तरह वालधि (पूँछ) में रमणीय, कीर्तिकुलदेवता के कुंतलकलाप की तरह केसर में मनोहर, प्रताप की तरह ललाट, आसन, जघन, वक्ष और त्रिक में विशाल, मयूर-कण्ठ की तरह कन्धरा में कान्त, गज-कुंभार्ध की तरह शिर में परार्ध्य, वटवृक्ष के सिकुड़े हुए छद पृष्ठ की तरह कानों से कमनीय, हनु (चिबुक), जानु, जंघा, वदन और घोणा (नासिका) में उल्लिखित की तरह, स्फटिकमणि द्वारा बने हुए की तरह आँखों में सुप्रकाश, सृक, ओष्ठ और जिह्वा में कमलपत्र की तरह तलिन (पतला), आपके हृदय की तरह तालु में गम्भीर, अन्तरास्य (मुखमध्य) में कमलकोश की तरह शोभन, चन्द्रमा की कलाओं से बने हुए के समान दशनों (दाँतों) में सुन्दर, कुचकलश की तरह स्कन्ध में पीवर, कृपीट में वीरपुरुष के जटाजूट की तरह उद्बद्ध, निरन्तर जवाभ्यास के कारण सुविभक्त शरीर, गधे के अवलीक (रेखा रहित) खुरों की आकृति वाली टापों द्वारा गमनकाल में रजस्वला (धूल युक्त) पृथ्वी को न छूते हुए की तरह, अमृतसिन्धु में प्रतिबिम्बित पूर्ण-चन्द्र की तरह निटिलपुण्ड्र (ललाटतिलक) के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल में सम्राट के एक छत्र राज्य की घोषणा करते हुए के समान, उचित प्रदेश में आश्रित अहीन, अविच्छिन्न, अविचलित, प्रदक्षिणा वृत्तियों के द्वारा, देवमणि, निःश्रेणी श्रीवृक्ष, रोचमान आदि आवर्तों के द्वारा तथा शुक्ति, मुकुल, अवलीढ़ आदि के द्वारा सम्राट की कल्याण-परम्परा को व्यक्त करते हुए के समान, इसी प्रकार यह विजयवैनतेय नामक अश्व अन्य लक्षणों के द्वारा दशों क्षेत्रों में प्रशस्त है।

इस विवरण के बाद वाजिविनोदमकरन्द नामक बन्दी ने अश्वप्रशंसापरक अठारह पद्य पढ़े। सम्पूर्ण सामग्री का तुलनात्मक विश्लेषण निम्नप्रकार है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्व के गुण

सोमदेव के अनुसार अश्व के निम्नलिखित गुणों की परीक्षा करनी चाहिए—

(१) सत्त्व, (२) प्रकृति, (३) संस्थान, (४) वय, (५) आयु, (६) दशा, (७) छाया, (८) बल, (९) अनूक, (१०) स्वर, (११) कुल, (१२) जव (वेग), (१३) वर्ण, (१४) तनुरुह (रोमराशि), (१५) पृष्ठ, (१६) बालधि (पूँछ), (१७) केसर, (१८) ललाट, (१९) आसन, (२०) जघन, (२१) वक्ष, (२२) त्रिक, (२३) कन्धरा, (२४) शिर, (२५) कर्ण, (२६) हनु (चिबुक), (२७) जानु, (२८) जंघा, (२९) वदन, (३०) घोणा (नासिका), (३१) लोचन, (३२) सृक, (३३) ओष्ठ, (३४) जिह्वा, (३५) तालु, (३६) अन्तरास्य; (३७) दशन, (३८) स्कन्ध, (३९) कुपीट (पेट), (४०) गात्र, (४१) शफ (टाप या खुर), (४२) पुण्ड्र, (४३) आवर्त ।

उत्तम अश्व में ये गुण विजयवैनतेय के उपर्युक्त विवरण के अनुसार प्रशस्त होने चाहिए । अश्वशास्त्र में भी इन्हीं गुणों की परीक्षा आवश्यक बतायी गयी है ।[६४] आगे सोमदेव ने यह भी लिखा है कि उपर्युक्त गुणों में से अन्यत्र किंचित् दोष भी रहे तो भी यदि बाल, वालधि, तनुरुह, पृष्ठ, वंश, केसर, शिर, श्रवण वक्त्र, नेत्र, हृदय, उदर, कण्ठ, कोश, खुर, जानु और जव (वेग) में दोष नहीं हैं तथा आवर्त, छवि और छाया में शुभ है, तो ऐसा अश्व भी विजयकारक होता है ।[६५]

अश्वों के अन्य गुणों के विषय में सोमदेव के विवरण की तुलनात्मक जानकारी इस प्रकार है—

जव (वेग)—वाजिविनोदमकरंद कहता है कि श्रेष्ठ वेगवाला अश्व जब चौकड़ी भरता है तो पहाड़ों को गेंद-सा, नदियों को नालियों-सा और समुद्रों को

---

६४. ओष्ट्यो सृक्किर्णाश्चैव जिह्वायां दशनेषु च । वक्त्र तालुनि नासायां गण्डयो नेत्रयोस्तथा ॥
ललाटे मस्तके चैव केशकर्णपुटे तथा । ग्रीवायां केसरे चापि स्कन्धे वक्षसि बाहुके ॥
जघायां जानुनोश्चाधः कूर्पे पादे तथैव व । पार्श्वयोः पृष्ठभागे च कुक्षौ करुयां च बालधौ ॥
मेहने मुश्कयोश्चापि तथैवोरुद्वयेऽपि च । आवर्ते च खुरे पुच्छे गतौ वर्णे स्वरे तथा ॥
महादोषं त्यजेत् प्राज्ञश्छायायां गतिसत्वयोः । प्रधानस्यैव वाहानां लक्षणं सत्प्रतिष्ठितम् ॥
—अश्वशास्त्र, पृ० १८, श्लोक० ३-७

६५. बालबालधितनुरुहपृष्ठे वंशकेसरशिरः श्रवणेषु ।
वक्त्रनेत्रहृदयोदरदेशे कण्ठकोशखुरजानुजवेषु ॥
अन्यत्र स्वल्पदोषोऽपि यद्येतेषु न दोषवान् । शुभावर्तछविच्छायो हयः स्याद्विजयोदयः ॥
—यश० पृ० ३१२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तलैयों-सा लांघता जाता है। चारों दिशाएँ चार डगों में नप कर गोपुर-आँगन-सी निकट लगती हैं। घुड़सवार खुद छोड़े बाण को भी धरती में गिरने के पूर्व ही पकड़ सकता है। लगता है जैसे धरती और पहाड़ उसकी टापों के साथ भागे जा रहे हों।[६६]

वर्ण—मुक्ताफल, इन्दीवर, कांचन, किंजल्क (पराग), अंजन, भृंग, वालारुण, अशोक और शुक की तरह वर्ण वाले अश्व विजयप्रद होते हैं।[६७]

ह्रेषित—गज, सिंह, वृषभ, भेरी, मृदंग, आनक और मेघ की ध्वनि के सदृश ह्रेषित वाले अश्व उत्कर्ष योग्य माने जाते हैं।[६८]

गन्ध—कमल, नीलकमल, मालती, घृत, मधु, दुग्ध तथा गजमद के समान जिन अश्वों के स्वेद, मुख और श्रोत्रों की गन्ध होती है, वे अश्व कामदुह होते हैं।[६९]

---

६६. गिरयो गिरिकप्रख्याः सरिता सारिणीसमाः। भवन्ति लघने यस्य कासारा इव सागराः॥
एता दिशश्चतस्रोऽपि चतुश्चरणगोचराः। स्यदे यस्य प्रजायन्ते गोपुरांगणसन्निभाः॥
प्राप्नुवन्ति जवे यस्य भूमावपतिता अपि। निषादिनां पुराक्षिप्ताः शल्यवालाः करग्रहम्॥
यस्य प्रवेगवेलायां सकाननधराधरा। धरणिः खुरलग्नेव सार्धमध्वनि धावति॥
—यश० पृ० ३११, ३१२

६७. मुक्ताफलेन्दीवरकांचनाभाः किंजल्कभिन्नांजनभृंगशोभाः।
बालारुणाशोकशुकप्रकाशास्तुरङ्गमा भूमिभुजां जयेशाः॥—यश० पृ० ३१२

६८. गजेन्द्र कण्ठीरवतानकानां भेरीमृदंगानकनीरदानाम्।
समस्वराः स्वामिनि ह्रेषितेन भवन्ति वाहाः परमुत्सवेहाः॥—यश० पृ० ३१३।३-४
तुलना—गम्भीरस्तु महान्स्वरः सुमधुरः स्निग्धो घनः संहतः,
सिंहव्याघ्रगजेन्द्रदुंदुभिघनाः क्रौंचस्वराभः शुभः।
येषां ते तुरगः यशोऽर्थसुखदाः सौभाग्यराज्यप्रदाः,
संग्रामे विजयं च तैः सह शुभं सैन्यं च संवर्धते॥—अश्व० ४८।६

६९. नीरेजनीलोत्पलमालतीनां सर्पिर्मधुक्षीरमदैः समानः।
स्वेदे मुखे श्रोतसि येषु गन्धास्ते वाजिनः कामदुहो नृपेषु॥—यश० पृ० ३१३
तुलना—कमलकुसुमसर्पिश्चन्दनक्षीरगन्धः, दधिमधुकुटजानां चम्पकस्यन्दनानाम्।
अगुरुगजमदानां तद्वदेवार्जुनानां मधुसमयवनानां पुष्पितानां च गन्धः॥
पुन्नागाशोकजातिसरसकुवलयोः क्षीरपत्राम्रगन्धाः,
पानीयप्रोक्षितोर्वीकुसुमितबकुलामोदिनो ये च वाहाः।
धन्याः पुण्याः मनोज्ञाः सुतसुखधनदाः भर्तुरानन्ददास्ते,
मांगल्याः पूजनीयाः प्रमुदितमनसो राजवाहास्तुरंगाः॥—अश्व० ४६।१-२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनूक (पुट्ठे)—हंस, वानर, सिंह, गज और शार्दूल के समान पुट्ठों वाले अश्व विजयप्रद होते हैं।[७०]

वृत्ति या पुण्ड्र—प्रपाण या कान के नीचे जो सफेद छपके होते हैं वे वृत्ति या पुण्ड्र कहलाते हैं। अश्वों में ध्वज, हल, कलश, कमल कुलिश (वज्र) अर्धचन्द्र, चक्र, तोरण तथा तरवारि के सदृश वृत्तियाँ या पुण्ड्र श्रेष्ठ माने जाते हैं।[७१]

समुद्र में प्रतिबिंबित चन्द्र के सदृश पुण्ड्र जिस अश्व के ललाट पर होता है, उस अश्व का स्वामी राजा होता है।[७२]

आवर्त—अश्वों के वक्ष, बाहू, ललाट, शफ (टाप), कर्णमूल तथा केशान्त (ग्रीवा के दोनों ओर) में शुक्ति की तरह के आवर्त प्रशस्त माने जाते हैं।[७३]

देवमणि, निःश्रेणी, श्रीवृक्ष, रोचमान, शुक्ति, मुकुल, अवलीढ आदि आवर्त होते हैं। ये अहीन, अविच्छिन्न, अविचलित और प्रदक्षिणा वृत्तिवाले होने पर अश्व

---

७०. हंसप्लवंगपंचास्यद्विपशार्दूलसन्निभैः। मितद्रवः क्षितीन्द्राणामानूकैर्विजयप्रदाः ॥
—यश० पृ० ३१४

७१. ध्वजहलकलशकुशेशयकुलिशशशांकार्धचक्रसमाः।
तोरणतरवारिनिभास्तुरगेऽङ्गजवृत्तयः श्रेष्ठाः ॥—यश० पृ० ३४१
तुलना—प्रपाणोर्ध्वं तु कर्णाधः श्वेतं श्वेततरं च यत्।
तत् पुण्ड्रमिति विज्ञेयं तस्य संस्थानतः फलम् ॥
कमलदलकलशहलमुसलपताकाध्वजांकुशादर्शैः।
श्रीवृक्षछत्रशंखस्वस्तिकभृंगारवज्रनिभैः ॥
चामरकूर्माष्टापदवेदीखड्गोपमैः हयाः।
पुण्ड्रैः कथयन्ति जयं भर्तुः विभवं पुत्रांश्च पौत्रांश्च ॥—अश्व० ४३।२

७२. अमृतजलनिधिप्रतिबिम्बितेन्दुसंवादिना निटिलपुण्ड्रकेण कथयन्तमिव
सकलायामिलायामवनिपालस्यैकातपत्रवर्यम्।—यश० पृ० ३१०
तुलना—चन्द्रार्धचन्द्रदिनकरतारावद्द्योतते ललाटं तत्।
यस्य तुरगस्य भवेत् तस्य स्वामी भवेद् राजा ॥—अश्व० ४४।१०

७३. वक्षसि वाह्वोर्लिके शफदेशे कर्णमूलयोश्चैव।
आवर्तास्तुरगाणां शस्ताः केशान्तयोस्तथा शुक्तिः ॥ —यश० पृ० ३१४
तुलना—आवर्तः पूजितो नित्यं शिरोमध्ये व्यवस्थितः।
स्थानमेकं तु विज्ञेयं स्थाने द्वे कर्णमूलयोः ॥—अश्व० २५, १४

श्रीवृक्षो वक्षसि प्रोक्तो ह्यावर्तैः पंचभिर्भवेत्। अन्ये द्वे वक्षसि स्थाने चतुर्भिस्त्रिभिरेव च ॥
वाह्वोः स्थानद्वयं प्रोक्तं तत्रावर्तद्वयं विदुः। द्वे चोपरन्ध्रयोः स्थाने द्वौ स्थितौ रोमजौ तयोः ॥
—अश्व० २५ २६, १६-१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के स्वामी को कल्याणप्रद होते हैं।[७४] अश्वशास्त्र में आवर्तों का विस्तार से अलग-अलग फल बताया है (पृ० २६-२७)।

कामकृत अश्व

जिन अश्वों का ललाट विशाल, मुँह आगे को झुका हुआ, चमड़ी पतली, आगे के पैर स्थूल, जंघाएँ लम्बी, पीठ या बैठने का स्थान चौड़ा तथा पेट कृश होता है, वे अश्व इष्टफल देने वाले होते हैं।[७५]

वाहन योग्य अश्व

मेघ के सदृश वर्ण, मेघ के घोष के समान ह्रेषित, गज की क्रीड़ा की तरह गति, घृत की तरह गन्ध वाले तथा माला और विलेपनप्रिय अश्व वाहन योग्य होते हैं।[७६]

अश्व-प्रशस्ति

युद्ध रूपी गेंद खेलने में आसक्त, शत्रुसैन्य को रोकने में परिघा के समान तथा समस्त पृथ्वीमण्डल के अवलोकन की दृष्टि वाले अश्व युद्धकाल में मनोरथ की सिद्धि करने वाले होते हैं।

अन्यूनाधिक देह (न अधिक छोटे न अधिक बड़े), सुघड़ शरीर, सुशिक्षित तथा अच्छी तरह कसे हुए घोड़े वांछित फल देने वाले होते हैं।

---

७४. अहीनाविच्छिन्नाविचलितप्रदक्षिणवृत्तिभिर्देवमणिनिःश्रेणिश्रीवृन्दरोचमानादि-
नामभिरावर्तैः शुक्तिमुकुलावलीढकादिभिश्च तद्विशेषैराश्रितोचितप्रदेशम्।
—यश० पृ० ३१०

तुलना—आवर्तशुक्तिसंघातमुकुलान्वयलीढकम्।
शतपादी पादुकार्धपादुका चाष्टमी स्मृता॥
आवर्ताकृतयश्चैता अष्टौ संपरिकीर्तिताः।—अश्वशा० २३।१-२
एते स्वस्थानस्थाः प्रदक्षिणाः सुप्रभाः शस्ताः।
एतैर्विनातुरंगः स्वल्पायुः पापलक्षणस्त्वशुभः॥—वही, ३४।८

अहीन = शस्ता, अविचलित = स्वस्थानस्थ, अविछिन्न = सुप्रभा

७५. विशालभाला बहिराननतास्याः सूक्ष्मत्वचः पीवरबाहुदेशाः।
सुदीर्घजंघा पृथुपृष्ठमध्यास्तनूदरा कामकृतास्तुरंगाः॥—यश० पृ० ३१४

७६. जीमूतकान्तिर्घनघोषह्रेषा करीन्द्रलीलागतिराज्यगन्धः।
प्रियः परं माल्यविलेपनानामारोहणार्हस्तुरगो नृपस्य॥—वही, पृ० ३१५

तुलना—जीमूतवर्णा घनघोषह्रेषी मध्वाज्यगन्धो गजहंसगामी।
प्रियश्च माल्यस्य विलेपनस्य सोऽप्यश्वराजो नृपवाहनं स्यात्॥
—अश्व० १०६।२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस राजा के एक भी प्रशस्त अश्व होता है, युद्ध में उसकी विजय सुनिश्चित है, उसी के राज्य में समय पर पानी बरसता है और उसी के राज्य में प्रजा के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ सधते हैं।

जिस राजा के श्रेष्ठ अश्व होते हैं उसके लिए यह धरती उस स्त्री के समान है जिसके कुलाचल कुच हैं, समुद्र नितंब, नदियाँ भुजाएँ तथा राजधानी मुख है।[७७]

अश्व के लिए यशस्तिलक में निम्नलिखित शब्द आये हैं—

(१) गन्धर्व (पृ० १२),
(२) तुरग (पृ० २९, ३१४, ३१५),
(३) तुरंगम (पृ० ३१३, ३१४, ३१६),
(४) अश्व (पृ० ३२),
(५) वाहा (पृ० ७०, ३१३),
(६) वाजि (पृ० १८६, ३१३ उत्त०)
(७) मितद्रव (पृ० ३१४),
(८) अर्वन्त (पृ० ३०७),
(९) हय (पृ० ३१२, ३१५),
(१०) जुहुराण (पृ० २१४)।

अश्वचालक या घुड़सवार को अभिषादी कहते थे (पृ० ३१२)।

अश्वविद्याविद्

सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है।[७८] ऊपर लिखा जा चुका है कि रैवत अश्वविद्या-विशेषज्ञ माने जाते थे। इसीलिए

---

७७. कदनकन्दुककेलिविलासिनः परबलस्खलने परिघः हयाः।
सकलभूवलयेक्षणदृष्टयः समरकालमनोरथसिद्धयः॥
अन्यूनाधिकदेहा समसुविभक्ताश्च वर्ष्मभिः सर्वैः।
संघतघनांगबन्धाः कृतविनयाः कामदास्तुरगाः॥
जयः करे तस्य रणेषु राज्ञः काले परं वर्षति वासवश्च।
धर्मार्थकामाभ्युदयः प्रजानामेकोऽपि यस्यास्ति हयः प्रशस्तः॥
कुलाचलकुचाम्भोधिनितम्बा वाहिनी भुजा।
धरा पुरानना स्त्रीव तस्य यस्य तुरंगमाः॥
—यश० पृ० ३१५, ३१६

७८. रैवत इव हयनयेषु, वही, पृ० २३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है। यशस्तिलक के दोनों टीकाकारों ने रैवत को सूर्य का पुत्र बताया है। मार्कण्डेयपुराण में भी रैवत या रैवन्त को सूर्य और वडवा का पुत्र कहा है (७५।२४) तथा गुह्यक मुख्य और अश्ववाहक बताया है। अश्वकल्याण के लिए रैवत की पूजा भी की जाती है (जयदत्त—अश्व-चिकित्सा, विव० इंडिका १८८६,७, पृ० ८५-६)।

अश्वविद्या-विशेषज्ञों में सोमदेव ने शालिहोत्र का भी उल्लेख किया है (१७३ हि०)। शालिहोत्रकृत एक संक्षिप्त रैवतस्तोत्र प्राप्त होता है (तंजोर ग्रन्थागार, पुस्तक सूची, पृ० २०० बी तथा कीथ का इंडिया आफिस केटलाग पृ० ७५८)।[७९]

---

७९. राघवन्, ग्लो० फ्रा० यश०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृषि तथा वाणिज्य आदि

यशस्तिलककालीन भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध था। जिस प्रकार साहित्य और कला के क्षेत्र में उस युग में प्रगति हुई, उसी प्रकार आर्थिक जीवन में भी। सोमदेव ने कृषि, वाणिज्य, सार्थवाह, नौसन्तरण और विदेशी व्यापार, विनिमय के साधन, न्यास इत्यादि के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। संक्षेप में उसका परिचय निम्नप्रकार है—

कृषि

कृषि के लिए अच्छी और उपजाऊ जमीन, सिंचाई के साधन, सहज प्राप्य श्रम और साधन आवश्यक हैं। सोमदेव ने यौधेय जनपद का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ की जमीन काली थी।[1] सिंचाई के लिए केवल वर्षा के पानी पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था।[2] श्रमिक भी सहज रूप में उपलब्ध हो जाते थे। कुछ श्रमिक ऐसे होते थे जो अपने-अपने हल इत्यादि कृषि के औजार रखते थे तथा बुलाये जाने पर दूसरों के खेत जोत-बो जाते थे। सोमदेव ने ऐसे श्रमिकों के लिए समाश्रित प्रकृति पद का प्रयोग किया है।[3] श्रुतसागर ने इसका अर्थ अठारह प्रकार के हलजीवी किया है। इस प्रकार के हलजीवियों की कमी नहीं थी।[4]

खेती करने में विशेषज्ञ व्यक्ति क्षेत्रज्ञ कहलाता था और उसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा भी होती थी।[5] कृषि की समृद्धि का एक कारण यह भी था कि सरकारी लगान उतना ही लिया जाता था जितना कृषिकार सहज रूप में दे सके।[6] यही सब कारण थे कि कृषि की उपज पर्याप्त होती थी और वसुन्धरा पृथ्वी चिन्तामणि के

---

१. कृष्णभूमयः। —पृ० १३
२. अदेवमातृका। —वही। सुलभजलः। —वही
३. समाश्रितप्रकृतयः। —वही
४. हलबहुलः। —वही
५. क्षेत्रज्ञप्रतिष्ठाः। —वही
६. भर्तृकरसंबाधसहाः। —पृ० १४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समान शस्य सम्पत्ति लुटाती थी।[७] इतनी उपज होती थी कि बोये हुए खेत की लुनाई करना, लुने धान्य की दौनी करना और दौनी किये धान्य को बटोर कर संग्रह करना मुश्किल हो जाता था।[८]

खेत में बीज डालने को वप्त कहा जाता था। पके खेत को काटने के लिए लवन कहते थे तथा काटी गयी धान्य की दौनो करने को विगाढना कहा जाता था।

पर्याप्त धान्य से समृद्ध प्रजा के मन में ही यह विचार सम्भव था कि हमारी यह पृथ्वी मानो स्वर्ग के कल्पद्रुमों की शोभा को लूट रही है।[९]

अनुपजाऊ जमीन ऊषर कहलाती थी। जैसे मूर्खों को तत्त्व का उपदेश देना व्यर्थ है, उसी प्रकार ऊषर जमीन को जोतना, बोना और उसमें पानी देना व्यर्थ है।[१०]

वाणिज्य

वाणिज्य की व्यवस्था प्रायः दो प्रकार की होती थी—स्थानीय तथा जहाँ दूर-दूर तक के व्यापारी जाकर धंधा करें।

स्थानीय व्यापार के लिए हर वस्तु का प्रायः अपना-अपना बाजार होता था। केसर, कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुएँ जिस बाजार में बिकती थीं वह सौगन्धियों का बाजार कहलाता था।[११] वास्तव में यह बाजार का एक भाग होता था, इसलिए इसे विपणि कहते थे। इस बाजार में केसर, चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओं का ही लेन-देन होता था।[१२]

जिस बाजार में माली पुष्पहार बेचते थे, उसे सोमदेव ने स्रग्-जीवियों का

---

७. वपत्रक्षेत्रसंजातसस्यसंपत्तिबंधुराः।
चिंतामणिसमारंभाः सन्ति यत्र वसुंधराः ॥—पृ० १६

८. लवने यत्र नोप्तस्य लूनस्य न विगाहने।
विगाढस्य च धान्यस्य नालं संग्रहणे प्रजाः ॥—पृ० १६

९. प्रजाप्रकामसस्याढ्याः सर्वदा यत्र भूमयः।
मुष्णन्तीवामरावासकल्पद्रुमवनश्रियम् ॥—पृ० १९८

१०. यद्भवेन्मुग्धबोधानामूषरे कृषिकर्मवत्।—पृ० २८२ उत्त०

११. सौगन्धिकानां विपणिविस्तारेषु।—पृ० १८ उत्त०

१२. परिवर्तमानकाश्मीरमलयजागुरुपरिमलोद्गारसारेषु।—वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आपण कहा है।[१३] स्रग्जीवी मालाएँ हाथों में लटका-लटकाकर ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट करते थे।[१४]

बाजार प्रायः आम रास्तों पर ही होते थे। सोमदेव ने लिखा है कि सायंकाल होते ही राजमार्ग खचाखच भर जाते थे।[१५] भीड़ में कुछ ऐसे नागरिक होते थे, जो रात्रि के लिए संभोगोपकरणों का इन्तजाम करने उत्साहपूर्वक इधर-उधर घूम रहे होते।[१६] कुछ रूप का सौदा करने वाली वारविलासिनियाँ घमण्डपूर्वक अपने-हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई कामुकों के प्रश्नों की उपेक्षा करती टहल रही होतीं।[१७] कुछ ऐसी दूतियाँ जिनके हृदय अपने पतियों द्वारा सुनायी गयी किसी अन्य स्त्री के प्रेम की घटना से दुःखी होते, अपनी सखियों की बातों का उत्तर दिये बिना ही चहलकदमी कर रही होतीं।[१८]

पैण्ठास्थान

व्यापार की बड़ी-बड़ी मंडियाँ पैण्ठास्थान कहलाती थीं। पैण्ठास्थानों में व्यापारियों को सब प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध रहता था। यहाँ दूर-दूर तक के व्यापारी आकर अपना धन्धा करते थे। सोमदेव ने एक पैण्ठास्थान का सुन्दर वर्णन किया है। उस पैण्ठास्थान में अलग-अलग अनेक दुकानें बनायी गयी थीं। सामान की सुरक्षा के लिए बड़ी-बड़ी खोड़ियाँ या स्टोर हाउस थे। पोखरों के किनारे पशुधन की व्यवस्था थी। पानी, अन्न, ईन्धन तथा यातायात के साधन सरलता से उपलब्ध हो जाते थे। सारा पैण्ठास्थान चार मील के घेरे में फैला था। चारों ओर सुरक्षा के लिए अहाता और खाई थे। आने-जाने के लिए निश्चित दरवाजे और मुख्य द्वार थे। सैनिक सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध था। हर गली में प्याऊ, भोजनालय, सभाभवन पर्याप्त थे। जुआड़ी, चोर-चपाटों और बदमाशों पर

---

१३. स्रगाजीविनामापणरंगभागेषु।—पृ० १८ उ०
१४. करविलंबितकुसुमसरसौरभसुभगेषु।—वही
१५. समाकुलेषु समन्ततो राजवीथिमण्डलेषु।—वही
१६. ससंभ्रममितस्ततः परिसर्पता संभोगोपकरणाहितादरेण पौरनिकरेण।—वही
१७. निजविलासदर्शनाहंकारिमनोरथाभिरवधीरितविटमुधाप्रश्नसंकथाभिः पण्यांगनासमितिभिः।—पृ० १९ उत्त०
१८. आत्मपतिसंदिष्टघटनाकुलितहृदयेनावधीरितसखीजनसंभाषणोत्तरदानसमयेनसंचरिता संचारिकानिकायेन।—वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खास निगाह थी कि वे भीतर न आने पायें। शुल्क भी यथोचित लिया जाता था। नाना देशों के व्यापारी वहाँ व्यापार के लिए आते थे।[१९]

यह पैण्ठास्थान श्रीभूति नामक एक पुरोहित द्वारा संचालित था और उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रतीत होता है; किन्तु प्राचीन भारत में राज्य द्वारा इस प्रकार के पैण्ठास्थानों का संचालन होता था। स्वयं सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत में लिखा है कि न्यायपूर्वक रक्षित पिण्ठा या पैण्ठास्थान राजाओं के लिए कामधेनु के समान हैं।[२०] नीतिवाक्यामृत के टीकाकार ने पिण्ठा का अर्थ 'शुल्क-स्थान' किया है तथा शुक्राचार्य का एक पद्य उद्धृत किया है कि व्यापारियों से शुल्क अधिक नहीं लेना चाहिए और यदि पिण्ठा से किसी व्यापारी का कोई माल चोरी चला जाये तो उसे राजकीय कोष से भरना चाहिए।[२१]

सोमदेव ने पिण्ठा को पण्यपुटभेदिनी कहा है। टीकाकार ने इसका अर्थ वणिकों की कुंकुम, हिंगु, वस्त्र आदि वस्तुओं को संग्रह करने का स्थान किया है।[२२] यशस्तिलक के विवरण से ज्ञात होता है कि पैण्ठास्थान व्यापार के बहुत बड़े साधन थे और व्यापारिक समृद्धि में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान था।

सार्थवाह

यशस्तिलक में सार्थवाह के लिए सार्थ (१६), सार्थपार्थिव (२२५ उत्त०) तथा सार्थानीक (२९३ उत्त०) शब्द आये हैं। समान या सहयुक्त अर्थ (पूँजी) वाले व्यापारी जो बाहरी मंडियों से व्यापार करने के लिए टांडा बाँधकर चलते थे,

---

१९. स किल श्रीभूतिर्विश्वासरसनिघ्नतया परोपकारनिघ्नतया च विभक्तानेकापवरकरचनाशालिनीभिर्महाभाण्डवाहिनीभिर्गोशालोपशल्याभिः कुल्याभिः समन्वितम्, अतिसुलभजलयसेन्धनप्रचारम्, भाण्डनारम्भोद्भटभीरपेटकपञ्जरचासारम्, गोरुतप्रमाणवप्राकारप्रतोलिपरिखासूत्रितत्राणं प्रपासत्रसभासनाथवीथिनिवेशनं पण्यपुटभेदनं विदूरित कितवविटविदूषकपीठमर्दावस्थानं पैण्ठास्थानं विनिर्माप्य नानादिग्देशोपसर्पणयुजां वणिजां प्रशान्तशुल्कभाटकभागहारव्यवहारमचीकरत्।
—पृ० ३४५ उत्त०

२०. न्यायेनरक्षिता पण्यपुटभेदिनि पिण्ठा राज्ञां कामधेनुः।—नीति० १९।२१

२१. तथा च शुक्रः – ग्राह्यं नैवाधिकं शुल्कं चौरैर्यच्चाहृतं भवेत्।
'पिण्ठायां भुभुजा देयं वणिजां तत् स्वकोशतः॥ वही, टीका

२२. पण्यानि वणिग्जनानां कुंकुमहिंगुवस्त्रादीनि क्रयाणकानि तेषां पुटाः स्थानानि भिद्यन्ते यस्यां सा पण्यपुटभेदिनी। —वही, टीका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सार्थ कहलाते थे। उनका नेता ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता था।[२३] इसका निकटतम अँगरेजी पर्याय 'कारवान लीडर' है। हिन्दी का साथ शब्द संस्कृत के सार्थ से ही निकला है, किन्तु उसका वह प्राचीन अर्थ लुप्त हो गया है। प्राचीन-काल में यात्रा करना उतना निरापद नहीं था, जितना अब हो गया है। डाकुओं और जंगली जानवरों से घनघोर जंगल भरे पड़े थे, इसलिए अकेले-दुकेले यात्रा करना कठिन था। मनुष्य ने इस कठिनाई से पार पाने के लिए एक साथ यात्रा करने का निश्चय किया, और इस तरह किसी सुदूर भूत में सार्थ की नींव पड़ी। बाद में तो यह दूर के व्यापार का एक साधन बन गया।[२४]

सार्थवाह का कर्तव्य होता था कि वह सार्थ की सुरक्षा करते हुए उसे गन्तव्य स्थान तक पहुँचाए। सार्थवाह कुशल व्यापारी होने के साथ-साथ अच्छा पथ-प्रदर्शक भी होता था। आज भी जहाँ वैज्ञानिक साधन नहीं पहुँच सके हैं, वहाँ सार्थवाह अपने कारवां वैसे ही चलाते हैं, जैसे हजार वर्ष पहले। कुछ ही दिनों पहले शिकारपुर के साथ (सार्थके लिए सिन्धी शब्द) चीनी तुर्किस्तान पहुँचने के लिए काराकोरम को पार करते थे और आज दिन भी तिब्बत का व्यापार सार्थों द्वारा होता है।[२५]

प्राचीन काल में कोई एक उत्साही व्यापारी सार्थ बनाकर व्यापार के लिए उठता था। उसके सार्थ में और भी लोग सम्मिलित हो जाते थे। इसके निश्चित नियम थे। सार्थ का उठना व्यापारिक क्षेत्र की बड़ी घटना होती थी। धार्मिक यात्रा के लिए जिस प्रकार संघ निकलते थे और उनका नेता संघपति (संघवई, संघवी) होता था, वैसे ही व्यापारिक क्षेत्र में सार्थवाह की स्थिति थी। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि भारतीय व्यापारिक जगत् में जो सोने की खेती हुई उसके फूले पुष्प चुनने वाले सार्थवाह थे। बुद्धि के धनी, सत्य में निष्ठावान्, साहस के भण्डार, व्यापारिक सूझ-बूझ में पगे, उदार, दानी, धर्म और संस्कृति में रुचि रखने-वाले, नयी स्थिति का स्वागत करनेवाले, देश-विदेश की जानकारी के कोष, यवन, शक, पल्लव, रोमक, ऋषिक, हूण आदि विदेशियों के साथ कन्धा रगड़ने वाले, उनकी भाषा और रीति-नीति के पारखी भारतीय सार्थवाह महोदधि के तट पर स्थित ताम्रलिप्ति से सीरिया की अन्ताखी नगरी तक यवद्वीप-कटाहद्वीप (जावा

२३. समानधनचारित्रैर्वणिक्पुत्रैः। – पृ० ३४५ उत्त०
तुलना– सार्थान् सधनान् सरतो वा पान्थान् वहति सार्थवाहः।
– अमरकोष ३।९।७८ सं० टी०

२४. अग्रवाल – सार्थवाह, प्रस्तावना, पृ० २

२५. मोतीचन्द्र – सार्थवाह, पृ० २९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और केडा) से चौलमण्डल के सामुद्रिक पट्टनों और पश्चिम में यवन, बर्बर देशों तक के विशाल जल, थल पर छा गये थे।[२६]

यशस्तिलक में सुवर्णद्वीप और ताम्रलिप्ति के व्यापार का उल्लेख है। पद्मिनी-खेटपट्टन का निवासी भद्रमित्र अपने समान धन और चारित्र वाले वणिक्पुत्रों के साथ सुवर्णद्वीप गया। वहाँ उसने बहुत धन कमाया और मनोवांछित सामग्री लेकर लौट पड़ा। रास्ते में दुर्दैव से असमय में ही समुद्र में तूफान आ गया और उसका जहाज डूब गया। आयु शेष होने के कारण वह अकेला जिन्दा बच गया और एक फलक के सहारे जैसे-तैसे पार लगा।[२७]

दूसरी कथा में पाटलिपुत्र के महाराज यशोध्वज के लड़के सुवीर ने घोषणा की कि जो कोई ताम्रलिप्ति पत्तन के सेठ जिनेन्द्रभक्त के सतखण्डा महल के ऊपर बने जिन-भवन में से छत्रत्रय के रूप में लगे अद्भुत वैडूर्य मणियों को ला देगा, उसे मनोभिलषित पारितोषिक दिया जायेगा। सूर्य नाम का एक व्यक्ति साधु का वेष बना कर जिनदत्त के यहाँ पहुँचा और एक दिन वहाँ से रत्न चुराकर भाग निकला।[२८]

इसी कथा के अन्तर्गत जिनभद्र की विदेश-यात्रा का भी उल्लेख है। सोमदेव ने इसे बहित्रयात्रा कहा है। जिनभद्र बहित्रयात्रा के लिए जाना चाहता था। घर किस के भरोसे छोड़े, यह समस्या थी। अन्त में वह उसी सूर्य नामक छद्म वेषधारी साधु पर विश्वास करके उसके जिम्मे सब छोड़कर विदेश यात्रा के लिए चल देता है।[२९]

अमृतमति का जीव एक भव में कलिंग देश में भैंसा हुआ। किसी सार्थवाह ने उसके सुन्दर और मजबूत शरीर को देखकर खरीद लिया और अपने सार्थ के साथ उज्जयिनी ले गया।[३०]

सोमदेव ने लिखा है कि यौधेय जनपद की कृषक वधुएँ अपनी नटखट चाल और नाना विलासों के द्वारा परदेशी सार्थों के नेत्रों को क्षण भर के लिए सुख देती हुई खेतों में काम करने चली जाती थीं।[३१]

---

२६. अग्रवाल, वही पृ० २

२७. यश० पृ० ३४५ उत्त०

२८. वही, पृ० ३०२ उत्त०

२९. वही

३०. पृ० २२५ उत्त०

३१. पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चम्पापुर के प्रियदत्त श्रेष्ठी की रूपसी कन्या विपत्ति की मारी शंखपुर के निकट पर्वत की तलहटी में पहुँची। वहाँ पुष्पक नाम के वणिक्-पति का सार्थ पड़ाव डाले था। पुष्पक कन्या के रूप-सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गया। अनेक तरह के लोभ देकर उसे वश में करने लगा, किन्तु जब वश में नहीं हुई तो अयोध्या में लाकर एक वेश्या को दे दिया।[32]

जिस तरह भारतीय सार्थ विदेशी व्यापार के लिए जाते थे उसी तरह विदेशी सार्थ भारत में भी व्यापार करने के लिए आते थे। सोमदेव ने एक अत्यन्त समृद्ध पैण्ठास्थान (बाजार) का वर्णन किया है, जहाँ पर अनेक देशों के व्यापारी व्यापार के लिए आते थे।[33] ऊपर इसका विशेष वर्णन किया गया है।

विनिमय के साधन

सोमदेव ने विनिमय के दो प्रकार बताये हैं : (१) वस्तु का मूल्य मुद्रा या सिक्के के रूप में देकर खरीदना या (२) वस्तु का वस्तु से विनिमय। मुद्रा या सिक्कों में सोमदेव ने निष्क, कार्षापण और सुवर्ण का उल्लेख किया है।[34] इनके विषय में संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है –

निष्क

निष्क के प्राचीनतम उल्लेख वेदों में मिलते हैं। उस समय निष्क एक प्रकार के सुवर्ण के बने आभूषण को कहा जाता था जो मुख्य रूप से गले में पहना जाता था और जिसे स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे।[35]

वैदिक युग के बाद निष्क एक नियत सुवर्ण मुद्रा बन गयी, ऐसा बाद के साहित्य से ज्ञात होता है। जातक, महाभारत तथा पाणिनि में निष्क के उल्लेख आये हैं।[36]

मनुस्मृति में निष्क को चार सुवर्ण या तीन सौ बीस रत्ती के बराबर कहा है।[37]

---

३२. पृ० २९३ उत्त०

३३. पृ० ३४५ उत्त०

३४. वरं सांशयिकान्निष्कादसांशयिकः कार्षापणः। –पृ० ९२ उत्त०
पलव्यवहारः सुवर्णदक्षिणासु। –पृ० २०२

३५. अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५०

३६. वही, पृ० २५१-५२

३७. मनुस्मृति ८।१३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार्षापण

कार्षापण प्राचीन भारत का सबसे प्रसिद्ध सिक्का था। यह चाँदी का बनता था। मनुस्मृति में इसे ही धरण और राजतपुराण (चाँदी का पुराण) भी कहा है।[३८] पाणिनि ने इन सिक्कों को आहत कहा है।[३९] उसी के अनुसार ये अँगरेजी में पंच मार्क्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सिक्के बुद्ध-युग से भी पुराने हैं तथा भारतवर्ष में ओर से छोर तक पाये जाते हैं। अब तक लगभग पचास सहस्र से भी अधिक चाँदी के कार्षापण मिल चुके हैं।[४०]

मनुस्मृति के अनुसार चाँदी के कार्षापण या पुराण का वजन बत्तीस रत्ती था। सोने या ताँबे के कर्ष का वजन अस्सी रत्ती था।

कार्षापण की फुटकर खरीज़ भी होती थी। अष्टाध्यायी, जातक तथा अर्थशास्त्र में इसकी सूचियाँ आयी हैं। अष्टाध्यायी में कार्षापण को केवल पण कहा है। इसके अर्ध, पाद, त्रिमाष, द्विमाष, अध्यर्ध या डेढ़ माष, माष और अर्धमाष का उल्लेख है। कात्यायन ने इन में काकणी और अर्धकाकणी नाम और जोड़े हैं। जातकों में कहापण, अड्ढ, पाद या चत्तारोमासक, तयोमासक, द्वैमासक, एकमासक और अड्ढमासक नाम आये हैं। अर्थशास्त्र में पण, अर्धपण, पाद, अष्टभाग, माणक, अर्धमाणक, काकणी तथा अर्धकाकणी नाम आये हैं।[४१]

सुवर्ण

निष्क की तरह सुवर्ण एक सोने का सिक्का था। अनगढ़ सोने को हिरण्य कहते थे और उसी के जब सिक्के ढाल लेते तो वे सुवर्ण कहलाते थे।[४२]

सुवर्ण का वजन मनुस्मृति के अनुसार अस्सी रत्ती या सोलह माषा होता था। कौटिल्य ने एक कर्ष अर्थात् अस्सी गुंजा (लगभग १५० ग्राम) के बराबर सुवर्ण का वजन बताया है। बहुत प्राचीन सुवर्ण उपलब्ध नहीं होते फिर भी गुप्त युग के जो सुवर्ण सिक्के मिले हैं उनका वजन प्रायः इतना ही है।[४३]

---

३८. द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः।
ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजत॥ ८।१३५-३६

३९. अष्टाध्यायी, ५।२।१२०

४०. अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५६

४१. वही

४२. भण्डारकर – प्राचीन भारतीय मुद्राशिल्प, पृ० ५१

४३. अग्रवाल – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुवर्ण के उल्लेख प्राचीन साहित्य और शिल्प में समान रूप से पाये जाते हैं। श्रावस्ती के अनाथपिंडक की कथा प्रसिद्ध है। अनाथपिंडक बौद्ध संघ के लिए एक बिहार बनाना चाहता था। इसके लिए उसने जो जमीन पसन्द की वह जैत नामक एक राजकुमार की सम्पत्ति थी। अनाथपिंडक ने जब जैत से उस जमीन-का दाम पूछा तो उसने उत्तर दिया कि आप जितनी जमीन लेना चाहें उतनी जमीन पर मूल्यस्वरूप सुवर्ण बिछाकर ले लें। अनाथपिंडक ने अठारह करोड़ सुवर्ण बिछाकर जमीन को खरीद लिया।

भरहुत के बौद्ध स्तूप में इस कथा का अंकन हुआ है। एक परिचारक छकड़े पर से सिक्के उतार रहा है, एक दूसरा उन सिक्कों को किसी चीज में उठाकर ले जा रहा है। दूसरे दो परिचारक उन सिक्कों को जमीन पर बिछा रहे हैं।[४४] बोधगया के महाबोधि मन्दिर के स्तम्भों में भी इसी तरह के चित्र हैं।[४५]

सोमदेव के उल्लेख से ज्ञात होता है कि दशमी शती तक सुवर्ण मुद्रा का प्रचार था। सोमदेव ने लिखा है कि पल का व्यवहार सुवर्णदक्षिणा में था।[४६]

वस्तु-विनिमय

वस्तु-विनिमय में एक वस्तु दे कर लगभग उसी मूल्य की दूसरी वस्तु ली जाती थी। भद्रमित्र सुवर्ण-द्वीप के व्यापार के लिए गया तो वहाँ से अपनी पसन्द की अनेक वस्तुओं को वस्तु-विनिमय में संगृहीत किया।[४७]

एक अन्य प्रसंग में आया है कि एक गड़रिया एक बकरा लिये था। यज्ञ करने के इच्छुक एक पण्डित ने पूछा – 'अरे भाई, बेचना हो तो इसे इधर लाओ।' 'सरकार, बेचना ही तो है। आप अपनी अंगूठी बदले में मुझे दे दें, तो मैं इसे दे दूँ।' उसने उत्तर दिया। और उस पण्डित ने अँगूठी देकर बकरा ले लिया।[४८] वस्तु-विनिमय की सबसे बड़ी कठिनाई यही थी कि जो वस्तु विक्रेता के पास है उस वस्तु की आवश्यकता उस व्यक्ति को हो जिस व्यक्ति की वस्तु आप लेना चाहते हैं। इसी आवश्यकता की तीव्रता या मन्दता के आधार पर वस्तु-विनिमय का आधार बनता था।

---

४४. कनिंघम – स्तूप ऑव भरहुत, पृ० ८४

४५. कनिंघम – महाबोधि, पृ० १३

४६. पलव्यवहारः सुवर्णदक्षिणासु। –पृ० २०२

४७. अगण्यपण्यविनिमयेन तत्रत्यमचिन्त्यमात्माभिमतवस्तुस्कन्धमादाय। –पृ० ३४५ उत्त०

४८. अरे मनुष्य, समानीयतामित इतोऽयं छागरतत्र चेदस्ति विक्रेतुमिच्छा इति। पुरुषः भट्ट, विचिक्रीपुरेवैनं यदि भवानिदं मे प्रसादी करोत्यंगुलीयकम्। –पृ० १३१ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्यास

सोमदेव ने न्यास या धरोहर रखने का उल्लेख किया है। भद्रमित्र विदेश यात्रा के लिए गया तो आचार, व्यवहार और विश्वास के लिए विश्रुत श्रीभूति के पास उसकी पत्नी के समक्ष सात अमूल्य रत्न न्यास रख गया।[४९]

न्यास रखते समय यह अच्छी तरह विचार लिया जाता था कि जिस व्यक्ति के पास न्यास रखा जा रहा है वह पूर्ण प्रामाणिक और विश्वासपात्र व्यक्ति है। इतना होने पर भी न्यास रखते समय साक्षी अपेक्षित समझी जाती थी।[५०]

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि जिस व्यक्ति के पास न्यास रखा गया है, उसकी नियत खराब हो जाये और वह यह भी समझ ले कि न्यासकर्ता के पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे वह कह सके कि उसने उसके पास अमुक वस्तु रखी है, तो वह न्यास को हड़प जाता था। भद्रमित्र सब सोच-समझ कर श्रीभूति के पास अपने सात बहुमूल्य रत्न रख कर विदेश-यात्रा के लिए गया था, किन्तु दुर्भाग्य से लौटने में उसका जहाज समुद्र में डूब गया। संयोग से वह बच गया और आकर श्रीभूति से अपने रत्न माँगे। श्रीभूति ने न्यास को तो नकारा ही, साथ ही भद्रमित्र को बहुत ही बुरा-भला कहा और उल्टा ले जाकर राजा के पास पेश कर दिया।[५१]

भृति

भृति या नौकरी के प्रति साधारणतया लोगों की धारणा अच्छी नहीं थी, प्रत्युत इसे निंद्य माना जाता था।[५२] इसका मुख्य कारण यह था कि भृत्य या सेवक कार्य करने के विषय में अपने मालिक के निर्देश पर अवलम्बित रहता है और उसका अपना मन या विवेक वहाँ काम नहीं देता। अनेक प्रसंग ऐसे भी आते हैं जब भृत्य को अपनी इच्छा के विपरीत भी कार्य करने पड़ते हैं। उसी समय धारणा बनती है कि नौकरी करने वाले का सत्य जाता रहता है। करुणा के साथ

४९-५०. विचार्य चातिचिरमुपनिधिन्यासयोग्यमावासम् उदिताचारसेव्योऽवधारितेति-कर्तव्यस्तस्याखिललोकश्लाघ्यविश्वासप्रसूतेः श्रीभूतेर्हस्ते तत्पत्नीसमक्षमनर्घकक्षमनुगताप्तकं रत्नसप्तकं निधाय।–पृ० ३४५ उत्त०

५१. अध्याय ७, कल्प २७

५२. आ : कष्टा खलु शरीरिणां सेवया जीवनचेष्टा।–पृ० १३६

सेवावृत्तेः परमिह परं पातकं नास्ति किंचित्।–वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म भी समाप्त हो जाता है, केवल नीच वृत्तियों के साथ पाप ही शाप की तरह चिपटा फिरता है।[५३]

सोमदेव ने लिखा है कि वास्तव में बात यह है कि नौकरी तो एक प्रकार का सौदा है। नौकर अपने सौजन्य, मैत्री और करुणा रूप मणियों को देता है तो मालिक से उसके बदले में धन पाता है। यदि न दे तो उसे धन भी न मिले क्योंकि धन ही धन कमाता है।[५४]

■

---

५३. सत्यं दूरे विहरति समं साधुभावेन पुंसां,
धर्मश्चित्तात्सहकरुणया याति देशान्तराणि।
पापं शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्धं,
सेवावृत्तेः परमिह परं पातकं नास्ति किंचित्॥ वही

५४. सौजन्यमैत्रीकरुणामणीनां व्ययं न चेत् भृत्यजनः करोति।
फलं महीशादपि नैव तस्य यतोऽर्थमेवार्थनिमित्तमाहुः॥ —वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शस्त्रास्त्र

यशस्तिलक में सोमदेव ने छत्तीस प्रकार के शस्त्रास्त्रों की जानकारी दी है। इससे अधिकांश शस्त्रास्त्रों का स्वरूप, उनके प्रयोग करने के तरीकों तथा कतिपय अन्य आवश्यक बातों पर भी प्रकाश पड़ता है।

शस्त्रास्त्रों के उल्लेख मुख्य रूप से तीन प्रसंगों पर हुए हैं : (१) चण्डमारी के मन्दिर में आयोजित समारोह के वर्णन में, (२) विविध देशों की सेनाओं का परिचय कराते समय तथा (३) पांचाल नरेश के दूत के सम्राट् यशोधर के दरबार में पहुँचने पर। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंगों पर भी कतिपय शस्त्रास्त्रों का उल्लेख प्रसंगवश हो गया है। उन सबके सम्बन्ध में विशेष जानकारी निम्नप्रकार है –

१. धनुष

धनुष के विषय में सोमदेव ने विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है तथा संसार के सभी अस्त्रों में श्रेष्ठ बताया है।[1] आयुध-सिद्धान्त में धनुर्वेद अपने आप में एक पूरा विज्ञान है। शराभ्यासभूमि में जाकर धनुष चलाने की विधिवत् शिक्षा ली जाती थी।[2] यदि धनुष चलाना आ गया तो अन्य अस्त्र चलाना आ ही जाता है, किन्तु अन्य सभी अस्त्र चलाना आ जाने पर भी धनुष चलाना नहीं आ सकता।[3]

धनुष की अटनि को जमीन पर टिकाकर उस पर ज्या (डोरी) चढ़ायी जाती थी।[4] ज्या चढ़ाने में जमीन पर अत्यधिक दबाव पड़ता था। सोमदेव ने अतिश-

---

१. यावन्ति भुवि शस्त्राणि तेषां श्रेष्ठतरं धनुः।
धनुषां गोचरे तानि न तेषां गोचरो धनुः॥—पृ० ५९९, श्लो० ४६५

२. आयुधसिद्धान्तमध्यासादितसिंहनादाद्धनुर्वेदादुपश्रुत्य समाश्रितशराभ्यासभूमिः।
—पृ० ५५९

३. धनुषां गोचरे तानि न तेषां गोचरो धनुः॥—पृ० ५९९

४. कूर्मः पातालमूलं श्रयति फणिपतिः पिण्डते न्यञ्चदण्डः,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योक्ति में उसे इतना अधिक बताया है कि – धनुष पर डोरी चढ़ाते समय जैसे भूकम्प की स्थिति आ जाती हो।[५]

धनुष की ध्वनि भी बहुत तेज होती थी। सोमदेव ने उसे आनन्द दुंदुभि के समान कहा है।[६]

कुशल योद्धा जब धनुष चलाता है तो शीघ्रता के कारण यह पता नहीं लग पाता कि धनुष बायें हाथ में है अथवा दाहिने में या दोनों हाथों से ही बाण छोड़ रहा है। प्रयत्न-लाघव की इस क्रिया को 'खुरली' कहा जाता था।[७] महावीर-चरित में भी दो बार (२. ३४, ५५) खुरली का उल्लेख आया है।[८]

धनुष-बाण के द्वारा अत्यन्त दूरस्थ शत्रु को भी मारा जा सकता है। लगातार छोड़े गये बाण बध्य व्यक्ति तथा मौर्वी (धनुष की डोरी) के बीच में ऐसे लगते हैं जैसे पृथ्वी को नापने के लिए डोरा डाला गया हो।[९]

लक्ष्य यदि इतनी दूर हो कि दिखाई भी न पड़े तो भी पुंख-अनुपुंख के क्रम से भेद कर बाण गुणस्यूत (सूई के धागे) की तरह आगे निकल आता है। इसे सोमदेव ने 'सद्गुणययोग्याविधि' कहा है।[१०]

आगे, पीछे, दाहिनें, बायें, ऊपर, नीचे अत्यन्त शीघ्र निरवधि (अनवरत) धनुष चलाने की क्रिया 'कोदण्डांचनचातुरी' कहलाती थी।[११] इस क्रिया में धनुर्धर ऐसा लगता है जैसा उसके पूरे शरीर में हाथ और आँखें लगी हों।[१२]

धनुष के प्राचीन इतिहास के विषय में भी यशस्तिलक से पर्याप्त जानकारी मिलती है –

कर्ण का धनुष कालपृष्ठ, विष्णु का शार्ङ्ग, अर्जुन का गाण्डीव तथा महादेव

---

५. खर्वन्त्युर्वीध्ररन्ध्राण्यपि दधति ककुप्सिन्धुराः साध्वसानि।
गाधन्तेऽम्भोधयोऽपि क्षितितलविरसद्वीचयस्ते महीश,
ज्यारोपासंगसीदद्धनुरटनिभरभ्रस्यभूगोलकाले ॥—पृ० वही,

६. आनन्ददुन्दुभिरिव········चापस्य ते ध्वनिः।—पृ० ६००

७. शस्त्रप्रपञ्चखुरली खलु कः करोतु।—वही,

८. उद्धृत आप्टे – संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी।

९. यश० पृ० वही,

१०. एवं चापविजृम्भितानि भवतः सद् गुणययोग्याविधौ।—पृ० ६०१,

११. कोदण्डांचनचातुरीं रचयतः प्राक्पृष्ठपक्षद्वयप्रोर्ध्वाधोविषयेषु।—पृ० ६०१,

१२. प्रत्यङ्गविनिर्मितेक्षणभुजाः।—वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का पिनाक कहलाता था। गांगेय (भीष्म), द्रोण, राम, अर्जुन, नल तथा नहुष आदि राजा भी धनुष-विद्या के पारंगत योद्धा रहे हैं।[13]

सोमदेव ने शब्दवेधी बाण का भी उल्लेख किया है। यशोमति महाराज ने शब्दवेधित्व कौशल दिखाने के लिए कुक्कुट की आवाज सुनकर उन्हें तीर का निशाना बनाया।[14]

यशस्तिलक में धनुष-विद्या से सम्बन्धित जितनी सामग्री आयी है उसका सम्मिलित परिचय इस प्रकार है –

पृष्ठ	
५९९	(१) धनुर्वेद–धनुष चलाने की विद्या का विश्लेषण करने वाला शास्त्र
५९९	(२) शराभ्यासभूमि–वह स्थान जहाँ धनुष-विद्या सिखायी जाती
६०१	(३) धन्वी–धनुष चलाने वाला
३३२	(४) धनुर्धर–धनुष धारण करने वाला सैनिक
६०१	(५) पिनाक–महादेव का धनुष
६०१	(६) शार्ङ्ग–विष्णु का धनुष
६०१	(७) गाण्डीव–अर्जुन का धनुष
६०१	(८) कालपृष्ठ–कर्ण का धनुष
६००	(९) धनु–धनुष
५७२-७३, ६००-१	(१०) चाप–धनुष
५५५,७४,७६,१२४,३६६	
५५९,५७०,६०१,६०२	(११) कोदण्ड–धनुष
५५५,५७३	(१२) खरदण्ड–धनुष
४६५	(१३) बाणासन–धनुष
५७१	(१४) शरासन–धनुष
७४	(१५) अजगव–धनुष

---

१३. त्वं कर्णः कालपृष्ठे भवसि बलिरिपुस्त्वं पुनः साधु शार्ङ्गे,
गाण्डीवेऽग्रस्त्वमिन्द्रः क्षितिरमण हरस्त्वं पिनाके च साक्षात्।
बालास्त्रप्रायचापाञ्चनचतुरविधेस्तस्य किं श्लाघनीयम्।
गाङ्गेयद्रोणरामार्जुननलनहुषपदमापसाम्ये तव स्यात्॥—पृ० ६०२,

१४. पृ० ५६१,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५५५,५९९	(१६) ज्या–धनुष की डोरी
५९,५९९	(१७) अटनि–धनुष का सांचेदार सिरा—किनारा
५७३	(१८) गुण–धनुष की डोरी
६००	(९) मौर्वी–धनुष की डोरी
५५८	(२०) नाराच–बाण
७६,११४,५५६	(२१) काण्ड–बाण
५५८	(२२) विशिख–बाण
२५९ उत्त०	(२३) सायक–बाण
६००-६०१	(२४) बाण–बाण
५५८	(२५) नाराचपंजर–तरकस
४६७	(२६) मस्त्रा–तरकस
६००	(२७) पुंख–बाण का पिछला भाग
३३२	(२८) गोधा–धनुष की डोरी की रगड़ से रक्षा करने के लिए हाथ में लपेट गया चमड़े का खोल।
२५९ उत्त०	(२९) शरकुरली–तरकस
६००	(३०) खुरली–प्रयत्न-लाघवपूर्वक धनुष चलाना
५९९	(३१) ज्यारोर–धनुष पर डोरी चढ़ाना
६००	(३२) पुंखानुपुंखक्रम–इतने जल्दी बाण छोड़ना कि एक बाण दूसरे बाण की पूंछ को छूता जाये।
६०१	(३३) चापविजृम्भित–धनुष चलाने के प्रकार
६०१	(३४) कोदण्डाञ्चनचातुरी–धनुष खींचने की चतुराई
६००	(३५) शरव्य–जिस पर निशाना लगाया गया है।
६००	(३६) लक्ष्य–निशाना
६०२	(३७) कोदण्डविद्या–धनुष-विद्या
६०२	(३८) मार्गणमल्ल–धनुर्धारी योद्धा
२२२ उत्त०	(३९) अयोमुख पुंख-लोहे के मुँह वाला बाण

२. असिधेनुका

छोटी तलवार या छुरी असिधेनुका कहलाती थी। सोमदेव ने इसे असिधेनुका और शस्त्री दो नाम दिये हैं। अमरकोषकार (२,८,९२) ने शस्त्री, असिपुत्री, छुरिका और असिधेनुका ये चार नाम दिये हैं। असिधेनुका की धार पर पानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चढ़ाकर उसे तेज बनाया जाता था।[१५] इसे मूठ में हाथ डालकर पकड़ते थे। दूत के द्वारा जब पांचाल नरेश की युद्धेच्छा का पता लगा तो असिधेनुका के प्रयोग में विशेषज्ञ, जिसे सोमदेव ने असिधेनुधनंजय कहा है, ने ईर्ष्या के साथ अपने हाथ को असिधेनुका की मूठ में डाला।[१६]

सोमदेव के अनुसार असिधेनुका का प्रयोग प्रायः सिर पर किया जाता था तथा इसके प्रयोग से तड़तड़ शब्द भी होता था।[१७]

असिधेनुका कमर में लटकायी जाती थी। यशस्तिलक में दाक्षिणात्य सैनिक नाभिपर्यन्त असिधेनुका लटकाये हुए थे।[१८]

हर्षचरित में असिधेनुका सहित पदातियों का वर्णन है। उन्होंने कमर में कपड़े की दोहरी पेटी की मजबूत गाँठ लगा कर उसी में असिधेनुका खोंस रखी थी।[१९] अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्तियों में एक ऐसे पदाति सैनिक की मूर्ति मिली है, जो कमर में असिधेनु बाँधे हुए है।[२०]

३. कर्तरी

यशस्तिलक में कर्तरी का उल्लेख कैंची तथा युद्धास्त्र दोनों के अर्थ में हुआ है। कैंची का प्रयोग दाढ़ी आदि बनाने के लिए किया जाता था (कर्तरीमुखचुम्बितामूलश्मश्रुव्रालम्, पृ० ४६१)। उत्तरापथ के सैनिक अपने हाथों में जिन विभिन्न हथियारों को उठाये हुए थे उनमें कर्तरी भी थी।[२१] अमरकोषकार ने कर्तरी और कृपाणी को पर्याय बताया है (कृपाणीकर्तरीसमे, २,१०,३४)। हेमचन्द्र ने कर्तरी के लिए कृपाणी, कर्तरी और कल्पनी नाम दिये हैं।[२२] वर्णरत्नाकर में दण्डायुधों में इसकी गणना नहीं है, किन्तु हेमचन्द्र के टीकाकार ने जो छत्तीस आयुधों की सूची दी है, उसमें कर्तरी की गणना है।[२३] सम्भवतया एक विशेष प्रकार की

---

१५. यस्यासिधारापयः। –पृ० ५५४, शस्त्रीष्विव पयोलवः। – पृ० १५२ उत्त०

१६. असिधेनुधनञ्जयः सेर्ष्यमसिमातृमुष्टौ पंचशाखं विधाय। –पृ० ५६१

१७. तडतडिति तरयैषा शस्त्री त्रोटयते शिरः। –पृ० ५६१

१८. आनाभिदेशोत्तम्भितासिधेनुकम्। –पृ० ४६२

१९. द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना। –हर्ष० २१

२०. अग्रवाल – हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, फलक, २, चित्र १२

२१. करोत्तम्भितकर्तरीकणय······औत्तरपथं बलम्। –यश० पृ० ४६४

२२. कृपाणी कर्तरी कल्पन्यपि। –अभिधानचिन्तामणि, ३।५७५

२३. द्व्याश्रयमहाकाव्य, सर्ग ११, श्लोक ५१, सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तलवार को कर्तरी कहते थे। पृथ्वीचन्द्रचरित (१४२१ ई०) में अस्त्रों की सूची में कर्तरी की गणना है।[२४]

४. कटार

गुर्जर सैनिक कमर में कटार बांधे हुए थे जिसकी मूठ भैंसे के सींग की बनी हुई थी।[२५] संस्कृत टीकाकार ने इसका अर्थ छुरिका विशेष किया है (कटारकश्च छुरिकाविशेषः)। कटार को यदि छुरिका मान लिया जाये तो सोमदेव के द्वारा प्रयोग किये गये असिधेनुका, शस्त्री और कटार इन तीनों शब्दों को पर्यायवाची मानना चाहिए, किन्तु स्वयं सोमदेव ने असिधेनुका और कटार का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। असिधेनुका और कटार में क्या अन्तर था यह स्पष्ट नहीं होता, फिर भी इनमें कुछ न कुछ अन्तर था अवश्य। सम्भवतया दोनों ओर धारवाली छोटी तलवार को कटार कहते थे।

५. कृपाण

उत्तरापथ के कुछ सैनिक हाथों में कृपाण उठाये हुए थे।[२६] यशोधर के जुलूस में भी कृपाणधारी सैनिक थे।[२७] संस्कृत टीकाकार ने कृपाण का अर्थ खड्ग किया है।[२८]

६. खड्ग

तिरहुत की सेना अपने हाथों में खड्ग उठाये हुए थी, जिनसे निकलने वाली किरणों से आकाश तरंगित-सा हो उठा।[२९] चण्डमारी देवी के मन्दिर में मारिदत्त खड्ग उठाये खड़ा था।[३०]

एक स्थान पर खड्गयष्टि का उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री पुरुष की मुट्ठी में स्थित खड्गयष्टि की तरह अपने अभिमत को सिद्ध कर लेती है।[३१]

---

२४. उद्धृत, अग्रवाल–मध्यकालीन शस्त्रास्त्र, कला और संस्कृति, पृ० २६१
२५. माहिषविषाणघटितमुष्टिकटारकोत्कटकटीभागम्···गौर्जरं बलम्। –पृ० ४६७
२६. करोत्तम्भितकर्तरीकणयकृपाण······औत्तरपथबलम्। –पृ० ४६४
२७. कृपाणपाणिभिः। –पृ० ३३१
२८. कृपाणपाणिभिः उत्खातखड्गकरैः। –सं० टी०
२९. उत्खातखड्गज्वलनविसारिधाराकरनिकरतरंगितगगनभागम्। –पृ० ४६६
३०. उत्खातखड्गो मुनिबालकाभ्यां व्यलोकि। –पृ० १४७
३१. स्त्री तु पुरुषमुष्टिस्थिता खड्गयष्टिरिव साधयत्यभिमतमर्थम्। —पृ० १३६ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. कौक्षेयक या करवाल

सोमदेव ने कौक्षेयक और करवाल दोनों को एक माना है। करवालवीर करवाल को लपलपाता हुआ कहता है कि मेरा यह कौक्षेयक युद्ध में सीने में से झरते हुए खून के लिए राक्षसों की प्रतीक्षा करता है।[३२] इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट है कि करवाल का प्रहार प्रायः सीने पर किया जाता था।

यशस्तिलक में करवाल का उल्लेख दो बार और भी हुआ है। मारिदत्त को कौलाचार्य विद्याधर लोक को जीतने वाले करवाल की प्राप्ति का उपाय बताता है।[33]

चण्डमारी के मन्दिर में कुछ लोग यमराज की दाढ़ के समान वक्र करवाल लिये हुए थे।[३४]

८. तरवारि

तरवारि को सोमदेव ने यमराज की जीभ के समान तरल कहा है।[३५] यशस्तिलक में तलवर का भी उल्लेख है जो सम्भवतया तरवारि धारण करने वाले पुरुष के लिए प्रयुक्त हुआ है। सबेरे एक चोर को साथ पकड़ कर तलवर राज-दरबार में आता है।[३६]

९. भुसुण्डि

भुसुण्डि का केवल एक बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भुसुण्डि भी लिये थे।[३७] संस्कृत टीकाकार ने भुसुण्डि का पर्याय गर्जक दिया है[३८]। भुसुण्डि सम्भवतया छोटी तलवार का ही एक प्रकार था।

१०. मण्डलाग्र

मण्डलाग्र का एक बार उल्लेख है। यह एक प्रकार की अत्यन्त तीक्ष्ण

---

३२. करवालवीरः सक्रोधं करेण करवालं तरलयन्—
विपक्षपक्षक्षयदक्षदीक्षः कौक्षेयको मामक एष तस्य।
रक्षांसि वक्षः क्षतजैः क्षरद्भिः प्रतीक्षतेऽक्षुण्णतया रणेषु॥ —पृ० ५५७

३३. विद्याधरलोकविजयिनः करवालस्य सिद्धिर्भवतीति।—पृ० ४४

३४. कैश्चित् कृतान्तदंष्ट्राकोटिकुटिलकरवाल।—पृ० १४३

३५. कीनाशरसनातरलतरवारि।—पृ० १४४

३६, राजकुलानां सेवावसरेषु कृतास्थानस्य प्रविश्य तलवरः।—पृ० २४५ उत्त०

३७. अपरैश्च यमावासप्रवेश···भुषुण्डि। —पृ० १४५

३८. भुषुण्डयश्च गर्जकाः। —वही, सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तलवार थी, जिसकी धार पर पानी चढ़ाया जाता था।[३९] म० म० गणपति शास्त्री ने इसे सीधी तथा वृत्ताकार अग्रभाग वाली तलवार कहा है।[४०]

११. असिपत्र

असिपत्र का एक बार उल्लेख है। सम्भवतया यह एक प्रकार की छोटी छुरी थी। सोमदेव ने लिखा है कि पाण्डु देश में चण्डरसा ने मुण्डीर नाम के राजा को कबरी (केशपाश) में छिपाये हुए असिपत्र से मार डाला था।[४१]

१२. अशनि

अशनि के लिए सोमदेव ने अशनि और वज्र, दो शब्दों का प्रयोग किया है। एक उपमा से इसकी भयंकरता का पता लगता है। सोमदेव ने हाथियों के पैरों को वज्रपात की उपमा दी है।[४२] दूसरे प्रसंग में सिर पर उगे हुए सफेद बाल को वज्रदण्ड के गिरने के समान कहा गया है।[४३] इससे प्रतीत होता है कि यह वज्रदण्ड सा डण्डे के आकार का शस्त्र था जिसका प्रहार प्रायः सिर पर किया जाता था।

प्राचीन शिल्प और चित्रकला में वज्र का अंकन दो रूपों में मिलता है– एक डण्डे के आकार का, बीच में पतला और दोनों किनारों पर चौड़ा। दूसरा दो मुँह वाला जिसमें दोनों ओर नुकीले दाँते बने होते हैं।[४४]

प्राचीन काल से अशनि या वज्र इन्द्र का हथियार माना जाता रहा है।[४५] बाद के चित्र और शिल्प में अनेक अन्य देवी-देवताओं के हाथ में भी यह हथियार देखने को मिलता है। ईडर के शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित सचित्र कल्पसूत्र की ताड़पत्रीय प्रति के अनेक चित्रों में इन्द्र हाथ में वज्र लिये दिखाया गया है।[४६] बुद्ध-देवी वज्रतारा की मूर्तियों में एक हाथ में वज्र का अंकन मिलता है।[४७] बुद्ध-देवता

---

३९. मण्डलाग्रधाराजलनिम्ननिखिलारातिसंतानः।—पृ० ५६५

४०. मण्डलाग्रः ऋजुवृत्ताकाराग्रः।—अर्थशास्त्र. २।१८, सं० टी०

४१. कबरीनिगूढेनासिपत्रेण चण्डरसा पाण्ड्युपु मुण्डीरम्।—पृ० १५३ उत्त०

४२. पादेषु सम्पादितवज्रसम्पातैरिव।—पृ० २८

४३. प्रपदशनिदण्डाडम्बरः केश एषः।—पृ० २५२

४४. बनर्जी—दी डेवलप्मेंट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३३०, फलक ८, चित्र ८, फलक ६, चित्र २,६

४५. वही, पृ० ३३०

४६. मोतीचन्द्र—जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, चित्र ६०,६१,६२, ६६,७२

४७. भटशाली—आइकोनोग्राफी आफ बुद्धिस्ट स्कल्पचर्स इन दी ढाका म्युजियम, पृ० ४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वज्रहार के दाहिने हाथ में दो वज्र हैं, जिन्हें सीने से चिपकाया गया है।[४८] वज्रसत्त्व के हाथ में भी वज्र है, किन्तु वह एक है। गौतम बुद्ध की एक मूर्ति के नीचे दस प्रकार की वस्तुओं का अंकन है, उनके ठीक मध्य में वज्र है। यह ऊपर बताये गये दो प्रकार के वज्रों में दूसरे प्रकार का है।[४९]

साहित्य में वज्र का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद (३,५६,२) में आया है। यहाँ अशनि या वज्र को इन्द्र का ध्वज कहा गया है (शक्रस्य महाशनिध्वजम्)। सिद्धान्तकौमुदी में एक सूत्र (२।१।१५) के उदाहरण में आया है – अनुवनमशनिर्गतः – अर्थात् अशनि वन की ओर चला गया। वहाँ अशनि का अर्थ बिजली गिरने से है। रामायण (सुन्दरकाण्ड ४।२१) में अशनिधारी राक्षस सैनिकों का वर्णन है। महाभारत में अशनि को अष्टचक्र वाला महाभयंकर तथा रुद्र के द्वारा बनाया गया कहा है।[५०] कालिदास ने रघुवंश (८।४७) और कुमारसम्भव (४।४३) में अशनि का उल्लेख किया है। इन्दुमति के लिए विलाप करता हुआ अज कहता है कि ब्रह्मा ने इस पुष्पमाला को इन्दुमति के लिए अशनि बनाया।[५१] नागानन्द में गरुण अपनी चोंच को अशनिदण्डकठोर बताता है।[५२]

प्राकृत ग्रन्थों में अशनि का असणि रूप पाया जाता है। उत्तराध्ययन (२०,२१) में इन्द्र के आयुध के अर्थ में, प्रज्ञापना (१) में आकाश से गिरनेवाली बिजली के अर्थ में तथा भगवती (७,६) में ओलों की वर्षा के अर्थ में अशनि का उल्लेख हुआ है।

शिल्प, चित्र और साहित्य के इतने उल्लेखों के बाद भी रामायण के साक्ष्य के अतिरिक्त यह पता नहीं लगता कि अशनि केवल कल्पित शस्त्र था या व्यवहार में इसका प्रयोग भी होता था। हनुमान जब लंका पहुँचे तो वहाँ राक्षस-सैन्य में अशनिधारी सैनिकों को भी देखा।[५३] इससे प्रतीत होता है कि अशनि व्यवहार में भी अवश्य था। सोमदेव ने अशनि का उल्लेख युद्ध के आयुधों के प्रसंग में नहीं किया। वर्णरत्नाकर की सूची में भी अशनि या वज्र की गणना नहीं है। द्व्याश्रय महाकाव्य के संस्कृत टीकाकार ने दण्डायुधों की सूची में वज्र को गिनाया है।[५४]

---

४८. वही, पृ० २३

४९. वही, पृ० ३०, फलक ८, चित्र १-ए (३)

५०. अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम्। –महा० ७, १३५, ६६

५१. अशनिः कल्पित एष वेधसा। –रघु० ८।४७

५२. अशनिदण्डचण्डतरया। –नागानन्द, ४।२७

५३. शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः। –सुन्दरकाण्ड ४।२१

५४. द्व्याश्रय महाकाव्य सर्ग ११, श्लोक ५१, सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्तु इससे यह मानना कठिन है कि अशनि का हथियार के रूप में व्यवहार उस समय (१३वीं शती) तक होता था। लगता है, इस आयुध का प्रयोग व्यवहार से बहुत पुराने समय में ही उठ गया था तथा इन्द्र देवता और कतिपय अन्य देवी-देवताओं के साथ सम्बद्ध होकर कला और शिल्प में शेष रह गया।

१३. अंकुश

यशस्तिलक में अंकुश के लिए अंकुश[५५] और वेणु शब्द आये हैं। संस्कृत टीकाकार ने वेणु का अर्थ वंशयष्टि किया है, जो कि गलत है।[५६] अंकुश सम्पूर्ण लोहे का बना करीब एक हाथ लम्बा होता है, जिसके एक किनारे एक सीधा तथा दूसरा मुड़ा हुआ नुकीला फन होता है।

अंकुश का प्रयोग प्रारम्भ से हाथियों को वश में करने के लिए किया जाता रहा है। सोमदेव ने हाथियों को 'अंकुशमर्याद' (पृ० २१४) कहा है। यशस्तिलक का नायक अंकुश लेकर स्वयं ही हाथियों को शिक्षित किया करता था।[५७] सोमदेव ने सफेद बालों को इन्द्रियरूप हाथियों के निग्रह के लिए अंकुश के समान बताया है।[५८]

अंकुश की गणना सोमदेव ने युद्धास्त्रों के साथ नहीं की, किन्तु वर्णरत्नाकर में इसे छत्तीस दण्डायुधों में गिनाया गया है।[५९]

शिल्प और चित्रों में अंकुश देवी-देवताओं के हाथों में उनके चिह्न के रूप में देखा जाता है।[६०] ढाका के समीप मिली महिषमर्दिनी की दस हाथ वाली मनोज्ञ मूर्ति एक हाथ में अंकुश भी लिये हैं।[६१] छानी (बड़ौदा स्टेट) के एक शास्त्र-भण्डार के ओघनिर्युक्ति नामक सचित्र ताड़पत्रीय ग्रन्थ में अंकुश लिये अनेक देवियों के चित्र हैं। चतुर्भुज वज्रांकुशी देवी अपने ऊपर के दोनों हाथों में, काली देवी ऊपर के बायें हाथ में, महाकाली ऊपर के दायें हाथ में, गान्धारी ऊपर के बायें हाथ में, महाज्वाला ऊपर के दायें हाथ में तथा मानसी ऊपर के दायें हाथ में

---

५५. यश० पृ० २१४
५६. वही, पृ० २५३, ४६१
५७. स्वयमेवगृहीतवेणुर्वारणान्विनिन्ये। –पृ० ४६१
५८. करणकरिणां दर्पोद्रेकप्रदारणवेणवः। –पृ० २५३
५९. वर्णरत्नाकर, पृ० ६१
६०. बनर्जी – डेवलपमेंट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, फलक ८, चित्र २,६
६१. भटशाली – आइकोनोग्राफी एण्ड स्कल्पचर्स इन द ढाका म्युजियम, फलक १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंकुश लिये है।[६२] ईडर के भण्डार में स्थित कल्पसूत्र की सचित्र ताड़पत्रीय प्रति में चतुर्भुज इन्द्र भी ऊपर के बायें हाथ में अंकुश लिये चित्रित किया गया है।[६३]

अंकुश का प्रयोग इतने प्राचीन काल से चले आने के बाद भी इसके स्वरूप और उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं आया। महावत हाथियों के लिए अभी भी अंकुश का प्रयोग करते हैं।

१४. कणय

कणय का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। उत्तरापथ के सैनिक अन्य हथियारों के साथ कणय भी उठाये हुए थे।[६४] सोमदेव ने कणय चलाने वाले योद्धाओं के प्रधान को कणयकोणप अर्थात् कणय चलाने में राक्षस के समान कहा है।[६५]

संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कणय का अर्थ लोहे का बाण विशेष[६६] तथा दूसरे स्थान पर भूपर्णनिबन्धन आयुध विशेष किया है।[६७] प्रो० हन्दिकी ने कणय का अर्थ बरछी किया है।[६८] म० म० गणपति शास्त्री ने अर्थशास्त्र की व्याख्या में कणय के सम्बन्ध में विशेष जानकारी दी है – कणय सम्पूर्ण लोहे का बनता था। दोनों ओर तीन-तीन कंगूरे तथा बीच में मुट्ठी से पकड़ने का स्थान होता था। २० अंगुली का कनिष्ठ, २२ का मध्यम तथा २४ का उत्तम, इस तरह तीन प्रकार के कणय बनते थे।[६९]

कणय का प्रहार शत्रु पर फेंककर किया जाता था (व्यत्यासन)। यदि कणय का प्रहार करने वाला कुशल हो तो युद्ध से हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, सभी सैनिक ऐसे भागते हैं कि उनकी भगदड़ से उत्पन्न हवा से पृथ्वी घूमने-सी लगती है।[७०]

---

६२. मोतीचन्द्र – जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, चित्र २०, २१, २४, २६, २७, ३१

६३. वही, चित्र ६०

६४. करोद्भिन्नकर्तरीकणय· · · ·औत्तरपथबलम्। –पृ० ४६४

६५. कणयकोणपः सामर्थं विहस्य। – पृ० ५६०

६६. कणय लोहबाणविशेषः। –पृ० ४६४, सं० टी०

६७. कणयः भूपर्णनिबन्धनायुधविशेषः। –पृ० ५६०, सं० टी०

६८. हन्दिकी – यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० ६०

६९. कणयः सर्वलोहमय उभयतस्त्रिकण्टकाकारमुखो मध्यमुष्टिः।
कनिष्ठो विंशतिः स्यात् तदङ्गुलानां प्रमाणतः।
द्वाविंशतिर्मध्यमः स्याच्चतुर्विंशतिरुत्तमः॥–अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्याय १८

७०. कणयकर[illegible]घूर्णितक्षोणिः। –पृ० ५६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५. परशु या कुठार

परशु का उल्लेख एक बार हुआ है। सोमदेव ने परशु के प्रयोग में कुशल सैनिक को परशुपराक्रम कहा है।[७१] सम्भवतया इस नाम का प्रयोग परशुराम की कथा को स्मृति में रखकर किया गया है।

सोमदेव परशु और कुठार को एक मानते हैं।[७२] गणपति शास्त्री ने लिखा है कि परशु पूरा लोहे का बना चौबीस अंगुल का होता था।[७३] परशु और कुठार को यदि एक मान लिया जाये तो वर्तमान में जिसे कुल्हाड़ी कहते हैं उसे ही अथवा उसके समान ही किसी हथियार को परशु कहते थे। अमरावती के चित्रों में भी इसका अंकन हुआ है।[७४]

सोमदेव ने कुठार का भी चार बार उल्लेख किया है।[७५] संस्कृत टीकाकार ने सभी स्थानों पर उसका पर्याय परशु दिया है। परशु या कुठार का प्रहार गर्दन पर किया जाता था (कुठारः कण्ठपीठीं छिनत्ति, पृ० ५५८)।

शिल्प में परशु भगवान् शंकर के अस्त्र के रूप में अंकित किया गया है।[७६] प्रारम्भिक शिल्प में शूल और परशु का संयुक्त अंकन मिलता है।

१६. प्रास

प्रास का उल्लेख तीन बार हुआ है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ लोग प्रास लिये थे। उत्तरापथ की सेना में भी कुछ सैनिक प्रास लिये थे।[७७] पांचाल नरेश के दूत के सामने प्रासवीर प्रास को उछालते हुए कहता है कि फुत्कार के शब्द से दिग्गजों को भयभीत करता हुआ मेरा यह प्रास युद्ध में कवच सहित योद्धा को तथा उसके घोड़े को भेदकर दूत की तरह नागलोक में चला जायेगा।[७८]

---

७१. परशुपराक्रमः सावलेपं वाचिना परश्वधं निर्भिन्नानः। —पृ० ५५६

७२. जगदरंडितमूर्तिर्भामकस्तस्य तूर्णम्। रणशिरसि कुठारः कण्ठपीठीं छिनत्ति। —वही

७३. परशुः सर्वलोहमयश्चतुर्विंशत्यङ्गुलः। —अर्थशास्त्र २।१८, सं० टी०

७४. शिवराममूर्ति — अमरावती० फलक १०, चित्र ३

७५. यश० पृष्ठ ४३३, ४६६, ५५६, ५६०

७६. बनर्जी — वही, पृ० ३३०, फलक १, चित्र १६, १८, २१

७७. यश० पृ० १४५, ४६५

७८. प्रासधरः समीपस्थं प्रासं परिवर्तयन्,

फुत्काररवितासितदिक्करीन्द्रः प्रासो मदीयः समराङ्गणेषु।

सकङ्कटं स्वं च हयं च भित्त्वा यास्यत्ययं दूत इवाहिलोके॥ —पृ० ५५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

म०म० गणपति शास्त्री ने लिखा है कि प्रास चौबीस अंगुल व दो पीठ का बनता था। यह सम्पूर्ण लोहे का होता था तथा बीच में काठ भरा रहता था।[७९]

१७. कुन्त

कुन्त का उल्लेख पांचाल नरेश के दूत के प्रसंग में हुआ है। कुन्त-विशेषज्ञ को सोमदेव ने कुन्तप्रताप कहा है।[८०]

कुन्त सीधे और अच्छे बांस की लकड़ी लगाकर बनाया जाता था। इसे कंपा कर दूर से वक्षस्थल पर प्रहार करते थे।[८१]

संस्कृत टीकाकार ने कुन्त का पर्याय प्रास दिया है।[८२] किन्तु सोमदेव इन दोनों को भिन्न-भिन्न मानते हैं, क्योंकि उन्होंने एक ही प्रसंग में दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया है।[८३] कौटिल्य ने भी दोनों को भिन्न माना है।[८४] सात हाथ लम्बा कुन्त उत्तम, छह हाथ लम्बा मध्यम तथा पाँच हाथ लम्बा कनिष्ठ, इस तरह तीन प्रकार के कुन्त बनाये जाते थे—

हस्ताः सप्तोत्तमः कुन्तः षड्ढस्तैश्चैव मध्यमः।
कनिष्ठः पंचहस्तैस्तु कुन्तमानं प्रकीर्तितम्॥

— अर्थशास्त्र २। १८, सं० टी०

१८. भिन्दिपाल

भिन्दिपाल का एक बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भिन्दिपाल लिये थे।[८५] म०म० गणपति शास्त्री के अनुसार बड़े फनवाले कुन्त को ही भिन्दिपाल कहते थे।[८६] मत्स्यपुराण (१६०, १०) के अनुसार भिन्दिपाल लोहे का (अयोमय) होता था तथा फेंककर इसका प्रहार किया जाता था। वैजयन्ती (पृ० ११७, १,३३१) में इसे लम्बे सिरे वाली लम्बी बर्छी कहा है।[८७]

---

७९. प्रासश्चतुर्विंशत्यङ्गुलो द्विपीठः सर्वलोहमयः काष्ठगर्भश्च।
— अर्थशास्त्र २।१८ सं० टी०

८०. कुन्तप्रतापः सकोपं कुन्तमुत्तालयन्। —पृ० ५५९

८१. ऋजुः सुवंशोऽपि मदीय एष कुन्तः शकुन्तान्तकतर्पणाय।
निर्भिद्य वक्षः पिठरप्रतिष्ठां तस्यासृजाजन्यभुवं बिभर्ति॥ —वही

८२. कुन्तः प्रासः। —वही, सं० टी०

८३. पृ० ५६१

८४. अर्थशास्त्र, २।१८

८५. अपरैश्च ··· भुषुंडिभिन्दिपाल ····। —पृ० १४५

८६. भिन्दिपालः कुन्त एव पृथुफलः। —अर्थशास्त्र २। १८, सं० टी०

८७. चक्रवर्ती पी० सी० — दी आर्ट आफ वार इन ऐंशियेंट इण्डिया, पृ० १६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९. करपत्र

करपत्र दाँते बनी हुई लोहे की लम्बी पत्ती होती है, जिसे आजकल करौंत कहा जाता है। करपत्र या करौंत छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की होती है और लकड़ी चीरने के काम में आती है। सोमदेव ने दन्तपंक्ति को करपत्र की उपमा दी है।[८८]

२०. गदा

गदा का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने गदा चलाने में कुशल योद्धा को गदाविद्याधर कहा है[८९]। गदाविद्याधर गदा को घुमाता हुआ कहता है कि हे दूत, जाकर अपने स्वामी से कह दे कि हमारे सम्राट से दो-तीन दिन में ही आकर मिल ले, अन्यथा गदा से सिर फोड़ दूँगा।[९०]

गदा एक प्रकार का मोटा और भारी डण्डानुमा हथियार होता था। शिल्प और कला में इसके अनेक प्रकार मिलते हैं।[९१] भारतीय साहित्य में बलराम, भीम और दुर्योधन गदा के उत्कृष्ट चलाने वाले माने जाते हैं। विष्णु के भी शंख, चक्र और कमल के अतिरिक्त एक हाथ में गदा का अंकन मिलता है।[९२] गदा का निशाना प्रायः सिर को बनाया जाता था जिससे सिर चूर-चूर हो जाये।[९३]

सोमदेव के वर्णन से स्पष्ट है कि गदा को जोर से घुमाकर फेंका जाता था। गदा को बार-बार घुमाने से हवा का जो तीव्र वेग होता, उससे हाथी भी भागने लगते।

२१. दुस्फोट

दुस्फोट का उल्लेख चण्डमारी देवी के मन्दिर के प्रसंग में हुआ है[९४]। संस्कृत

---

८८. सा दन्तपंक्तिः करपत्रवक्त्रश्यामच्छविः। पृ० १२३

८९. गदाविद्याधरः सगर्वं गदामुत्तम्भयन्।—पृ० ५६२

९०. दूतैवं विनिवेदयात्मविभवे द्वित्रैर्दिनैर्मत्प्रभुं,
पश्यागत्य यदि श्रियस्तव मता नो चेदियं दास्यति।
भ्रान्त्यावृत्तिविजृम्भितानिलबलोत्तालीकृताशागजाः,
मूर्धानं झटिति स्फुटच्छलबलं त्वत्कं मदीयं गदा॥—पृ० ५६२

९१. शिवराममूर्ति—अमरावती स्कल्पचर्स, पृ० १२६

९२. वही, पृ० १२६

९३. देखो, फुटनोट संख्या ९०

९४. यमावासप्रवेशपरप्रासपट्टिसदुःस्फोट।—पृ० १४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टीकाकार ने इसका अर्थ मूसल किया है।[९५] मूसल लकड़ी का बना एक लम्बा तथा पैना उपकरण होता था। यह प्रायः खदिर की लकड़ी का बनाया जाता था। कौटिल्य ने इसकी गणना चल-यन्त्रों में की है।[९६]

मूसल का अंकन शिल्प में संकर्षण बलराम के एक हाथ में किया जाता है।[९७] वर्तमान में मूसल एक घरेलू उपकरण बन गया है। धान आदि को ओखली में कूटने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

२२. मुद्गर

मुद्गर का उल्लेख दो बार हुआ है। सम्राट यशोधर के यहाँ मुद्गरधारी सैनिक भी थे।[९८] चण्डमारी के मन्दिर में भी कुछ लोग मुद्गर लिये खड़े थे।[९९] संस्कृत टीकाकार ने मुद्गर का अर्थ लोहे का घन किया है।[१००] अमरावती की कला में इसका अंकन मिलता है।[१०१]

२३. परिघ

परिघ का उल्लेख एक उपमा में हुआ है। घोड़ों को सोमदेव ने शत्रु-सेना के डिगाने में परिघ के समान कहा है।[१०२] यह डण्डे-जैसा लोहे का बना अस्त्र था। महाभारत में इसका उल्लेख कई बार हुआ है।[१०३] यह भी गदा की जाति का हथियार था।

२४. दण्ड

सोमदेव ने दण्डधारी योद्धाओं का उल्लेख किया है।[१०४] संभवतया दण्ड

---

९५. दुःस्फोटाश्च मुसलानि।—वही, सं० टी०

९६. मुसलयष्टिः खादिरः शूलः।—अर्थशास्त्र २।१८, सं० टी०

९७. बनर्जी – वही, पृ० ३३०

९८. मुद्गरप्रहारः—सपदि मम रणाग्रे मुद्गरस्याग्रतः स्याः।—पृ० ५५७

९९. अपरैश्च यमावासप्रवेश'''मुद्गर—। सं० पृ० १४५

१००. मुद्गरस्य लोहघनस्य।—वही, सं० टी०

१०१. शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स, फलक १०, चित्र १२

१०२. परवलस्खलने परिघाः हयाः।—पृ० ३२५

१०३. चक्रवर्ती—द आर्ट आफ वार इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, फुटनोट, ३

१०४. उदात्तदीर्घदण्डविडम्बितदोर्दण्डमण्डलैः प्रशास्तृभिः।—पृ० ३३१
दण्डपाशिकभटानादिदेश।—पृ० ५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गदा के समान ही हथियार होता था। भारतीय सिक्कों में गदा और दण्ड का इतना साम्य है कि उनको पृथक्-पृथक् करना कठिन है।[१०५]

२५. पट्टिस

पट्टिस का दो बार उल्लेख है। उत्तरापथ की सेना में[१०६] तथा चण्डमारी देवी के मन्दिर में[१०७] कुछ योद्धा पट्टिस लिये हुए थे। गणपति शास्त्री ने पट्टिस को उभयान्त त्रिशूल कहा है।[१०८] संभवतया पट्टिस लोहे का बना होता था, जिसके दोनों ओर त्रिशूल की तरह तीन-तीन नुकीले दांते बनाये जाते थे।

२६. चक्र

चक्र का दो बार उल्लेख है।[१०९] चक्र पहिए की तरह गोल आकार का लोहे का अस्त्र था। सोमदेव के विवरण से ज्ञात होता है कि चक्र को जोर से घुमा कर इस प्रकार फेंका जाता था कि सीधा शत्रु के सिर पर गिरे। कुशलतापूर्वक फेंके गये चक्र से हाथियों तक के सिर फट जाते थे।[११०]

चक्र की कई जातियाँ होती थीं। सुदर्शन चक्र भगवान् विष्णु का आयुध माना जाता है। कला में इसके दो रूप अंकित मिलते हैं। कहीं-कहीं चक्र का अंकन पूर्ण विकसित कमल की तरह भी मिलता है जिसमें पंखुड़ियाँ आरों का कार्य करती हैं।[१११]

२७. भ्रमिल

चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भ्रमिल घुमाकर पक्षियों को भयभीत कर रहे थे।[११२] संस्कृत टीकाकार ने भ्रमिल का अर्थ चक्र किया है।[११३]

---

१०५. बनर्जी—वही, पृ० ३२६

१०६. करोत्तम्भित—प्रासपट्टिस—औत्तरपथबलम् ।—पृ० ४६५

१०७. अपरैश्च यामावासप्रवेशपरप्रासपट्टिस । –पृ० १४५

१०८. पट्टिस उभयान्तत्रिशूलः ।—अर्थशास्त्र २।१८ सं० टी०

१०९. पृ० ५५८, ३६०

११०, निराजीव इव स्वामिन्स्थिरीकृतनिजासनः ।
चक्रं भ्रमय दिक्पालपुरभाजनसिद्धये ॥—पृ० ३६०
चक्रविक्रमः साक्षेपं चक्रं परिक्रमयन्,
नो चेद्वैरिकरीन्द्रकुम्भदलनव्यासक्तरक्तं मुहु-,
र्मुक्तं चक्रमकालचक्रमिव ते मूर्ध्नि प्रपाति ध्रुवम् ॥—पृ० ५५८

१११. बनर्जी—वही पृ० ३२८, फलक ७, चित्र ४,७। फलक ६, चित्र १

११२. भ्रमिलभ्रमिभीषित—। पृ० १४४

११३. भ्रमिलं चक्रम् ।—वही, सं० टी०,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२८. यष्टि

सोमदेव ने याष्टीक सैनिकों का उल्लेख किया है।[११४] संस्कृत टीकाकार ने याष्टीक का पर्याय प्रतिहारी दिया है।[११५] यष्टि धारण करने वाले प्रतिहारी याष्टीक कहलाते थे। म० म० गणपति शास्त्री ने यष्टि को मूसल की तरह नुकीली तथा खदिर की लकड़ी से बनने वाली बताया है।[११६] सोमदेव ने भी एक स्थान पर हाथी की सूंड को यष्टि से उपमा दी है, इससे भी यष्टि के स्वरूप की पहचान हो जाती है।[११७]

शिवभारत (२५,२२) तथा भट्टीकाव्य (५,२४) में भी याष्टीक सैनिकों के उल्लेख आये हैं।[११८]

२९. लांगल

पांचाल नरेश के दूत के प्रसंग में लांगलधारी सैनिक का उल्लेख है।[११९] लांगल संभवतया सम्पूर्ण लोहे का बनता था। सोमदेव के वर्णन से ज्ञात होता है कि लांगल का आकार ठीक वैसा ही होता था जैसा वर्तमान में खेत जोतने के काम में लिया जाने वाला हल। सोमदेव ने लिखा है कि लांगल का प्रयोक्ता यदि कुशल हो तो अकेला ही सम्पूर्ण युद्धरूपी खेत को जोत डालता है। विपक्षियों के शरीर की नसें चरमरा जाती हैं, चमड़ा फटकर अलग हो जाता है, खून सहस्रधार होकर बहने लगता है और शरीर की हड्डियां धनुष की कोटि की तरह चटपट शब्द करती हुई सौ टूक हो जाती हैं।[१२०]

हल संकर्षण बलराम का आयुध माना जाता है।[१२१]

---

११४. इतस्ततष्टोकमानैर्याष्टीकैर्विनीयमानानुकसेवकम्।—पृ० ३७२

११५. याष्टीकैः प्रतिहारैः।—वही, सं० टी०

११६. मुसलयष्टिः खादिरः शूलः।—अर्थशास्त्र २।१८, सं० टी०

११७. यष्टिरदः।—पृ० ३०१

११८. उद्धृत, आप्टे – संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० १३१२

११९. सं० पू०, पृ० ५५६

१२०. लांगलगरलः सोल्लुण्ठालापं लांगलमुदानयमानः — हे धीराः, कृतं भवतां समरसंरम्भेण, यस्मादिदमेकमेव—
त्रुटदतनुशिरान्ताः कीर्णकृत्तिप्रतानाः,
चरदविरलरलस्फारधरासहस्राः।
स्फुटदटनिकठोरष्टाकृतास्थीः समीके.
मम रिपुहृदयालीर्लांगलं लेलिखीति॥ —पृ० ५५६

१२१. बनर्जी – वही, पृ० ३२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३०. शक्ति

शक्ति के प्रयोग में कुशल सैनिक को सोमदेव ने शक्तिकार्तिकेय कहा है।[१२२] शक्ति सम्पूर्ण रूप से लोहे का बना भाले के समान अत्यन्त तीक्ष्ण आयुध था।[१२३] यह स्कन्दकार्तिकेय तथा दुर्गा का अस्त्र माना जाता है। कार्तिकेय की मूर्ति के बायें हाथ में शक्ति का अंकन देखा जाता है।[१२४] सोमदेव के द्वारा प्रयोग किये गये शक्तिकार्तिकेय पद में भी यही ध्वनि है।

३१. त्रिशूल

त्रिशूल का भी उल्लेख पांचाल नरेश के दूत के प्रसंग में हुआ है।[१२५] स्वयं सोमदेव के वर्णन से त्रिशूल के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती है। त्रिशूल की तीन शिखाएँ होती हैं। इसका प्रहार वक्षस्थल पर किया जाता है। त्रिशूल भैरव का अस्त्र माना जाता है।[१२६]

शिल्प में भी त्रिशूल महादेव का अस्त्र माना गया है। कहीं-कहीं परशु के साथ तथा कहीं कहीं केवल त्रिशूल का अंकन मिलता है।[१२७]

३२. शंकु

शंकुधारी सैनिक को सोमदेव ने शंकुशार्दूल कहा है।[१२८] शंकु लोहे या खदिर की लकड़ी का बना एक प्रकार का भाला या बर्छी जैसा शस्त्र होता था। इसका प्रयोग फेंक कर करते थे।[१२९]

---

१२२. पृ० ५६२

१२३. सर्वलौहमयीशक्तिरायुधविशेषः।—वही, सं० टी०
तुलना – शक्तिश्च विविधास्तीक्ष्णाः।—महाभारत, आदि पर्व, ३०,४६

१२४. भटशाली – द आइकोनोग्राफी आफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स, पृष्ठ १४७, फलक ५७, चित्र ३ (ए)

१२५. पृ० ५६०

१२६. त्रिशूलभैरवः सासूयं त्रिशूलं वलगयन्—
इदं त्रिशूलं तिसृभिः शिखाभिर्भागत्रयं वक्षसि ते विधाय – पृ० ५६०

१२७. बनर्जी – वही पृ० ३३०, फलक १, चित्र १६, १८, २१ (केवल त्रिशूल) फलक १, चित्र १५, फलक ८, चित्र १,३, फलक ६, चित्र १,२

१२८. पृ० ५६३

१२९. अयः शंकुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे (अक्षिपत्)। —रघुवंश, १२।५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३३. पाश

पाश का उल्लेख भी एक बार हुआ है। लक्ष्मी-प्राप्ति की इच्छा को आशा-पाश कहा गया है। सोमदेव के वर्णन से लगता है कि पाश का प्रयोग पैरों में रुकावट डाल कर गत्यवरोध के लिए किया जाता था।[१३०]

पाश के सम्बन्ध में डाक्टर पी० सी० चक्रवर्ती ने निम्नप्रकारसे विशेष जानकारी दी है –

ऋग्वेद (९,८३,४ – १०,७३,११) में पाश वरुण तथा सोम का अस्त्र बताया गया है। कर्णपर्व (५३,२३) में इसे शत्रु के पैरों को बाँधने वाला, अतएव पादबन्ध कहा है। अग्निपुराण (२५१,२) के अनुसार पाश दस हाथ लम्बा तथा किनारों पर फन्दे युक्त होना चाहिए। इसका सामना हाथ की ओर रहना चाहिए। पाश सन (जूट), मूंज, भांग, तांत, चमड़ा अथवा किसी अन्य मजवूत धागे से बनी रस्सी का बनाना चाहिए, इत्यादि।

नीतिप्रकाशिका (४,४५,६) के अनुसार पाश पीतल की बनी छोटी पत्तियों से बनाया जाता था। शुक्रनीति (४।७) के अनुसार पाश तीन हाथ लम्बा डण्डे के आकार का बनाया जाता था, जिसमें तीन नुकीले दाँते तथा लोहे की रस्सी (तार या सांकल) लगी होती थो। सम्भवतया प्राचीन पाश का विकास इस रूप में हुआ हो।[१३१]

३४. वागुरा

श्वेत केशों को सोमदेव ने मनरूपी मृग की चेष्टा नष्ट करने के लिए वागुराके समान कहा है।[१३२] सं० टीकाकार ने वागुरा का अर्थ बंधनपाश किया है।[१३३]

वागुरा भी एक प्रकार का पाश ही था। पाश और वागुरा में अन्तर यह था कि पाश द्वारा शत्रु के चलते-फिरते कूट यन्त्र फँसाए जाते थे तथा वागुरा से गज या हाथी पर सवार सैनिकों को खींच लिया जाता था।[१३४]

---

१३०. लक्ष्मीलवल्लाभाशापाशस्खलितमतिमृगीप्रचारस्य।—पृ० ४३३
१३१. चक्रवर्ती – द आर्ट आफ़ वार इन ऐंशियेंट इंडिया, पृ० १७२
१३२. हृदयहरिणस्येहाध्वंसप्रसाधनवागुराः।—पृ० २५३
१३३. वागुरा बन्धनपाशाः।—सं० टी०, वही
१३४. अग्रवाल – हर्षचरित, पृ० ४०, फलक ४, चित्र २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३५. क्षेपणिहस्त

क्षेपणिहस्त का एक बार उल्लेख है। यह एक लम्बी रस्सी में बीच में चमड़ा या रस्सी का ही बिना हुआ चौड़ा पट्टा-सा लगाकर बनाया जाता है। इस पट्टे में पत्थर के टुकड़े रख कर जोर से घुमाकर छोड़ते हैं। वर्तमान में इसे 'गुथनियाँ' कहते हैं। इसके द्वारा फेंका गया पत्थर का टुकड़ा बन्दूक की गोली की तरह चोट करता है। पक्षियों से खेत की रखवाली करने के लिए रखवाला एक ऊँचे मचान पर से क्षेपणिहस्त द्वारा चारों ओर दूर-दूर तक पत्थर फेंकता है। जोर से क्षेपणिहस्त छोड़ने से सन्न-न-न की आवाज होती है। सोमदेव ने भी इसी भाव को व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि हे राजन्, राजधानीरूपी खेत में स्थित होकर दूरस्थ भी शत्रुरूपी पक्षियों को सेनारूपी पत्थरों के द्वारा महान् शब्द करते हुए क्षेपणिहस्त की तरह भगाओ (या मारो)।[१३५]

३६. गोलधर

गोलधर का एक बार यशोधर के जुलूस के प्रसंग में उल्लेख है।[१३६] संस्कृत टीकाकार ने इसका पर्याय गोफणहस्त किया है।[१३७] आप्टे साहब ने गोलासन का एक अर्थ एक प्रकार की बन्दूक भी किया है।[१३८]

■

१३५. दूरस्थानपि भूपाल क्षेत्रेऽस्मिन्नरिपक्षिणः।
बलोपलमहाघोषैः क्षिप क्षेपणिहस्तवत्॥—पृ० ३९

१३६. गोलधनुर्धरगोधाधिष्ठितवृत्तिभिः।—पृ० ३३२

१३७. गोलधराश्च गोफणहस्ताः।—वही, सं० टी०

१३८. ए काइंड आफ गन, आप्टे – संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ६७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय तीन

ललित कलाएँ और शिल्प-विज्ञान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीत, वाद्य और नृत्य

गीत, वाद्य और नृत्य के लिए प्राचीन शब्द तौर्यत्रिक था। अमरकोषकार ने लिखा है कि तौर्यत्रिक शब्द से गीत, वाद्य और नृत्य का ग्रहण होता है (अमरकोष, १।६।११)। सोमदेव ने लिखा है कि मारिदत्त राजा ने तौर्यत्रिक में गन्धर्वलोक को जीत लिया था (तौर्यत्रिकातिशयविशेषविजितगन्धर्वलोकः, १९।६, हिन्दी)। सोमदेव के युग में गीत, वाद्य और नृत्य का खूब प्रचार था। सम्राट् यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती, वाद्यविद्याबृहस्पति तथा नृत्तवृत्तान्तभरत (३७६-३७७ हिन्दी) कहा गया है। गन्धर्व जाति संगीत में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। बृहस्पति द्वारा वाद्यविद्या पर लिखित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। वे विद्या के देवता अवश्य माने जाते हैं। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र प्रसिद्ध है। सोमदेव ने भरतमुनि का अनेक बार स्मरण किया है। सहस्रकूट चैत्यालय को भरतपदवी के समान विधि, लय और नाट्य से युक्त बताया है (भरतपदवी इव विधिलयनाट्याडम्बरः २४६।२३, उत्त०)। नृत्त, नाट्य, ताण्डव, अभिनय आदि के विशेषज्ञ भरत-पुत्रों का भी सोमदेव ने स्मरण किया है (३२० । २-३, हिन्दी)।

दशवीं शताब्दी में संगीत, वाद्य और नृत्य का विशेष प्रचार था। यशोधर का हस्तिपक इतना अच्छा गाता था कि महारानी भी पाशाकृष्ट की तरह उसकी ओर खिंच गयीं। छठे आश्वास की दशवीं कथा में धन्वन्तरी नगर-नायक के घर रात्रि में नृत्य देखते रहने के कारण देर से घर लौटता है। महाराज यशोधर स्वयं नाट्यशाला में जाकर रंगपूजा करते हैं तथा नृत्य आदि के विशेषज्ञों के साथ नाट्यशाला में अभिनय आदि देखते हैं (३२०, हिन्दी)।

गीत

यशस्तिलक में गीत के विषय में पर्याप्त जानकारी आयी है। यशोधर कहता है—'उसका गला इतना मधुर है कि उसके गाने से सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो जाते हैं। ललित कलाओं में गीत का विशेष महत्त्व है। गाने में उस्ताद मनुष्य यदि स्वभाव से क्रूर भी हो तो भी स्त्रियाँ उसकी ओर आकर्षित होती हैं। गायक यदि कुरूप भी हो तो भी वह स्त्रियों के लिए कामदेव के समान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीत, वाद्य और नृत्य

गीत, वाद्य और नृत्य के लिए प्राचीन शब्द तौर्यत्रिक था। अमरकोषकार ने लिखा है कि तौर्यत्रिक शब्द से गीत, वाद्य और नृत्य का ग्रहण होता है (अमरकोष, १।६।११)। सोमदेव ने लिखा है कि मारिदत्त राजा ने तौर्यत्रिक में गन्धर्वलोक को जीत लिया था (तौर्यत्रिकातिशयविशेषविजितगन्धर्वलोकः, १९।६, हिन्दी)। सोमदेव के युग में गीत, वाद्य और नृत्य का खूब प्रचार था। सम्राट् यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती, वाद्यविद्याबृहस्पति तथा नृत्तवृत्तान्तभरत (३७६-३७७ हिन्दी) कहा गया है। गन्धर्व जाति संगीत में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। बृहस्पति द्वारा वाद्यविद्या पर लिखित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। वे विद्या के देवता अवश्य माने जाते हैं। भरतमुनि का नाटयशास्त्र प्रसिद्ध है। सोमदेव ने भरतमुनि का अनेक बार स्मरण किया है। सहस्रकूट चैत्यालय को भरतपदवी के समान विधि, लय और नाटय से युक्त बताया है (भरतपदवी इव विधिलयनाटयाडम्बर: २४६।२३, उत्त०)। नृत्त, नाटय, ताण्डव, अभिनय आदि के विशेषज्ञ भरत-पुत्रों का भी सोमदेव ने स्मरण किया है (३२० । २-३, हिन्दी)।

दशवीं शताब्दी में संगीत, वाद्य और नृत्य का विशेष प्रचार था। यशोधर का हस्तिपक इतना अच्छा गाता था कि महारानी भी पाशाकृष्ट की तरह उसकी ओर खिंच गयीं। छठे आश्वास की दशवीं कथा में धन्वन्तरी नगर-नायक के घर रात्रि में नृत्य देखते रहने के कारण देर से घर लौटता है। महाराज यशोधर स्वयं नाटयशाला में जाकर रंगपूजा करते हैं तथा नृत्य आदि के विशेषज्ञों के साथ नाटयशाला में अभिनय आदि देखते हैं (३२०, हिन्दी)।

गीत

यशस्तिलक में गीत के विषय में पर्याप्त जानकारी आयी है। यशोधर कहता है—'उसका गला इतना मधुर है कि उसके गाने से सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो जाते हैं। ललित कलाओं में गीत का विशेष महत्त्व है। गाने में उस्ताद मनुष्य यदि स्वभाव से क्रूर भी हो तो भी स्त्रियाँ उसकी ओर आकर्षित होती हैं। गायक यदि कुरूप भी हो तो भी वह स्त्रियों के लिए कामदेव के समान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन्दर और प्रियदर्शन होता है। जिन स्त्रियों का दर्शन भी दुर्लभ हो वे भी गीत-से आकर्षित होकर ऐसी चली आती हैं जैसे पाश से खिंचो चली आती हों। कुशल गीतकार के द्वारा गाया गया गीत मनस्विनी स्त्रियों के मन में भी एक विचित्र-सी स्थिति पैदा कर देता है।[1]

गीत और स्वर का अनन्य सम्बन्ध है। सोमदेव ने सप्त स्वरोंका उल्लेख किया है (सप्तस्वरैः, पृ० ३१९)। अमरकोषकार ने वीणा के सात स्वर बताए हैं—(१) निषाद, (२) ऋषभ, (३) गान्धार, (४) षड्ज, (५) मध्यम, (६) धैवत, (७) पंचम (१।३।१)। हस्ति के बृंहित-जैसे स्वर को निषाद, बैल-जैसे स्वर को ऋषभ, धनुष्टंकार-जैसे स्वर को गान्धार, मयूर-जैसे स्वर को षड्ज, क्रौंच्जैसे स्वर को मध्यम, घोड़े के ह्रेषित जैसे स्वर को धैवत तथा कोयल के कूकने-जैसे स्वर को पंचम स्वर कहते हैं।[2]

वाद्य

यशस्तिलक में वाद्यविषयक बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री के उल्लेख हैं। सब का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है :

आतोद्य

यशस्तिलक में वाद्यों के लिए सामान्य शब्द आतोद्य आया है। सोमदेव ने लिखा है कि नन्दिगण आतोद्य के द्वारा सरस्वती का पूजन करते थे।[3] नाटचशास्त्र तथा अमरकोष में भी चार प्रकार के वाद्यों के लिए सम्मिलित शब्द आतोद्य ही दिया है।[4]

---

१. एष हि किल निसर्गकलकण्ठतया शुष्कानपि तरून् पल्लवयतीत्यनेकशः कथितं कुमारेण। गृणन्ति च कलासु गीतस्यैव परं महिमानमुपाध्यायाः। सुप्रयुक्तं हि गीतं स्वभावदुर्भगमपि नरं करोति युवतीनां नयनमनोविश्रामस्थानम्। भवति कुरूपोऽपि गायनः कामदेवादपि कामिनीनां प्रियदर्शिनः। गानेन हि दुर्दर्शा अपि योषितः पाशेनाकृष्टा इव सुतरां संगच्छन्ते। कुशलैः कृतप्रयोगं हि गेयमपनीय मानग्रहमपरमेव कंचिदनन्यजनसाध्यमाधिमुत्पादयति मनस्विनीनाम्।—पृ० ५५ उत्त०

२. अमरकोष, सं० टी० १।३।१

३. आतोद्येन च नंदिभिः। पृ० ३१९

४. नाट्यशास्त्र २८।१, अमरकोष १। १। ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घन, सुषिर, तत और अवनद्ध, ये चार प्रकार के वाद्य हैं।[5] जो वाद्य ठोकर लगा कर बजाये जाते हैं, वे घन कहलाते हैं। जैसे घंटा आदि। जो वाद्य वायु के दबाव से बजाये जाते हैं, वे सुषिर कहलाते हैं। जैसे वेणु आदि। जो वाद्य तन्तु, तार या ताँत लगाकर बनाये जाते हैं, वे तत कहलाते हैं। जैसे वीणा आदि। और जो वाद्य चमड़े से मढ़े होते हैं, वे अवनद्ध कहलाते हैं। जैसे मृदंग आदि।

यशस्तिलक में विभिन्न प्रसंगों में तेईस प्रकार के वादित्रों के उल्लेख हैं :

१. शंख,	२. काहला,	३. दुंदुभि,	४. पुष्कर,
५. ढक्का,	६. आनक,	७. भम्भा,	८. ताल,
९. करटा,	१०. त्रिविला,	११. डमरुक,	१२. रुंजा,
१३. घंटा,	१४. वेणु,	१५. वीणा,	१६. झल्लरी,
१७. वल्लकी,	१८. पणव,	१९. मृदंग,	२०. भेरी,
२१. तूर,	२२. पटह,	२३. डिण्डिम।	

इनमें से प्रथम सोलह का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में एक साथ भी हुआ है। इनके विषय में विशेष जानकारी निम्नप्रकार है :

१. शंख

यशस्तिलक में शंख का उल्लेख कई बार हुआ है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि शंख बजे तो दशों दिशाएँ मुखरित हो उठीं।[7] एक प्रसंग में सन्ध्याकाल में मृदंग और आनक के साथ शंख के कोलाहल की चर्चा है।[8] एक स्थान पर पूजा के अवसर पर अन्य वाद्यों के साथ शंख का भी उल्लेख है (पृष्ठ ३८४ उत्त०)।

शंख की सर्वश्रेष्ठ जाति पाञ्चजन्य मानी जाती है। भगवद्गीता के अनुसार श्रीकृष्ण के हाथ में पाञ्चजन्य शंख रहता था। सोमदेव ने इन दोनों तथ्यों का उल्लेख किया है।[9]

संगीतशास्त्र में शंख की गणना सुषिर वाद्यों में की जाती है। यह शंख नामक जलकीट का आवरण है और जलस्थानों – विशेषकर समुद्रों में उपलब्ध

---

५. घनसुषिरततावनद्धवादनाद।—पृ० ३८४ उत्त०

६. पृ० ५८०-८१

७. तारतरं स्वनत्सु मुखरितनिखिलाशामुखेषु शंखेषु।– पृ० ५८०

८. मृदंगानकशंखकोलाहले।–पृ० ११ उत्त०

९. कम्बुकुलमान्ये च पाञ्चजन्ये कृष्णकरपरिग्रहनिरवधीनि व्यधादहानि। – पृ० ७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है। वाद्यों में शंख ही ऐसा है जो पूर्णतया प्रकृति द्वारा निर्मित है और अपने मौलिक रूप में भी वादन योग्य होता है। संगीत-पारिजात में लिखा है कि वाद्योपयोगी शंख का पेट बारह अंगुल का होता है तथा मुखविवर बेर के बराबर। वादन-सुविधा के लिए मुखविवर पर धातु का कलश लगाकर बनाये गये भी शंख उपलब्ध होते हैं। भारतवर्ष में शंख का प्रयोग प्राचीन काल से चला आया है और आज भी मंगल कार्यों के अवसर पर शंख फूकने का रिवाज है।

साधारणतया शंख से एक ही स्वर निकलता है, किन्तु इससे भी राग-रागनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं। श्री चुन्नीलाल शेष ने अपने एक लेख में लिखा है कि मैसूर राज्य के राज्यगायक स्वर्गीय पण्डित प्रभुदयाल ने कांकरौली नरेश गोस्वामी श्री ब्रजभूषणलाल जी महाराज के सम्मुख इस वाद्य का प्रदर्शन किया था और उससे सब राग-रागनियाँ निकाल कर सुनायी थीं। इस शंख के पेट का परिमाण बारह अंगुल के ही लगभग था। मुखविवर पर मोम से स्वर्ण कलश चिपकाया हुआ था। मुख और स्वर्ण कलश के बीच मकड़ी के जाले की झिल्ली लगी थी।[१०]

२. काहला

काहला का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है। एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि जब काहलाएँ बजने लगीं तो उनके नाद की प्रतिध्वनि से दिशाएँ, पर्वत तथा गुफाएँ शब्दायमान हो उठीं।[११] संस्कृत टीकाकार ने काहला का अर्थ धतूरे के फूल की तरह मुँहवाली भेरी किया है।[१२]

संगीतरत्नाकार में भी काहला को धतूरे के फूल की तरह मुँहवाला वाद्य कहा गया है[१३] किन्तु यशस्तिलक के टीकाकार का काहला को भेरी कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि भेरी स्पष्ट ही अवनद्ध वाद्य है और काहला सुषिर वाद्य। जातक साहित्य तथा जैन कल्पसूत्र (पृ० १२०) में भेरी का उल्लेख अवनद्ध वाद्यों में हुआ है।

काहला तीन हाथ लम्बा, छिद्र युक्त तथा धतूरे के फूल की तरह मुँहवाला सुषिर वाद्य है। यह सोना, चाँदी तथा पीतल का बनाया जाता है। इसके

---

१०. चुन्नीलाल शेष— अष्टछाप के वाद्य-यन्त्र, ब्रजमाधुरी, वर्ष १३, अंक ४

११. ध्मायमानासु प्रतिशब्दनादितदिगन्तरगिरिगुहामण्डलासु।—पृ० ५८०

१२. काहलासु धत्तूरपुष्पाकारमुखभेरिषु।—वही, सं० टी०

१३. धत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता।—६।७६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बजाने से हा-हू शब्द होते हैं।[१४] उड़ीसा में अभी भी इस वाद्य का प्रचलन है।

३. दुंदुभि

यशस्तिलक में दुंदुभि का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में लिखा है कि जब दुंदुभि बजने लगे तो उनकी ध्वनि से समुद्र क्षोभित हो उठे।[१५] यशोधर के जन्म के समय भी दुंदुभि बजने के उल्लेख हैं।[१६]

दुंदुभि अवनद्ध वाद्य है। यह एक मुँहवाला तथा मुँह पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है और डंडे से पीट-पीटकर बजाया जाता है।[१७] विशेषकर मंगल और विजय के अवसर पर दुंदुभि बजाने का प्राचीन काल से ही प्रचलन रहा है। वेदकाल में भूमि-दुंदुभि और दुंदुभि का प्रचुर प्रचार था।

४. पुष्कर

पुष्कर का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। युद्ध के समय सुर-सुन्दरियों के कानों को कष्ट देने वाले पुष्कर बजे।[१८] श्रुतसागर ने पुष्कर का अर्थ एक स्थान पर मर्दल और दूसरे स्थान पर मृदंग किया है।[१९]

अवनद्ध वाद्यों के लिए पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है। कभी-कभी अवनद्ध वाद्य विशेष के लिए भी प्रयोग किया जाता है। सोमदेव ने सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। नाट्यशास्त्र में मृदंग, पणव और दर्दुर को पुष्करत्रय कहा गया है।[२०] संगीतरत्नाकरकार ने भी उसी का सन्दर्भ दिया है।[२१] महाभारत में पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग हुआ है।[२२] कालिदास ने

---

१४. ताम्रजा राजती यद्वा कांचनी सुषिरान्तरा।
धत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता॥
हस्तत्रयमिता दैर्घ्ये काहला वाद्यते जनैः।
हाहूवर्णवती वीरविरुदोच्चारकारिणी॥
—संगीतरत्नाकर ६।७९४-९५

१५. ध्वनत्सु क्षोभिताम्भोनिधिनाभिषु दुन्दुभिषु।—पृ० ५८०

१६. दुन्दुभिध्वनिरुत्तस्थे।—पृ० २२८

१७. संगीतरत्नाकर, ६।११४५-४७

१८. शब्दायमानेषु सुरसुन्दरीश्रवणारुष्करेषु पुष्करेषु।—पृ० ५८१

१९. पुष्करेषु मर्दलेषु।—वही, सं० टी०
पुष्करवत् मृदंगमुखवत्।—पृ० २२९ उत्त०, सं० टी०

२०. नाट्यशास्त्र ३३।२४, २५

२१. प्रोक्तं मृदंगशब्देन मुनिना पुष्करत्रयम्।—स० र० ६।१०२७

२२. अवादयन् दुंदुभीश्च शतशश्चैव पुष्करान्।—महा० ६।१३।१०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी रघुवंश और मेघदूत में पुष्कर का उल्लेख किया है।[२३]

५. ढक्का

यशस्तिलक में ढक्का का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में हुआ है। ढक्काएँ पीटी जाने लगीं तो सेना के हाथियों के बच्चे डर गये।[२४] श्रुतसागर ने ढक्का का अर्थ ढोल किया है।[२५]

ढक्का या ढोल एक अवनद्ध वाद्य है। काशिकाकार ने भी अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख किया है।[२६] यह लकड़ी का बना वर्तुलाकार वाद्य है, जिसके दोनों मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता है।[२७] आजकल भी ढक्का या ढोल का प्रचलन है। बड़े ढोल डण्डे से पीटकर बजाये जाते हैं, छोटे ढोल हाथ से भी बजाये जाते हैं। छोटे ढोल को ढोलकी या ढुलकिया कहा जाता है।

६. आनक

आनक का यशस्तिलक में कई बार उल्लेख है। श्रुतसागर ने आनक का अर्थ पटह किया है।[२८]

आनक एक मुँहवाला अवनद्ध वाद्य है, जिसके बजाने से मेघ या समुद्र के गर्जन के समान भयानक आवाज होती है। सोमदेव ने लिखा है कि प्रलयकाल के कारण क्षुभित सप्तार्णव के शब्द की तरह घोर शब्द करनेवाले आनक बजे।[२९] संस्कृत में आनक की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी—आनयति उत्साहवतः करोति, अनु-णिच्-णवुल। प्राचीन साहित्य में आनक के अनेक उल्लेख मिलते हैं। महाभारत में आनक का कई बार उल्लेख है।[३०] आजकल के नौबत या नगारा से इसकी पहचान करना चाहिए।

---

२३. तूर्यैराहतपुष्करैः।—रघुवंश १७।११
पुष्करेष्वाहतेपु।—मेघदूत ६८

२४. प्रहितासु वित्रासितसैन्यसामजचिक्कासु ढक्कासु।—पृ० ५८०
(चिक्का : करिशिशवः, श्रीदेव)

२५. ढक्कासु ढोल्लवादित्रेषु।—वही, सं० टी०

२६. काशिका ४।२।३५

२७. सं० र० ६।१०६०-६४

२८. महानकेपु महापटहेपु।—पृ० ३८४ हि०

२९. प्रलयकालक्षुभितसप्तार्णवघोरानकस्वानाविर्भावितभुवनान्तरालम्।—पृ० ४४

३०. महाभारत ३।१५।७, १। २१४। २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७. भम्भा

यशस्तिलक में भम्भा का दो बार उल्लेख है। एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि जंभाती भुजग-भामिनियों में खलबली मचानेवाली भम्भाएँ बजीं।[३१] श्रुतसागर ने भम्भा का अर्थ वरांग या सुषिर वादित्र विशेष किया है।[३२]

यशस्तिलक में भम्भा का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। संगीतरत्नाकर या संगीतराज में इसके उल्लेख नहीं मिलते। प्राचीन साहित्य में भी इसके अत्यल्प उल्लेख हैं। रायपसेणियसुत्त में अवनद्ध वाद्यों के साथ भम्भा का उल्लेख मिलता है।[३३] श्रुतसागर ने स्पष्ट शब्दों में इसे सुषिर वाद्य कहा है। वास्तव में सर्पों को जगाने-रिझाने में अभी तक सुषिर वाद्यों का ही प्रयोग देखा जाता है। इसलिए सोमदेव के उल्लेख और श्रुतसागर की व्याख्या से भम्भा को सुषिर वाद्य मानना चाहिए, किन्तु रायपसेणियसुत्त के उल्लेखों के आधार पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह एक अवनद्ध वाद्य ही था। सोमदेव के उल्लेख के विषय में कहा जा सकता है कि सोमदेव ने भम्भा को सर्पों को जगाने या रिझानेवाला वाद्य नहीं कहा, प्रत्युत उनमें खलबली पैदा करनेवाला कहा है। यद्यपि यह ठीक है कि सर्पों को रिझाने आदि में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग नहीं देखा जाता, किन्तु यह तो सम्भव है ही कि उनके द्वारा खलबली पैदा की जा सकती है। इस दृष्टि से सोमदेव के उल्लेख से भी भम्भा को अवनद्ध वाद्य माना जा सकता है, पर उस स्थिति में श्रुतसागर की व्याख्या गलत होगी।

८. ताल

ताल का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है। युद्ध के प्रसंग में लिखा है कि डरे हुए हाथियों ने कान फड़फड़ाये तो तालों की आवाज़ दुगुनी हो गयी।[३४]

घन वाद्यों में ताल का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाता है।[३५] ताल का जोड़ा होता है। ये छह अंगुल व्यास के, गोल कांसे के बने हुए बीच में से दो अंगुल गहरे होते हैं। मध्यमें छेद होता है, जिसमें एक डोरी द्वारा वे जुड़े रहते हैं और दोनों हाथों से पकड़कर बजाये जाते हैं। ताल की ध्वनि बहुत देर तक गूँजती है, सोमदेव ने इसीलिए इसका प्रगुणित विशेषण दिया है।

---

३१. सर्जितासु विजृंभितभुजगभामिनीसंरम्भासु भम्भासु।-पृ० ५८१

३२. भम्भासु वरांगासु, सुषिरवादित्रविशेषेषु।—वही, सं० टी०

३३. रायपसेणियसुत्त, पृ० ६२, ६८

३४. प्रगुणितेषु भयोत्तंभितामरकरिकर्णतालेषु।—पृ० ५८१

३५. संगीतराज, ३।३।४।६-१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९. करटा

यशस्तिलक में करटा का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में है। सोमदेव ने लिखा है कि रणवीरों को उत्साहित करने वाली करटाएँ बजी।[३६] करटा का अर्थ श्रुतसागर ने वादित्र विशेष किया है।

करटा एक प्रकार का अवनद्ध वाद्य है। इसका खोल असन वृक्ष की लकड़ी का दो मुँह का बनता है। दोनों ओर चौदह अंगुल वर्तुलाकार चमड़े से मढ़ा जाता है। यह कमर में बाँध कर अथवा कन्धे पर लटका कर दोनों हाथों से बजाया जाता है।[३७]

१०. त्रिविला

यशस्तिलक में त्रिविला का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि समरदेवता की छाती फुलाने वाली त्रिविलाएँ विलंबित लय में बज रही थीं।[३८]

त्रिविली को संगीतरत्नाकर में अवनद्ध वाद्यों में गिनाया है। त्रिविला और त्रिविली एक ही वाद्य ज्ञात होता है। यह दोनों ओर चमड़े से मढ़ा तथा मध्य में मुष्टिग्राह्य होता है। सूत की डोरियों से कसाव लाया जाता है। इसके मुँह सात अंगुल के होते हैं और दोनों ओर हाथों से बजाया जाता है।[३९] यह डमरुक से मिलता-जुलता प्रकार है।

११. डमरुक

डमरुक का यशस्तिलक में युद्ध के प्रसंग में एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि निरन्तर बज रहे डमरुओं की ध्वनि सुनते-सुनते युद्ध में राक्षसियाँ जमुहाई लेने लगीं।[४०]

डमरुक का प्रचलन आज भी है और इसे डमरु कहा जाता है। डमरु दोनों ओर चमड़े से मढ़ा हुआ काठ का वाद्य है जो बीचमें पकड़ने के लिए पतला रहता है। बजाने के लिए दोनों ओर रस्सी में छोटी छोटी लकड़ियाँ बंधी रहती हैं। डमरु बीच में पकड़कर हिला हिलाकर बजाते हैं।

---

३६. प्रोत्तालितासु रणरसोत्साहितसुभटघटासु करटासु।–पृ० ५८१
३७. संगीतरत्नाकर ६।१०७८--८४
३८. विलसन्तीसु विलम्बलयप्रमोदितकदनदेवतावक्षःस्थलासु त्रिविलासु।–पृ० ५८१
३९. संगीतरत्नाकर ६।११४०–४४
४०. प्रवर्तितेपु निरन्तरध्वनिप्रवर्तिताइवचरराक्षसीकेपु डमरुकेपु।–पृ० ५८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२. रुंजा

रुंजा का यशस्तिलक में केवल एक बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि रुंजाओं की बहुत देर तक की गूंज से वीरलक्ष्मी के गृह-निकुंज जर्जरित हो गये।[४१]

रुंजा की गणना अवनद्ध वाद्यों में की जाती है। यह काठ अथवा धातु का अठारह अंगुल लम्बा तथा ग्यारह अंगुल के दो मुंह वाला वाद्य है। मुंह पर कोमल चमड़ा मढ़ा जाता है तथा दोनों ओर के मुखों का चमड़ा डोरी से कसा हुआ होता है, जिसमें छल्ले या कड़े पड़े रहते हैं। इसके दाहिने मुख को एक टेढ़े बांस से घिस कर तथा बायें को एक लकड़ी से पीट कर बजाया जाता है।[४२]

१३. घंटा

घंटे का उल्लेख भी युद्ध के प्रसंग में है। सोमदेव ने लिखा है कि शत्रु-कटकों की चेष्टाओं को लूटने वाले जयघंटे बजे।[४३]

घंटा एक प्रकार का घन वाद्य कहलाता है।[४४] इसका प्रचलन अब भी है। विजय या युद्ध के अवसर पर जो घंटा बजाया जाता था, उसे जयघंटा कहते थे। घंटे छोटे-बड़े अनेक प्रकार के बनते हैं।

१४. वेणु

यशस्तिलक में वेणु का उल्लेख दो बार हुआ है।[४५] यह एक सुषिर वाद्य है जो बांस में छिद्र करके बनाया जाता है। बांस का बनने के कारण ही इसे वेणु कहा गया। वेणु के उल्लेख प्राचीन साहित्य में बहुत मिलते हैं। आज भी इसका प्रचलन है और इसे बांसुरी कहा जाता है।

१५. वीणा

यशस्तिलक में वीणा का एक बार उल्लेख है।[४६] संगीत शास्त्र में तत

---

४१. स्फारितासु प्रदीर्घकूजितजर्जरितवीरलक्ष्मीनिकेतनिकुंजासु रुञ्जासु।-पृ० ५८१

४२. संगीतरत्नाकर ६।११०२–८
संगीतराज ३, ४, ४, ६८–७४
संगीतपारिजात २, १०७–१०९

४३. जयन्तीषु विद्विष्टकटकचेष्टितलुंठासु जयघंटासु।–पृ० ५८२

४४. संगीतरत्नाकर ६।१५

४५. पृ० ५८२, पृ० ३८४ उत्त०

४६. पृ० ५८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाद्यों के लिए वीणा नाम का सामान्य प्रयोग होता है। सोमदेव ने भी सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। वीणाएँ तार तथा बजाने के प्रकार भेद से अनेक प्रकार की होती हैं। संगीतरत्नाकर में दस भेद आये हैं।

१६. झल्लरी

झल्लरी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है।[४७] भरत ने नाट्यशास्त्र में झल्लरी का उल्लेख किया है।[४८] संगीतरत्नाकर में इसे अवनद्ध वाद्यों में गिनाया गया है। यह एक ओर चमड़े से मढ़ा वाद्य है, जो बायें हाथ में पकड़कर दायें हाथ से बजाया जाता है।[४९] इसके बहुत छोटे आकार को भाण कहते हैं।

अहोबल ने झालर का उल्लेख किया है। श्री चुन्नीलाल शेष ने झालर और झल्लरी को एक माना है।[५०] किन्तु यह मानना ठीक नहीं। झालर एक प्रकार का घन वाद्य है जब कि झल्लरी अवनद्ध वाद्य।

१७. वल्लकी

यशस्तिलक में वल्लकी का एक बार उल्लेख है।[५१] संगीतरत्नाकर में भी इसका उल्लेख आता है, किन्तु विशेष विवरण नहीं है।[५२]

वल्लकी लौकी शब्द का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है। गोल लौकी या तूंबी लगाकर बनायी गयी वीणा विशेष को वल्लकी कहा जाता था।

१८. पणव

यशस्तिलक में पणव का एक बार उल्लेख हैं।[५३] यह एक प्रकार का छोटा ढोल है। भरत ने अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख किया है।[५४] बाद में इसका लोप हो गया लगता है। संगीतरत्नाकर तथा संगीतराज में इसके उल्लेख नहीं हैं।

---

४७. पृ० ५८२, पृ० ३८४ उत्त०
४८. नाट्यशास्त्र ३३।१३, १६
४९. संगीतरत्नाकर ६।११३८.
५०. ब्रजमाधुरी, वर्ष १३, अंक ४, पृ० ४७
५१. पृ० ५८१
५२. संगीतरत्नाकर ३।२१३
५३. पृ० ३८४ उत्त०
५४. नाट्यशास्त्र ३३।१०, १२, १६, ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९. मृदंग

सोमदेव ने मृदंग का दो बार उल्लेख किया है।[५५] भरत ने इसे पुष्करत्रय में गिनाया है।[५६] इसका खोल मिट्टी का बनता है इसीलिए इसका नाम मृदंग पड़ा। इसके दोनों मुँह चमड़े से मढ़े जाते हैं। मृदंग खड़े होकर गले में डालकर तथा बैठकर सामने रखकर हाथों से बजाते हैं। संगीतरत्नाकर में मर्दल का वर्णन करते हुए कहा है कि मर्दल के ही प्रकार विशेष को मृदंग कहते हैं।[५७] बंगाल में अभी जिसे खोल कहा जाता है, उसी से मृदंग की पहचान करना चाहिए।

२०. भेरी

सोमदेव ने भेरी का एक बार उल्लेख किया है।[५८] यह मृदंग जाति का वाद्य है जो तीन हाथ लम्बा दो मुँह वाला, धातु का बनता है। मुख का व्यास एक हाथ का होता है। दोनों मुँह चमड़े से मढ़े होकर डोरियों से कसे रहते हैं और उनमें कांसे के कड़े पड़े रहते हैं। संगीतरत्नाकर में लिखा है कि यह तांबे की बनी तीन बालिस्त लम्बी होती है। यह दाहिनी ओर लकड़ी तथा बायीं ओर हाथ से बजायी जाती है।[५९]

२१. तूर्य या तूर

यशस्तिलक में तूर्य के लिए तूर्य[६०] और तूर[६१] दो शब्द आये हैं। यशोधर के राज्याभिषेक के समय तूर्य बजाये गये।

तूर एक प्रकार का सुषिर वाद्य है। आजकल इसे तुरही कहा जाता है। तुरही के अनेक रूप देखने में आते हैं। दो हाथ से चार हाथ तक की तुरही बनती है। इसका रूप भी कलात्मक होता है।

---

५५. पृ० ४८६, पृ० ३८४ उत्त०

५६. नाट्यशास्त्र ६३।१४–१५

५७. संगीतरत्नाकर ६।१०२७

५८. पृष्ठ ३८४ उत्त०

५९. संगीतरत्नाकर ६।११४८–५७

६०. सतूर्यनिनदम्।–पृ० १८४ हि०

६१. तूरस्वरः परुपः। –पृ० ६३ हि०
शवतूरम्। –पृ० वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२२. पटह

यशस्तिलक में पटह का एक बार उल्लेख है।[६२] यह एक प्रकार का अवनद्ध वाद्य है। संगीतपारिजात में इसे ढोलक कहा है। संगीतरत्नाकर में इसके मार्ग पटह और देशी पटह दो भेद आये हैं और दोनों का ही विस्तृत विवेचन किया गया है।[६३]

२३. डिण्डिम

डिण्डिम का यशस्तिलक में एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने इसकी ध्वनि को व्यालों को जगानेवाली कहा है।[६४]

डिण्डिम डमरु की तरह का वाद्य है। इसका भांड मिट्टी का बना होता है और दोनों मुँहों पर पतली झिल्ली मढ़ी जाती है। झिल्ली को किसी डोर से नहीं बांधा जाता किन्तु वह मुख पर सरेस जैसी किसी चिपकनेवाली वस्तु से चिपकी रहती है। बजाने के लिए बीच में डोरा बँधा रहता है जिसके अन्त में दो छोटी गांठें होती हैं। आजकल इसे डिमडिमी कहते हैं।

नृत्य

यशस्तिलक में नृत्य या नाटयशास्त्र से संबन्धित सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। सबका विवेचन निम्नप्रकार है :

नाट्यशाला

दरबार से उठकर सम्राट् नाटयशाला में पहुँचे (कदाचित् नाटयशालासु, २१७।३, हि०)। नाटयशाला का फर्श कामिनियों के चरणालक्तक से राग-रंजित हो रहा था (कामिनीजनचरणालक्तकरसरागरंजितरंगतलासु, ३१६।३, हि०)।

भरतमुनि ने नाटक खेलने के लिए नाटयशाला, नाटयमण्डप या प्रेक्षागृह का विधान किया है। ये नाटयमण्डप तीन प्रकार के बनाये जाते थे :—(१) विकृष्ट, (२) चतुरश्र और (३) त्र्यश्र। इन तीनों का प्रमाण क्रम से उत्तम, मध्यम और अवर (जघन्य) होता था। भरत ने लिखा है कि देवों के लिए

---

६२. पृ० ५८

६३. संगीतरत्नाकर ६।८०५

६४. डिण्डिमध्वनिरिव व्यसनव्यालप्रबोधनकरः। —पृ० ६७ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्येष्ठ या उत्तम, राजाओं के लिए मध्यम तथा जनसाधारण के लिए अवर प्रेक्षागृह की रचना होनी चाहिए।[६५] मध्यम प्रेक्षागृह में पाठ्य और गेय अधिक सरलता से सुने जा सकते हैं। इसलिए अन्य दोनों की अपेक्षा मध्यम प्रेक्षागृह अधिक अच्छा है।[६६]

अभिनय

नाट्यशाला के प्रसंग में अभिनय का भी उल्लेख यशस्तिलक (३२०।३) में आया है। यशोधर ने प्रयोगभंग तथा अनेक प्रकार के विचित्र आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय करने में सिद्धहस्त (प्रयोगभंगीविचित्राभिनयतन्त्रैर्भरतपुत्रैः, ३२०।३) अभिनेताओं के साथ नाट्यशाला में अभिनय देखा।

रंगपूजा

अभिनय प्रारम्भ होने के पूर्व सर्वप्रथम रंगपूजा की जाती थी। रंगपूजा न करने वाले को तिर्यग्योनि का भागी तथा करने वाले को स्वर्गप्राप्ति और शुभ अर्थ प्राप्ति होना कहा गया है।[६७] यशस्तिलक में रंगपूजा का विस्तार से वर्णन है। सम्राट् यशोधर के नाट्यशाला में पहुँचने पर रंगपूजा प्रारम्भ होती है (पृ० ३१८-३२२, हि.)। इस प्रसंग में सरस्वती को सम्बोधित करके आठ पद्य निबद्ध किये गये हैं (इति पूर्वरंगपूजाप्रक्रमप्रवृत्तं सरस्वतीस्तुतिवृत्तम्, पृ० ३२२, हि.)।

'सफेद कमल पर आसन, अधर पर मन्द स्मित, केतकी के पराग से पिंजरित सुभग अंगयष्टि, धवल दुकूल, चारुलोचन, सिर पर जटाजूट, कानों में बाल चन्द्रमा के समान अवतंस, श्वेतकमलों का हार, एक हाथ में ध्यान मुद्रा, दूसरे में अक्षमाला, तीसरे में पुस्तक और चौथा हाथ वरद मुद्रा में।'[६८]—यह है सरस्वती का पूर्ण स्वरूप। भरत ने नाट्यशास्त्र में रंगपूजा के प्रसंग में देवी-देवताओं की जो लम्बी सूची दी है, उसमें सरस्वती भी है। प्राचीन साहित्य तथा पुरातत्त्व में सरस्वती के किंचित् भिन्न-भिन्न अनेक रूप मिलते हैं।[६९] विद्या

---

६५. नाट्यशास्त्र, २।७, ८, ११
६६. वही, २।२१
६७. नाट्यशास्त्र, १।१२२–१२६
६८. यश० पृ० ३१८, श्लो० २६२–६३, हि०
६९. भटशाली—द आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्युजियम, पृ० १८१–१८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और संस्कृति की अधिष्ठात्री यह देवी वैदिक, जैन तथा बौद्ध तीनों धर्मों में समान रूप से पूज्य रही है (स्मिथ–जैन स्तूप आफ मथुरा, पृ० ३६)। ऋग्वेद से लेकर बाद के अधिकांश साहित्य में सरस्वती का वर्णन मिलता है (मेकडानल–वैदिक माइथोलोजी, पृ० ८७)।

नृत्य के भेद

यशस्तिलक में नृत्य के लिए कई शब्द आये हैं। जैसे नृत्य (३२०), नृत्त (३७७।१), नाटच (३२०), लास्य (३५५), ताण्डव (३२०) और विधि (२४६ उ०)। कतिपय अन्य शब्दों और वर्णनों से भी नृत्य-विधान का परिचय मिलता है।

नृत्य, नृत्त और नाटच शब्द देखने में समानार्थक से लगते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। धनंजय ने इन तीनों के भेद को स्पष्ट किया है,[७०] जिसे आगे दिखाएँगे। लास्य और ताण्डव नृत्य के भेद हैं। विधि का अर्थ यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने नृत्य किया है। यह नाटचशास्त्र का कोई प्राचीन पारिभाषिक शब्द प्रतीत होता है, जिसका अब ठीक अर्थ नहीं लगता। सहस्रकूट-चैत्यालय को भरत पदवी की तरह विधि, लय और नाटच से युक्त कहा गया है (भरतपदवीव विधिलयनाटचाडम्बरः, २४६।२३ उत्त०)।

नाटच

काव्यों में वर्णित धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त प्रकृति के नायकों तथा उस-उस प्रकृति की नायिकाओं एवं अन्य पात्रों का आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनयों द्वारा अवस्थानुकरण करना नाटच कहलाता है।[७१] अवस्थानुकरण से तात्पर्य है – चाल-ढाल, वेश-भूषा, आलाप-प्रलाप, आदि के द्वारा पात्रों की प्रत्येक अवस्था का अनुकरण इस ढंग से किया जाये कि नटों में पात्रों की तादात्म्यापत्ति हो जाये। जैसे नट दुष्यन्त की प्रत्येक प्रवृत्ति की ऐसी अनुकृति करे कि सामाजिक उसे दुष्यन्त ही समझें।

नाटच दृश्य होता है, इसलिए इसे 'रूप' भी कहते हैं और रूपक अलंकार की तरह आरोप होने के कारण रूपक भी कहते हैं। इसके नाटक आदि दस भेद होते हैं।[७२]

---

७०. दशरूपक १।७, ९, १०

७१. दशरूपक १।७

७२. वही, १।७–८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाट्य प्रधान रूप से रस के आश्रित रहता है। सामाजिक को रसानुभूति कराना ही नाट्य का चरम लक्ष्य है। शृंगार, वीर या करुण रस की परिपुष्टि नायक की प्रकृति के अनुसार, नाटक में की जाती है।

नृत्य

भावों पर आश्रित अनुकृति को नृत्य कहते हैं (अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्, दश० १।८)। नाट्य प्रधान रूप से रस के आश्रित होता है, किन्तु नृत्य प्रधान रूप से भावाश्रित होता है। धनंजय के टीकाकार धनिक ने इन दोनों के भेद को और भी अधिक स्पष्ट किया है जो इस प्रकार है[७३] :–

१. नाट्य रसाश्रित है, नृत्य भावाश्रित, इसलिए इन दोनों में विषय भेद है।
२. नाट्य में आंगिक आदि चारों प्रकार का अभिनय रहता है, जबकि नृत्य में केवल आंगिक अभिनय की प्रधानता है।
३. नाट्य दृश्य और श्रव्य दोनों होता है, जबकि नृत्य में श्रव्य कुछ भी नहीं होता। इसमें कथनोपकथन का अभाव रहता है।
४. नाट्य-कर्ता नट कहलाता है, नृत्य कर्ता नर्तक।
५. नाट्य 'नट् अवस्पन्दने' धातु से बना है और नृत्य 'नृत् गात्रविक्षेपे' धातु से बना है।

एक त्र्यर्थक पद्य में सोमदेव ने नृत्य की मुद्रा का पूरा चित्र खींचा है।[७४] तीनों अर्थ इस प्रकार हैं—

१. नृत्य के पक्ष में।
२. प्रमदारति अर्थात् स्त्रीसम्भोग के पक्ष में।
३. सभामण्डप या दरबार के पक्ष में।

नृत्य के पक्ष में

जिसमें कुन्तल-चँवर कम्पित हो रहे हैं, कांची का कल-कल शब्द हो रहा है, कटाक्ष पात द्वारा भाव निवेदन किया गया है, ऊरु और चरणों के यथावसर

७३. वही, १।९
७४. चंचत्कुन्तलचामरं कलरणत्कांचीलयाडम्बरम्,
भ्रूभंगार्पितभावसूक्ष्मचरणन्यासासनानन्दितम्।
खेलत्पाणिपताकमीक्षणपथानीतांगहारोत्सवम्,
नृत्यं च प्रमदारतं च नृपतिस्थानं च ते स्तान् मुदे॥ –आ०१, श्लोक १७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्यास से सामाजिकों को आनन्दित किया गया है, जिसमें हस्तपताकाएँ संचालित हो रही हैं तथा आंगिक अभिनय द्वारा नृत्य का आनन्द दृष्टिपथ में अवतरित हो रहा है, ऐसा नृत्य तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हो।

उस अर्थ में कुन्तल पर चँवर का आरोप तथा पाणि पर पताका का आरोप विशिष्ट है, अन्य अर्थ श्लेष से निकल आते हैं।

प्रमदारति के पक्ष में

जिसमें केश कम्पित हो रहे हैं, कांची का शब्द हो रहा है, कटाक्षपात द्वारा रति का भाव प्रकट किया गया है, ऊरु और चरण न्यास के विशेष आसन द्वारा रति का आनन्द प्रकट किया गया है, हाथ हिल रहे हैं, अंगहार पर जिसमें दृष्टि गड़ी है, ऐसी प्रमदारति आपको आनन्द प्रदान करे।

इस पक्ष में 'ऊरुचरणन्यासासनानन्दितम्' तथा 'ईक्षणरथानीतांगहारोत्सवम्' पदों के अर्थ विशेष बदले हैं।

सभामण्डप के पक्ष में

जिसमें चंचल केशों के चँवर ढोरे जा रहे हैं, संचरणशील वारविलासिनी अथवा दासियों की कांची का कलकल शब्द हो रहा है, जिसमें भ्रूक्षेप मात्र से आज्ञा या कार्य निर्देश किया गया है, आसन पर ऊरु और चरणों का न्यास किया गया है, हाथों में ली हुई पताकाएँ उड़ रही हैं, तथा जिसमें मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि राज्यांग का समूह आनन्दित किया गया है, ऐसा सभामण्डप आपकी प्रसन्नता के लिए हो।

इस पक्ष में 'भ्रूभंगार्पितभाव' तथा 'अंगहार' पद का अर्थ विशेष बदला है।

एक अन्य स्थल पर (पृ० १९६।११, हिन्दी) पैरों में घुँघुरू बाँधकर नृत्य करने का उल्लेख है। यशोधर के राजभवन में नृत्य हो रहा था जिसमें पवन की तरह चंचल हस्त-संचालन और बीच-बीच में घुंघरुओं की मधुर ध्वनि हो रही थी।[७५]

नृत्त

ताल और लय के आधार पर किये जाने वाले नर्तन को नृत्त कहते हैं (नृत्तं ताललयाश्रयम्)।[७६]

७५. नृत्यहस्तैरिव पवमानचंचलचलनसंगतांगसुभगवृत्तिभिर्विविधवर्णविनिर्माणमनोहराडम्बरैरन्तरान्तरमुक्तकलक्वणन्मणिकिंकिणीजालमालाभिः।—१९५।११, हिन्दी

७६. दरा० १।९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नृत्त में अभिनय का सर्वथा अभाव होता है। केवल ताल और लय के आधार पर द्रुत, मन्द या मध्यम पादविक्षेप किया जाता है। ताल संगीत में स्वर की मात्रा का तथा नृत्त में पादविक्षेप की मात्रा का नियामक होता है। लय नृत्त की गति को तीव्र, मन्द या मध्यम करने की सूचना देता है। इस प्रकार नृत्य और नृत्त के भेदक तत्त्व ये हैं—

१. नृत्य में आंगिक अभिनय रहता है, नृत्त अभिनय शून्य है।
२. नृत्य भावाश्रित है, जबकि नृत्त ताल और लय के आश्रित।
३. नृत्य शास्त्रीय पद्धति के अनुसार चलता है, जबकि नृत्त ताल और लय के आश्रित होकर भी शास्त्रीय नहीं। इसीलिए नृत्य मार्ग (शास्त्रीय) कहलाता है तथा नृत्त देशी।
४. नृत्य के उदाहरण 'भरतनाट्यम्,' 'कत्थक' या उदयशंकर के भावनृत्य हैं। नृत्त के उदाहरण लोकनृत्य हो सकते हैं।

नृत्त के भेद

नृत्त के दो भेद हैं—(१) मधुर, (२) उद्धत। मधुर नृत्त को लास्य तथा उद्धत नृत्त को ताण्डव कहते हैं। नृत्य के भी यही भेद हैं। नृत्य और नृत्त के ये दोनों प्रकार लास्य और ताण्डव नाट्य के उपस्कारक होते हैं।[७७] नाट्य में पदार्थाभिनय के रूप में नृत्य का तथा शोभाजनक होने के कारण नृत्त का प्रयोग किया जाता है। वस्तु, नेता और रस इनके भेदक तत्त्व हैं। (वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः, दश० १।११)।

लास्य

नृत्य तथा नृत्त में सुकुमार तथा उद्धत भावों की व्यंजना के लिए भिन्न सरणी का आश्रय लिया जाता है। भावों की सुकुमार व्यंजना को लास्य कहते हैं। सावन आदि के अवसर पर किये जाने वाले कामिनियों के मधुर तथा सुकुमार नृत्य लास्य कहे जा सकते हैं। मयूर का कोमल नर्तन लास्य के अन्तर्गत आता है। यशस्तिलक में यन्त्रधारा-गृह का वर्णन करते हुए भवन-मयूर के लास्य का उल्लेख है। यन्त्र के बने हुए अनेक हाथी, सिंह, सर्प आदि के मुँह से घर्घर शब्द करता हुआ पानी निकलता था जिससे क्रीड़ा-मयूरों को मेघगर्जन का भ्रम होता और वे आनन्दविभोर होकर नाचने लगते।[७८]

---

७७. दश० १।१०

७८. विविधव्यालवदनविनिर्गज्जलधाराध्वनितलयलास्यमानभवनांगणवर्हिणम्।
—३५५।७, हिन्दी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशरूपककार ने लिखा है कि नाट्यशास्त्र में सुकुमार नृत्यका संनिवेश भगवती पार्वती ने किया था।[७९]

ताण्डव

उद्धत नृत्य को ताण्डव कहते हैं। नृत्य और नृत्त दोनों ही लास्य और ताण्डव के भेद से दो दो प्रकार के होते हैं।[८०] सोमदेव ने ताण्डव का उत्ताल विशेषण दिया है (उत्तालताण्डव, ३५६।१, हिन्दी)। ताण्डव नृत्य में सिद्धहस्त अभिनेताओं को 'ताण्डवचण्डीश' कहा गया है (३२०।२, हिन्दी)। महादेव का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है। धनंजय के अनुसार नाट्य में ताण्डव का संनिवेश महादेव ने किया था।[८१] महादेव की नटराज मुद्रा की अनेक मनोज्ञ मूर्तियाँ मिलती हैं।[८२]

---

७९. दश० १।४

८०. वही १।१०

८१. दश० १।४

८२. भटशाली—द आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्युजियम

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र-कला

यशस्तिलक में चित्रकला के उल्लेख भी कम नहीं हैं और जितने हैं वे कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

भित्ति-चित्र

पाँचवें उच्छ्वास में एक जैन मन्दिर का अतीव रोचक वर्णन है। उसी प्रसंग में सोमदेव ने अनेक भित्ति-चित्रों का उल्लेख किया है।[1]

कला की दृष्टि से भित्ति-चित्रों की अपनी विशेषता है। भित्ति-चित्र बनाने के लिए भीतर का उपलेप (प्लास्टर) कैसा होना चाहिए और उसे कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिए जमीन कैसे तैयार करनी चाहिए, इत्यादि बातों का सविस्तर वर्णन अभिलषितार्थचिन्तामणि तथा मानसोल्लास में आया है। जमीन तथा रंगों में पकड़ के लिए सरेस दिया जाता था, जिसे वज्रलेप कहते थे। उपलेप पर जमीन तैयार करके भावुक एवं सूक्ष्म रेखा-विशारद चित्रकार चिन्तन द्वारा अर्थात् अन्तर्दृष्टि से देखकर उस पर अनेक भाव तथा रस वाले चित्र अच्छी रेखाओं और समुचित रंगों से बनाता था। आलेखन के लिए वह कलम के अतिरिक्त पेंसिल की-सी किसी अन्य चीज का भी प्रयोग करता था जिसका नाम वर्तिका था। पहले इसी से आकार टीपता था फिर गेरु से सच्ची टिपाई करता था; तब समुचित रंग भरता था। ऊंचाई दिखाने के लिए उजाला (लाइट) तथा निचाई के लिए छाया (शेड) देता था। तैयार चित्र के हाशिए की पट्टी काले रंग से करता था और वस्त्र, आभरण, चेहरे आदि की लिखाई अलक्तक से करता था।

सोमदेव ने जिन भित्ति-चित्रों का उल्लेख किया है वे दो प्रकार के हैं—१–व्यक्ति-चित्र, २–प्रतीक चित्र। व्यक्ति-चित्रों में बाहुबलि, प्रद्युम्न, सुपार्श्व, अशोकरोहणी तथा यक्षमिथुन का उल्लेख है। प्रतीक-चित्रों में तीर्थंकरों की माता के द्वारा देखे जाने वाले सोलह स्वप्नों का विवरण है।

---

१. सुकविकृतिरिव चित्रबहुला।–२४६।२२ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति-चित्र

१. बाहुबलि (विजयसेनैव बाहुबलिविदिता, २४६।२० उत्त०)

जैन परम्परा में बाहुबलि एक महान् तपस्वी और मोक्षगामी महापुरुष माने गये हैं। ये आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र तथा चक्रवर्ती भरत के भाई थे। भरत के चक्रवर्तित्व प्राप्ति के बाद ये संन्यस्त हो गये और लगातार बारह वर्ष तक तप करते रहे। सुडौल, सौम्य और विशाल शरीर के धारक इस तपस्वी ने ऐसी समाधि लगाई कि वर्षा, जाड़ा और गर्मी किसी से भी विचलित नहीं हुआ। चारों ओर पेड़ पौधे और लताएँ उग आयीं और शरीर का सहारा पाकर कंधों तक चढ़ गयीं। बाहुबलि का यही चित्र शिल्प और ललित कला में कलाकार ने उकीरा है। दक्षिण भारत में अनेक मनोज्ञ मूर्तियाँ बाहुबलि के उक्त स्वरूप की अभी भी विद्यमान हैं। संसार को आश्चर्यचकित करने वाली श्रवणबेलगोल (मैसूर) की मूर्ति इसी महापुरुष की है जो उन्मुक्त आकाश में निरालम्ब खड़ी चराचर विश्व को शान्ति का अमर सन्देश दे रही है।

२. प्रद्युम्न (प्रकटरतिजीवितेशा, २४६।२२ उत्त०)

प्रद्युम्न सौन्दर्य और कान्ति के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक माने जाते हैं। इसीलिए इन्हें रतिजीवितेश अर्थात् कामदेव कहा गया है। प्रद्युम्न का पूरा चित्र दीवार पर उकीरा गया था।

३. सुपार्श्व (रूपगुणनिका इव सुपार्श्वगता, २४६।२० उत्त०)

सोमदेव ने लिखा है कि यह मन्दिर रूपगुणनिका की तरह सुपार्श्वगत था। रूपगुणनिका और पार्श्वगत दोनों ही चित्रकला के पारिभाषिक शब्द हैं। चित्र उकीरने के लिए व्यक्ति का अध्ययन रूपगुणनिका कहलाता है। इसी तरह पार्श्वगत चित्र के नव अंगों में से एक है। विष्णुधर्मोत्तर (३९, १ भाग ३) में इन नव अंगों का विवरण आया है (नव स्थानानि रूपाणाम्, वही)।

सोमदेव ने जिस मन्दिर का उल्लेख किया है उसमें सम्भवतया सुपार्श्वनाथ की मूर्ति थी जिसे कलाकार की दृष्टि से देखने पर केवल पार्श्वगत अंग ही दिखाई देता था। सुपार्श्वनाथ जैन परम्परा में सातवें तीर्थंकर माने गये हैं।

४. अशोक तथा रोहिणी (अशोकरोहणीपेशला, २४६।२१ उत्त०)

जैन परम्परा में अशोक राजा तथा रोहणी रानी की कथा और चित्रों की परम्परा पुरानी है। प्राचीन पाण्डुलिपियों तक में इनके चित्र मिलते हैं (डॉ० मोतीचन्द्र – जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज़, चित्र १७)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५. यक्षमिथुन (यक्षमिथुनसनाथा, २४६।२१ उत्त०)

तीर्थंकरों की पूजा-अर्चा के लिए यक्षमिथुनों के आने का शास्त्रों में बहुत जगह उल्लेख है। सम्भवतया ऐसे ही किसी प्रसंग में यक्षमिथुन चित्रित किये गये थे।

प्रतीक-चित्र

जैन साहित्य में ऐसे उल्लेख आते हैं कि तीर्थंकरों के गर्भ में आने के पहले उनकी माता सोलह स्वप्न देखती हैं। श्वेताम्बर परम्परा में चौदह स्वप्नों का वर्णन आता है। सोमदेव ने जिस मन्दिर का उल्लेख किया है उसमें ये सोलह स्वप्न भिति पर चित्रित किये गये थे –

१. ऐरावत हाथी (संनिहितैरावता, २४६।२४ उत्त०)
२. वृषभ (आसन्नसौरभेया, २४६।२४ उत्त०)
३. सिंह (निलीनोरकण्ठीरवः, २४६।२५ उत्त०)
४. लक्ष्मी (रमोपशोभिता, २४६।२५ उत्त०)
५. लटकती पुष्पमालाएँ (प्रलम्बितकुसुमशरा, २४६।२६ उत्त०)
६.७. चन्द्र, सूर्य (सविधविधुबुध्नमण्डला, २४७।१ उत्त०)
८. मत्स्ययुगल (शकुलीयुगलांकिता, २४७।१ उत्त०)
९. पूर्णकुम्भ (पूर्णकुम्भाभिरामा, २४७।२ उत्त०)
१०. पद्मसरोवर (कमलाकरसेविता, २४७।२ उत्त०)
११. सिंहासन (प्रसाधितसिंहासना, २४७।३ उत्त०)
१२. समुद्र (जलनिधिमति, २४७।३ उत्त०)
१३. फणयुक्तसर्प (उन्मीलिताहिलोका, २४७।३ उत्त०)
१४. प्रज्वलित अग्नि (प्रत्यक्षहुताशना, २४७।४ उत्त०)
१५. रत्नों का ढेर (समणिनिचया, २४७।५ उत्त०)
१६. देवविमान (प्रदर्शितदेवालया, २४७।५ उत्त०)

रंगावलि या धूलि-चित्र

रंगावलि या धूलि-चित्रों का यशस्तिलक में छह बार उल्लेख हुआ है। राज्याभिषेक के बाद महाराज यशोधर राजभवन को लौट रहे थे। उस समय अनेक लोग मंगल सामग्री जुटाने में लगे थे। किसी कुलवृद्धा ने किसी सेविका कन्या को डपटते हुए कहा – तत्काल रंगावलि बनाने में जुट जाओ।[२] आस्थान-

---

२. अकालक्षेपं दत्स्व रंगवल्लिप्रदानेषु। –पृ० ३५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंडप में कर्पूर की सफेद धूलि से रंगावलि बनाई गयी थी।[३] राजमहिषी के महल में एक स्थान पर मणि लगाकर स्थायी रूप से रंगावलि अंकित की गयी थी।[४] अन्यत्र कुंकुम रंगे मरकत पराग से फर्श पर तह देकर अधखिले मालती के फूलों से रंगावलि बनाई गयी थी।[५] एक अन्य प्रसंग में भी पुष्पों द्वारा रचित रंगावलि का उल्लेख है।[६]

रंगावलि बनाने के लिए पहले जमीन को पतले गोबर से लीपकर अच्छी तरह साफ कर लिया जाता था। इसे परभागकल्पन कहते थे।[७] इस तरह साफ की गयी जमीन पर सफेद या रंगीन चूर्ण से रंगावलि बनाई जाती थी। आजकल इसे रंगोली या अल्पना कहा जाता है। प्रायः प्रत्येक मांगलिक अवसर पर रंगावलि बनाने का प्रचलन भारतवर्ष में अब भी है।

चित्रकला में रंगावलि को क्षणिक-चित्र कहते हैं। क्षणिक-चित्र के दो प्रकार होते हैं – धूलि-चित्र और रस-चित्र।[८]

चित्रकर्म

सोमदेव ने एक विशेष संदर्भ में प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का उल्लेख किया है।[९] इसका एक पद्य भी उद्धृत किया है—

श्रमणं तेजलिप्तांगं नवभिर्भक्तिभिर्युतम्।
यो लिखेत् स लिखेत्सर्वां पृथ्वीमपि ससागराम्॥[१०]

श्रुतसागर ने यहाँ श्रमण का अर्थ तीर्थंकर और तेजलिप्तांगं का अर्थ करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान तेजयुक्त किया है तथा मधुमाधवी के अनुसार नव-भक्तियों को इस प्रकार गिनाया है—

---

३. अनल्पकर्पूरपरागपरिकल्पितरंगावलिविधानम्। –पृ० ३६६

४. चरणनखस्फुटितेन रंगवल्लीमणीन् इव असहमानया। –पृ० २४ उत्त०

५. घुसृणरसारुणितमरकतपरागपरिकल्पितभूमितलभागे मनाग्मोदमानमालतीमुकुल-विरचितरंगवल्लिनि। –पृ० २८ उत्त०

६. पर्यन्तपादपैः संपादितकुसुमोपहारः प्रदत्तरंगावलि। –पृ० १३३

७. रंगवल्लीषु परभागकल्पनम्। –पृ० २४७ उत्त०

८. वी० राघवन्–संस्कृत टेक्स्ट आन पेंटिंग, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, जिल्द ९। पृ० ९०५–६

९. प्रजापतिप्रोक्ते च चित्रकर्मणि। –पृ० ११२ उत्त०

१०. पृ० वही। मुद्रित प्रति का 'तेललिप्तांगं' और 'भिक्ति' पाठ गलत है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शालोऽथ वेदिरथ वेदिरथोऽपि शाल-
वेदीव शाल इह वेदिरथोऽपि शालः।
वेदी च भाति सदसि क्रमतः यदीये,
तस्मै नमस्त्रिभुवनविभवे जिनाय ॥

स्पष्ट ही यह सन्दर्भ तीर्थंकर के समवशरण को व्यक्त करता है। जैन शास्त्रों के अनुसार तीर्थंकर को केवलज्ञान होने के उपरान्त इन्द्र कुबेर को आज्ञा देकर एक विराट सभामण्डप का निर्माण कराता है, जिसमें तीर्थंकर का उपदेश होता है। इसी सभामंडप को समवशरण कहा जाता है। जैसा कि श्रुत-सागर ने लिखा है इसकी रचना गोलाकार होती है और शाल और वेदी, शाल और वेदी के क्रम से विन्यास किया जाता है। प्राचीन जैन चित्रों में समवशरण का सुन्दर अंकन मिलता है।

सोमदेव द्वारा उल्लिखित प्रजापति-प्रोक्त चित्रकर्म उपलब्ध नहीं होता। संभवतया यह ब्राह्मीय चित्रकर्म शिल्पशास्त्र था, जिसका सार तंजोर ग्रन्थागार की १५४३१ संख्या वाली पाण्डुलिपि में उपलब्ध है।

अन्य उल्लेख

चित्रकला के अन्य उल्लेखों में सोमदेव ने एक स्थान पर खम्भों पर बने चित्रों का उल्लेख किया है (केतुकाण्डचित्रैः, १८।४ सं० पू०)। एक अन्य स्थान पर भित्तियों पर बने हुए सिंहों का उल्लेख किया है (चित्रार्पितादिपैरिव, ९०।६ सं० पू०)। झरोखों से झाँकती हुई कामिनियों का वर्णन भी एक स्थान पर आया है (गवाक्षमार्गेषु विलासिनीनां विलोचनैर्मौक्तिकबिंबकान्तैः ३४२।३-६ सं० पू०)। संस्कृत साहित्य तथा कला एवं शिल्प में अन्यत्र भी ऐसे उल्लेख आये हैं।

■

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तु-शिल्प

यशस्तिलक में वास्तु-शिल्प सम्बन्धी विविध प्रकार की सामग्री के उल्लेख मिलते हैं। विभिन्न प्रकार के शिखरयुक्त चैत्यालय (देवमन्दिर), गगनचुंबी महाभागभवन, त्रिभुवनतिलक नामक राजप्रासाद, लक्ष्मीविलासतामरस नामक आस्थानमण्डप, श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमन्दिर, दिग्वलय-विलोकनविलास नामक क्रीड़ाप्रासाद, करिविनोदविलोकनदोहद नामक प्रधाव-धरणिप्रासाद, मनसिजविलासहंसनिवासतामरस नामक वासभवन, गृहदीर्घिका, प्रमदवन, यन्त्रधारागृह आदि का विस्तृत वर्णन विभिन्न प्रसंगों में आया है। सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन इस प्रकार है –

चैत्यालय

देवमन्दिर के लिए यशस्तिलक में चैत्यालय शब्द का प्रयोग हुआ है। सोमदेव ने लिखा है कि राजपुरनगर विविध प्रकार के शिखरयुक्त चैत्यालयों से सुशोभित था।[1] शिखर क्या थे मानो निर्माणकला के प्रतीक थे।[2] शिखरों से विशेष कान्ति निकलती थी। सोमदेव ने इसे देवकुमारों को निरवलम्ब आकाश से उतरने के लिए अवतरण मार्ग कहा है।[3] शिखर ऐसे लगते थे मानो शिशिर-गिरि कैलाश का उपहास कर रहे हों।[4] शिखर की अटनि पर सिंह निर्माण किया गया था। सोमदेव ने लिखा है कि अटनि पर बने सिंहों को देख कर चन्द्रमृग चकित रह जाते थे।[5] शिखरों की ऊँचाई की कल्पना सोमदेव के इस कथन से की जा सकती है कि सूर्य के रथ का घोड़ा थक कर मानो क्षण भर विश्राम के लिए शिखरों पर ठिठक रहता था।[6] देवयानों को चक्कर काट कर ले जाना पड़ता था।[7] निरन्तर विहार करते हुए विद्याधरों की कामिनियों के

---

१. विचित्रकोटिभिः कूटैरुपशोभितम्। – पृ० २१ पू०
२. घटनाश्रियां श्रियमुद्वहद्भिः। – वही
३. देवकुमारकाणामनालम्बे नभस्यवतरणमार्गचिह्नोचितरुचिभिः। – पृ० १७
४. उपहसितशिशिरगिरिहराचलशिखरैः। – वही
५. अटनितटनिविष्टविकटसटोत्कटकरटिरिपुसमीपसंचारचकितचन्द्रमृग। – वही
६. अरुणरथतुरगचरणाक्षुण्णक्षणमात्रविश्रमैः। – वही
७. अंबरचरचमूविमानगतिविक्रमविधायिभिः। – वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कपोलों का स्वेदजल चैत्यालयों के शिखरों पर लगी पताकाओं को हवा से सूख जाता था।[८]

ध्वज-दण्डों में चित्र बनाये जाते थे। सोमदेव ने लिखा है कि सटकर चलती सुर-सुन्दरियों के चंचल हाथों से ध्वज-दण्डों के चित्र मिट जाते थे।[९] ध्वजस्तम्भ की स्तम्भिकाओं में मणिमुकुर लगे थे[१०]। शिखरों पर रत्नजटित कांचनकलश लगाये गये थे, जिनसे निकलनेवाली कान्ति से आकाश-लक्ष्मी का चंदोवा-सा बन रहा था।[११] पानी निकलने के लिए चन्द्रकान्त के प्रणाल बनाये गये थे।[१२] किंपिरि (कंगूरे) सूर्यकान्त के बने थे, जो सूर्य की रोशनी में दीपकों की तरह चमकते थे।[१३] उज्ज्वल आमलासार पर कलहंस श्रेणी बनायी गयी थी।[१४] उपरितल पर घूमते हुए मयूर-बालक दिखाये गये थे।[१५] सामने ही स्तूप बनाया गया था।[१६] विटंकों पर शुक-शावक बैठे हरित-अरुणमणि का भ्रम पैदा कर रहे थे।[१७] चाष पक्षियों के पंखों से मेंचक रचना ढंक गयी थी।[१८] पालिध्वजाओं में क्षुद्र घंटिकाएँ लगायी गयी थीं।[१९] चूने से ऐसी सफेदी की गयी थी मानो आकाशगंगा का प्रवाह उमड़ आया हो।[२०] चैत्यालय ऐसे लगते थे मानो आकाशवृक्ष के फूलों के गुच्छे हों, श्वेतद्वीपसृष्टि हों, आकाशदेवता के शिखण्डमण्डन का पुण्डरीक समूह हो, तीनों लोकों के भव्य जनों के पुण्योपार्जन क्षेत्र हों, आकाश-समुद्र की फेनराशि हो, शंकर का अट्टहास हो, स्फटिक के क्रीड़ाशैल हों, ऐरावत के कलभ हों। चारों ओर से पड़ रही माणिक्यों की कान्ति द्वारा मानो भवतों के स्वर्गारोहण के लिए सोपान परम्परा रच रहे हों, संसार-सागर से तिरने के लिए जहाज हों (पृ० २०, २१)।

---

८. वही पृ० १८
९. अतिसविधसंचरत्सुरसुन्दरीकरचापलविलुप्तकेतुकाण्डचित्रैः। – वही
१०. अनेकध्वजस्तम्भस्तम्भिकोत्तंभितमणिमुकुर। – वही
११. अप्रत्नरत्नचयनिचितकांचनकलश। – वही
१२. चन्द्रकान्तमयप्रणाल। – वही
१३. दिनकृतकान्तकिंपिरि। –वही
१४. अमलकामलासारविलसत्कलहंसश्रेणी। – पृ० १९
१५. उपरितनतलचलत्प्रचलाकिबालकः। – वही
१६. उपान्तस्तूप। – वही
१७. १८. पृ० २०
१९. किंकिणीजालवाचालपालिध्वज। –वही
२०. अनवधिसुधाप्रधाबद्धामसंदिग्धस्वधुनीप्रवाहै। –वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चैत्यालयों के इस वर्णन में सोमदेव ने प्राचीन वास्तुशिल्प के कई पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। जैसे – अटनि, केतुकाण्डचित्र, ध्वजस्तम्भस्तम्भिका, प्रणाल, आमलासारकलश, किंपिरि, स्तूप, विटंक।

प्राचीन वास्तुशिल्प में अटनि अर्थात् बाहरी छज्जे पर सिंह-रचना का विशेष रिवाज था। इसे झम्पासिंह कहते थे। केतुकाण्ड अर्थात् ध्वजा दण्डों पर चित्र बनाये जाते थे। ध्वजा देवमन्दिर का एक आवश्यक अंग था। ठक्कुर फेरु ने वास्तुसार (३।३५) में लिखा है कि देवमन्दिर के अच्छे शिखर पर ध्वजा न हो तो उस मन्दिर में असुरों का निवास होता है। प्रासाद के विस्तार के अनुसार ध्वजा-दण्ड बनाया जाता था। एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में पौन अंगुल मोटा ध्वजादण्ड और उसके आगे क्रमशः आधा-आधा अंगुल बढ़ाना चाहिए (३।३४ वही)। दण्ड की मर्कटी (पाटली) के मुख भाग में दो अर्द्धचन्द्र का आकार बनाने तथा दो तरफ घंटी लगाने का विधान बताया गया है।[२१] ध्वजस्तम्भों के आधार के लिए स्तम्भिकाएँ बनायी जाती थीं। उनमें मणिमुकुर लगाने की प्रथा थी। स्तम्भिकाओं की रचना घण्टोदय के अनुसार की जाती थी।[२२] चैत्यालय में देवमूर्ति के प्रक्षालन का जल बाहर निकालने के लिए प्रणाल की रचना की जाती थी। देवमूर्ति अथवा प्रासाद का मुख जिस दिशा में हो तदनुसार प्रणाल बनाया जाता था। प्रासादमण्डन तथा अपराजितपृच्छा में इसका ब्योरेवार वर्णन किया गया है। शिखर के ऊपर और कलश के नीचे आमलासारकलश की रचना की जाती थी। शिखर के अनुपात से आमलासार बनाया जाता था। प्रासादमंडन में लिखा है कि दोनों रथिकाओं के मध्य भाग जितनी आमलासारकलश की गोलाई करना चाहिए, आमलासार के विस्तार से आधी ऊँचाई, ऊँचाई का चार भाग करके पौन भाग का गला, सवा भाग का आमलासार, एक भाग की चन्द्रिका और एक भाग की आमलसारिका बनाना चाहिए (४।३२,३३)। आमलासार के ऊपर कांचन कलश स्थापित किया जाता था। कलश की स्थापना मांगलिक मानी जाती थी (प्रासादमंडन ४।३६)। मंडन ने ज्येष्ठ, कनीय और अभ्युदय के भेद से कलश के तीन प्रकार बताये हैं। सोमदेव ने चैत्यालयों के मुड़ेर को किंपिरि कहा है। सूर्यकान्त के बने किंपिरि सूर्य की रोशनी में मणिदीपों की तरह चमकते थे। चैत्यालय के समीप ही स्तूप बनाये जाते थे। विटंक को श्रुतसागर ने बाहर निकला हुआ काष्ठ कहा है।[२३] वास्तु-

---

२१. अपराजितपृच्छा, सूत्र १४४, प्रासादमंडन ४।४५

२२. घण्टोदयप्रमाणेन स्तंभिकोदयः कारयेत्। –वही

२३. वहिर्निर्गतानि काष्ठानि। –पृ० २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिल्प में अन्यत्र इस शब्द का प्रयोग देखने में नहीं आता। सम्भवतया छज्जे के नीचे लगी काठ की धरन विटंक कहलाती थी।

चैत्यालयों के अतिरिक्त राजपुर में श्रीमानों के गगनचुम्बी (अभ्रंलिहैः) प्रासाद थे। मणिजड़ित उत्तुंगतोरण लगाये गये थे।[२४] तोरणों से निकलती किरणों से देवताओं के भवन मानो पीले हो रहे थे।[२५]

त्रिभुवनतिलक प्रासाद

सोमदेव ने लिखा है कि सिप्रा के तट पर राज्याभिषेक के बाद यशोधर ने लौट कर त्रिभुवनतिलक नामक प्रासाद में प्रवेश किया। त्रिभुवनतिलक प्रासाद श्वेत पाषाण या संगमर्मर (सुधोपलासार, ३४२) का बनाया गया था। शिखरों पर स्वर्णकलश (कांचनकलश, ३४३) लगाये गये थे। पूरे प्रासाद पर चूने से सफेदी की गयी थी।[२६] रत्नमय खम्भों वाले ऊँचे-ऊँचे तोरणों के कारण राजभवन कुबेरपुरी की तरह लगता था (पृ० ३४४)।

यहाँ सोमदेव ने तोरण को 'उत्तुंगतरंगतोरण' कहा है। तोरणों के रत्नमय खम्भों (रत्नमयस्तंभ, ३४४ पृ०) पर मुक्ताफल की लम्बी-लम्बी मालाएँ लटकती हुई दिखाई गयी थीं।[२७] बड़े-बड़े प्रवालमणि (प्रबलप्रवाल, वही) तथा दिव्य दुकूल भी अंकित थे। ऊपर लगी ध्वजाओं में मरकतमणि लगे हुए थे, जिनसे नीली कान्ति निकल रही थी।[२८] एक ओर महामण्डलेश्वर राजाओं के द्वारा उपहार में आये श्रेष्ठ हाथियों के मदजल से भूमि पर छिड़काव हो रहा था।[२९] दूसरी ओर उपहार में प्राप्त उत्तम घोड़े मुँह-से फेन उगलते श्वेत कमल बनाते-से बँधे थे।[३०] दूतों के द्वारा लाये गये उपहार एक ओर रखे थे (वही ३४४)। राजभवन प्रजापतिपुर सदृश होने पर भी दुर्वासा (मलिनवस्त्रधारी) रहित था। इन्द्रभवन सदृश होने पर भी अपारिजात (शत्रुसमूहरहित) था। अग्निगृह सदृश होने पर भी अधूमश्यामल (मणिमाणिक्यों की प्रभायुक्त) था। धर्मधाम (यमराज का घर) होकर भी अदुरीहितव्यवहार (पापव्यवहार)

---

२४. उत्तुंगतोरणमणि। -पृ० २१
२५. पिंजरितामरभवनैः। -वही
२६. सुधादीधितिप्रबन्धैः धवलिताखिलदिग्वलयम्। -३४४
२७. आवलंबितमुक्ताप्रलंब। -३४४ पृ०
२८. उपरितनदेशोत्तंभितध्वजप्रान्तप्रोतमरकतमणि। -वही
२९. महामंडलेश्वरैरनवरतमुपायनीकृतकरीन्द्रमदलक्ष्मीजनितसंमार्जनम्। -वही
३०. उपाहूताजानेय हयाननोद्गीर्णडिण्डीरपिण्डपुण्डरीकविहितोपहारम्। -वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शून्य था। पुण्यजनावास होकर भी अराक्षसभाव था। प्रचेत:पस्त्य (वरुणगृह) होकर भी अजड़ाशय था। वातोदवसित (वायुभवन) होकर भी अचपलनायक (स्थिरस्वामी) था। धनदधिष्ण्य (कुबेरगृह) होकर भी अस्थाणुपरिणत (ठूठरहित) था। शंभूशरण होकर भी अव्यालावलीढ़ था। ब्रघ्नसौध होकर भी अनेकरथ था। चन्द्रमन्दिर होकर भी अमृदुप्रताप था। हरिगेह होकर भी अहिरण्यकशिपुनाश था। नागेशनिवास होकर भी अद्विजिह्वपरिजन (दोगला-रहित) था, वनदेवता-निवास होकर भी अकुरंग था।

कहीं धर्मराजनगर की तरह सूक्ष्मतत्त्ववेत्ता विद्वान् सम्पूर्ण संसार के व्यवहार का विचार कर रहे थे। कहीं पर ब्रह्मालय की तरह द्विजन्मा (ब्राह्मण) लोग निगमार्थ (नीति-शास्त्र) की विवेचना कर रहे थे। कहीं पर तण्डुभवन की तरह अभिनेता इतिहास का अभिनय कर रहे थे। कहीं पर समवशरण की तरह प्रमुख विद्वान् तत्त्वोपदेश कर रहे थे। कहीं सूर्य के रथ की तरह घोड़ों को सिखाने के लिए घसीटा जा रहा था। कहीं अंगराज भवन की तरह सारंग (हाथी) शिक्षित किये जा रहे थे। कुलवृद्धाएँ दासियों तथा नौकर-चाकरों को नाना प्रकार के निर्देश दे रही थीं। ऊँचे तमंगों के झरोखों से स्त्रियाँ झाँक रही थीं। कीर्तिसाहार नामक वैतालिक इस त्रिभुवनतिलक नामक भवन का वर्णन इस प्रकार करता है—

यह प्रासाद शुभ्रध्वजा-श्रेणियों द्वारा कहीं हवा से हिल रही हिलोरों वाली गंगा की तरह लगता है, तो कहीं स्वर्णकलशों की अरुण किरणों के कारण सुमेरु की छाया की तरह। कहीं अतिश्वेत भित्तियों के कारण समुद्र की शोभा धारण करता है तो कहीं गगनचुम्बी शिखरों के कारण हिमालय की सदृशता धारण करता है। यह भवन-लक्ष्मी का क्रीड़ास्थल, साम्राज्य का महान् प्रतीक, कीर्ति का उत्पत्तिगृह, क्षितिवधू का विश्रामधाम, लक्ष्मी का विलासदर्पण, राज्य की अधिष्ठात्री देवी का कुलगृह तथा वाग्देवता का क्रीड़ास्थान प्रतीत होता है (पृ० ३५२-५३)।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन में सोमदेव ने जो अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं, उनमें पुरंदरागार, चित्रभानुभवन, धर्मधाम, पुण्यजनावास, प्रचेत:पस्त्य, वातोदवसित, धनदधिष्ण्य, ब्रघ्नसौध, चन्द्रमन्दिर, हरिगेह, नागेशनिवास, तण्डु-भवन इत्यादि की जानकारी विशेष महत्त्व की है। सूर्यमन्दिर, अग्निमन्दिर आदि बनाने की परम्परा प्राचीन काल से थी। इनके भग्नावशेष या उल्लेख आज भी मिलते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केवल सोमदेव के उल्लेखों के आधार पर यद्यपि यह कहना कठिन है कि दशमी शती में उपर्युक्त सभी प्रकार के मन्दिर विद्यमान थे, तो भी इतनी जानकारी तो मिलती ही है कि प्राचीन काल में इन सभी के मंदिर निर्माण की परम्परा रही होगी।

इसी प्रसंग में प्रासाद या भवन के लिए आये पुर, आगार, भवन, धाम, आवास, पस्त्य, उद्वसित, धिष्ण्य, शरण, सौध, मन्दिर, गेह और निवास शब्द भी महत्त्वपूर्ण हैं। भवन या मन्दिर के लिए इतने शब्दों का प्रयोग अन्यत्र एक साथ नहीं मिलता।

त्रिभुवनतिलक या इसी प्रकार के नामों की परम्परा भी प्राचीन है। भोज ने चोदह प्रकार के भवनों का उल्लेख किया है, उनमें एक भुवनतिलक भी है।

आस्थानमण्डप

सोमदेव ने यशोधर के लक्ष्मीनिवासतामरस नामक आस्थानमण्डप का विस्तृत वर्णन किया है। भोज ने भी (अ० ३०) लक्ष्मीविलास नामक भवन का उल्लेख किया है। गुजरात के बड़ौदा आदि स्थानों में विलास नामान्तक भवनों की परम्परा अभी तक प्रचलित है।

आस्थानमण्डप राजभवन का वह भाग कहलाता था, जिसमें बैठ कर राजा राज्य कार्य देखते थे।[३१] इसे मुगलकाल में दरबारे आम कहा जाता था। आस्थानमण्डप राजा के निवासस्थान से पृथक् होता था। प्रातःकालीन दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो यशोधर ने आस्थानमंडप की ओर प्रयाण किया। सबसे पहले उन्हें गजशाला या हाथीखाना मिला। उसमें बड़े-बड़े दिग्गज हाथी गोलाकार बँधे थे। उनके अरुण माणिक्यों से मढ़े गजदन्तों में पड़ रही परछाईं से उनके कुंभस्थलों की सिन्दूर शोभा द्विगुणित हो रही थी। और गण्डस्थलों से झरते मद के सौरभ से भ्रमरियों के झुण्ड के झुण्ड खिचे आते थे जिनसे आकाश नीला-नीला हो रहा था (पृ० ३६७)।

गजशाला के बाद यशोधर ने अश्वशाला या घुड़सार देखो। घुड़सार में यहाँ-वहाँ कई पंक्तियों में घोड़े बँधे थे। उनको नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका आदि वस्त्रों की जीनें पहनायी गयी थीं। घास के हर कौर के साथ उनके मुख-प्रकीर्णक हिल-हिल कर उनकी आँखों के कोने चूम रहे थे। अपने

---

३१. सर्वेषामाश्रमिणामितरव्यवहारविश्रामिणां च कार्याण्यपश्यम्। —पृ० ३७३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दायें पैरों की टाप से वे बार-बार धरती खोद रहे थे मानो अपनी विजय परम्पराओं का प्रतिपादन कर रहे हों। उनकी हिनहिनाहट से समीपवर्ती सौधों के उत्संग गूँज रहे थे (पृ० ३६८)।

राजभवन के निकट ही गज तथा अश्वशाला बनाने की परम्परा प्राचीन थी। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रातःकाल गज व अश्वदर्शन राजा के लिए मांगलिक माना जाता था। गजवर्णन के प्रसंग में स्वयं सोमदेव ने लिखा है कि जो राजा प्रातःकाल गजपूजन-दर्शन करता है वह रण में कीर्तिशाली तो होता ही है, निःसन्देह सार्वभौम भी होता है। प्रसन्नवदन गज का उषाकाल में दर्शन करने से दुःस्वप्न, दुष्टग्रह तथा दुष्टचेष्टा का नाश होता है (पृ० ३००)।

राजभवन के निकट गज और अश्वशाला फतेहपुर सीकरी के प्राचीन महलों में आज भी देखी जाती है।

आस्थानमण्डप कालागुरु की सुगन्धित धूप से महक रहा था। फड़फड़ाती ढेरों पताकाएँ आकाश-सागर में हंसमाला-सी लगती थीं। उच्च प्रासाद-शिखर पर माणिक्य जटित कलशों से कान्ति निकल रही थी। फल, फूल और पल्लव युक्त वन्दनवारों के बीच-बीच में कीर-कामिनियाँ बैठी थीं। बीच-बीच में तार हार लटकाये गये थे। स्फटिक के कुट्टिमतल पर गाढ़ी केशर का छिड़काव किया गया था। कर्पूरधूलि से रंगोली बनायी गयी थी। मरकतमणि की बनी वितर्दिका पर कमल, मालती, वकुल, तिलक, मल्लिका, अशोक आदि के अधखिले फूलों के उपहार चढ़ाये गये थे। उदीर्ण मणिस्तम्भिका पर सिंहासन सजाया गया था जो कल्पवृक्ष से वेष्ठित सुमेरुशिखर-सा लगता था। दोनों पार्श्वों में उज्ज्वल चमर ढोरे जा रहे थे। ऊपर सफेद दुकूल का वितान था। दीवारों में नीचे से ऊपर तक रत्नफलक जड़े थे, जिनमें उपासना के लिए आये सामन्तों के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे।

विविध प्रकार के मणियों से बनी विभिन्न प्रकार की आकृतियों को देख कर डरे हुए भूपालबालक (राजकुमार) कंचुकियों को परेशान कर रहे थे। लगता था जैसे इन्द्र की सभा हो। याष्टीक सैनिक निकटवर्ती सेवकों को डाँट-डपट कर निर्देश दे रहे थे : अपनी पोशाक ठीक करो, धन और जवानी के जोश में बको मत, बिना अनुमति किसी को घुसने न दो, अपनी-अपनी जगह सँभल कर रहो, भीड़ मत लगाओ, आपस में फिजूल की बकवास मत करो, मन को न डुलाओ, इन्द्रियों को काबू में रखो, एकटक महाराज की ओर देखो कि महाराज क्या पूछते हैं, क्या कहते हैं, क्या आदेश देते हैं, क्या नयी बात कहते हैं (३७१-७२)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरस्वतीविलासकमलाकर

महाराज यशोधर ने रात्रि को जिस प्रासाद में शयन किया उसे सोमदेव ने सरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमन्दिर कहा है।[३२] सोमदेव ने इसका विस्तृत वर्णन नहीं किया है। सम्भवतया यह त्रिभुवनतिलक नामक प्रासाद का ही एक भाग था।

दिग्वलयविलोकविलास

दिग्वलयविलोकविलास नामक भवन क्रीड़ा पर्वत की तलहटी में बनाया गया था।[३३] सम्राट् इस भवन में बैठ कर प्रथम वर्षा का आनन्द लेते थे। परिवार से घिरे[३४] महाराज यशोधर जब सेवा में आये सामन्त समाज के साथ[३५] वर्षा ऋतु की शोभा का आनन्द ले रहे थे[३६] तभी संधिविग्रही ने आकर सूचना दी कि पांचाल नरेश का दुकूल नामक दूत आया है, प्रतिहार भूमि में बैठा है (५४९)। इस प्रसंग में प्रासाद का तो विशेष वर्णन नहीं है किन्तु वर्षा ऋतु तथा राजनीति सम्बन्धी विवेचन है।

करिविनोदविलोकनदोहद

करिविनोदविलोकनदोहद नामक प्रासाद प्रधावधरणि (गजशिक्षाभूमि) में बनाया गया था, जिसमें गजविशेषज्ञ आचार्यों के साथ बैठ कर महाराज गजकेलि देखते थे।[३७] इस प्रसंग में सोमदेव ने प्रासाद का तो विशेष वर्णन नहीं किया किन्तु गजशास्त्र विषयक महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है जिसका अन्यत्र विवेचन किया गया है। आजकल जिस प्रकार स्पोर्ट्‌स स्टेडियम बनाये जाते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में करिविनोदविलोकनदोहद आदि भवनों का निर्माण किया जाता था।

मनसिजविलासहंसनिवासतामरस

अन्तःपुर या रनिवास को सोमदेव ने मनसिजविलासहंसनिवासतामरस

---

३२. सरस्वतीविलासकमलाकरराजमन्दिरम्। — ३५६

३३. क्रीडाचलमेखलानिलयिनि दिग्वलयविलोकविलासनाम्नि धाम्नि। —पृ० ५४८

३४ प्रवीरपरिषदपरिवारितः। — वही

३५. समं सेवासमागतसमस्तसामन्तसमाजेन। — वही

३६. वर्षतुश्रियं यावदहमनुभवन्। — वही

३७. प्रधावधरणिषु करिविनोदविलोकनदोहदं प्रासादमध्यास्य प्रभिन्नकरिकेलीरदर्शम्। — पृ० ५०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम दिया है। यह वासभवन सतखण्डा महल का सबसे ऊपरी भाग था।[३८] यशोधर अधिरोहिणी (सीढ़ियों) से चढ़ कर वहाँ गया। सोमदेव का यह उल्लेख विशेष महत्त्व का है। इससे ज्ञात होता है कि दशमी शताब्दी में इतने ऊँचे-ऊँचे प्रासादों की रचना होने लगी थी। ग्वालियर जिले के चन्देरी नामक स्थान के खण्डित कुषक महल की पहचान सात खण्ड के प्रासाद से की जाती है। मालवा के मुहम्मद शाह ने १४४५ में इसके बनाने की आज्ञा दी थी। वर्तमान में इसके केवल चार खण्ड शेष रहे हैं।[३९] सोमदेव ने एक स्थान पर और भी सप्ततल प्रासाद का उल्लेख किया है।[४०] यशोधर सभा विसर्जित करके चल कर (चरणमार्गेणैव, २३) महादेवी के वासभवन में गया था। प्रतिहार-पालिका ने द्वार पर क्षण भर के लिए यह कह कर रोक लिया कि अन्य स्त्री-जनासक्ति जान कर महादेवी कुपित हैं। सम्राट् ने अपना प्रणयकोप जाहिर किया तब कहीं उसने रास्ता दिया। हँस कर देहली छोड़ दी[४१] और कक्षान्तरों को पार कराती भवन में ले गयी।

इस वासभवन की सुनहरी दीवारों पर यक्षकर्दम का लेप किया गया था और कर्पूर से दन्तुरित किया गया था।[४२] रजत वातायनों पर कस्तूरी का लेप किया गया था, जिससे झरोखे से आने वाली हवा सुगन्धित होकर आ रही थी।[४३] स्फटिक की देहली को गाढ़े स्यन्दरस से साफ किया था।[४४] कुंकुम रंगे मरकत-पराग से फर्श (तलभाग) पर तह देकर अधखिले मालती के फूलों से रंगोली बनायी गयी थी।[४५] कालागुरु चन्दन की धूप निरन्तर जल रही थी, जिसके धुएँ से वितान पर्यन्त लटकती मुक्तामालाएँ धूसरित हो गयी थीं।[४६] कूर्चस्थान पर फूलों के गुलदस्ते रखे थे।[४७] संचरणशील हेमकन्यका के कन्धे पर ताम्बूल-

---

३८. सप्ततलप्रासादोपरितनभागवर्तिनि। – पृ० २९ उत्त०
३९. इंडियन आर्चिटेक्चर, भाग २, पृ० ६५
४०. सप्ततलागाराग्रिमभूमिभागिनि जिनसद्मनि। –पृ० ३०२, उत्त०
४१. सपरिहासं समुत्सृष्टग्रहावग्रहणी। –पृ० २७, वही
४२. यक्षकर्दमखचितकर्पूरदलदन्तुरितजातरूपभित्तिनि। –पृ० २८
४३. मृगमदशकलोपलिप्तरजतवातायनविवरविहरमाणसमीरसुरभिते। –वही
४४. सान्द्रस्यन्दसंमार्जितामलकदेहलीशिरसि। –वही
४५. घुसृणरसारुषितमरकतपरागपरिकल्पितभूमितलभागे मनाङ्मोदमानमालतीमुकुल-विरचितरंगवलिनि। –वही
४६. अनवरतदह्यमानकालगुरुधूपधूमधूसरितवितानपर्यन्तमुक्ताफलमाले। –वही
४७. कूर्चस्थानविनिवेशितप्रसूनसमूह। -पृ० २९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कपिलिका रखी थी ।[४८] तुहिनतरु के बने वलीकों पर उपकरण टाँगे गये थे ।[४९] मणि के पिंजड़े में शुक-सारिका बैठी कामकथा में लीन थी ।[५०]

उपर्युक्त वर्णन में आये कूर्चस्थान, संचारिमहेमकन्यका, तथा वलीक आदि शब्द विशेष महत्त्व के हैं। कूर्चस्थान का अर्थ श्रुतसागर ने संभोगोपकरणस्थापन-प्रदेश किया है। संचारिमहेमकन्यका के विषय में यन्त्रशिल्प प्रकरण में विचार किया गया है। इस प्रकार की यान्त्रिक पुत्तलिकाओं के निर्माण की परम्परा सोमदेव के पूर्व से चली आ रही थी और बाद तक चलती रही। वलीक शब्द का अर्थ श्रुतसागर ने पट्टिका किया है। यह अर्थ पर्याप्त नहीं है। वृक्षों पर उपकरण टाँगने की परम्परा का उल्लेख कालिदास ने भी किया है। जब शकुन्तला पतिगृह को जाने लगी तब वृक्षों ने उसे समस्त आभूषण दिये (शाकुन्तल, अ० ४)। सम्भवतया सोमदेव का उल्लेख इसी ओर संकेत करता है। कर्पूरवृक्ष के वलीक बनाये गये थे, जिनमें बीच-बीच में पुष्पमालाएँ टँगी थीं और उपकरण टँगे थे ।[५१]

दीर्घिका

दीर्घिका का उल्लेख यशस्तिलक में कई बार हुआ है। दो स्थानों पर विशेष वर्णन भी है: जलक्रीड़ा के प्रसंग में प्रथम आश्वास में और यन्त्रधारागृह के वर्णन में तृतीय आश्वास में।

दीर्घिका प्राचीन प्रासाद-शिल्प का एक पारिभाषिक शब्द था। यह एक प्रकार की लम्बी नहर होती थी जो राजप्रासादों में एक ओर से दूसरी ओर दौड़ती हुई अन्त में प्रमदवन या गृहोद्यान को सींचती थी। बीच-बीच में जल के प्रवाह को रोक कर पुष्करणी, गन्धोदककूप, क्रीड़ावापी इत्यादि बना लिये जाते थे। कहीं जल को अदृश्य करके आगे विविध प्रकार के पशु-पक्षियों के मुँह से पानी झरता हुआ दिखाते थे। लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका पड़ा। सोमदेव ने यशोधर के महल की दीर्घिका का विस्तृत वर्णन किया है। इसका तलभाग

---

४८. संचारिमहेमकन्यकासोत्तसितमुखवासताम्बूलकपिलिके ।—वही

४९. तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्त ।—वही

५०. मणिपिंजरोपविष्टशुकसारिका ।—वही

५१. तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्तकुसुमस्रक्सौरभाधिवास्यमानसुरतावसानिकोपकरणवस्तुनि ।—पृ० २९ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मरकत मणि का बना था।[५२] भित्तियाँ स्फटिक की थीं।[५३] सीढ़ियाँ स्वर्ण की बनायी गयी थीं।[५४] तटप्रदेश मुक्ताफल के बने थे।[५५] जल को कहीं हाथी, मकर इत्यादि के मुँह से झरता हुआ दिखाया गया था।[५६] जल तरंगों पर कर्पूर का छिड़काव किया गया था।[५७] किनारों पर चन्दन का लेप किया गया था, जिससे लगता था मानो क्षीर-सागर का फेन उसके किनारे पर जम गया है।[५८] आगे जल के प्रवाह को रोक कर पुष्करणी बनायी गयी थी, जिसमें कमल खिले थे।[५९] उसके आगे गंधोदक कूप बनाया गया था जिसमें कस्तूरी और केसर से सुवासित शीतल जल भरा था।[६०] कुछ आगे जल को मृणाल की तरह एकदम पतली धारा के रूप में बहता दिखाया गया था।[६१]

आगे यान्त्रिक शिल्प के विविध उपादान—यन्त्रवृक्ष, यन्त्रपक्षी, यन्त्रपशु, यन्त्रपुत्तलिका आदि बने थे जिनसे तरह-तरह से पानी झरता हुआ दिखाया गया था।[६२] यन्त्रशिल्प प्रकरण में इनका विशेष विवरण दिया गया है।

अन्त में दीर्घिका प्रमदवन में पहुँची थी जहाँ विविध प्रकार के कोमल पत्तों और पुष्पों से पल्लव और प्रसूनशय्या बनायी गयी थी।[६३]

सोमदेव के इस वर्णन की तुलना प्राचीन साहित्य और पुरातत्त्व की सामग्री से करने पर ज्ञात होता है कि दीर्घिका निर्माण की परम्परा भारतवर्ष में प्राचीन काल से लेकर मुगलकाल तक चली आयी। प्राचीन साहित्य में इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं। कालिदास ने रघुवंश में (१६।१३) दीर्घिका का वर्णन किया है। बाणभट्ट ने हर्ष के राजमहल के वर्णन में हर्षचरित में और कादम्बरी में

---

५२. मरकतमणिविनिर्मितमूलासु। –पृ० ३८ पू०
५३. कंकेलकोपलसम्पादितभित्तिभंगिकासु। –वही
५४. कांचनोपचितसोपानपरम्परासु। –वही
५५. मुक्ताफलपुलिनपेशलपर्यन्तासु। –वही
५६. करिमकरमुखमुच्यमानवारिभरिताभोगासु। –वही ३९
५७. कर्पूरपारीदन्तुरिततरंगसंगमासु।–वही
५८. दुग्धोदधिवेलास्विव चन्दनधवलासु।–वही
५९. वनस्थलीष्विव सकमलासु।–वही
६०. मृगमदामोदमेदुरमध्यासु सकेसरासु। –वही
६१. विरहिणीशरीरयष्टिष्विव मृणालवलयनीषु। –वही
६२. विविधयन्त्रश्लाघनीषु।–वही
६३. विचित्रपल्लवप्रसूनफलस्फारार्घिकासु।–वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीर्घिका का विस्तृत वर्णन किया है। डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस सामग्री का विस्तार से विवेचन किया है।[६४]

मुगलकालीन राजप्रासादों में जो दीर्घिका बनायी जाती थी, उसका उर्दू नाम नहरे विहिश्त था। हारू रशीद के महल में इस प्रकार की नहर का उल्लेख आता है। देहली के लाल किले के मुगल महलों की नहरे विहिश्त प्रसिद्ध है।

वस्तुतः प्राचीन राजकुलों के गृह-वास्तु की यह विशेषता मध्यकाल में भी जारी रही। विद्यापति ने कीर्तिलता में प्रासाद का वर्णन करते हुए क्रीड़ाशैल, धारागृह, प्रमदवन तथा पुष्पवाटिका के साथ कृत्रिमनदी का भी उल्लेख किया है। यह भवन-दीर्घिका का ही एक रूप था।[६५]

दीर्घिका का निर्माण केवल भारतवर्ष में ही नहीं पाया जाता, प्रत्युत प्राचीन राजप्रासादों की वास्तुकला की यह ऐसी विशेषता थी जो अन्यत्र भी पायी जाती है। ईरान में खुसरू परवेज़ के महल में भी इस प्रकार की नहर थी। कोहे विहिस्तून से कसरे शीरीं नामक नहर लाकर उसमें पानी के लिए मिलायी गयी थी। ट्यूडर राजा हेनरी अष्टम के हेम्टन कोर्ट राज प्रासाद में इसे लांग वाटर कहा गया है। यह दीर्घिका के अति निकट है।

प्रमदवन

यशस्तिलक में प्रमदवन का दो प्रसंगों में वर्णन है – मारिदत्त युवतियों के साथ प्रमदवन में रमण करता था (३७–३८)। सम्राट् यशोधर ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्नका समय मदनमदविनोद नामक प्रमदवन में बिताता था (५२२–३८)।

प्रमदवन राजप्रासाद का महत्त्वपूर्ण अंग होता था। यह प्रासाद से सटा हुआ बनता था। इसमें क्रीड़ाविनोद के पर्याप्त साधन रहते थे। अवकाश के क्षणों में राज्य-परिवार के सदस्य इसमें मनोविनोद करते थे। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

प्रमदवन के अनेक महत्त्वपूर्ण अंग थे – उद्यान-तोरण, क्रीड़ाकृतकील, खातवलय, जलकेलिवापिका, कुल्योपकण्ठ, मकरध्वजाराधनवेदिका, वनदेवताभवन, कदलीकानन, विहारधरा, सरित्सारणी, छायामण्डप तथा यन्त्रधारागृह। यन्त्र-धारागृह के विन्यास का विस्तृत वर्णन है।

■

६४. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६
कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७१

६५. कीर्तिलता, पृ० १३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन्त्रशिल्प

यशस्तिलक में अनेक प्रकार के यान्त्रिक उपादानों का उल्लेख है। उनमें से अधिकांश यन्त्रधारागृह के प्रसंग में आये हैं तथा कुछ अन्य प्रसंगों पर। यन्त्रधारागृह के प्रसंग में यन्त्रमेघ, यन्त्रपक्षी, यन्त्रपशु, यन्त्रव्याल, यन्त्र-पुत्तलिका, यन्त्रवृक्ष, यन्त्रमानव तथा यन्त्रस्त्री का उल्लेख है। अन्य प्रसंगों में यन्त्रपर्यंक तथा यन्त्रपुत्रिकाओं का उल्लेख है। विशेष वर्णन इस प्रकार है –

यन्त्रजलधर

यन्त्रधारागृह में यन्त्रजलधर या यान्त्रिकमेघ की रचना की गयी थी। उससे झरझर पानी बरस रहा था और स्थलकमलिनी की क्यारी सिंच रही थी।[1]

यन्त्रधारागृह में मायामेघ या यन्त्रजलधर का निर्माण प्राचीन वास्तुकला का एक अभिन्न अंग था। भोज ने शाही घरानों के लिए पाँच प्रकार के वारि-गृहों का विधान किया है, जिनमें प्रवर्षण नाम के एक स्वतन्त्र गृह का उल्लेख है। इस गृह में आठ प्रकार के मेघों की रचना की जाती थी तथा उन मेघों में से हजार-हजार धाराओं के रूप में जल बरसता दिखाया जाता था।[2]

सोमदेव के पूर्व बाणभट्ट ने भी यन्त्रमेघ या मायामेघ का एक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया है – मायामेघ के पीछे से झांकता हुआ रंग-विरंगा चित्रलिखित इन्द्रधनुष, सामने से उड़ती हुई वलाकाओं की पंक्तियाँ और उनके मुखों से निकलती हुई सहस्रों धाराएँ, इन सबकी सम्मिलित छटा ऐसी प्रतीत होती थी मानो आकाश में मेघों की बदलचल हो रही हो।[3]

हेमचन्द्र ने यन्त्रधारागृह में चारों ओर से उठते हुए जलौघ का वर्णन किया

---

१. पर्यन्तयन्त्रजलधरवर्षाभिषिच्यमानस्थलकमलिनीकेदारम्। –सं० पू० ५३०

२. धारागृहमेकं स्यात्प्रवर्षणाख्य ततो द्वितीयं च।
प्रणालं जलमग्नं नद्यावर्तं तथान्यदपि॥
जलदकुलाष्टकयुक्तं पूर्ववदन्यद् गृहं समारचयेत्।
वर्षद्धारानिकरैः प्रवर्षणाख्यं तदाप्नोति॥ –समरांगणसूत्रधार ३१।११७, १४२

३. स्फटिकबलाकावलीवान्तवारिधारालिखितेन्द्रायुधाः संचार्यमाणाः मायामेघमालाः।
उद्धृत – डॉ० अग्रवाल – कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। सम्राट् जब यन्त्रधारागृह में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि चारों ओर से निकल रहे दीर्घ जलप्रवाह से सारा वन-प्रान्त जलमय हो रहा है।[४]

यन्त्रव्याल

यन्त्रधारागृह में यन्त्र जलधर की तरह विविध प्रकार के यन्त्र-व्यालों की भी रचना की गयी थी। इन हिंस्र जन्तुओं के मुँह से वमन होते हुए जल की घरघराहट से भवन-मयूर नाचने लगते थे।[५] विविध व्याल का अर्थ श्रुतदेव ने कृत्रिम गज, सर्प, सिंह, व्याघ्र, चीता आदि किया है।[६] कादम्बरी में चंद्रकान्त के प्रणाल से निकलने वाले निर्झर के शब्द से प्रमुदित होकर शब्द करते हुए मयूरों का वर्णन आया है।[७] भोज ने भी लिखा है कि यन्त्रधारागृह में नृत्य करते हुए मयूरों से मंडित प्रदेश होना चाहिए।[८]

यन्त्रहंस

यन्त्रधारागृह में चन्द्रकान्तमणियों के प्रणालों की रचना की गयी थी। उनसे झरझर पानी निकल रहा था जिससे क्रीड़ा-हंस संतुष्ट हो रहे थे।[९] बाण ने ठीक यही दृश्य कादम्बरी में प्रस्तुत किया है – यन्त्रधारागृह में एक ओर चन्द्रकान्तमणि की टोटी से झरना झरता था और बीच में पुछार मोरों की मिली हुई ग्रीवाओं से निर्मित फव्वारे की जलधाराएँ छूट कर फुहार उत्पन्न करती थीं। शिशिरोपचारों के वर्णन में यन्त्रमय कलहंसों की पंक्ति से जलधार छूटने का भी उल्लेख है (उत्कीलितयन्त्रमयकलहंसपंक्तिमुक्ताम्बुधारेण)।[१०]

यन्त्रगज

यन्त्रधारागृह में यन्त्रगज की रचना की गयी थी। उसकी सूँड से जल-सीकर बरस कर स्त्रियों के अलकजाल पर मुक्ताफल की शोभा उत्पन्न कर रहे

---

४. रेल्लन्ता वणभागा तओ पलोट्टा जवा जलाणोवा।
वामाउ दक्खिणाओ समुद्धतो पच्छिमाहिन्तो॥ –कुमारपालचरित ४।२६
५. विविधव्यालवदनविनिर्गलज्जलधाराध्वनितलयलास्यमानभवनांगणबर्हिणम्।-वही, ५३०
६. विविधा नानाप्रकारा ये व्यालाः कृत्रिमगजसर्पसिंहव्याघ्रचित्रकादयः। –सं० टी०
७. शशिमणिप्रणालनिर्झरप्रमोदमुखरमयूररवरम्ये।
उद्धृत, डॉ० अग्रवाल – कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७२
८. नृत्यद्भिः परमगुणैः शिखण्डिभिर्मण्डितोद्देशम्। –समरांगणसूत्रधार ३१।१२७
९. चन्द्रकान्तमयप्रणालविलस्रवत्स्रोतः संतर्प्यमाणविनोदवारलम्। – वरटा हंसिनी, सं० पू० पृ० ५३०
१०. डॉ० अग्रवाल – कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे।[११] बाणभट्ट ने भी कादम्बरी के हिमगृह में स्वर्णकमलिनियों से खेलते हुए करि-कलभों का वर्णन किया है।[१२]

समरांगणसूत्रधार में भोज ने भी यान्त्रिक गजों की रचना का विधान किया है। भोज ने लिखा है कि जलक्रीड़ा करते हुए ऐसे करि-मिथुन की रचना करना चाहिए जो सूँड से परस्पर जल के सीकर उछाल रहे हों तथा सीकरों के आनन्द के कारण जिनके नेत्र मुद्रित हो गये हों।[१३]

यन्त्रमकर

यन्त्रधारागृह में यन्त्रमकरों की रचना की गयी थी। इनके मुँह से निकलने वाले झरनों के फुहार उड़कर कामिनियों के स्तन-कलशों पर पड़ते थे जिससे उनका चन्दनलेप आर्द्र बना हुआ था।[१४]

भोज ने लिखा है कि कृत्रिम शफरी, मकरी तथा अन्य जलपक्षियों से युक्त कमलवापी बनाना चाहिए।[१५]

हेमचन्द्र ने यन्त्रधारागृह में वेदी पर बने हुए मकरमुखों से पानी निकलने का वर्णन किया है।[१६] स्वयं सोमदेव ने एक अन्य प्रसंग में मकरमुखी प्रणालों का उल्लेख किया है (करिमकरमुखमुच्यमानवारिभरिताभोगासु, सं० पू० ३९)। प्राचीन वास्तुशिल्प में मकरमुखी प्रणालों का खूब चलन था। बाण ने प्रदोष के वर्णन में मकरमुखी प्रणाल का उल्लेख किया है।[१७] सारनाथ के संग्रहालय में इस तरह का एक मकरमुखी प्रणाल सुरक्षित है।[१८]

---

११. करटिकरविकीर्यमाणसीकरासारसूत्रितांगनालकमुक्ताफलाभरणम्।
— सं० पू० पृ० ५३०

१२ क्वचित् क्रीडितकृत्रिमकरिकलभयूथकाकुलीक्रियमाणाः कांचनकमलिनिकाः।
—कादम्बरी ११६, उद्धृत—डॉ० अग्रवाल—कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७३

१३. कार्याण्यस्मिन् करिणां मिथुनान्यभितोऽम्बुकेलियुक्तानि।
अन्योन्यपुष्करोज्झितसीकरमयपिहितनयनानि ॥ —समरांगणसूत्रधार ३१।१३४

१४. मकरमुखमुक्तनिर्झरनीहारोल्लास्यमानकामिनीकुचकुम्भचन्दनस्थासकम्।
—सं० पू० पृ० ५३०

१५. कृत्रिमशफरीमकरोपक्षिभिरपि चाम्बुसम्भवैर्युक्ताम्।
कुर्यादम्भोजवतीं वापीमाहार्ययोगेन ॥ —समरांगणसूत्रधार ३१।१६३

१६. वेइअ-मयर-मुहाहिअ आ-मूल-सिरं च फलिह-थम्भाओ।
वारोत्तरगयाओं नीहरिया वारि-धाराओ ॥ —कुमारपालचरित ४।२७

१७. अग्रवाल – हर्षचरित, पृ० १७

१८. वही, पृ० १७, फलक १, चित्र ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन्त्रवानर

यन्त्रधारागृह में एक ओर लतागृह में यन्त्रवानरों की रचना की गयी थी। उनके मुँह से पानी निकल रहा था, जिससे अभिमानिनी स्त्रियों के कपोलों की तिलकपत्र रचना धुली जा रही थी।[१९] भोज ने भी हिमगृह में वानरमिथुन की रचना करने का विधान बताया है।[२०]

यन्त्रदेवता

यन्त्रधारागृह में विविध प्रकार के यान्त्रिक जलदेवताओं की रचना की गयी थी। उनका विन्यास इस तरह किया गया था, जिससे वे जलकेलि में परस्पर झगड़ते हुए से प्रतीत होते थे। वहीं पास में कलहप्रिय नारद की हर्षोन्मत्त अवस्था का यन्त्र था। निकट ही मरीचि आदि सप्तर्षियों की यान्त्रिक पुत्तलिकाएँ थीं। उनके मुँह से निविड़ नीरप्रवाह निकल रहा था और विलासिनी स्त्रियों की जंघाओं से टकरा रहा था। सोमदेव ने इस समूचे दृश्य को कल्पना के निम्नलिखित धागे में पिरोया है —

'जलकेलि करते-करते जलदेवता आपस में झगड़ने लगे। कलह देख कर आनन्दित होने के स्वभाव के कारण नारद उस झगड़े को देख कर हर्षोन्मत्त हो नाचने लगे और उस नृत्य को देख कर सप्तर्षियों की मण्डली इतनी खुश हुई कि हंसी में मुँह से फेन के फव्वारे फूट पड़े और कामिनियों की जाँघों से आकर लगे।'[२१]

यन्त्रवृक्ष

यन्त्रधारागृह में यन्त्रवृक्ष की रचना की गयी थी। उसके स्कन्ध पर बनी हुई देवियाँ हाथों से जल उछाल रही थीं। यह जल वल्लभाओं के अवतंस किसलयों से आकर टकराता था, जिससे उनमें ताजगी बनी हुई थी।[२२] भोज ने भी यन्त्रवृक्षों का विधान बताया है।[२३]

---

१९. विलासवल्लरीवनवानराननोद्गीर्णपानीयापनीयमानमानिनीकपोलतलतिलकपत्रम्। —सं० पू० ५३०

२०. मिथुनैश्च वानराणां जम्पकनिवहैश्चानेकविधैः। —समरांगणसूत्रधार ३१।१४६

२१. तुमुलजलकेलिकलहावलोकनोन्मदनारदोत्तालताण्डवाडम्बरितशिखण्डिमण्डली - निष्ठ्यूतनिविडनीरप्रवाहविडम्ब्यमानविलासिनीजघनम्। —सं० पू० ५३०

२२. कृतकनाकानोकहस्कन्धासीनसुरसुन्दरीहस्तोदस्तोदकाप्याद्यमानवल्लभावतंसकिस - लयाश्वासम्। —सं० पू० ५३१

२३. कल्पतरुभिर्विचित्रैः। —समरांगणसूत्रधार, ३१।१२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन्त्रपुत्तलिकाएँ

यन्त्रधारागृह में यान्त्रिक पुत्तलिकाओं का विन्यास किया गया था। ये पुत्तलिकाएँ दो प्रकार की थीं – (१) पवनकन्यकाएँ, (२) मेघपुरन्ध्रियाँ।

पवनकन्यकाएँ चमर ढोर रही थीं, जिससे उत्पन्न हुए मन्द-मन्द पवन द्वारा संभोगक्रीड़ा से थकी हुई सीमन्तिनियों का मन आनन्दित हो रहा था।[२४]

मेघपुत्तलिकाओं का विन्यास यन्त्रधारागृह में यहाँ-वहाँ कई स्थानों पर किया गया था। उनके स्तनरूप कलशों से पानी झरता था, जिसमें स्नान किया जा सकता था।[२५]

यन्त्रधारागृह के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों पर भी यान्त्रिक पुत्तलिकाओं के उल्लेख आये हैं। महादेवी अमृतमती के पलंग के समीप व्यजनपुत्रिकाएँ बनी थीं। ये पुत्रिकाएँ पंखा झलती रहती थीं।[२६] उज्जयिनी के वर्णन के प्रसंग में भी व्यजनपुत्रिकाओं का उल्लेख है। शिप्रा का शीतल पवन पंखा झलने वाली पुत्तलिकाओं को व्यर्थ बना देता था।[२७] ताम्बूलवाहिनी पुत्रिका का भी एक प्रसंग में उल्लेख आया है।[२८]

भोजदेव ने अनेक प्रकार की यान्त्रिक पुत्तलिकाओं का विधान बताया है। ये पुत्तलिकाएँ हस्तावलम्बन, ताम्बूलप्रदान, जलसेचन, प्रणाम, दर्पण दिखाना, वीणा बजाना आदि कार्य करती थीं।[२९]

यन्त्रस्त्री

यन्त्रधारागृह का सबसे बड़ा आकर्षण वहाँ की यन्त्रस्त्री थी, जिसके दोनों हाथ छूने पर नखाग्रों से, स्तन छूने पर दोनों चूचुकों से, कपोल छूने पर दोनों नेत्रों से, सिर छूने पर दोनों कर्णावतंसों से, कटि छूने पर करधनी की डोरियों से तथा त्रिवली छूने पर नाभि से चन्दनचर्चित जल की शीतल धाराएँ फूट पड़ती थीं –

---

२४. पवनकन्यकोड्डमरचामरानिलविनोद्यमानसुरतश्रान्तसीमन्तिनीमानसम्।
—सं० पू० ५३१

२५. पयोधरपुरंध्रिकास्तनकलशविधीयमानमज्जनावसरम्। –वही ५३१

२६. उपान्तयन्त्रपुत्रिकोत्क्षिप्यमानव्यजनपवनापनीयमानसुरतश्रमः। –पृ० ३७ उत्त०

२७. वृथा रतिपु. पोराणां यन्त्रव्यजनपुत्रिका। –सं० पू० २०५

२८. संचारिमहेमकन्यकासोत्तंसितमुखवासताम्बूलकपिलिके। –२६ उत्त०

२९. करग्रहणताम्बूलप्रदानजलसेचनप्रणामादि।
आदर्शप्रतिलोकनवीणावाद्यादि च करोति॥ – समरांगणसूत्रधार ३१।१०४

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हस्ते स्पृष्टा नखान्तैः कुचकलशतटे चूचुकप्रक्रमेण,
वक्त्रे नेत्रान्तराभ्यां शिरसि कुवलयेनावतंसार्पितेन ।
श्रोण्यां कांचीगुणाग्रैस्त्रिवलिषु च पुनर्नाभिरन्ध्रेण धीरा,
यन्त्रस्त्री यत्र चित्रं विकिरति शिशिराश्चन्दनस्यन्दधाराः ॥

—सं० पू० ५३१, ५३२

भोज ने भी इस वर्णन के बिलकुल तद्रूप ही यन्त्रस्त्री के निर्माण किये जाने का वर्णन किया है ।[30]

भोज के करीब एक सौ वर्ष बाद हेमचन्द्र ने भी ठीक इसी तरह के यंत्रों का वर्णन किया है । कुमारपाल के यन्त्रधारागृह में शालभंजिकाओं के विभिन्न अंगों से झरता हुआ पानी दिखाया गया था । सोमदेव के वर्णन के समान इन शाल-भंजिकाओं के भी दोनों कानों से, मुँह से, दोनों हाथों से, दोनों चरणों से, दोनों कुचों से तथा उदर से, इस तरह दस अंगों से पानी निकलता था ।[31] सोमदेव ने दस स्थानों में पैरों की गणना नहीं की उसके बदले दोनों आँखों की गणना की है । हेमचन्द्र ने आँखों की गणना नहीं की, बल्कि पैरों की गणना की है ।

एक ही यन्त्र के दस स्थानों से झरता हुआ पानी अत्यन्त मनोज्ञ दृश्य प्रस्तुत करता होगा । सोमदेव ने तो उसकी यान्त्रिकता की विशेषता बता कर उस शिल्पी की ओर भी ध्यान खींचा है जिसने इस उत्कृष्ट शिल्प की रचना की थी ।

यन्त्रपर्यंक

अमृतमति महादेवी के भवन में आकर यशोधर जिस पलंग पर सोया उसका यान्त्रिक विधान इतना सुन्दर था कि मन्दाकिनी प्रवाह की तरह उच्छ्वास मात्र से तरलित हो उठता था ।[32] भोजदेव ने ऐसी शय्या का विधान बताया है जो निःश्वास के साथ ऊपर उठ जाये और आश्वास के साथ नीचे आ जाये ।[33]

---

३०. स्तनयोर्युगेन सृजती जलधारे तत्र कापि कार्या स्त्री ।
आनन्दाश्रुलवानिव सलिलकणान् पक्ष्मभिः काचित् ॥
नाभिह्रदनदिकामिव विनिर्गतां कापि बिभ्रतीं धाराम् ।
काप्यंगुलीनखांशुभिरिव योषित् सिंचती कार्या ॥
—समरांगणसूत्रधार, ३१।१३६, १३७

३१. पंचालिआहि मुक्कं कन्नेसुन्तो जलं मुहासुन्तो ।
हत्थेहिंतो चरणाहिंतो वच्छाहि उअरेहि ॥ —कुमारपालचरित ४।२८

३२. मन्दाकिनिप्रवाहमुच्छ्वसितमात्रेणापि तरलतरान्तरालविहितसुखसंवेशम् यन्त्र-सुन्दरम् । —उत्तरार्ध, ३१

३३. निःश्वासेन वियद्याति श्वा ति मेदिनीम् । —समरांगणसूत्रधार ३१।६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार यशस्तिलक में वर्णित यन्त्रशिल्प के उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से प्राचीन वास्तुशिल्प का रमणीय दृश्य प्रस्तुत हो जाता है। बाण की साक्षी से यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भारतीय वास्तुशिल्प में इस तरह का यान्त्रिक विधान छठी-सातवीं शती से प्रारम्भ हो गया था। हेमचन्द्र के विवरण से बारहवीं शती तक इसके स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

वारियन्त्रों के विषय में भोज ने कहा है कि इनके निर्माण करने के दो उद्देश्य होते हैं—एक तो क्रीड़ा निमित्त, दूसरे कार्य सिद्धयर्थ।[३४] अन्य यन्त्रों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

यन्त्रधारागृह में वारियन्त्रों से विभिन्न रूपों में जल झरते हुए दिखाकर मनोरंजन के विविध उपादान उपस्थित किये जाते थे। इन वारियन्त्रों में जल पहुँचाने का एक विशेष प्रकार था। प्राचीन राजप्रासादों में बहते हुए जल की एक कृत्रिम नदी होती थी, जिसे संस्कृत साहित्य में दीर्घिका कहा गया है। दीर्घिका में या तो किसी पर्वतीय नदी आदि से जल का प्रबन्ध किया जाता था अथवा प्रायः राजभवन के ही एक भाग में जल को ऊपर किसी स्थान में संगृहीत कर लिया जाता था।[३५] यही जल जब वारियन्त्रों में छोड़ा जाता था तो ऊपरी दबाव के कारण तेजी से निकलता था।

■

३४. क्रीडार्थं कार्यसिद्ध्यर्थम्- समरांगणसूत्रधार ३१।१०९

३५. अग्रवाल—कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय चार

यशस्तिलककालीन भूगोल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनपद

यशस्तिलक में सैंतालिस जनपदों का उल्लेख है। विशेष जानकारी इस प्रकार है—

१. अवन्ति

यशस्तिलक में अवन्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है।[१] अवन्ति मालव का प्राचीन नाम था, इसकी राजधानी उज्जैन थी। सोमदेव ने अवन्ति को स्वर्ग का उपहास करनेवाली[२] तथा समस्त लोगों की अभिलषित वस्तुओं का भाण्डार होने से सुर-पादपों (कल्पवृक्षों) के अहंकार का तिरस्कार करनेवाली कहा है।[3]

अवन्ति जनपद में स्थान-स्थान पर दान-शालाएँ,[४] प्रपा और तालाब,[५] बगीचे तथा धर्मशालाएँ[६] बनी थीं। वहाँ के लोग विशेष अतिथि-प्रिय थे।[७]

२. अंग

यशस्तिलक में अंग मण्डल का दो बार उल्लेख हुआ है। एक विभिन्न देशों से आये हुए दूतों के प्रसंग में,[८] दूसरा छठे उच्छ्वास की आठवीं कथा में।[९] इनके अनुसार अंग देश की राजधानी चम्पा थी। वहाँ वसुवर्धन नामक राजा राज्य करता था।[१०] उसकी लक्ष्मीमति रानी थी।[११] प्राचीन भारत में, वर्तमान बिहार प्रान्त के भागलपुर, मुंगेर आदि जिलों का प्रदेश अंग कहलाता था।

---

१. पृ० १९६ से २०४
२. प्रहसितवसुवसतिकान्तयः ।—वही
३. निखिललोकाभिलाषविलासिवस्तुसंपत्तिनिरस्तसुरपादपमदो जनपदः। —वही
४. संपादितसत्रमैत्रीमनोभिः। — पृ० १९९
५. प्रपानिवेशैः सरः प्रदेशैः। — पृ० २००
६. वसतिसंतानैर्लताप्रतानैः ।— पृ० २०१
७. कृतकृतार्थातिथयः। — पृ० २०१, नित्यं कृतातिथेयेन धेनुकेन सुधारसैः। —पृ० १९८
८. अन्यैश्चांगकलिंग। — पृ० ४६९ सं० पू०
९. अंगमण्डलेषु—चम्पायां पुरि। — पृ० २९१ उत्त०
१०. वसुवर्धनाभिधानो…वसुधापतेः। — वही
११. लक्ष्मीमतिमहादेवी। — वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. अश्मक

यशस्तिलक में अश्मक का दो जगह उल्लेख है।[१२] एक स्थान पर अश्मक को अश्मन्तक कहा गया है। अश्मक और अश्मन्तक एक ही शब्द हैं।

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने अश्मन्तक को सपादलक्षपर्वत बतलाया है।[१३] एक अन्य प्रसंग में बर्बर नरेश का उल्लेख है।[१४] संस्कृत टीकाकार ने बर्बर को सपादलक्ष के पहाड़ी प्रदेश का शासक कहा है।[१५] इस तरह अश्मक, अश्मन्तक और बर्बर प्रदेश एक ही होना चाहिए। अश्मक की राजधानी पोदनपुर थी। पोदनपुर की पहचान हैदराबाद के निजामाबाद जिले में स्थित बोधन ग्राम से की जाती है। यह गोदावरी नदी की एक सहायक नदी के निकट बसा है।[१६]

पोदनपुर का उल्लेख यशस्तिलक में भी आया है।[१७] इसके अनुसार यह रम्यक देश में था।[१८] पर्भनी शिलालेख के अनुसार चालुक्य सामन्त युद्धमल्ल प्रथम सपादलक्ष देश का शासक था और उसके हाथी पोदन में तेल भरे तालाब में नहाते थे।[१९]

पालि साहित्य में अश्मक को अस्सक कहा है।[२०] अस्सक की राजधानी पोटन बतायी गयी है। सुत्तनिपात (गा० ९७७) के अनुसार अस्सक गोदावरी के तट पर स्थित था।

इस विवरण से ज्ञात होता है कि हैदराबाद का निजामाबाद जिला तथा उससे सम्बद्ध प्रदेश अश्मक कहलाता था। बहुत सम्भव है कि बरार का सबसे

---

१२. अश्मन्तक वेशविहाय याहि। – पृ०१८८।२ हि०
अश्मकवंशवैश्वानरः। –पृ० ३७७। २ हि०

१३. अश्मन्तक सपादलक्षपर्वतनिवासिन्। – पृ० १८८ सं० टी०

१४. पृ० २५१।५ हि०

१५. पृ० ३१६ सं० टी०

१६. सालेटोर—दी सदर्न अश्मक, जैन एन्टीक्वैरी, भा० ६, पृ० ६०

१७. आ० ७, क० २८

१८. रम्यकदेशाभिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिनः। – आ० ७, क० २८

१९. अस्त्यादित्यभवो वंशश्चालुक्य इति विश्रुतः।
तत्राभूद् युद्धमल्लाख्यो नृपतिर्विक्रमार्णवः॥
सपादलक्षभूभर्ता तैलवाप्यां च पोदने।
अवगाहोत्सवं चक्रे शक्रश्रीर्मददन्तिनाम्॥

२०. दीर्घनिकाय, महागोविन्द सुत्तन्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण प्रदेश तथा हैदराबाद का उत्तर भाग भी इसमें शामिल रहा है। डॉ० सरकार तथा डॉ० मिराशी ने इसके विषय में विशेष विवरण दिया है।[२१]

४. अन्ध्र

यशस्तिलक में अन्ध्र का दो बार उल्लेख है। मारिदत्त को अन्ध्र प्रदेश की स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने वाला बताया है।[२२] सोमदेव के उल्लेख से ज्ञात होता है कि अन्ध्र की स्त्रियां प्राचीन काल से ही पुष्प प्रसाधन की बहुत शौकीन रही हैं। मारिदत्त को अन्ध्र स्त्रियों के अलकों में लगी वल्लरी को बढ़ाने के लिए मेघ के समान कहा है।[२३] सोमदेव के कथन से उस समय के अन्ध्र की सीमाओं का पता नहीं चलता।

५. इन्द्रकच्छ

सोमदेव ने लिखा है कि इन्द्रकच्छ देश में रोरुकपुर नाम का नगर था जिसे मायापुरी भी कहते थे।[२४] मुद्रित प्रति में रोरुकपुर नाम छूट गया है।

रोरुकपुर बौद्ध ग्रन्थों का रोरुक जान पड़ता है। दीर्घनिकाय, महागोविन्द सुत्त (पृ० १७५) के अनुसार रोरुक सौवीर देश की राजधानी थी। कच्छ की खाड़ी में यह व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था।[२५] सोमदेव ने रोरुकपुर के औदायन नामक एक अत्यन्त सेवाभावी सम्राट् का वर्णन किया है। उसकी अतिथि-सत्कार की चर्चा इन्द्रपुरी तक में पहुँच गयी थी और दुनिया में उसका कोई भी सानी नहीं माना जाता था (आ० ६, क० ९)।

६. कम्बोज

यशस्तिलक में कम्बोज का तीन बार उल्लेख है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कम्बोज को वाल्हीक बताया है।[२६] एक स्थान पर लिखा है कि कम्बोज

---

२१. सरकार–दी वाकाटकाज एण्ड दी अश्मक कन्टरी, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, भा० २२, पृ० २३३
मिराशी–हिस्टॉरीकल डाटाज इन दंडिनाज दशकुमारचरित, एनाल्स ऑव् भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, भाग २६, पृ० २०

२२. अन्ध्रीकुचकुड्मलकृतविलास। –पृ० १८०। अन्ध्राणां तिलंगदेशस्त्रीणां। –वही, सं० टी०

२३. आन्ध्रीणामलकवल्लरीविजृंभणजलधरः। –पृ० ३३

२४. इन्द्रकच्छदेशेषु रोरुकदेशेषु, मायापुरीत्यपरनाम। –आ० ६, क० ९

२५. रै० डेविड –बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० ३८

२६. काम्बोजं वाल्हीकदेशोद्भवम्। –पृ० ३०८ सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की स्त्रियों के सिर बड़े-बड़े होते हैं।[२७] यहीं कम्बोज को टीकाकार ने कश्मीर आदि देश कहा है।[२८] पर टीकाकार का यह कथन ठीक नहीं है। कम्बोज की पहचान गन्धार के एकदम उत्तर-पश्चिम में की जाती है।[२९] वास्तव में कम्बोज के विषय में भारतीय इतिहासकारों के दो मत हैं।

कम्बोज के घोड़े अच्छी किस्म के माने जाते थे।[30] सोमदेव की सूचनानुसार यशोधर के अन्तःपुर में कम्बोज की भी कमनीय कामिनियाँ थीं।[३१]

७. कर्णाट

यशस्तिलक में कर्णाट का उल्लेख तीन बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कर्णाट का अर्थ वनवास,[३२] एक स्थान पर दक्षिणापथ[33] तथा एक अन्य स्थान पर विदर आदि देश किया है।[३४] हैदराबाद जनपद का बीदर नामक स्थान प्राचीन विदर है।

गोदावरी और कावेरी के बीच का प्रदेश जो पश्चिम में अरब सागर तट के समीप है तथा पूर्व में ७८ अक्षांश तक फैला है, कर्णाट कहलाता था।[३५]

८. करहाट

यशस्तिलक के अनुसार करहाट विन्ध्याचल से दक्षिण की ओर एक अत्यन्त समृद्धिशाली जनपद था। सोमदेव ने इसे स्वर्ग की लक्ष्मी के निकट कहा है।[३६] यहाँ की एक विशाल गोशाला का सोमदेव ने विस्तार से वर्णन किया है।

वर्तमान में करहाट की पहचान बम्बई प्रदेश के सतारा जिले में कोहना और कृष्णा नदी के संगम पर स्थित करहाट प्रदेश से की जाती है।

---

२७. कम्बोजपुरन्ध्रीणां बृहन्मुण्डानाम्। –पृ० १८६, सं० टी०
२८. कम्बोजपुरन्ध्रीणां कश्मीरादिदेशस्त्रीणाम्। –वही
२९. रे० डेविड, वही, पृ० २८
३०. कुलेन काम्बोजम्। –पृ ३०८
३१. कम्बोजीनां नाभिवलभिगर्भसंभोगभुजंगः। –पृ० ३४।
कम्बोजपुरन्ध्रीतिलकपत्र। –पृ० १८८
३२ कर्णाटीनां वनवासयोषितानाम्। –पृ० ३४ सं० टी०
३३. कर्णाटयुवतीनां दक्षिणपथस्त्रीणाम्।–पृ० १८०
३४. कर्णाटयुवतीनां विदराविदेशस्त्रीणाम्।–पृ० १८६
३५. सोर्स ऑव् कर्णाटक हिस्ट्री भाग १, पृ० ७
३६. त्रिदशदेशाश्रयश्रीनिकटः। –पृ० १८२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९. कलिंग

यशस्तिलक में कलिंग का उल्लेख कई बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने इसे उत्कल देश और दक्षिण समुद्र तथा सह्य और विन्ध्य पर्वत के मध्य का भाग बताया है।[३७]

कलिंग अच्छे किस्म के हाथियों के लिए प्रसिद्ध था। यशोधर के लिए कलिंगाधिपति ने उपहार में हाथी भेंट किये।[३८]

सोमदेव ने सुदत्त को कलिंग के महेन्द्र पर्वत का अधिपति बताया है तथा महेन्द्र पर्वत को हाथियों की भूमि कहा है।[३९]

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में महेन्द्र पर्वत का उल्लेख है। दक्षिण के पहाड़ी राज्यों में उसने कलिंग की भी विजय की थी। यह वर्तमान गंजम जिले में है।[४०]

१०. क्रथकैशिक

क्रथकैशिक को संस्कृत टीकाकार ने विराट देश बताया है।[४१] विराट वर्तमान जयपुर और अलवर के आसपास का क्षेत्र कहलाता था। प्राचीन विदर्भ क्रथकैशिक कहलाता था।

११. कांची

कांची को यशस्तिलक के टीकाकार ने दक्षिण समुद्र के तट का देश कहा है।[४२]

प्राचीन पल्लव को कांची या कांचीवरम् कहते थे।

१२. काशी

काशी का उल्लेख सोमदेव ने जनपद के रूप में किया है। जनपद का नाम काशी था और वाराणसी उसकी राजधानी थी।[४३] यशस्तिलक से काशी की

---

३७. उत्कलानां च देशस्य दक्षिणस्यार्णवस्य च।
सह्यस्य चैव विन्ध्यस्य मध्ये कालिंगजं वनम्॥ –पृ० २६१ सं० टी०

३८. अवलगति कलिंगाधीश्वरस्त्वां करीन्द्रैः। –पृ० ४६६

३९. पृ० २३५–३६, उत्त०

४०. सरकार – सेलेक्टेड इंस्क्रिप्शन, पृ० २५६

४१. क्रथकैशिको विराटदेशः। –पृ० ३७७ सं० टी०

४२. कांचीनाम दक्षिणसमुद्रतटदेशः। –पृ० ५६८

४३. काशिदेशेषु'''वाराणस्याम्। –पृ० ३६० उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीमाओं की जानकारो नहीं मिलती। सोमदेव ने काशी के घर्षण नामक राजा, उसके उग्रसेन नामक सचिव तथा पुष्प नामक पुरोहित से सम्बन्धित एक कथा दी है।[४४]

१३. कीर

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कीर का अर्थ कश्मीर किया है।[४५] कीर देश का स्वामी उपहार में कश्मोर अर्थात् केसर भेजता है।[४६] वर्तमान में कीर की पहचान पंजाब की कुल्लू वेली से की जाती है।

१४. कुरुजांगल

यह कुरु देश का एक भाग था। सोमदेव ने कुरुजांगल (९८।७, आ० ६, क० २०) तथा केवल जांगल नाम (आ० ७, क० २८) से इसका उल्लेख किया है। हस्तिनापुर इस प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी थी। सोमदेव ने इसका दो बार उल्लेख किया है।

१५. कुन्तल

संस्कृत टीकाकार ने कुन्तल का अर्थ पूर्व देश किया है।[४७] उत्तर कनारा जिले के बनवासी नामक प्रमुख नगर के चारों ओर का प्रदेश कुन्तल कहा जाता था। बनवासी के कदम्बों के अधीन प्रदेशों में उत्तर कनारा तथा मैसूर, बेलगांव और धारवाड़ के भाग सम्मिलित थे।[४८] उत्तरकालीन कदम्बों के शिलालेखों में कदम्ब वंश के पूर्वज को कुन्तल देश का शासक बतलाया गया है।

अन्यत्र कुन्तल के अन्तर्गत अपेक्षाकृत विस्तृत प्रदेश बतलाया है। नीलगुण्ड प्लेट में अंकित नीचे लिखे श्लोक में उत्तरकालीन चालुक्य सम्राट् जयसिंह द्वितीय का वर्णन है। उनका दूसरा नाम मल्लिकामोद था और वह कुन्तल देश के शासक थे, जहाँ कृष्णवर्णा नदी बहती थी।

विख्यातकृष्णवर्णे तैलस्नेहोपलब्धसरलत्वे।
कुन्तलविषये नितरां विराजते मल्लिकामोदः॥

---

४४. वही
४५. कीरनाथः : काश्मीरदेशाधिपः। –पृ० ४७०
४६. काश्मीरैः कीरनाथः। –वही
४७. कुन्तलकान्तानां पूर्वदेशस्त्रीणाम्। –पृ० १८८
४८. सरकार – इण्डियन हिस्टॉ० क्वा०, जिल्द २२, पृ० २३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रकूटों और उत्तरकालीन कदम्बों को समकालीन शिलालेखों में तथा संस्कृत ग्रन्थों में कुन्तल का शासक बतलाया है। राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट थी। हैदराबाद दक्षिण के गुलबर्गा जिले में स्थित आधुनिक मलखेट ही पुराना मान्यखेट था। किन्तु उत्तरकालीन चालुक्यों की राजधानी कल्याण थी, जो बीदर के निकट और मलखेड के एकदम उत्तर में लगभग ५० मील दूर है। उदयसुन्दरी कथा में लिखा है कि कुन्तल देश की राजधानी प्रतिष्ठान (गोदावरी पर स्थित आधुनिक पैठण) थी। अतः कुन्तल के अन्तर्गत केवल बम्बई प्रदेश का उत्तरकनारा जिला तथा मैसूर, बेलगांव और धारवाड़ के प्रदेश ही सम्मिलित नहीं थे, किन्तु उत्तर में वह बहुत आगे तक फैला था और जिसे आज दक्षिण मराठा प्रदेश कहते हैं, वह भी उसमें सम्मिलित था।[४९]

१६. केरल

यशस्तिलक में केरल का उल्लेख छह बार हुआ है।[५०] संस्कृत टीकाकार ने पाँच स्थानों पर केरल को दक्षिण में कहा है। एक स्थान पर मलयाचल के निकट कहा है।[५१] यशस्तिलक से केरल की प्राचीन सीमाओं का पता नहीं चलता।

१७. कोंग

कोंग का उल्लेख केवल एक बार हुआ है (पृ० ४३१, सं० पू०)। मैसूर का दक्षिणी प्रदेश नन्दिदुर्ग पर्यन्त तथा कोयम्बटूर और सालेम का प्रदेश कोंग कहलाता था।[५२]

१८. कौशल

यशस्तिलक में कोशल का दो बार उल्लेख हुआ है। यशोधर के दरबार में जो राजे उपहार लेकर उपस्थित हुए उनमें कोशल नरेश भी था।

---

४९. इंडियन हिस्टॉ० क्वा० जिल्द २२, पृ० ३१० पर प्रो० मिराशी का लेख

५०. केरलीनां नयनदीर्घिकाकेलिकलहंसः। –पृ० ३४
केरलमहिलामुखकमलहंस।—पृ० १८८
केलि केरल संहर। –पृ० ३६६
केरलेषु करालः। –पृ० ४३१
दूताः केरलचोलसिंहलशक। –पृ०४६६
केरलकुलकुलिशपात। –पृ० ५६७

५१. केरलमलयाचलनिकटवर्तिन्। –पृ० ३६६

५२. रेप्सन–इंडियन कोइन्स, पृ० ३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह कौशेय के वस्त्र उपहार में लाया था।[५३] कौशल बुद्धकालीन षोडश महाजनपदों में गिना जाता था। सोमदेव ने इस तरह की कोई विशेष जानकारी नहीं दी है।

१९. गिरिकूट पत्तन

गिरिकूट पत्तन का उल्लेख एक कथा के प्रसंग में हुआ है। वहाँ विश्व नाम का राजा था। उसके पुरोहित का नाम विश्वदेव था। विश्वदेव के नारद नामक पुत्र हुआ। नारद और डहाल के पुरोहित क्षीरकदम्ब के पुत्र पर्वत की शिक्षा-दीक्षा एक साथ हुई थी। सोमदेव की सूचनानुसार पुराणों के नारद मुनि और पर्वत यही हैं। इस प्रसंग से लगता है गिरिकूट पत्तन डहाल के आसपास रहा होगा।[५४]

२०. चेदि

यशस्तिलक में चेदि जनपद का उल्लेख दो बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर चेदि को कुण्डिनपुर[५५] तथा दूसरे स्थान पर डहाल[५६] देश कहा है।

चेदि मध्यदेश का एक महत्त्वपूर्ण जनपद था।

२१. चेरम

चेरम का उल्लेख दो बार हुआ है।[५७] केरल और चेरम एक ही जनपद के नाम थे।

२२. चोल

यशस्तिलक में चोल का उल्लेख चार बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने चोल को एक प्रसंग में मंजिष्ठादेश[५८] कहा है तथा एक अन्य स्थान पर सभंग

---

५३. कौशेयैः कौशलेन्द्रः। –पृ० ४७०, आ० ६, क० १५
५४. गिरिकूटपत्तनवसतेर्विश्वनाम्नो विश्वंभरापतेः। –पृ० ३५:३, उत्त०
५५. हे चेदीश कुण्डिनपुरपते। – पृ० १८८, सं० टी०
५६. चैद्यो नाम डाहालदेशः। – पृ० ५६८, सं० टी०
५७. चेरम पर्यट मलयोपकण्ठ। – पृ० १८७
पल्लवपाण्ड्यचोलचेरमहर्म्यविनिर्माण। – पृ० ५६५
५८. दूताः केरलचोलसिंहलशक। – पृ० ४६६, चोलश्च मंजिष्ठादेशभूपः।– सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश।[५९] मंजिष्ठा और सभंग दोनों एक ही हैं।

एक स्थान पर टीकाकार ने चोल को गंगापुर कहा है[६०] जो गंगकोण्डा कोलापुरम् का संस्कृत रूप लगता है। ११ और १२वीं शती में यह चोल की राजधानी रही है। इस प्रकार वर्तमान त्रिचनापल्ली और तंजोर के जिले तथा पुट्टुकोट्टा राज्य का भाग पहले चोल कहलाता था।

२३. जनपद

जनपद का उल्लेख मात्र एक बार हुआ है। इसकी राजधानी भूमितिलकपुर थी। जनपद की पहचान अभी नहीं हो पायी है, फिर भी यशस्तिलक के आधार पर लगता है कि यह कुरुक्षेत्र के आसपास का भाग रहा होगा। दो मित्र भूमितिलकपुर से चल कर कुरुजांगल के हस्तिनापुर में पहुँचते हैं।[६१]

२४. डहाल

यशस्तिलक में डहाल का उल्लेख एक बार हुआ है। डाहाल या डहाल को चेदी राजाओं की राजधानी बताया जाता है। सोमदेव के अनुसार यहाँ अच्छी किस्म के गन्ने की खेती होती थी।[६२] डहाल की स्वस्तिमती नाम की नगरी में अभिचन्द्र, द्वितीय नाम विश्वावसु, नामक राजा राज करता था।[६३]

२५. दशार्ण

सोमदेव ने दशार्ण का दो बार उल्लेख किया है।[६४] एक स्थान पर संस्कृत टीकाकार ने दशार्ण को गोपाचल (ग्वालियर) से चालीस गव्यूति (८० कोस) दूर लिखा है।[६५] पूर्वी मालवा और उससे सम्बद्ध प्रदेश दशार्ण कहलाता है।

---

५९. चोलीनयनोत्पलवनविकास। – पृ० १८०
चोलीनां सभंगदेशस्त्रीणाम्। – वही, सं० टी०
चोलीसु भ्रूलतानर्तनमलयानिलः। – पृ० ३३

६०. चोलेश जलधिमुल्लंघ्य तिष्ठ। – पृ० १८७,
चोलदेशो दक्षिणापथे वर्तते। संगापुर (गंगापुरपते) – सं० टी०

६१. जनपदाभिधानास्पदे जनपदे भूमितिलकपुरपरमेश्वरस्य। – पृ० २८३ उत्त०

६२. इक्षुवणावतारैर्विराजितमण्डलायां डहालायाम्। – पृ० ३५३ उत्त०

६३. डहालायामस्ति स्वस्तिमती नाम पुरी, तस्यामभिचन्द्रापरनामवसुविश्वावसुर्नामनृपतिः। वही

६४. पृ० ५६८ सं० पृ०, १५३ उत्त०

६५. दशार्णं नाम नगरं गोपाचलाद् गव्यूतिचत्वारिंशति वर्तते। – पृ० ५६८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशार्ण की राजधानी विदिशा थी। विदिशा और उदयगिरि पहाड़ी के मध्य में प्राचीन राजधानी के भग्नावशेष पाये जाते हैं। धसान और वेत्रवती इसकी प्रसिद्ध नदियाँ हैं। कालिदास के मेघ ने दशार्ण में पहुँच कर विदिशा का आतिथ्य स्वीकार किया था और वेत्रवती के निर्मल जल का पान किया था (मेघदूत १।६-७)।

२६. प्रयाग

सोमदेव ने प्रयाग का जनपद के रूप में उल्लेख किया है (प्रयागदेशेषु, पृ० ३४५ उत्त०)। प्रयाग के सिंहपुर नगर में सिंहसेन नामक राजा राज करता था।[६६]

२७. पल्लव

यशस्तिलक में पल्लव का उल्लेख तीन बार हुआ है।[६७] प्राचीन समय में कांची (कांचीवरम्) प्रदेश को पल्लव कहते थे। इस पर पल्लवों का राज्य था। नवमी शताब्दी के अन्त में उन्हें चोलों ने हरा दिया। जब सोमदेव ने अपना यशस्तिलक लिखा तब तक इस घटना को घटे अर्ध शताब्दी से अधिक बीत चुकी थी, किन्तु पल्लव राज्य की स्मृतियाँ फिर भी शेष थीं। चोलों के आधिपत्य में पल्लव सामन्त यत्र-तत्र राज्य कर रहे थे।

२८. पांचाल

उत्तरप्रदेश का रुहेलखण्ड प्राचीन पंचाल देश कहलाता था। यशस्तिलक में इसके दो स्थानों पर उल्लेख आये हैं।[६८]

२९. पाण्डु या पाण्डच

पाण्डु या पाण्डच का उल्लेख दो बार हुआ है। सोमदेव ने लिखा है कि पाण्डच नरेश सुन्दर मध्यमणिवाला मोतियों का हार उपहार में लेकर यशोधर

---

६६. प्रयागदेशेषु सिंहपुरे सिंहसेनो नाम नृपतिः। – पृ० ३४५ उत्त०

६७. पल्लवीषु नितम्बस्थलीखेलनकुरंगः। – पृ० ३४
पल्लव लघुकेलीरसमपेहि। – पृ० १८७
पल्लवरमणीकृत विरहखेद। – पृ० १८८

६८ पृ० ३९६, ४६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के दरबार में उपस्थित हुआ।[६९] एक स्थान पर आया है कि चण्डरसा नामक स्त्री ने कबरी में छिपाये हुए असिपत्र से मुण्डीर नामक राजा को मार डाला था।[७०]

३०. भोज

भोज या भोजावनी का एक बार उल्लेख है।[७१] विदर्भ या बरार भोजावनी कहा जाता था। भोजावनी कहने का प्रयोजन यही है कि यहां बहुत काल तक भोज राजाओं का साम्राज्य था। रघुवंश में भी इस बात का उल्लेख है।[७२]

३१. बर्बर

बर्बर का एक बार उल्लेख है।[७३] इसकी व्याख्या अश्मक के प्रसंग में की गयी है।

३२. मद्र

मद्र का भी एक बार उल्लेख है।[७४] इसकी पहचान पंजाब प्रान्त में रावी और चेनाव के बीच में स्थित स्यालकोट से की जाती है।

३३. मलय

यशस्तिलक में मलय का दो बार उल्लेख है। दोनों स्थानों पर मलय की अंगनाओं का वर्णन किया गया है।[७५] मलय पर्वत के आसपास का प्रदेश मलय नाम से प्रसिद्ध था।

३४. मगध

सोमदेव ने यशोधर को मगध की स्त्रियों के लिए विलासदर्पण की तरह कहा है।[७६] संस्कृत टीकाकार ने मगध को राजगृह (वर्तमान राजगृही) कहा है।[७७]

६९. अयमपि च समास्ते पाण्ड्यदेशाधिनाथस्तरलगुलिकहारप्राभृतव्यग्रहस्तः।–पृ०४६६
७०. कबरीनिगूढेनासिपत्रेण चण्डरसा मुण्डीरम्। – पृ० १५३ उत्त०
७१. गर्जौ जहीहि भोजावनीश। – पृ० १८५
७२. रघुवंश ५।३९
७३. गर्वं बर्बर मुंच। – पृ० ३६६
७४. प्रविश रे मद्रेश देशान्तरम्। – पृ० ३६६
७५. मलयस्त्री रतिभरकेलिमुग्ध। – पृ० १८०
मलयांगनांगनखदाननिरत। -- पृ० १८८
७६. मागधवधूविलासदर्पणः। -- पृ० ५६८
७७. मागधवधूनां राजगृहस्त्रीणाम्। – वही, सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३५. यौधेय

सोमदेव ने यौधेय का विस्तार से वर्णन किया है।[७८] यह एक समृद्धिशाली जनपद था जिसे देख कर देवताओं का भी मन चल जाता था। यहाँ सभी प्रकार का गोधन – गाय, भैंस, घोड़े, ऊँट, बकरी, भेड़ – पर्याप्त था। स्वर्ण की कमी न थी। पानी के लिए मात्र वर्षा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। यहाँ की जमीन काली थी। हल जोतने वाले बहुत थे। पानी सुलभ था। खेती के विशेषज्ञ पर्याप्त थे। खूब बाग-बगीचे थे। पेड़-पौधों की कमी न थी। सड़कें साफ-सुथरी थीं। गाँव इतने पास-पास बसे हुए थे कि एक गाँव के मुर्गे उड़कर दूसरे गाँव में पहुँच जाते थे (कुक्कुटसंपात्याग्रामाः)। सब परस्पर सौहार्द से रहते थे।

३६. लम्पाक

यशस्तिलक में लम्पाक का मात्र एक बार उल्लेख हुआ है।[७९] इसकी पहचान वर्तमान लाघमन से की जाती है। युवानच्वांग ने इसे लानपो लिखा है।[८०]

३७. लाट

लाट का अर्थ यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने भृगुकच्छ किया है।[८१] पालि में भरुकच्छ नाम आता है। वर्तमान भड़ौंच से इसकी पहचान की जाती है। नर्मदा के मुहाने पर यह एक अच्छा नगर तथा जिला है। प्राचीन समय में पूर्वी गुजरात को लाट कहते थे।

३८. वनवासी

बुहलर ने विक्रमांकदेव चरित के प्राक्कथन में लिखा है कि तुंगभद्रा और वरदा के मध्य में एक कोने में वनवासी स्थित था। यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने वनवासी का अर्थ गिरिसोपानगरादि किया है।[८२] अर्थात् वनवासी में गिरिसोपा (उत्तर कनारा जिले में स्थित गेरसोप्पा) तथा अन्य नगर थे। महावंश (१२।३१) में भी वनवास का नाम आया है। गेगर ने लिखा है कि उत्तर कनारा जिले में वनवासी नाम का एक कस्बा आज भी वर्तमान है।[८३]

---

७८. पृ० १२ से २५

७९. लम्पाकपुरपुरंध्रिकाधरमाधुर्यपश्यतो हरे। -- पृ० ५७४

८०. वाटरस् ऑन युवानच्वांग, भाग १ पृ० १८१

८१. लाटीनां भृगुकच्छदेशोद्भवानां स्त्रीणाम्। -- पृ० १८०, सं० टी०

८२. गिरिसोपानगरादिस्त्रीणाम्। – पृ० १९९

८३. इम्पीरियल गजट ऑव इंडिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३९. बंग या बंगाल

यशस्तिलक में दो बार बंग[८४] तथा एक बार बंगाल का उल्लेख हुआ है। प्रो० हन्दिकी ने दोनों को एक बताया है किन्तु सोमदेव ने स्पष्ट ही एक ही स्थान पर दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया है। कल्चुरी विज्जल (११५७–६७ई०) के अब्लूर शिलालेख में भी वंग और बंगाल का अलग-अलग उल्लेख है।[८६] प्राचीन वंग का दक्षिणी प्रदेश ही बाद में बंगाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। चन्द्रद्वीप अर्थात् बाकरगंज और उससे सम्बद्ध प्रदेश बंगाल कहलाता था।[८७] ग्यारहवीं शती में ढाका जिला बंगाल में था। चौदहवीं शताब्दी में सोनारगांव बंगाल की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध था और बंगाल ढाका से चटगांव तक फैला हुआ था।[८८]

४०. बंगी

बंगी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख हुआ है।[८९] बंगी और वेंगी एक ही प्रतीत होते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदी के मध्य में स्थित जिले, जहाँ पूर्वीय चालुक्यों का राज्य था, वेंगी कहलाता था। किन्तु यशस्तिलक की टीका में बंगी को रतनपुर कहा है।[९०] रतनपुर आजकल मध्यप्रदेश के विलासपुर के उत्तर में स्थित है। यह दक्षिण कोशल की राजधानी थी और वहाँ त्रिपुरी के चेदी वंश की एक शाखा राज्य करती थी। टीकाकार का बंगी को रतनपुर बताना उचित नहीं है।

४१. श्रीचन्द्र

श्रीचन्द्र का केवल एक बार उल्लेख है।[९१] संस्कृत टीकाकार ने श्रीचन्द्र को कैलाश पर्वत का स्वामी बताया है। यह सम्राट् यशोधर के लिए चन्द्रकान्त के उपहार लेकर उपस्थित हुआ था।[९२]

---

८४. अन्यैश्चांगकलिंगबंगपतिभिः। –पृ० ४६९
वंगेषु स्फुलिंगः। –पृ० ४३१
८५. वंगालेषु मण्डलः। –वही
८६. इंडियन हिस्टॉरीकल क्वार्टरली, भाग २२, पृ० २८०
८७. सरकार—दी सिटी ऑव् बंगाल. भारतीय विद्या, जिल्द ५, पृ० ३६
८८. वही
८९. वंगीवनिताश्रवणावतंस। —पृ० ९८ हि०। बंगीमण्डले।—पृ० ९५ उत्त०
९०. वही, सं० टी०
९१. पृ० ३१४ हि०
९२. श्रीचन्द्रश्चन्द्रकान्तैः। —पृ० ३१४ हि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४२. श्रीमाल

श्रीमाल का भी एक बार उल्लेख है।[९३] जोधपुर राज्य के भिनमाल नामक स्थान से इसकी पहचान की जाती है। कुवलयमाला कहा (८वीं शती) में भिल्लमाल का उल्लेख है। यह जैनों का एक गढ़ था। यहाँ से निकलने वाले जैन वर्तमान में राजस्थान, पश्चिम भारत तथा उत्तरप्रदेश में पाये जाते हैं। इनको श्रीमाल कहा जाता है, वे भी स्वयं अपने को श्रीमाल मानते हैं।[९४]

४३. सिन्धु

सिन्धु देश का उल्लेख सोमदेव ने वहाँ के घोड़ों के साथ किया है। सिन्धु देश के राजा ने अच्छी किस्म के बहुत से घोड़े लेकर अपने दूत को सम्राट् यशोधर के पास भेजा।[९५]

वहाँ से आने वाले घोड़ों का कालिदास ने भी उल्लेख किया है।[९६]

सिन्धु देश सिन्धु नदी के दोनों किनारों पर इसके मुहाने तक विस्तृत था। कालिदास के अनुसार इसमें गन्धर्व निवास करते थे जिन्हें भरत ने पराजित किया।[९७] इस देश में तक्षशिला और पुष्कलावती अवस्थित थे। इनका नाम भरत ने अपने दोनों पुत्रों तक्ष और पुष्कल के नाम पर रखा था और उन्हें वहाँ का राज्य सौंप दिया था।[९८]

सिन्धु हमेशा घोड़ों के लिए प्रसिद्ध रहा है। अमरकोषकार ने इसी कारण सैन्धव और गन्धर्व घोड़ों के पर्याय दिये हैं।[९९] सोमदेव ने सिन्धु के घोड़ों का उल्लेख किया है।

४४. सूरसेन

सूरसेन का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि सूरसेन जनपद में वसन्तमति ने अपने अधरों में विषमिला अलक्तक लगाकर सुरतविलास

---

९३. पृ० ३१४ हि०

९४. भारतीय विद्या जिल्द दो, भाग १–२ में श्री जिनविजय जी

९५. तुरगनिवह एषः प्रेषितः सैन्धवैस्ते। —पृ० ३१४ हि०

९६. रघु० १५।८७

९७. वही १५।८८

९८. वही १५।८९

९९. अमरकोष २।८।४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामक राजा को मार डाला था।[१००] मथुरा का पुराना नाम सूरसेन था।

४५. सौराष्ट्र

सौराष्ट्र का दो बार उल्लेख हुआ है।[१०१] संस्कृत टीकाकार ने सौराष्ट्र के गिरिनार का भी उल्लेख किया है।[१०२]

४६. यवन

सोमदेव ने यशोधर को यवनकुल के लिए वज्राग्नि के समान कहा है।[१०३] सोमदेव ने लिखा है कि यवनदेश में मणिकुण्डला नामक महारानी ने अपने पुत्र को राज्य दिलाने के लिए शराब में विष मिलाकर अजराज नामक राजा को मार डाला था।[१०४] एक अन्य प्रसंग में यवनी स्त्रियों का उल्लेख है।[१०५] श्रुतदेव ने यवन का अर्थ खुराशान देश किया है,[१०६] जो उचित नहीं है। अजराज तक्षशिला में राज्य करता था।

४७. हिमालय

हिमालय का जनपद तथा पर्वत दोनों रूपों में उल्लेख है। इसके लिए हिमाचल (पृ० २१३) के अतिरिक्त शिशिरगिरि (पृ० ४७०), तुषारगिरि (पृ० ५७४), तथा प्रालेयशैल (पृ० ३२२) नाम भी आये हैं।

हिमाचल प्रदेश का अधिपति सम्राट् यशोधर के दरबार में ग्रन्थिपर्ण की भेंट ले कर उपस्थित हुआ।[१०७]

---

१००. सूरसेनेपु सुरतविलासम्।—पृ० १५२

१०१. पृ० ३४ सं० पू० तथा पृ० ३०२ उत्त०

१०२. सौराष्ट्रीपु गिरिनारिसौराष्ट्रियोपित्सु।—पृ० ३४ सं० टी०

१०३. यवनकुलवज्रानिलः।—पृ० ५६८ सं० पू०

१०४. विषदूषितमद्यगण्डूषेण मणिकुण्डला महादेवी यवनेषु निजतनुजराज्यार्थमजराजं जघान।—पृ० १५२ उत्त०

१०५. यवनी नितम्बनखपदविमुग्ध।—पृ० १८०

१०६. यवनो नाम खुराशानदेशः।—वही, सं० टी०

१०७. शिशिरगिरिपतिर्ग्रन्थिपर्णैरुदीर्णैः।—पृ० ४७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर और ग्राम

सोमदेव ने यशस्तिलक में चालीस ग्राम और नगरों का उल्लेख किया है। इनके विषय में विशेष जानकारी इस प्रकार है :—

१. अहिच्छत्र

अहिच्छत्र की पहचान उत्तरप्रदेश के बरेली जिले में स्थित रामनगर नामक ग्राम से की जाती है। जैन अनुश्रुति के अनुसार इस ग्राम में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने कठोर तपस्या की थी। कमठ नामक व्यन्तर ने उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया, फिर भी वे अपनी तपस्या में अडिग रहे। उनकी इस कठोर साधना का यश चारों ओर फैल गया। सोमदेव ने इसी भाव का संकेत किया है।[१] यशस्तिलक के उल्लेख के अनुसार अहिच्छत्र पांचाल देश में था। पांचाल उत्तरप्रदेश के रुहेलखण्ड प्रदेश को माना जाता है। अन्यत्र इसकी विशेष चर्चा की गयी है। यशोधर महाराज को अहिच्छत्र के क्षत्रियों में शिरोमणि कहा गया है।[२]

२. अयोध्या

यशस्तिलक के उल्लेखानुसार अयोध्या कोशल में थी। कोशल देश का यशस्तिलक में अन्यत्र भी उल्लेख आया है। अयोध्या कोशल की राजधानी थी। रघु और उनके उत्तराधिकारियों ने बहुत समय तक अयोध्या को अपनी राजधानी बनाये रखा। रघुवंश में इसके अनेक उल्लेख आते हैं।

३. उज्जयिनी

उज्जयिनी का यशस्तिलक में एक अत्यन्त सुन्दर एवं पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। उज्जयिनी अवन्ति जनपद में थी।[५] यह नगरी पृथुवंश में उत्पन्न होनेवाले

---

१. श्रीमत्पार्श्वनाथपरमेश्वरयशःप्रकाशनामत्रे अहिच्छत्रे –आ० ६, क० १५

२. अहिच्छत्रक्षत्रियशिरोमणि। –पृ० ३७७।२ हिन्दी

३. कोशलदेशमध्यायामयोध्यायां पुरि। –आ० ६ क० ८

४. पृ० ३१४।३ हिन्दी

५. अवन्तिषु विख्याता।–पृ० २०४

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजाओं की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध रही है।[६] वहाँ के प्रासादों पर ध्वजाएँ लगायी गयी थीं।[७] सफेद पताकाओं के कारण सब ऐसे लगते थे जैसे हिमालय की चोटियाँ हों।[८] वहाँ पर नवीन पल्लव तथा मालाओं वाले तोरण बनाये गये थे।[९] वहाँ के लोग मयूर पालने के शौकीन थे जो कि मकानों पर खेलते रहते थे।[१०] भवनों के साथ ही गृहोद्यान थे, जिनमें सभी ऋतुओं के फल-फूल लगे थे।[११]

उज्जयिनी के पास ही सिप्रा नदी बहती थी जिसकी ठंडी-ठंडी हवा का नागरिक रात्रि में घर बैठे आनन्द लेते थे।[१२] भवनों में गृहदीर्घिकाएँ बनायी गयी थीं।[१३] नगरी में देवालय, बगीचे, सत्र, धर्मशालाएँ, वापी, वसति, सार्वजनिक स्थान बनाये गये थे।[१४] उज्जयिनी धन-धान्य से इतनी समृद्ध थी कि मानो वहाँ समुद्रों के सभी रत्न, राजाओं की सभी वस्तुएँ तथा सभी द्वीपों की सारभूत सामग्री इकट्ठी हो गयी हों।[१५]

वहाँ की कामिनियाँ अतिशय रूपवती थीं। लोग चरित्रवान् थे, त्यागी थे, दानी थे, धर्मात्मा थे।[१६]

४. एकचक्रपुर

इसका एक वार उल्लेख है। संभवतया एकचक्रपुर विन्ध्याचल के समीप था। एकपाद नामक परिव्राजक गंगा (जाह्नवी) में स्नान करने के लिए एकचक्रपुर से चला और उसे रास्ते में विन्ध्याटवी मिली।[१७]

---

६. पृथुवंशोद्भवात्मनाम् विश्वंभरेशानाम्। –वही
७. सौधनद्धध्वजाप्रान्त।–वही
८. सितकेतुसमुच्छ्रयः हराद्रिशिखराणीव।–वही
९. नवपल्लवमालांकाः यत्र तोरणपंक्तयः।–वही
१०. क्रीडत्कलापिरम्याणि हर्म्याणि। पृ–२०५
११. सर्वर्तुश्रीश्रितच्छायानिष्कुटोद्यानपादपाः।–वही
१२. नक्तं सिप्रानिलैर्यत्र जालमार्गानुगैः।–वही
१३. गृहदीर्घिकाः। –पृ० २०६
१४. पृ० २०८
१५. सर्वरत्नानि वार्धीनां सर्ववस्तूनि भूभृताम्।
द्वीपानां सर्वसाराणि यत्र संजग्मिरे मिथः।–पृ० २०६
१६. पृ० २०६
१७. एकचक्रात्पुरादेकपान्नामपरिव्राजको जाह्नवीजलेषु मज्जनाय व्रजन् विन्ध्याटवी-
विषये।–पृ० ३२७ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५. एकानसी

एकानसी का अर्थ यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने उज्जयिनी किया है।[१८] अन्यत्र[१९] एकानसी को अवन्ति जनपद में बताया है। इससे टीकाकार के अर्थ की पुष्टि होती है।

६. कनकगिरि

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार के अनुसार उज्जयिनी के समीप सुवर्णगिरि पर स्थित नगर का नाम कनकगिरि था।[२०] उज्जयिनी से इसकी दूरी केवल चार कोस (गव्यूतिद्वयं) थी। यशोधर को कनकगिरि का स्वामी बताया गया है।[२१]

७. कंकाहि

यह उज्जयनी के निकट एक छोटा-सा गाँव था। इसके निवासी नमदे तथा चमड़े के जीन बनाते थे।[२२]

८. काकन्दी

यशस्तिलक में काकन्दी का उल्लेख तीन बार हुआ है। इन साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि काकन्दी काम्पिल्य के आस-पास था। काम्पिल्य की पहचान उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में स्थित काम्पिल्य नामक स्थान से की जाती है। यशस्तिलक में कृपण सागरदत्त अपने भानजे की मृत्यु का समाचार पाकर काम्पिल्य से काकन्दी जाता है और जल्दी लौट आता है। इससे ये दोनों पास-पास प्रतीत होते हैं। बाद के अनुसन्धान और उत्खनन से काकन्दी की स्थिति उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले में मानी जाने लगी है। नोनखार स्टेशन से लगभग तीन मील दक्षिण खुखुन्दू नामक ग्राम से इसकी पहचान की जाती है। यहाँ प्राचीन जैन मन्दिर भी है तथा उत्खनन में प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

यशस्तिलक के उल्लेखानुसार काकन्दी व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। सोमदेव ने इसे सम्पूर्ण संसार के व्यापार या व्यवहार का केन्द्र कहा है।[२३]

---

१८. पृ० २२६ उत्त०

१९. आ० ७, क० २५

२०. पृ० ५६६

२१. पृ० ३७६ हि०

२२. उज्जयिनीनिकषा नमताजिनजेणाजीवनोटजाकुले कंकाहिनामके। –पृ० २१८, उत्त०

२३. सकलजगद् व्यवहारावतारत्रिवेद्यां काकन्द्याम्। – आ० ७, क० ३२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन अनुश्रुति के अनुसार काकन्दी बारहवें जैन तीर्थंकर पुष्पदन्त की जन्मभूमि थी। सोमदेव ने इस तथ्य का समर्थन किया है।[२४]

९. काम्पिल्य

काम्पिल्य की पहचान उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में स्थित काम्पिल्य नामक स्थान से की जाती है। यशस्तिलक के अनुसार काम्पिल्य पांचाल देश में थी।[२५]

१०. कुशाग्रपुर

कुशाग्रपुर मगध का केन्द्र तथा पुरानी राजधानी थी।[२६] युवानच्यांग ने भी कुशाग्रपुर का उल्लेख किया है और उसे मगध का केन्द्र तथा पुरानी राजधानी बताया है। वहाँ एक प्रकार की सुगन्धित घास बहुतायत से होती थी, उसी के कारण उसका नाम कुशाग्रपुर पड़ा। हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में सुरक्षित परंपरा के अनुसार प्रसेनजित कुशाग्रपुर का राजा था। कुशाग्रपुर में लगातार आग लगने के कारण प्रसेनजित ने यह आज्ञा दी थी कि जिसके घर में आग पायी जायेगी वह नगर से निकाल दिया जायेगा। इसके बाद राजमहल में आग पायी जाने के कारण प्रसेनजित ने नगर छोड़ दिया क्योंकि वह स्वयं राजघोषणा से बंधा था। इसके बाद उसने राजगृह नगर बसाया।[२७] राजगृह बिहार प्रान्त में पटना के दक्षिण में स्थित आज का राजगिरि है। राजगिरि को पंचशैलपुर भी कहते हैं। वह पांच पहाड़ियों से घिरा है। सोमदेव ने भी इसका दूसरा नाम पंचशैलपुर लिखा है।[२८]

११. किन्नरगीत

किन्नरगीत को सोमदेव ने दक्षिण श्रेणी का नगर बताया है।[२९]

---

२४. श्रीमत्पुष्पदन्तभदन्तावतारावतीर्णत्रिदिवपतिसंपादितो द्यावेन्दिरासत्यां काकन्द्यां पुरि। – आ० ७, क० २४

२५. पांचालदेशेपु त्रिदशनिवेशानुकूलोपशल्ये काम्पिल्ये। – आ० ७, क० ३२

२६. मगधदेशेपु कुशाग्रनगरोपान्तापातिनि। – आ० ६, क० ६

२७. जान्सन—इंडियन हिस्टॉ० क्वा० जिल्द २२, पृ० २२८

२८. राजगृहापरनामावसरे पंचशैलपुरे। – पृ० ३०४, उत्त०

२९. दक्षिणश्रेण्यां किन्नरगीतनामनगरनरेन्द्रेण। – आ० ६, क० ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२. कुसुमपुर

पाटलिपुत्र का दूसरा नाम कुसुमपुर था (आ०४)।

१३. कौशाम्बी

कौशाम्बी का दो बार उल्लेख है।[30] इसकी पहचान इलाहाबाद के पश्चिम में करीब बीस मील दूर जमुना के किनारे स्थित कोसम नामक स्थान से की जाती है। सं० टीकाकार ने लिखा है कि कौशाम्बी नगरी वत्स देश में गोपाचल (ग्वालियर) से (४४ गव्यूति) ८८ कोस दूर है।[31]

बौद्ध ग्रन्थों में (महासुदस्सनसुत्तन्त) कौशाम्बी को एक बहुत बड़ी नगरी बताया गया है।

१४. चम्पा

सोमदेव के अनुसार चम्पा प्राचीन अंगदेश की राजधानी थी।[32] बिहार प्रान्त के भागलपुर और मुंगेर जिले के आस-पास का भाग अंग कहलाता था। चम्पा वर्तमान भागलपुर के पास माना जाता है।

१५. चुंकार

यशस्तिलक में बृहस्पति की कथा के प्रसंग में चुंकार का उल्लेख आया है।[33] लोचनांजनहर नामक एक बदमाश ने साधुचरित बृहस्पति की बदनामी उड़ा दी। फल यह हुआ कि मिथ्यावाद के कारण वे इन्द्रसभा में प्रवेश न पा सके।

१६. ताम्रलिप्ति

यशस्तिलक के अनुसार ताम्रलिप्ति पूर्वदेश के गौड़मण्डल में था।[34] वर्तमान तामलुक जो कि बंगाल के मिदनापुर जिले में है, से इसकी पहचान की जाती है।

---

३०. पृ० ३७७।४, हिं०, ३२१।६ उत्त०

३१. पृ० ५६८, सं० टी०

३२. अंगमण्डलेषु…चम्पायां पुरि। – आ० ६, क० ८

३३. पृ० १३८ उत्त०

३४. आ० ६, क० १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१७. पद्मावतीपुर

पद्मावतीपुर को यशस्तिलक के टीकाकार ने उज्जयिनी बताया है।[३५] एक हस्तलिखित प्रति में भी किनारे पर यही नाम लिखा है। पर यह ठीक नहीं। पंद्मावतीपुर वर्तमान पवाया है, जो ग्वालियर जिले में है।

१८. पद्मिनीखेट

पद्मिनीखेट का एक बार उल्लेख है।[३६] यहाँ के एक वणिक्पुत्र की कथा आयी है। यशस्तिलक से इसके विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

१९. पाटलिपुत्र

पाटलिपुत्र वर्तमान का पटना है। यहाँ की वारविलासिनियों के उल्लेख आये हैं।[३७]

एक अन्य पाटलिपुत्र का उल्लेख है।[३८] यह सौराष्ट्र (काठियावाड़) का पालीताना है।

२०. पोदनपुर

अश्मक के प्रसंग में पोदनपुर के विषय में लिखा जा चुका है। यह गोदावरी नदी के किनारे अश्मक की राजधानी थी।[३९]

२१. पौरव

पौरवपुर को संस्कृत टीकाकार ने अयोध्या कहा है।[४०]

२२. बलवाहनपुर

एक कथा के प्रसंग में बलवाहनपुर का उल्लेख है।[४१]

---

३५. पृ० ५६६

३६. आ० ७, क० २७

३७. पाटलिपुत्रपण्यांगनाभुजंग। – पृ० ३७७।४ हि०

३८. आ० ६, क० १२

३९. रम्यकदेशनिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिनो।—३५० उ०

४०. पृ० ६८,

४१. आ० ६, क० १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२३. भावपुर

भावपुर का उल्लेख भी एक कथा के प्रसंग में आया है।[४२]

२४. भूमितिलकपुर

यशस्तिलक के अनुसार भूमितिलकपुर जनपद नामक प्रदेश की राजधानी थी।[४३] जनपद की अभी ठीक पहचान नहीं हो पायी है। यशस्तिलक की कथा से यह कुरुक्षेत्र के आस-पास का प्रदेश ज्ञात होता है। भूमितिलकपुर से निष्काषित दो मित्र कुरुजांगल के हस्तिनापुर में आकर ठहरते हैं।[४४]

२५. मथुरा

यशस्तिलक में उत्तर मथुरा (वर्तमान मथुरा) तथा दक्षिण मथुरा (वर्तमान मदुरा) दोनों के उल्लेख हैं।[४५]

२६. मायापुरी

मायापुरी इन्द्रकच्छ की राजधानी थी। इसका दूसरा नाम रोरुकपुर भी था।[४६]

२७. मिथिलापुर

मिथिलापुर का भी एक कथा के प्रसंग में उल्लेख हुआ है।[४७]

२८. माहिष्मती

माहिष्मती का दो बार उल्लेख है। संस्कृत टीकाकार ने इसे यमुनपुर दिशा में बताया है।[४८] इन्दौर के पास नर्मदा के किनारे स्थित महेश्वर अथवा मध्यप्रान्त के निमाड़ जिले में स्थित मान्धाता से इसकी पहचान करनी चाहिए।

---

४२. आ० ६, क० १५

४३. आ० ६, क० ५

४४. आ० ६, क० ५

४५. आ० ६, क० १०

४६. इन्द्रकच्छदेशेषु (रोरुकपुर) मायापुरीत्यपरनामावसरस्य पुरस्य प्रभोः।
— पृ० २६४ उ०

४७. आ० ६, क० २०

४८. हिमालयमलयमगधमध्यदेशमाहिष्मतीपतिप्रभृतीनामवनिपतीनां बलानि। —पृ० ४६८
माहिष्मतीयुवतिरतिकुसुमचाप। — पृ० ५६८
माहिष्मतीनाम नगरी यमुनपुरदिशि पत्तनम्। — सं० टी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माहिष्मती पूर्व कलचुरी नरेशों की राजधानी थी। कलचुरी ने महाराष्ट्र पर आन्ध्रभृत्य के पतन और चालुक्यों के उत्थान काल में शासन किया।[४९]

कलचुरी साम्राज्य के संस्थापक कृष्णराज छठी शताब्दी के मध्य में माहिष्मती में रहे। बाद में राजधानी जबलपुर के पास त्रिपुरी में चली गयी।[५०]

२९. राजपुर

राजपुर यौधेय की राजधानी थी।[५१] यौधेय की पहिचान भावलपुर के वर्तमान जोहियों से की जाती है। प्राचीन काल में यह एक बहुत बड़ा प्रदेश था।[५२] मुल्तान के दक्षिण में बहावलपुर स्टेट (पश्चिमी पाकिस्तान) का राजनपुर ही प्राचीन राजपुर प्रतीत होता है।

३०. राजगृह

बिहार प्रान्त का वर्तमान राजगृही। यहाँ की पाँच पहाड़ियों के कारण यह पंचशैलपुर भी कहलाता था।[५३]

३१. वलभी

वलभी का दो बार उल्लेख है।[५४] यह सौराष्ट्र के मैत्रकों की राजधानी थी। भावनगर के उत्तर-पश्चिम में लगभग २० मील पर वला नाम से आज उसके भग्नावशेष पाये जाते हैं।

३२. वाराणसी

वर्तमान वाराणसी। सोमदेव ने वाराणसी को काशी जनपद में बताया है।[५५]

३३. विजयपुर

यशस्तिलक के अनुसार विजयपुर मध्यप्रदेश में था।[५६]

---

४९. भण्डारकर—अरली हिस्ट्री ऑव् डेक्कन, तृ० सं०, नोट्स पृ० २५१

५०. इण्डि० हिस्टॉ० क्वा०, वाल्यूम २१, पृ० ८४

५१ पृ० १३, हि०

५२. रैपसन—इण्डियन क्वाइन्स, पृ० १४

५३. मगधदेशेषु राजगृहापरनामावसरे पंचशैलपुरे। – पृ० ३०४ उत्त०

५४. आ० ७, क० २३; ३७७।५ हि०

५५. आ० ७, क० ३१

५६. आ० ६, क० ७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३४. हस्तिनापुर

यशस्तिलक में हस्तिनापुर का दो बार उल्लेख है। सोमदेव के अनुसार यह नगर कुरुजांगल जिले में था।[५७] कुरुजांगल को एक स्थान पर केवल जांगलदेश भी कहा है।[५८] यशोधर के अन्तःपुर में कुरुजांगल की कामिनियों का उल्लेख है।[५९]

३५. हेमपुर

एक कथा के प्रसंग में हेमपुर का उल्लेख है।[६०]

३६. स्वस्तिमति

सोमदेव ने लिखा है कि स्वस्तिमति डहाल प्रदेश में थी।[६१] डहाल चेदि राजाओं की राजधानी थी। यशस्तिलक के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वहाँ गन्नों की अच्छी खेती होती थी।[६२] वहाँ पर अभिचन्द्र, द्वितीय नाम विश्वावसु, नाम का राजा राज करता था।[६३] उसकी वसुमति नाम की पटरानी थी।[६४] उनके लड़के का नाम वसु तथा पुरोहित का क्षीरकदम्ब था। क्षीरकदम्ब की पत्नी का नाम स्वस्तिमति तथा लड़के का नाम पर्वत था।

३७. सोपारपुर

यह मगध प्रान्त का एक नगर था। इसके निकट नाभिगिरि नाम का पर्वत था।[६५]

३८. श्रीसागरम् (सिरीसागरम्)

यशस्तिलक के अनुसार श्रीसागरम् अवन्ति जनपद में था।[६६]

---

५७. कुरुजांगलमण्डले···हस्तिनागपुरे। – आ० ६, क० २०

५८. आ० ७, क० २८

५९. कुरुजांगलललनाकुचतनुत्र। – पृ० ९८।७ हि०

६०. आ० ६, क० १५

६१. डहालायामस्ति स्वस्तिमती नाम पुरी। – पृ० ३५३ उत्त०

६२. कामकोदण्डकाण्डकान्तारैरिवेक्षुवणावतारैर्विराजितमण्डलायाम्।–पृ० ३५३ उत्त०

६३. तस्यामभिचन्द्रापरनामवसुविश्वावसुर्नाम नृपतिः। – पृ० ३५३ उत्त०

६४. वसुमतिनामाग्रमहिषी। – वही

६५. मगधविषये सोपारपुरपर्यन्तधाम्नि नाभिगिरिनाम्नि महीधरे।– आ० ६, क० १५

६६. आ० ७, क० २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३९. सिंहपुर

यह नगर प्रयाग देश में था।[६७] युवांग च्वांग ने भी इसका उल्लेख किया है।

४०. शंखपुर

शंखपुर संभवतया अयोध्या के निकट कोई ग्राम था। यशस्तिलक की एक कथा में लिखा है कि अनन्तमती को शंखपुर के निकट स्थित पर्वत के पास में छोड़ा गया और वहाँ से एक वणिक् उसे अयोध्या ले आया।[६८]

६७. आ० ७, क० २७
६८. आ० ६, क० ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिच्छेद तीन

बृहत्तर भारत

१. नेपाल

नेपाल का दो बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि नेपाल नरेश कस्तूरी की प्राभृत लेकर यशोधर के दरबार में उपस्थित हुआ।[1] एक अन्य प्रसंग में नेपाल शैल का उल्लेख है तथा उसी के साथ वहाँ पर कस्तूरी प्राप्त होने के तथ्य का भी उल्लेख है।[2]

२. सिंहल

सिंहल का तीन बार उल्लेख है। यशस्तिलक के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भारत और सिंहल के अटूट सम्बन्ध थे।[3]

३. सुवर्णद्वीप

सुवर्णद्वीप की पहचान सुमात्रा से की जाती है। यशस्तिलक में दो मित्र सुवर्णद्वीप जाते हैं और वहाँ से अपार धन कमाकर लौटते हैं।[4] यहाँ की राजधानी शैलेन्द्र थी। एक ताम्रपत्र भी मिला है।[5]

४. विजयार्ध

विजयार्ध का एक बार उल्लेख है।[6] यशस्तिलक से इसके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

---

१. क्षितिप, मृगमदैरेष नेपालपाल:। – पृ० ४७० सं० पू०
२. पृ० ५७४, वही
३. सिंहलीपु मुखकमलमकरन्दपानमधुकर:। – पृ० ३४, वही
दूता: केरलचोलसिंहल। – पृ० ४६६, वही
सिंहलमहिलाननतिलकवही। – पृ० १८१, वही
४. आ० ७, क० २७
५. डॉ० अग्रवाल– नागरीप्रचारिणी पत्रिका (विक्रमांक)
६. विजयार्धवनीधरस्य विद्याधरविनोदपादपोत्पादक्षौण्यां दक्षिणश्रेण्याम्।
– पृ० २९२ उत्त०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५. कुलूत

श्रुतदेव ने कुलूत को मरवादेश कहा है।[७] यशस्तिलक के उल्लेख से प्रतीत होता है कि कुलूत देश की कामिनियाँ विशेष सुन्दर होती थीं, उनके कपोलों पर लावण्य झलकता था।[८]

७. कुलूतो मरवादेशः। – पृ० ५७४
८. कुलूतकुलकामिनीकपोललावण्यधामनि। – वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वन और पर्वत

१. कालिदासकानन

पांचाल देश में अहिच्छत्र के निकट जलवाहिनी नदी के किनारे आमों का एक बहुत बड़ा बगीचा था, जिसे कालिदासकानन कहते थे।[1]

सोमदेव ने यशस्तिलक में कालिदास का आम के अर्थ में एक अन्य स्थल पर भी प्रयोग किया है।

२. कैलास

यशस्तिलक में यशोधर को कैलासलांछन कहा गया है।[2] हिमालय की एक चोटी का नाम अब भी कैलास है।

३. गन्धमादन

गन्धमादन को श्रुतदेव ने हिमाचल के पास में बताया है। यशस्तिलक के उल्लेखानुसार गन्धमादन में भोजपत्र बहुतायत से होते थे।[4]

४. नाभिगिरि

मगध में सोपारपुर नगर के किनारे नाभिगिरि नाम का पर्वत था।[5]

५. नेपालशैल

यशस्तिलक में नेपाल पर्वत की तराई में कस्तूरी मृग पाये जाने का उल्लेख है।[6]

---

१. जलवाहिनीनामनदीतटनिकटनिविष्टप्रतनने महति कालिदासकानने।
– आ० ६, क० १

२. कैलासलांछनः। – पृ० ५६६
३. गन्धमादनं नाम वनं हिमाचलोपकंठे वर्तते। – पृ० ५७४, सं० टी०
४. भूर्जवल्कलोन्माथमन्थरे। – वही
५. मगधविषये सोपारपुरपर्यन्तधाम्नि नाभिगिरिनाम्नि महीधरे। –आ० ६, क० १५
६. नेपालशैलमेखलामृगनाभिसौरभनिर्भरे। – पृ० ५७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक अन्य स्थल पर नेपालदेश का भी उल्लेख है।[७]

६. प्रागद्रि

प्रागद्रि या उदयाचल का भी एक बार उल्लेख है।[८]

७. भीमवन

शंखपुर के समीप में भीमवन था।[९] उस प्रदेश में किरातों का राज्य था। भीमनामक किरातराज भीमवन में शिकार खेलने आया।[१०]

८. मन्दर

मन्दर का अर्थ टीकाकार ने अस्ताचल किया है।[११]

९. मलय

मलय पर्वत का एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि मलयपर्वत की तलहटी में लताएँ अधिक थीं।[१२]

१० मुनिमनोहरमेखला

राजपुर के समीप ही एक छोटी-सी पहाड़ी थी जिसे मुनिमनोहरमेखला कहते थे।[१३]

११. विन्ध्या

विन्ध्याचल का दो बार उल्लेख है। विन्ध्या में मातंगों की बस्तियाँ थीं।[१४] विन्ध्या के दक्षिण में श्रीसमृद्ध करहाट नाम का जनपद था।[१५]

---

७. पृ० ४७०

८. पृ० २१३

९. शंखपुराभ्यर्णभागिनि भीमवननाम्नि कानने। – पृ० २०३ उत्त०

१०. मृगयाप्रशंसनमागतेन भीमनाम्ना किरातराजेन। – वही

११. मन्दरश्चास्तपर्वतः। – पृ० २१४, सं० टी०

१२. मलयमेखलालतानर्तनकुतूहलित। – पृ० ५७६

१३. राजपुरस्याविदूरवर्तिनं मुनिमनोहरमेखलं नाम खर्वतरं पर्वतम्। – पृ० १३२

१४. पृ० ३२७ उत्त०

१५. विन्ध्याद्दक्षिणस्यां दिशि "करहाटो नाम जनपदः। – १८२, वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२. शिखण्डिताण्डवमण्डन

सुवेला पर्वत से पश्चिम की ओर शिखण्डिताण्डवमण्डन नाम का वन था।[१६] सोमदेव ने इस वन का विस्तृत एवं आलंकारिक वर्णन किया है, किन्तु उस सम्पूर्ण वर्णन से भी इस वन की पहचान करने में कोई मदद नहीं मिलती।

१३. सुवेला

हिमालय के दक्षिण की ओर सुवेला नामक पर्वत था।[१७] सोमदेव ने सुवेला पर्वत का विस्तार के साथ आलंकारिक वर्णन किया है।

हिमालय के दक्षिण में शिवालिक पर्वत श्रेणियां हैं। सुवेला की पहचान इसी से करना चाहिए। गंडक, घाघरा, गंगा, यमुना, गोमती, कोशी आदि नदियाँ यहाँ से होकर निकलती हैं।

१४. सेतुबन्ध

सं० टीकाकार ने सेतुबन्ध का अर्थ दक्षिण पर्वत दिया है।[१८]

१५. हिमालय

यशस्तिलक में हिमालय का कई बार उल्लेख है। हिमालय के शिखरों पर तपस्वियों के आश्रम थे।[१९] इसकी चोटियां बर्फ से ढकी रहती थीं, इसलिए इसका प्रालेयशैल तथा तुषारगिरि नाम पड़ा। तुषारगिरि के झरने हेमन्त ऋतु की ठंडी हवा में जमकर निष्पन्द हो जाते थे।[२०]

■

---

१६. सुवेलशैलादपरदिग्···शिखण्डिताण्डवमण्डनम्। – पृ० १०३ उत्त०

१७. हिमालयाद्दक्षिणदिक्कपोलः शैलः सुवेलोऽस्ति लताविलोलः। – पृ० १६७ उत्त०

१८. सेतुबन्धश्चार्वाक्पर्वतः। – पृ० २१३, सं० पू०

१९. प्रालेयशैलशिखराश्रमतापसानाम्। – पृ० ३२२

२०. तुषारगिरिनिर्झरनीहारनिष्पन्दिनि। – पृ० ५७४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरोवर और नदियाँ

१. मानस

यशस्तिलक में मानस या मानसरोवर तथा उसमें हंसों के निवास का उल्लेख है।[१] विश्वनाथ कविराज ने लिखा है कि कवि-समय में ऐसी प्रसिद्धि है कि वर्षा के आते ही हंस मानसरोवर के लिए चले जाते हैं।[२] कालिदास ने इस तथ्य का उल्लेख किया है।[3]

मानसरोवर झील हिमालय पर नेपाल के उत्तर और तिब्बत के दक्षिण में ब्रह्मपुत्र के उद्‌गम स्थान के समीप कैलास चोटी के निकट दक्षिण में है।

२. गंगा

गंगा के विषय में यशस्तिलक में पर्याप्त जानकारी आयी है।[४] गंगा हिमालय से निकलती है। इसमें एक बार भी स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं।[५] हिमालय के शिखरों पर आश्रम बनाकर रहने वाले तापस लोग गंगा के जल का उपयोग करते थे।[६] गंगा के किनारे-किनारे भी तपस्वियों के आश्रम थे।[७]

गंगा का दूसरा नाम भागीरथी था। उस समय भी भागीरथी के विषय में यह प्रसिद्ध था कि महादेव उसे सिर से धारण करते हैं।[८]

गंगा का एक नाम जाह्नवी भी था। जाह्नवी में स्नान करने के लिए दूर-दूर से लोग जाते थे।[९] ठंड के दिनों में भी लोग जाह्नवी में स्नान करने से नहीं चूकते थे, भले ही ठंड से अकड़ जायें।[१०]

---

१. मानसहंसविलासिनि। – पृ० ५७४
२. प्रावृषि, मानसं यान्ति हंसाः। – साहित्यदर्पण ७।२३
३. आकैलासाद् विषकिसलयाच्छेदपाथेयवन्तः। – मेघदूत पूर्व० १४
४. पृ० ३२२–२७
५. या नाकलोकमुनिमानसकल्मषाणां कार्श्यं करोति सकृदेव कृताभिषेकम्। – वही
६. प्रालेयशैलशिखराश्रमतापसानां, सेव्यं च यस्तव तदम्बु मुदेऽस्तु गांगम्। – वही
७. यास्तीराश्रमवासितापसकुलैः। – वही
८. ऊह्यन्ते शशिमौलिना च शिरसा···भागीरथीसम्भवाः। – वही
९. जाह्नवीजलेषु मज्जनाय व्रजन्। – पृ ३२७ उत्त०
१०. जाह्नवीजलमज्जनजातजड़भावे। – वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. जलवाहिनी

पांचाल देश के वर्णन प्रसंग में जलवाहिनी नामक नदी का उल्लेख है।[११] इस नदी के किनारे आमों का एक विशाल वन था।[१२] पांचाल नरेश के पुरोहित की पत्नी को एक बार असमय में आम खाने का दोहद हुआ। पुरोहित आम को तलाश में घूमता हुआ जलवाहिनी के किनारे विशाल आम्रवन में पहुँचा तथा वहाँ एक वृक्ष में आम पाकर आम तोड़ा और एक विद्यार्थी के हाथ घर भेज दिया।[१३]

यमुना, नर्मदा, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, सिंधु और शोण नदी का एक साथ उल्लेख है।[१४]

४. यमुना

यमुना के लिए दूसरा नाम तरणितीरणी आया है।[१५] यह नदी हिमालय के यमुनोत्री नामक स्थान से निकल कर प्रयाग में आ कर गंगा में मिली है।

५. नर्मदा

वर्तमान नर्मदा जो विन्ध्याचल की अमरकंटक नामक पर्वतश्रेणी से निकल कर पश्चिम में बहती हुई अरबसागर की खंभात की खाड़ी में गिरती है।

६. गोदावरी

वर्तमान गोदावरी नदी जो पश्चिमीघाट पर्वत की चन्दौर पहाड़ी से निकल-कर पूर्व की ओर बहती हुई बंगाल समुद्र की बंगाल खाड़ी में गिरी है।

७. चन्द्रभागा

चन्द्रभागा का उल्लेख मिलिन्दपञ्हो (११४) तथा ठाणांग सूत्र (५।४७०) में भी आता है। यह नदी हिमालय से निकलकर किस्थवार के ऊपर दो पहाड़ी झरनों के साथ बहती है। किस्थवार से आगे रिस्थवार तक यह दक्षिण की ओर

---

११. जलवाहिनीनाम नदी। – पृ० ३०६ उत्त०

१२. महति कालिन्दासकानने। – वही

१३. अध्याय ६, क० १५

१४. यमुनानर्मदागोदाचन्द्रभागासरस्वती।
सरयूसिन्धुशोणोत्थैर्जलैर्देवोऽभिषिच्यताम् ॥ – पृ० ३२२

१५. पृ० ५७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती है। यह जम्मू के निकट बहती है। उससे आगे वितस्ता (झेलम) के साथ दबाव बनाती हुई दक्षिण-पश्चिम की ओर जाती है।[१६]

८. सरस्वती

सरस्वती नदी का दो बार उल्लेख है। इसके किनारे उदवास करने वाले तापस रहते थे।[१७]

सरस्वती हिमालय की शिवालिक पहाड़ी से निकलकर यमुना और शतद्रू (सतलज) के बीच दक्षिण की ओर बहती हुई मनु के अनुसार विनाशन में पहुँचकर अदृश्य हो जाती है।[१८]

९. सरयू

सरयू हिमालय की शिवालिक पहाड़ी से निकलकर गंगा में मिली है।

१०. शोण

यह मैकाल की पहाड़ियों से निकल कर उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई पटना के पूर्व गंगा में मिल जाती है।

११. सिन्धु

हिमालय के कैलासगिरि से निकल कर वर्तमान में पश्चिमी पाकिस्तान में बहती हुई अरबसागर में गिरी है।

१२. सिप्रा

सिप्रा उज्जयिनी नगरी के समीप में बहती थी। रात्रि में सिप्रा की ठंडी-ठंडी हवा उज्जयिनी के नागरिकों के भवनों में गवाक्षों (जालमार्ग) से प्रवेश करके उन्हें आनन्दित करती थी।[१९] पांचवें आश्वास में सिप्रा का अतिविस्तृत आलंकारिक वर्णन किया गया है। वर्तमान सिप्रा ही प्राचीनकाल में भी सिप्रा कहलाती थी।

■

१६. बी० सी० ला० – हिस्टॉरिकल ज्योग्राफी ऑव ऐन्सियट इण्डिया, पृ० ७३
१७. सरस्वतीसलिलोद्वासतापसे। – पृ० ५७५
१८. वही, पृ० १२१
१९. नक्तं सिप्रानिलैर्यत्र। पृ० २०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय पाँच

यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

यशस्तिलक संस्कृत के प्राचीन, अप्रसिद्ध, अप्रचलित तथा नवीन शब्दों का एक विशिष्ट कोश है। सोमदेव ने प्रयत्नपूर्वक ऐसे अनेक शब्दों का यशस्तिलक में संग्रह किया है। वैदिक काल के बाद जिन शब्दों का प्रयोग प्रायः समाप्त हो गया था, जो शब्द कोश-ग्रन्थों में तो आये हैं, किन्तु जिनका प्रयोग साहित्य में नहीं हुआ या नहीं के बराबर हुआ, जो शब्द केवल व्याकरण-ग्रन्थोंमें सीमित थे तथा जिन शब्दों का प्रयोग किन्हीं विशेष विषयों के ग्रन्थों में ही देखा जाता था, ऐसे अनेक शब्दों का संग्रह यशस्तिलक में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसे भी अनेक शब्द हैं, जिनका संस्कृत साहित्य में अन्यत्र प्रयोग नहीं मिलता। बहुत से शब्दों का तो अर्थ और ध्वनि के आधार पर सोमदेव ने स्वयं निर्माण किया है। लगता है सोमदेव ने वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, ज्योतिष तथा साहित्यिक ग्रन्थों से चुनकर विशिष्ट शब्दों की पृथक्-पृथक् सूचियाँ बना ली थी और यशस्तिलक में यथास्थान उनका उपयोग करते गये। यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्तिके विषय में सोमदेव ने स्वयं लिखा है कि काल के कराल व्याल ने जिन शब्दों को चाट डाला उनका मैं उद्धार कर रहा हूँ। शास्त्र-समुद्र के तल में डूबे हुए शब्द-रत्नों को निकालकर मैंने जिस बहुमूल्य आभूषण का निर्माण किया है, उसे सरस्वती देवी धारण करे।[१]

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने ऐसे लगभग एक सहस्र शब्द दिये हैं। आठ सौ शब्द इस अध्याय में हैं तथा दो सौ से भी अधिक शब्द अन्य अध्यायों में यथास्थान दिये हैं। इस अध्याय में शब्दों को वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि श्रेणियों में वर्गीकृत न करके अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। शब्दों पर मैंने तीन प्रकार से विचार किया है – १. कुछ शब्द ऐसे हैं, जिन पर विशेष प्रकाश डालना उपयुक्त लगा। ऐसे शब्दों का मूल संदर्भ, अर्थ तथा आवश्यक टिप्पणी

---

१. अरालकालव्यालेन ये लीढाः साम्प्रतं तु ते।
शब्दाः श्रीसोमदेवेन प्रोत्थाप्यन्ते किमद्भुतम् ॥
उद्धृत्य शास्त्रजलधेर्नितले निमग्नैः पर्यागतैरिव चिरादभिधानरत्नैः।
या सोमदेवविदुषा विहिता विभूषा वाग्देवता वहतु सम्प्रति तामनर्घ्याम् ॥
—अ० ५, पृ० २६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दी गयी है। २. सोमदेव के प्रयोग के आधार पर जिन शब्दों के अर्थ पर विशेष प्रकाश पड़ता है, उन शब्दों के पूरे सन्दर्भ दे दिये हैं। ३. जिन शब्दों का केवल अर्थ देना पर्याप्त लगा, उनका सन्दर्भ-संकेत तथा अर्थ दिया है।

शब्दों पर विचार करने का आधार श्रीदेवकृत टिप्पण तथा श्रुतसागर की अपूर्ण संस्कृत टीका तो रहे ही हैं, प्राचीन शब्दकोश तथा मोनियर विलियम्स और प्रो० आप्टे के कोशों का भी उपयोग किया है। स्वयं सोमदेव का प्रयोग भी प्रसंगानुसार शब्दों के अर्थ को खोलता चलता है। श्लिष्ट, क्लिष्ट, अप्रचलित तथा नवीन शब्दों के कारण यशस्तिलक दुरूह अवश्य लगता है, किन्तु यदि सावधानीपूर्वक इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो क्रम-क्रम से यशस्तिलक के वर्णन स्वयं ही आगे-पीछे के सन्दर्भों को स्पष्ट करते चलते हैं। इस प्रकार यशस्तिलक की कुंजी यशस्तिलक में ही निहित है। सोमदेव की बहुमूल्य सामग्री का उपयोग भविष्य में कोश-ग्रन्थों में किया जाना चाहिए।

अकम् (अकविलोकगणनमपि, १९६।१ उत्त०) : कष्ट

अकल्पः (परिपाकगुणकारिणीं क्रियामकल्पस्य, ४३।२) : रोगी

अर्कः (४०५।२) : आक का वृक्ष

अर्कनन्दनः (भूयाद्गन्धवहैः सार्धमनुलोमोर्कनन्दनः, ३३४।१) : कौआ

अखिलद्वीपदीपः (विदूरितरजोभिरखिलद्वीपदीपैरिव, ९१।३) : सूर्य सोमदेव ने तात्पर्य के आधार पर यह शब्द स्वयं गढ़ा है। सूर्य सारे संसार को दीपक की तरह प्रकाशित करता है, इसलिए उसे अखिलद्वीपदीप कहा है।

अगमः (अगमविटपान्तरितवपुषाम्, ९५।१, अगमाग्रपल्लवभरम्, १९९।२ उत्त०) : वृक्ष

अगस्ति (४०५।३) : अगस्त वृक्ष

अग्निजन्मन् (२०३।८ उत्त०) : कुत्ता

अग्रमहिषी (१२३।१) : पटरानी

अध्यक्षम् (४०६।९) : प्रत्यक्ष

अजिनजेण (२१८।९ उत्त०) : चमड़े की जीन

अजगवः (अजगवैरिन्द्रायुधस्पर्धिभिः, ५७९।८) : धनुष

अर्जुनः (१९४।५ उत्त०) : मयूर, अर्जुन वृक्ष

अर्जुनज्योतिः (सदाचारकैरवार्जुनज्योतिषम्, २०४।४ उत्त०) : सूर्य

अतसी (कुथितातस्यतैलधारावपातप्रायम्, ४०४।५) : अलसी

अदितिसुतः (अदितिसुतनिकेतनपताकाभोगाभिः, ४५।४) : सूर्य

अध्वनयः (३६।२) : पथिक

अधोक्षजः (अधोक्षजमिव कामवन्तम्, २९८।४) : नारायण

अन्तर्वंशिक् (२३।९ उत्त०) : अन्तःपुररक्षक सैनिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तर्वाणिन्: (नर्तकशिरोमणिभिरन्तर्वाणिभिः, ४७७।८) : शास्त्रवेत्ता, विद्वान्

अन्धः (विषकलुषितमन्धः कस्य भोज्याय जातम्, ४१६।१) : भोजन

अनन्ता (मूलमिवानन्तालतायाः, २०४।५ उत्त०) : पृथ्वी

अनंगः (ऐरावतकुलकलभैरिवानंगवनस्य, २।१३, ९१।२) : आकाश

अनायतनम् (१४३।७) : अनुचित स्थान

अनाश्वान् (५०।६) : अनशनशील अशन् शब्द से सोमदेव ने अनाश्वान् कर्ताकारक का रूप बनाया है।

अनीकस्थः (अनीकस्थेन विनिवेदितद्विरदावस्था, ४९५।४) : अनीकस्थ नामक गजसेना का अधिकारी

अनुप्रेक्षा (संसारसागरोत्तरणपोतपात्रदशा द्वादशाप्यनुप्रेक्षा, २५६।३): अनुप्रेक्षा जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। संसार से विराग उत्पन्न करनेवाली भावनाओं का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा कहलाता है। ये बारह मानी गयी हैं—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, पृथक्त्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, धर्म और बोधिदुर्लभ। सोमदेव ने इनका विस्तार से वर्णन किया है।

अनुपदीना (अनवानुपदीनाप्टलसमश्रवसम्, ४२।८ उत्त०) : जूती

अनुरुसारथिः (अनुरुसारथिरथोन्माय, २७।४) : सूर्य (शिशु० १।२)

अण्डजः (उण्डीनं मुहुरण्डजैः, ६१५।९) : पक्षी

अणकेहितः (अणकेहितचिन्तामणिः, ४५०।११) : दुराचारी

अप्रत्नम् (अप्रत्नरत्नचयनिचितकांचनकलश, १८।५) : नवीन

अभ्रपुष्पम् (आमोदसंदर्भिताभ्रपुष्पैः, २००।२) : जल

अभ्रियः (अभ्रियसंदर्भनिर्भरं नभ इव, ४६४.५) : वज्राग्नि

अभीरुः (सुभटानीकमित्राभीरुप्रतिष्ठितम्, १९५।१ उत्त०) : भय रहित, इन्दीवरी

अम्बरिषम् (अनम्बरिषमप्यरिभेदस्फारकम्, १९५।४ उत्त०) : युद्ध

अमरधेनुः (२२०।५) : कामधेनु

अमृता (चन्द्रमिवामृतास्पदम्, १९४।३ उत्त०) : गुरुचि नामक वनौषधि

अमृतमरीचिः (२०।७ उत्त०): चन्द्र

अमृतरुचिः (१७१।३) : चन्द्र

अमृतरोचिष् (१७२।५) : चन्द्र

अरिभेदः (१९५।४) : खदिर वृक्ष

अलगर्दः (निर्मोदालगर्दगलगुहास्फुरत्, (४५।३) : सर्प

अलाबूफलम् (४७४।७) : तूँमा

अलिकः (१५९।९) : ललाट

अवहारः (अम्बुरुहकुहरविहरदवहार, २०८।६ उत्त०): जलव्याल, मगर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवक्षेप: (१००।५ उत्त०) : तिरस्कार

अवधि: (अवधिबोधप्रदीपेन, १३६।२): अवधिज्ञान। जैन दर्शन में ज्ञान के पाँच भेद माने गये हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा सीमित भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के पदार्थों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

अवतोका (१८६।२ उत्त०) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ सींग रहित या मुण्डी गाय किया है, मो० वि० में इसका अर्थ जिसका गर्भ गिर गया है, किया गया है।

अवन्तिसोमम् (अनल्पराजिकावर्जितावन्तिसोम, ४०६।१) : कांजी

अवग्रहणी: (समुत्सृष्टग्रहावग्रहणीदेशया, २७.६, प्रतीक्ष्यमाणगृहगृहावग्रहणी, १८५।४ उत्त०) : देहली

अवसान: (भारतकथेव धृतराष्ट्रावसाना, २०६।५ उत्त०) : मृत्यु, सीमा, तट

अवि। (९२।६) : भेड़

अवहेल: (पुरोहितस्यावहेलेन, ४३१।७) : तिरस्कार, उपेक्षा। हिन्दी में अवहेलना शब्द अभी भी इसी अर्थ में प्रचलित है।

अवासस् (१०१।१० उत्त०) : निर्ग्रन्थ

अषडक्षीण: (२१५।५ उत्त०) : मत्स्य

अष्टापद (स्वर्धुनीप्रवाहमिव कृताष्टापदावतारम्, १९४।२ उत्त०) : कैलास पर्वत। हिमालय की कैलास चोटी से गंगा का उद्गम मानते हुए, यह प्रयोग किया गया है। अष्टापद का दूसरा श्लिष्ट अर्थ शरभ भी यहाँ लेना है। अष्टापद का कैलास अर्थ में प्रयोग महत्त्वपूर्ण है।

अष्ठीलम् (कठोराष्ठीलपृष्ठकमठ, ६७।५) : कछुए के पृष्ठ का मध्यभाग

अशिशिवदान: (१४१।८) : निर्मल चरित्र

असंतापम् (अमृतकान्तिमिवासंतापम् २९९।१) असंतापम् का सामान्य अर्थ संताप न देनेवाला है। गजशास्त्र में गज के गुणों में असंताप की गणना की जाती है। अस्त्र इत्यादि को सहन करना, विचलित न होना असंताप है (अस्त्रादीनां च सहनादसंतापं विदुर्बुधाः, – सं० टी०)।

असंहतव्यूह: (दण्डासंहतभोगमण्डलविधीन्व्यूहान्, ३०४।५) : युद्ध में व्यूह रचना के जो अनेक प्रकार थे, उनमें एक असंहतव्यूह भी था। इसमें सेना को यहाँ-वहाँ छिट-पुट बिखेर दिया जाता था।

असराला (प्रसारितासरालरसना, ४६।३) : लम्बी, दीर्घ

असितर्ति: (असितर्तिमिव तेजस्विनम्, २९८।३ उत्त०) : अग्नि

अहिमधाम: (अहिमधामधृष्णिः, १९।३) : सूर्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहिपति (१६७।११) : सर्पों का स्वामी अर्थात् शेषनाग

अहिवलयित (४१५।१०) सर्पवेष्टित

अहीश्वरः (३४४।१) : सर्पों का ईश्वर अर्थात् शेषनाग

अंगजः (सत्त्वं तिरोभवति भीतमित्रांगजाग्नेः, २८२।३) : काम

आकर्षः (आकर्षेण शीर्षदेशे दृढ़दत्तप्रहारकलः, १९७।४ उत्त०) : फलक, क्रीड़ापट्ट

आच्छोदना (जलव्याल इवाच्छोदनाभिरतोऽपि, ४१।४) : स्वच्छ जल, शिकार, शिकार या मृगया के अर्थ में आच्छोदना शब्द का प्रयोग साहित्य में कम देखा जाता है।

आचारान्धः (बुधसंगविदग्धोऽपि कथं त्वमद्याचारान्ध इवावभाससे, ८८।२ उत्त०) : मूर्ख, व्यवहार में अंधा अर्थात् मूर्ख। अर्थ की अपेक्षा सोमदेव ने यह शब्द स्वयं बना लिया है।

आज्यम् (आज्यावीक्षणमेतदस्तु, २५१।८, नासिकांजलिपेयपरिमलैः प्राज्यैराज्यैः, ४०१।३) : घृत

आजवकम् (३६।२) : धनुष

आतपनयोगः (आतपनयोगयुतोऽपि, १३७।४, उत्त०) : ग्रीष्मकाल में खुले मैदान में पर्वत आदि पर तपस्या करना आतपनयोग कहलाता है।

आधोरण. (३०।५) : आधोरण नामक गजपरिचारक

आनकः (२१४।१) : आनक नामक अवनद्ध वाद्य

आनर्त (१७९।४) नाचते हुए

आनायः (तन्नयानायनिक्षेपात्, ३८८। १०, युवजनमृगाणां बन्धनायानाय इव, ५८।५ उत्त०) : जाल

आमलकम् (आमलकशिलातलमिव स्वच्छकलम्, २०९।७ उत्त०) : स्फटिक

आलमकम् (सर्पिः सितामलकमुद्गकषाययुक्तम्, ५१८।१) : आँवला

आम्रातकम् (अगस्तिचूताम्रातकपिचुमन्द, ४०५।३) : आँमड़ा

आमिक्षा (आमिक्षया च समेधितमहसम्, ३२४।२) : श्रुतसागर ने लिखा है कि उबाले हुए दूध में दही मिलाने से आमिक्षा बनती है (शृते क्षीरे दधिक्षिप्तमामिक्षा कथ्यते बुधैः, सं० टी०)।

आयःशूलिकः (१४१।३) : कठोर कर्म करनेवाला

आवसथः (पुत्रप्रार्थनमनोरथावसथस्य, २२४।२) : गृह, पृष्ठ ७८।६ पर भी इसका प्रयोग हुआ है।

आवालः (बिभर्त्यावालभूमिसु, ९७।६) : क्यारी। वृक्ष के चारों ओर पानी रोकने के लिए बनायी गयी मिट्टी की मेंड़। साहित्य में आलवाल का प्रयोग मिलता है (रघु० १५१, शिशु० १३।५०)।

आपीडः (पिष्टापीडविडम्ब्यमानजरती, २२७।५) : समूह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरेयः (वालेयकारेयजातिभिः, १८६।३ उत्त०) : भेड़

आरः (९५।६) : मंगल गृह

आरामाः (ब्रह्मवादा इव प्रपंचितारामाः, १३।४) : अविद्या

आवान (तापसावानवितानित, ५।१ उत्त०) : तपस्वियों के गैरिक वस्त्रों के लिए यहाँ आवान शब्द का प्रयोग किया है।

आस्तरकः (४०३।५) : शय्या परिचारक

आसुतीवलः (पर्युपास्यासुतीवलद्वितीयः, ३२४।१) : यज्वा—यज्ञ करने वाला

आसेचनकः (१७६।३) : जिसके देखने से जी न भरे। अमरकोष में लिखा है कि जिसके देखने से तृप्ति न हो उसे आसेचनक कहते हैं (३।१।५३)।

आश्चर्यित (१८४।४) : चकित

आशाकरटिन् (२८।१) : दिग्गज

इत्वरः (३३१।४) : शीघ्र गमनशील, आवारा

इन्दिरानुजः (रत्नाकर इवेन्दिरानुजेन, ३४२।४) : चन्द्रमा। इन्दिरा लक्ष्मी का नाम है। लक्ष्मी और चन्द्रमा दोनों की उत्पत्ति समुद्र से मानी जाती है। इस नाते चन्द्रमा लक्ष्मी का लघुभ्राता हुआ। इस अर्थ साधर्म्य के आधार पर सोमदेव ने इस शब्द का गठन किया है।

इन्दिन्दिरः (१२१।३) : भ्रमर

इन्दिरामन्दिरम् (१८९।४) : लक्ष्मीनिवास, विष्णु का एक नाम।

इन्दुमणिः (२०५।५ उत्त०) : चन्द्रकान्त

इरंमदः (इरंमददाहदूषितविटपः पादप इव, २२७।२ उत्त०) मेघ

इरंमददाहः (२२७।२ उत्त०) : बिजली

ईषा (रविरथेषाडम्बरम्, ३०।३) : लम्बी लकड़ी जो हल या रथ में लगायी जाती है। हल की लकड़ी हलीषा कहलाती है। बुंदेलखण्ड में अभी भी हल की लकड़ी को हरीस कहते हैं। लांगलीषा, हलीषा इत्यादि प्रयोग व्याकरण ग्रन्थों में मिलते हैं। साहित्य में इसका प्रयोग कम देखा जाता है।

उच्चिचलिंगम् (लपनचापलच्युतोच्चिचलिंग, १९८।१ उत्त०) : अनार

उटजम् (२१८।९ उत्त०) : घर

उडुप (तरंगवेडिकोडुपसंपन्नपरिकराः, २१७।१ उत्त०) : डोंगी

उत्तंसः (२४६।२) : कर्णपूर, मुकुट

उत्तायकः (उत्तायकस्य हि पुरुषस्य हस्तायातमपि कार्यं निधानमिव न सुखेन जीर्यति, १४३।५ उत्त०) : उतावला

उत्तायकत्वम् (केवलमत्रोत्तायकत्वं परिहर्तव्यम्, १४३।५ उत्त०) : उतावलापन, जल्दीबाजी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तारः (६१६।६) : उत्कृष्ट

उत्तानशयः (२३२।६) : ऊपर को मुँह करके सोना

उद्भेदः (२२।६ उत्त०) : अंकुर

उद्धानम् (२२७।४ उत्त०) : अंगार

उदकद्विप (उद्दामोदकद्विपदशनदश्यमान, २०९। ३ उत्त०) : जलगज उदक् और द्विप शब्दों को मिलाकर जलहस्ती के अर्थ में सोमदेव ने यह एक नया शब्द बना दिया है।

उदक्या (३३२।१) : रजस्वला स्त्री मनु० ४.५७।५, भाग० ६।१८।४९ में भी यह शब्द आया है।

उदन्या (अनन्यसामान्योदन्यानुद्रुत, २००।२ उत्त०) : प्यास

उदन्तः (मिथः संभाषणकथा प्रावर्तातायमुदन्तः, २२४।४) : वार्ता

उदारम् (२।२) : अति मनोहर

उदुम्बर (६६।१ उत्त०) : श्रुतसागरने इसका अर्थ जन्तुफल किया है। जैन साहित्यमें बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर इन पाँच फलों को उदुम्बर कहा जाता है। इनमें सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं, इसलिए जैन गृहस्थ को इनका खाना त्याज्य है।

उन्माथः (४७।६) : हिंसक

उन्दुरः (उन्दुरमूत्रमितकुथितातस्य तैल, ४३।२ उत्त०) : मूषक, चूहा

उप्तम् (लवने यत्र नोप्तस्य, १६।७) : बोयी हुई फसल

उपकण्ठम् (१८०।३) : ग्राम या नगरके बाहर का निकट प्रदेश।

उपकार्या (२२१।६) : तम्बू

उपदंश (ऐर्वारुकोपदंशनिकायम्, ४०४।७) : चबैना, किसी भी चीज को अवकाश के क्षणों में रुचि के लिए चबाना (मो० वि०)।

उपन्यासः (तथोपन्यासहीनस्य वृथा शास्त्रपरिग्रहः, ४८१।४) : कथन, प्रयोग (मालवि० १।३।८)।

उपलम्बा (उपलम्बाप्रलम्बस्तम्बविलम्बमान, १९८।३ उत्त०) : लता

उपस्पर्शन : (आचरितोपस्पर्शनः, ३२३।६) : आचमन, मो० वि० में उपस्पर्शनम् का अर्थ स्नान दिया हुआ है।

उमा (अविषमलोचनोऽपि सम्पन्नोमासमागमः, ५३।३) : कीर्ति, पार्वती

उपसंव्यानम् (८२।७ उत्त०) : अधोवस्त्र

उरणः (२१९।२ उत्त०) : भेड़

उल्लोचः (१९।१, ५९५।९) : चन्द्रातप या चंदोवा

औशीरम् (लयनशिलाश्लाघ्यमेखलः परिकल्पितौशीर इव, १३४।२) : बिस्तर

एकानसी (एकानसीमनुप्राप्य, २२६।१ उत्त०) उज्जयिनी

एकायन (३७२।२) : एकाग्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकशृंगमृगः (विषाणविकटमेकशृंग-मृगमण्डलमिव, ४६१।७) : गैंड़ा हाथी

एडः (जड एव एडो वा, १३९।४ उत्त०) : बधिर, बहरा (देशी)

एणायित (१२८।५) : मृग के समान आचरण

ऐकागारिकः (परिमुषितनगरनापित-प्राणद्रविणसर्वस्वमेकमेकागारिकम्, २४५।१७) : चौर

ऐलकः (छगलाविकैलकसनाथस्य, २२१।७ उत्त०) : भेड़। (प्राकृत एलग दस० ५.१।२२, पन्न० १) (महा० ३।१४२।३७)

ऐर्वारुकम् (असमस्तसिद्धैर्वारुकोपदंश-निकायैः, ४०४।७) : कड़वी ककड़ी। कड़वी कचरिया (अम० २।४।१५६)

औधस्यम् (स्मरसंमर्दर्छादितोधस्यैः, २४९।३) : दुग्ध

औदनम् (जीर्णयावनालौदनादि, ४०४।५) : भात

क्वथ्यमान (क्वथ्यमानासु जलदेवता-नामावसथपरसोपु, ६६।५) : उबलना संभवतया आयुर्वेद का क्वाथ (काढ़ा) शब्द भी इसी से बना है। इस तरह क्वथ्यमान का अर्थ होगा, काढ़े की तरह उबल कर छनकना–कम पड़ जाना। संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग नहीं मिलता। वास्तव में मूलतः यह वैद्यक-शास्त्र का ही शब्द ज्ञात होता है। अन्यत्र भी सोमदेव ने इसका प्रयोग किया है (संशुष्यत्सरिति क्वथत्तनु-मिति, ५३४।१)।

कृकः (१९०।१ उत्त०) : गर्दन

कृष्णलेश्या (कृष्णलेश्यापटलैरिव, २४८।२४ उत्त०) : लेश्या जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। जीव के ऋजु और वक्र आदि भाव लेश्या कहलाते हैं। इसके छह भेद हैं—पीत, पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील, कापोत। सबसे ऋजु परिणाम वाले जीव की शुक्ल लेश्या मानी गयी है और सबसे कुटिल परिणाम वाले की कृष्ण लेश्या।

कः (१००।५) : वायु

ककुभः (कुंभीरभयभ्राम्यत्ककुभकुहूत्कार मुखरम्, २०८।५ उत्त०) : बाल कुर्कुट

कजम् (कजकिंजल्ककलुषकालिन्दी, ४६४।२, कजकिंजल्कपुंज, २०७।४ उत्त०) कमल का एक अर्थ पानी भी कोश ग्रन्थों में है। उसी से 'के जायते इति कजम्' इस प्रकार कमल अर्थ में कज का प्रयोग किया है।

कच्छपः (२०९।३ उत्त०) : कछुआ

कटकः (४५१।६) : सेना

कटिन् (१६९।३ उत्त०) : जंगली सूअर

कदर्य : (कदर्याणां धुरि वर्णनीयः, ४०४।१) : मलिन वस्त्रधारी। श्रुत-सागर ने एक पद्य दिया है—कदर्य-हीनकीनाशकिंपचानमितंपचाः। कृपणः क्षुल्लकः क्षुद्रः क्लीबा एकार्थवाचकाः। अर्थात् ये शब्द एकार्थवाचक हैं।

कदलम् (दधितक्राभ्यां कदलम्, ५१२।९) : केला

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कदलिका (कदलिकाग्रलग्नभुजगाशन-वर्ह, ४६५।६) : ध्वजा

कदली (कदलीप्रवालान्तरंगम्, २००।२ उत्त०) : मृग

कन्दः (विषकिसलयकन्दाः, ५१६।६) : सूरण

कन्दलः (६१३।५) : नवांकुर

कन्तुः (जन्तुः कन्तु निकेतनम्, १।४) : मनोहर

कन्था (भयेन किं मन्दविसर्पिणीनां कन्था त्यजन्कोऽपि निरीक्षितोऽस्ति, ८९।९ उत्त०) : दुर्विधकुटुम्बेषु जरत्कन्थापटच्चराणि, ५७।५) : कपड़ों को सिलकर बनाया गया गद्दा। देशी भाषा में इसे कथरी कहते हैं। श्रुतसागर ने कन्था को कथण्डिका कहा है।

कपिलिका (तूर्णं सज्जसे ताम्बूलकपिलिकायाम्, २५०।७; मुखवासताम्बूल कपिलिके, २९।२ उत्त०) : डिब्बा या डिबिया। इस तरह ताम्बूलकपिलिका का अर्थ हुआ पान का डिब्बा या पानदान।

कमलः (वनस्थलीष्विव सकमलासु, ३९।२) : मृग। साहित्य में कमल का मृग अर्थ में प्रयोग कम मिलता है। सोमदेव के पूर्व बाण ने इसका प्रयोग किया है।

कमली (कमलीव दोषागमरुचिरपि, ४१।२) : चन्द्रमा। कमल का मृग अर्थ कोश में आता है। बाण ने मृग अर्थ में प्रयोग किया है। सोमदेव ने मृग अर्थ में तो कमल का प्रयोग किया ही है, "कमलो यस्यास्तीति कमली" बनाकर चन्द्रमा के अर्थ में कमली का प्रयोग किया है। जैसे मृग से मृगांक बनना है, उसी तरह कमल से कमली बना है।

कमलानन्दन : (२४८।१) : सूर्य

कमलबन्धु : (५७०।५) : सूर्य

कर्करम् (शिखण्डित तटिनिकटकर्करम्, २०९।४ उत्त०) : शिला, नदी के किनारे की पाषाण शिला। श्रुतसागर ने इसे पर्वतदन्त कहा है।

कर्कारु (ईषत्खिन्नकर्कारुकर्कश, ४०५।१) : कलिंग फल, कुम्हड़ा (अम०)। छोटा कुम्हड़ा कर्कारु कहलाता है (भाव० मिश्र ६।१०।५६)।

कर्मन्दिन् (कर्मन्दीव न तृप्यति विषविषमोल्लेखेषु, ४०८।२) : तपस्वी

करकः (मेघोद्गीर्णपतत्कठोरकरकासारत्रसत्, ७४।६) : ओला

करलः (सारिकाशावसंकुलकुलायकरलोपकण्ठ, १०२।३) : वृक्ष। श्रीदेव ने एक अर्थ मचकुन्द भी दिया है। अर्थात् करल वृक्ष सामान्य अर्थ में भी प्रयुक्त होता है तथा मचकुन्द नामक वृक्ष विशेष के भी अर्थ में।

करशाखा (१४२।३) : अंगुलि

करटी (चन्द्रार्धविंशतिनखः करटी जयाय, ३०१।८) : हस्ती। महाभारत (१।२२१०।२०) में हस्ती के लिए करट शब्द आया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करटिरिपुः (५६।३) : सिंह

करपत्रम् (१२३।८) : करोंत, आरा

करिवैरिन् (२०१।६ उत्त०) : सिंह

करंकः (चूर्ण्यमानकरंकप्राकारम्, ४८।५) : कंकाल, मरे हुए पशु के शरीर का ढांचा।

कलशी (निरवधिप्रधावप्रारम्भैर्मथ्यमान पयस्यां कलशीमिव, २१५।७ उत्त०) मथानी

कलहित (६१९।८) : क्रोधित

कलम् (आमलकशिलातलमिव स्वच्छ-कलम्, २०९।७ उत्त०) : काय, शरीर

कलिः (युगत्रयावसानमिव कलिपरि-गृहीतम्. १९५।४ उत्त०) : हरड़ का पेड़, कलिकाल

कलाची (मृणालवलयालंकृतकलाचो-देशाभिः ५३२।५) : कलाई

कवचम् (असमनीकरसमिद्धकवचम्, १९७ ३ उत्त०) : पर्पट वृक्ष

कंकेलकः (कंकेलकोपलसंपादितभित्ति-भंगिकासु, ३८।५) : स्फटिक मणि

कंचुलिका (देव्याः कंचुलिका मदन-मंजरिकानामाग्राहि, २१६।४ उत्त०): दासी, अन्तःपुरकी वृद्ध दासी। जिस प्रकार अन्तःपुर का वृद्ध परिचारक कंचुकी कहलाता है उसी प्रकार वृद्ध परिचारिका के लिए सोमदेव ने कंचुकि शब्द का प्रयोग किया है।

कषपट्टिका (३७६।१२) : कसौटी। यह शब्द श्रुतसागर ने निकषाश्म के पर्याय में दिया है।

कशा (समर्पितकशावशेषकदनकन्दुक-विनोदविनीताजानेयजुहूराणनिवहः, २१४।४) : कोड़ा। घोड़े को हाकने वाला चमड़े का कोड़ा जिसे आजकल चामकोड़ा भी कहते हैं।

कशिपु (३४६।३) : भोजन और वस्त्र

कस (३५१ ६) : जाओ

कक्षः (२५०।२) : लता

क्रव्यादः (क्रव्यादसमाजसंह्वयव्यसनः ११८।७) : राक्षस

काकतालीयन्याय (२४९।३) : असं-भावित संयोग काकतालीयन्याय कह-लाता है। कौआ ताल पर आकर बैठा और ताल का फल गिरा। यद्यपि ताल का फल गिरना ही था, किन्तु कौआ का आना एक संयोग हुआ। कौआ का आना और ताल का गिरना यह काकतालीयन्याय है।

काकमाची (गुडपिप्पलिमधुमरिचैः सार्धं सेव्या न काकमाची,५१२।१०) : मकोय, वायसी (अम० २।४।१५२) : आयुर्वेद में यह महत्त्वपूर्ण औषधि मानी जाती है (भाव० मिश्र, ६। ४।२४६–४७)।

काकनन्तिका (काकनन्तिकाफल-मालोपरचित, ३९८।४) : गुंजाफल, गुंमची

काकोलः (उलूकबालकालोकनाकुल-काकोलकुल.१०२।१) : कौआ (महा० उ० ५।१२, याज्ञ० स्मृ० १।१७४, महा० ११।१६।७)।

कांचनार (१०६।१) : कचनार पुष्प

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कातरेक्षण: (कातरेक्षणविषाणक्वाण-विनिवेदित, ३९९।१) : महिष

काद्रवेय: (अक्रमगति काद्रवेयेषु, २०२।४) : सर्प (शिशुपाल० २०।४३)

काण्ड: (केतुकाण्डचित्रै:, १८।४): दण्ड, ध्वजा का डंडा या बांस

कामवत् (अधोक्षजमिव कामवन्तम्, २९८।४) : यह गजशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। समस्त प्राणियों को मारने की इच्छा रखने वाले गज को कामवत् कहा जाता है। मो० वि० में इसका केवल तीव्र इच्छावान् (डिज़ायरस) अर्थ दिया है।

कारण्ड: (उत्तरलतरतरत्कारण्डोच्चण्डतुण्ड–,२०८।१ उत्त०) चक्रवाक

कारवेलम् (कोहलं कारवेलम्, ५१६।७) : करैला

कालशेयम् (कट्वलकालशेयविशिष्ट:, ४०६।४): तक्र, मट्ठा, छांछ

कालागुरु (३६८।५) : कृष्ण अगर चन्दन

कालिदास: (अकविलोकगणनमपि सकालिदासम्, १९६।१ उत्त०) : आम्रवृक्ष

कालेय: (२४३।४) : केसर

कालेयकलंक: (कालेयकलंकपंकिलाचार १६३।३) : लोकापवाद

काश्यपी (काश्यपीश्वरेण, १४५।३): पृथ्वी (महा० १३।६२।६२, भामिनी वि० १।६८)

कासर: (सा मृत्वा कमनीयबालधिरभूच्छागी पुन: कासर:,२२५।२ उत्त०): भैंसा। एक अन्य प्रसंग में (४८।५) भी सोमदेव ने इसका प्रयोग किया है।

काहल: (मिथुनचरपतंगप्रलापकाहले, २४७।६): गम्भीर। सोमदेव ने काहल नामक वादित्र का भी उल्लेख किया है।

कांदिशीक (कांदिशीक इवानवस्थित-क्रियोऽपि, ४१।२) : भय से भागा हुआ

किंपाक (किंपाकफलमिवापातमधुर:, ९७।७ उत्त०): कच्चा अथवा दोषपूर्ण पका। रामायण में (२।६६।६) किंपाक का उल्लेख आया है।

किंपिरि (किंपिरिपर्यन्तस्फुरत्कृशानु–१९।३) : उपरितल, छत

किर्मीर: (किर्मीरमणिविनिर्मितत्रिशरकण्ठिकम्, ४६२।१): चितकबरा

कीकट: (कीकटानामुदाहरणभूमि:, ४०३।६) : निर्धन

कीकस (११६।२) : हड्डी

कीर्तिशेष (१९२।२ उत्त०) : मृत

कुज: (भूर्जकुजवल्कलदुकूले, २४६।२) : वृक्ष। पृथ्वी का एक नाम कोश ग्रन्थों में 'कु' भी आता है। उसी से बनाकर कुज का वृक्ष अर्थ में प्रयोग किया है।

कुट: (पलितांकुरितकुटहारिकाकुन्तलकलापै:, ५६।२) : घट। पानी भरने वाली नौकरानियों के लिए सोमदेव ने कुटहारिका शब्द का प्रयोग किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुट्टिमभूमिः (यत्र स्खलद्‌गतैर्बालैः कान्ताः कुट्टिमभूमयः, १९७।५) : आंगन

कुठः (२०९।१) : वृक्ष। श्रुतसागर ने कुठार की व्युत्पत्ति देते हुए लिखा है– कुठान् वृक्षान् इयर्ति गच्छतीति कुठारः।

कुड्या (स्तबकरचितकुड्याः, ५३४।४): भित्ति, दीवाल

कुण्ठः (१८०।३) : मन्द

कुत्कीलः (स्फटिकोत्कीर्णक्रीडाकुत्कीलैरिव, २१।२) : पर्वत। क्रीडाकुत्कील अर्थात् कीड़ापर्वत। कुत्कील का उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है (सर्जार्जुन विजयिषु कुत्कीलकुजेषु, ५४३।४)। मो० वि० में कुकील शब्द पर्वत के लिए आया है।

कुतपिन् (नृताय वृत्तः कुतपीव भाति २२९।२ उत्त०) : नगाड़ा बजाने वाला। कुतप को मो० वि० में एक प्रकार का वादित्र कहा है। सोमदेव ने कुतप से ही कुतपिन् बनाया है।

कुतपांकुर (अम्बुजासनशयमिव कुतपांकुरालंकृतमध्यम्, ३२०।२) : दर्भ या ताजा कुशा। घास

कुन्द (हेमन्त इव पल्लविताश्रितकुन्दकन्दलः, २०९।७) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ अवभृथ (यज्ञोपरान्त स्नान) किया है, जो ठीक नहीं लगता। कुन्द का अर्थ कोशों में कमल आता है।

कुथितम् (उन्दुरमूत्रमितकुथितातस्य तैलधारावपातप्रायम्, ४०४।६) : दुर्गन्धयुक्त। कुथितम् कुथ् धातु से बना है। सोमदेव ने इसका अन्यत्र भी प्रयोग किया है (कुथ्यत्कलेवरकरंकहतप्रचारः, ११७।६; कुथ्यत् स्नसाजालकम्, १२९।१२)। व्याकरण ग्रन्थों में ही इसका प्रयोग देखा जाता है।

किंपचः (किंपचानां प्रथमगण्यः, ४०३।७) : कृपण

कुफणिः (आकुफणिकृतकालायसवलय, ४६२।२) : घुटना

कुम्भिन् (२२१।६) : हाथी

कुम्भिनी (मितद्रवखुरक्षोभितकुम्भिनीभागम्, ४६५।१) : पृथ्वी, सोमदेव ने इसका एकाधिक बार प्रयोग किया है (३०७।६)।

कुम्भीनसः (३७८।२) : सर्प

कुम्भीरः (कुम्भीरभयभ्राम्यत्, २०८।५ उत्त०) : नक्र, मगर, (महा० १३।३।५९)

कुम्पलः (पतत्संतानकुम्पल–, ९७।१) : कोंपल

कुमुदचक्षुष् (१५।७ उत्त०) : चन्द्र

कुररः (कुररकूजितबहलम्, २०९।६ उत्त०) : कुरर पक्षी (रामा० ३।६०।२१)

कुरलः (५६९।३, कुरलालिकुलावलिह्यमानभूलता, ५२५।२) : अलक, घुंघराले बाल

कुरंगिका (२०४।५) : हरिणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुरंगांक : (४५।६ उत्त०) : चन्द्र

कुवलीफलम् (कुवलीफलस्थूलत्रपुष-मणि, ३९८।३) : बदरी फल

कुवलयित (४६५।५) : कुवलय सदृश

कूर्चस्थानम् (कूर्चस्थानविनिवेशितप्रसून समूह, २८.६, उत्त०) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ संभोगोपकरण रखने का स्थान किया है।

कूटपाकल: (करिणां कूटपाकल इव, १०१।७ उत्त०) : हस्ति वातज्वर।

कूर्पर (४४।१०त्त०) : कछुए का खोल

केवलम् (यस्योन्मीलति केवले, २।१) : केवलज्ञान। यह जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। जैन धर्म में ज्ञान के पांच भेद माने गये हैं— मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल-ज्ञान। जो ज्ञान तीन काल के तीनों लोकों के पदार्थों को एक साथ हस्तामलकवत् स्पष्ट जानता है, उसे केवल-ज्ञान कहा गया है।

केसर: (३९।३) : केसर

केसर: (कान्तावक्त्रमधूनि वाञ्च्छति पुनर्यस्मिन्नयं केसर:, ५९०।१०) : बकुल वृक्ष

कैवर्त: (ते च कैवर्तास्तदादेशात्, (२१६।७) : मछुआ

कोकुन्द: (करालककोकुन्दोड्डमरम्, ४०६।११) श्रुतसागर ने कोकुन्द का अर्थ अण्डराणि किया है।

कोण: (कोणकोटिकलकन्दुकान्तर, ३२।१) : किनारे पर मुड़ी हुई लाठी; जैसी आजकल हाकी बनती है।

कोणप: (कोणपकरालकरविकीर्यमाण, ४८।६) : राक्षस

कोथ: (कोथप्रदीर्णतनुतुम्बफलोपमेयाम्, १२२।८) : कुष्टरोग

कोलिक: (१२६।४) : जुलाहा। देशी भाषा में जुलाहा को अभी भी कोरी कहा जाता है।

कोशारोपणम् (करिणां कोशारोपणम-करवम्, ५०६।३) : दांत मढ़ना। यह गजशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। गज के दांतों के किनारों पर लोहे, चाँदी या स्वर्ण से मढ़ना कोशा-रोपण कहलाता है।

कोहलिनीफलम् (कोहलिनीफलपुष्प-योरिव सह भावे, ३१७।३) : कूष्माण्ड, कुम्हड़ा। कुम्हड़ा का फल और पुष्प एक साथ ही बेल में लगते हैं। आगे पुष्प और उसी से लगा हुआ फल होता है। जिस पुष्प में फल नहीं रहता, वह बिना फल के ही झड़ जाता है अर्थात् उसमें बाद में फल नहीं आता।

कौलेयक: (१८६।६ उत्त०) : कुत्ता

क्षपा (४६४।२) : हरदी

क्षिपस्ति: (४३।५ उत्त०) : बाहू

क्षुप: (७०।१ हि०) पौधा

क्षुद्र: (१४७।९ उत्त०): दुष्ट जानवर। मो० वि० में क्षुद्र का अर्थ केवल दुष्ट दिया है।

क्षेत्रज्ञ: (१३।३) : कृषि विशेषज्ञ या कृषक

1 मराठी = खांडवी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेपणिः (३९०।६) : श्रुतसागर ने इसे गोला गोफणि कहा है। देशी भाषा में इसे गुथनिया कहते हैं।

खट्वांकः (४५।२) : कौल सम्प्रदाय के साधुओं का एक उपकरण। सोमदेव ने इसका कई बार प्रयोग किया है।

खद्‌रिका (२६।८ उत्त०) : धूर्त स्त्री

खरकरः (खरकरानुव्रजनपराम्बर, ४।१ उत्त०) : सूर्य

खरमयूखः (७१।१२) : सूर्य

खारपटिकः (आः पापाचार खारपटिक, ४२७।६) : मु० प्रति का कापटिक पाठ गलत है। श्रीदेव ने खारपटिक का अर्थ ठक्र अर्थात् ठग दिया है।

खाण्डवम् (नेत्रनासारसनानन्दभावैः खाण्डवैः, ४०१।४) : खांड (देशी), खाण्डव नामक मिष्ठान्न

खुरली (शस्त्रप्रयोगखुरलीं खलु कः करोतु, ६००।८) : सैनिक व्यायाम

खेटः (खेचरखेट २३३।१ उत्त०) : नीच

खेयम् (३७८।४) : खाई

गृष्टिः (गणतिथिभिर्गृष्टिभिः, १८६।१ उत्त०) : एक बार व्याई गाय। कालिदास ने भो प्रयोग किया है (रघु० २।१८)।

गृध्नुता (२४३।२ उत्त०) : लालच कालिदास ने रघु को लिखा है कि वह अगृध्नु होकर अर्थ का उपार्जन करता था।

गजायित (१२२।८) : गज के समान आचरण

गन्धर्वः (भरतप्रयोग इव सगन्धर्वाः, १२।६) : अश्व

गन्धवाहा (१२८।२) : नाक

गणिका (१५९।४ उत्त०) : हथिनी

गण्डक (प्रचण्डगण्डकवदनविदार्यमाण, २००।३ उत्त०) : गेंड़ा

गर्वरः (खर्वति गर्वरेषु गर्वे, ६८।२) : भैंसा

गलः (यमदंष्ट्राकोटिकुटिलः पपात गलनाले गलः, २१७।८) : मछली पकड़ने का लोहे का कांटा।

गवल (गवलवलयावरुण्डनः, ३९८।४) : महिषशृंग

गायत्री (अवेदवचनमपि गायत्रीसारम्, १९५।५ उत्त०) : खदिर वृक्ष

गिरिकः (३०।१) : गेंद

गिरिकलीला (गिरिकलीलालुलितमहाशिला, ३०।१) : कन्दुकक्रीड़ा

गुडः (गुडपिप्पलिमधुमरिचैः, ५१२।१०) : गुड़,

गुलुंचः (२४४।२) : फूलों का गुच्छा

गुवाकः (गुवाकफलकषायितवदनवृत्तिभिः, ४६६।३) : सुपारी का पेड़

गुह्या (गुह्याविहितमेहनः, ३९८।३) : लंगोट

गोमिनी (गोमिनोपतिश्यालवपुषि, ७७।६) : लक्ष्मी

गोसवः (११७।४ उत्त०) : गोयज्ञ

गोष्ठम् (१८४।४ उत्त०) : गोशाला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौरखुरः (गौरखुराकुलितहस्तैः, १४५।१): श्रुतसागर ने इसका अर्थ गर्दभ के समान पशु किया है। कोशों में गौर को मृग विशेष कहा है।

गौरधामन् (२३१।३): चन्द्रमा। मो० वि० में गौर शब्द चन्द्र के लिए दिया है।

घर्घरमालिका (मुक्त्वा घर्घरमालिकां कटितटात्, २३४।५): कांची, करधनी

घङ्घा (महाघङ्घाघ्रातचित्तस्य, ४४६।९): तृष्णा। निर्णयसागर वाली प्रति का जंघा पाठ गलत है।

घनः (१९४।३ उत्त०): समूह, घनीभूत

घटदासी (४३४।१): नौकरानी

घोटिका (५३।३ उत्त०): घोड़ी

घोरघृणिः (६६।३): सूर्य

चक्रकम् (अवालमालूरमूलकचक्रकोपक्रमम्, ४०५।१): खट्टे पत्तोंवाला साग। खटुआ देशी भाषा में प्रचलित है।

चक्रिन् (४१३।५): कुम्हार

चण्डभावः (२६९।९): गुस्सा मो० वि० में चण्ड शब्द आया है। अत्यन्त क्रोधी स्त्री को चण्डी कहते हैं (चण्डी त्वत्यन्तकोपना)।

चण्डातकम् (१५०।६): जांघिया, घंघरी

चन्द्रः (१७३।६): स्वर्ण, कर्पूर

चन्द्रकापीड (कृतकार्धचन्द्रचुम्बितचन्द्रकापीड, ३९७।७): मयूर की पूँछ का बना मुकुट

चन्द्रलेखा (धूर्जटिजटाजूटमिव चन्द्रलेखाध्यासितम्, १९५।३): वाकुची। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।

चमूरः (१४४।५): व्याघ्र

चलनः (३४।४): पैर

चार्वी (चार्वी चिनोति परिमुंचति चण्डभावम्, २६९।९): बुद्धि

चाषः (चाषच्छदमूर्छत्, २०।२): भास पक्षी, जलकाक

चिकुरः (३८।२): केश

चित्रकः (नाटेरमित्र सचित्रकम्, १९४।२): चीता

चित्रशिखण्डि (चित्रशिखण्डिमण्डली, ९२।४): सप्तर्षि। मरीचि, अंगिरस, पौलस्त्य, अत्रि, पुलह, क्रतुः तथा वशिष्ठ ये सप्तर्षि माने जाते हैं (महा० १२।३३५,२९)।

चिपिटः (अनवरतचिपिटचर्वणदीर्णदशनाग्रदेशैः, ४६६।३): चिउड़ा, चावल का चिउड़ा

चिर्भटिका (अभृष्टचिर्भटिकाभक्षण, ४०५।१): कचरी, छोटा फूट

चिल्ली (तरंगरेखाश्चिल्लीषु, १९१।४): भौंह। चिल्ली एक प्रकार का साग भी होता है, जिसका सोमदेव ने अन्यत्र उल्लेख किया है (५१६।७)।

चिलीचिमः (चिलीचिमनिरीक्षणः, २१३।१): मत्स्य

चुरी (१९८।६ उत्त०): कच्चा कुआँ

चुलुकी (२१६।२ उत्त०): मगरी या मगरनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चुलुकीसूनुः (तेन चुलिकीसूनुना, २१६।२ उत्त०) : मगर

चूण्ढी (चौण्ढ्यं धनानां पुनः, ५२०।२) : चूरी बिना बंधा छोटा कुआँ। हेम-नाममाला में चूरी और चूण्ढी दोनों शब्द आये हैं, अन्य कोशों में केवल चूरी शब्द मिलता है। सोमदेव ने दोनों शब्दों का प्रयोग किया है (विलातवेल्लिकोचवुलिंचितचुरीवारि–१९८।६ उत्त०)।

चेटकः (४२३।६) : परस्त्री-लम्पट

चेतक : (१७१।२ उत्त०) : हरड़ का पेड़

चेतोभवः (५३१।१) : कामदेव

चोलकम् (४३९।७, ४६६।४) : चोला, चागा अर्थात् एक प्रकार का लम्बा कोट।

छागलधेनुः (२२२।५ उत्त०) : बकरी

छेकः (९०।२) : चतुर, होशियार

जगत्स्रष्टा (३८१।८) : महादेव

जरण्डः (१२६ ८) : पुराना, जीर्ण

जनुषान्धत्वम् (६७।१ उत्त०) : जन्मान्धत्व

जनापवादः (१४८।९ उत्त०) : लोकापवाद।

जम्बूकः (जलनिधिमिव जम्बूकाध्युषितम्, १९४।४ उत्त०) : शृगाल, वरुण

जरूथम् (पिथुरार्पितजरूथमन्थरकपालशकलम्, ४७।६) : गीला मांस

जातवेदस् (३६ ३ हि०) : अग्नि

जातिस्मरणम् (तदाकर्णनाच्च संजातजातिस्मरणो, २६४।२० उत्त०) : यह जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। कर्मों के विशेष क्षयोपशमके कारण पूर्व जन्म या पूर्व जन्मों के वृत्त का स्मरण जातिस्मरण कहलाता है।

जानक (जानकोत्रासितहरिण, १९८।३ उत्त०) : श्रुतसागरने जानकका अर्थ आरण्यवृषभ या बानर किया है। सोमदेव के सन्दर्भ से वानर अर्थ ही अधिक उपयुक्त लगता है।

जीवन्ती (चिल्ली जीवन्ती, ५१६।७): राजडोडी

जुहूराणः (विनीतराजानेयजुहूराणनिवहा, २१४।४) : अश्व

जेमनम् (जेमनावसरेषु स्वहस्तवर्तितकायै, १८२।२ उत्त०) : जीमनवार (देशी), भोज

जैवात्रिकमंत्रम् (यायजूकलोकैर्जनित जैवात्रिकमन्त्रैः, ३२४ ३) : आयुवर्धक मन्त्र

झिल्लीका (झिल्लीकाझल्लरीस्वरसूचित, २४६।५) : झिल्ली नामक कीड़ा। अभी भी इसे झिल्ली कहते हैं। यह प्रायः बरसात में अधिक पैदा होते हैं और सन्ध्या होते ही बोलने लगते हैं।

टिरिटिल्लितम् (विजहीत धनयौवनमदोल्लासितानि टिरिटिल्लितानि, ३७१।४, मिथ्या वषट्टिरिटिल्लितं न सहते, ३९६।५) : व्यर्थ बकवास, देशी भाषा में जिसे टें टें मचाना कहते हैं। सोमदेव ने यह शब्द ध्वनि के

१ मराठी = तांदूळजा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधार पर लोक भाषा से स्वयं निर्मित किया लगता है। कोश ग्रन्थों में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

डामरिकः (डामरिकनिकायसायकविद्धवृद्धवराह, १९८।७ उत्त०) : बहेलिया। श्रुतसागर ने डामरिक का अर्थ चोर किया है पर सोमदेव के प्रयोग से बहेलिया अर्थ अधिक उपयुक्त लगता है।

तण्डुलीयः (वास्तूलस्तण्डुलीय, ५१६।७) : श्रुतसागर ने इसे अल्पमरिचशाक कहा है। इसे आजकल चौलाई कहते हैं।

तपस्विनी (समर्थस्थानमिव तपस्विनीप्रचुरम् १९५।२ उत्त०): मुण्डीकह्लार

तमंग (१८१।८) : तमंग, कगूरा

तमोपहः (३७२।८) : सूर्य

तमोरातिमंडल (७।६ उत्त०) : सूर्य

तर्कुकः (विभवाभिवृद्धिस्तर्कुकलोकसंतर्पणाय, २६६।३ उत्त०) : याचक

तर्ण (तरीतर्णतुवरतरंग २१७।१ उत्त०): नदी में तैरने के लिए बनाया गया घास का घोड़ा।

तर्णकः (राजन्ते यत्र गेहानि खेलत्तर्णकमण्डलैः, १९७।३, अभ्यर्णतर्णकस्वनाकर्णनोदीपेन, ११।७ उत्त०) : वत्स, बछड़ा

तरण्ड (तरीतर्णतुवरतरंगतरण्ड, २१७।१ उत्त०) : पानी पर तैरनेवाला काठका पटिया जिसे फलक कहते हैं।

तरक्षुः (तरक्षुचक्षुर्दुर्लक्ष्य, १९८।६ उत्त०) : जंगली कुत्ते

तरसम् (तरसरसिकराक्षस, ६।५ उत्त०) : कच्चा मांस

तरी (तरीतर्णतुवरतरंगतरण्ड, २१७।१ उत्त०) : नौका

तल्लः (५२३ ६) : ताल

तलवरः (२४५।१७ उत्त०) : अंगरक्षक, कोतवाल

तलिका (८३।३) : कड़ाही

तलिनम् (३०९।५) : सूक्ष्म, छोटा

तारः (२०९।६) : तारा, नक्षत्र

तारेश्वरः (तारेश्वर इव चतुरुदधिमध्यवर्तिनः, २०९।६): चन्द्रमा। तारा या तारक नक्षत्रों को कहते हैं, उनका ईश्वर तारेश्वर।

तुवरतरंगः (तरीतर्णतुवरतरंग, २१७।१ उत्त०) : पानी पर तैरने वाला काठका पटिया। श्रुतसागर ने इसका अर्थ 'दोधिकफलतरणोपाय' किया है।

तूलिनी (तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृतिः, ३९७।७) सेंमल का पेड़

त्रपुः (१८५।७) : रांगा

त्रिनेत्रम् (१९७।२ उत्त०) ; नारियल

त्रोटी (२४९।२) : चूंच

दधिमुखः (१६२।५ उत्त०) : गधा

दर्पः (२५३।१) : कामदेव, मो० वि० में दर्पक शब्द कामदेव के लिए आया है।

दशबलः (२०२।२) : बुद्ध

दंशः (५८७।२) : दांत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्रविणोदशम् (समेधितमहसं द्रविणोदशम्, ३२४।२) : अग्नि

द्वयातिगः (परिकल्पितौशीर इव द्वयातिगानाम्, १३४।२) : रागद्वेषरहित

दन्दशूकः (कुपितेनोर्ध्वचलितदृशा दन्दशूकेश्वरेण, ६६।४) : सर्प। दन्दशूकेश्वरः = शेषनाग

दन्ति (१९४।१ उत्त०) : हाथी, पर्वत

दभ्यमानः (क्वचिद्दभ्यमानसागरगण २४९।२) : खेदित। दभ् धातु से दभ्यमान बना है।

दर्दरीकम् (१०३।२) : अनार

दरदः (दरदद्रवापाटलफलकान्ति, ४६४।४): हिंगु या हींग

दशलोचनः (दशमं दशलोचनदंष्ट्रांकुरात्, ४४२।२) : यम

दृष्टान्त (२२३।५ उत्त०) : मृत्यु

दृतिः (चर्मकारदृतिद्युतिम्, १२५।२) : चमड़े की मसक

दाक्षायणीदेशः (कर्बुरितसर्वदाक्षायणीदेशम्, ४६६।६): आकाश,हलायुध कोश में यह शब्द आया है।

दार्वाघाटः (अखर्वगर्वदार्वाघाटपेटक, २०७।५ उत्त०) : सारस

दारू (नादत्ते दारवं पादपरित्राणम्, ४०८।१): काष्ठ। देवदारु में दारु शब्द अब भी सुरक्षित है। बुंदेलखण्ड में कहीं-कहीं लकड़ी को अभी भी दारु कहा जाता है।

दासेरकः (दलितदामदासेरार्भक, १८५।१) : ऊँट

द्वापर (३७२।८) : संदेह

दिव्यचक्षुस् (१२८।१) : अन्धा

द्विजातिः (वसन्त इव समानन्दित द्विजातिः, २१०।२) : कोकिल

द्विजिह्वः (३४६।४) : दोगला, चुगलखोर, सर्प, दुर्जन

द्विपः (१९९।२ उत्त०) : हाथी

द्विरदनः (द्विरदनकुलेषु, ११।४ उत्त०) : हाथी। संभवतया यहाँ द्विरद और नकुल दो पद हैं। श्रुतसागर ने एक पद माना है और हाथी अर्थ किया है।

दिनाधिपः (१९७।३ उत्त०) : सूर्य

दिवाकीर्तिः (दिवाकीर्तेः नप्ता, ४०३।४) : नाई

दीदिवि (अतिदीर्घविशदच्छविभिर्दीदिभीः, ४०१) : भात

दीविन् (उदीर्णदर्पदीवितुमुलकोलाहल, २०८।७ उत्त०) : जल सर्प

दुमलः (बलवद्बलालोन्मीलितदुमलाकुलकलभप्रचारम्, १९९ ७ उत्त०) : वृक्ष

दुर्वर्णम् (द्रुतदुर्वर्णरसरेखारुचिभिरिवमरुमरीचिवीचिभिः, ६६।२) : चाँदी। सोमदेव ने इसका प्रयोग एकाधिक बार किया है। (१०।८)

दुस्फोट (१४५।१) : मूसल

द्रुहिणद्विजः (द्रुहिणद्विजकुलकोलाहले, २४८।६) : हंस। ब्रह्मा का एक नाम द्रुहिण भी है। हंस उनका वाहन है। इसी आधार पर सोमदेव ने हंस के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए द्रुहिणद्विज शब्द का प्रयोग किया है। अन्यत्र ऐसा प्रयोग नहीं मिलता। सोमदेव ने हंस के लिए एक स्थान पर द्रुहिणवाहन भी कहा है (द्रुहिण-वाहनस्थितिप्रभेदिषु, ७२।२)।

देवखातः (मरुस्थलेष्विव देवखातेषु, ६८।५) : अगाध सरोवर

दैर्घिकेयम् (परिम्लायत्सु दैर्घिकेय-कान्तारेसु, ६७।३) : कमल, दीर्घिका में उत्पन्न होने वाला। अर्थ के आधार पर सोमदेव ने यह शब्द स्वयं रच लिया है। कोश ग्रन्थों में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

दौलेयः (पंकिलगर्तगर्वरमिलद्दौलेय-वालैः २१७।५ उत्त०) : कच्छप, कछुआ

द्युसदः (१९८।६) : देव

ध्वजिन् (ध्वजकुलजातस्तातः, ४३०। १) : तेली

ध्यामलम् (निर्धर्मधूमध्यामलेषु, ६६। १) : मलिन

धगद्धगिति (२२७।३ उत्त०) : धगधग होता हुआ, व्यवहार में धधक-धधक कर जलना का प्रयोग होता है।

धनंजयः (प्रवर्धमानध्यानधैर्यधनंजय– ६२।३) : अग्नि

धृतराष्ट्रः (२०६।५ उत्त०) : धृत-राष्ट्र, हंस

धृष्णिः (अहिमधामधृष्णिसंधुक्षित, १९।३) : सूर्य-किरण

धान्वन्धरा (धान्वन्धरारन्ध्रेष्विव प्रधिषु, ९८।५) : मरुभूमि

धिष्ण्यम् (धनदधिष्ण्यमिवाप्यस्थाणु-परिगतम्, २४६।१) : मन्दिर, कुबेर के मन्दिर को धनदधिष्ण्य कहते थे।

धूमकेतुः (२५४।८) : अग्नि

धेनुः (१८४।६ उत्त०) : दूध देनेवाली गाय

धेनुप्रिया (४९७।६) : हथिनी

धेनुष्या (११।७ उत्त०) : उत्तम गाय

नखायुधः (६८।१) : शेर

नन्द्यावर्त (स्वस्तिकनन्द्यावर्तविन्या-साभिः, २९७।५) : एक मांगलिक उपकरण

नन्दिनी (नन्दिनीनरेन्द्रस्य, १३५।१) : उज्जयिनी

नमतम् (नमताजिनजेणाजीवनोटजा-कुले, २१८।९ उत्त०) : ऊनी नमदे, ऊन को कूटकर जमाया गया मोटा वस्त्र। आज भी कश्मीर में नमदे बनते हैं। निर्णयसागर वाली प्रति का तमत पाठ गलत है।

नरकारि (२९३।७ हि०) : विष्णु

नाकुः (अनेकनाकुनिर्गलनिर्मोक, १९८। ४ उत्त०) : वल्मीक, साँप का बिल जिसे देशी भाषा में 'बांबी' कहा जाता है।

नागरंग (९५।५) : नारंगी

नाटेर (१९४।२ उत्त०) : अभिनेता मो० वि० में नाटेर का अर्थ अभिनेत्री का लड़का किया है।

नाड़ीजंघ (१२४।१० उत्त०) : बन्दर

नाथहरि (उन्माथनाथहरियूथयुद्ध-बाध्यमान, १८५।३) : वृषभ

× मराठी : ५६८०ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नालीकिनी (आकुलभवन्नालीकिनीकाननम्, २१७।३) : कमलिनी

नासीरः (तव नासीरोद्धतरेणुराग, १८५।६) : सेना

निगलः (४४०।९) : लोहे की सांकल

निगद्यागमम् (निगद्यागममिव गहनावसानम्, १९३।५ उत्त०) : गणित शास्त्र

निचिकी (निचिकीनिटलनिक्षिप्यमाण, १८४।८ उत्त०) : गाय। कलोर या उत्तम नई गाय

निचुलः (निचुलमूलविलनिलीन, १०१।६) : वृक्ष

नित्यजागरूकसुतः (१८७।३ उत्त०): कुत्ता

निपः (४९।२) : घड़ा

निपाजीवः (निपाजीव इव स्वामिन्स्थिरीकृतनिजासनः, ३९०।७) : कुंभकार

निलोठनम् (सोपानमार्गेण निलोठितः, १९०।८ उत्त०): लुढ़काना। लुठ् धातु से नि उपसर्गपूर्वक निलोठिन् शब्द बनाया गया है।

निलिम्पकः (१८।२): देव। मो० वि० में निलिम्प शब्द आया है।

निवर्तनम् (त्रिचतुराणि निवर्तनान्यतिक्रान्तम्. १३९।२) : श्रुतसागर ने इसे क्षेत्रमयमान कहा है। व्यवहार की भाषा में दो-तीन, फर्लांग, इसी तरह दो-तीन खेत या निवर्तन कहा गया है।

निशादर्शः (८५।३) : चन्द्र

निशीथिनी (३५७ ४) : रात्रि

निश्रेणीकम् (असौधतलमपि सनिश्रेणीकम् १९७।१ उत्त०): खजूर वृक्ष

निषद्या (२२५।१ हि०): शाला, भवन

निष्कुटोद्यानम् (निष्कुटोद्यानपादप, २०५।३): गृहवाटिका

नीकः (असमनीकरसिकमपि सकवचम् १९७।३ उत्त०) : छोटी नदी, नहर

नेत्रः (१६९।५ उत्त०) : एक प्रकार का मृग

नेत्रम् (३६८।२) : एक प्रकार का महीन वस्त्र

नैकषेयः (गोमायुनैकषेयजुष्यमाण, ४९।२) : राक्षस

पत्सलम् (भवेत्पत्सलवत्सल, ५०८।८): भोजन

पतत्रिन् (२५९।८) : पक्षी

पट्टिशः (प्रासपट्टिशबाणासनम् ४६५।१) : पट्टिश नामक अस्त्र

पटोलम् (नेत्रचीनचित्रपटीपटोलरल्लिका, ३६८।२) : गुजरात की पटोल नामक साड़ी या पटोल वस्त्र।

पर्पटः (सद्यः संभृष्टाः पर्पटाः, ५१६।८): पापड़

परमान्न (शर्करासंपर्कसमासन्नैः, परमान्नैः, ४०२।४) : खीर

परिणयः (८१।६ उत्त०) : विवाह

परिधानम् (परिधानेन वृत्तमौलिः पुमानिव, ३८५।८): धोती, 'परदनिया' देशी भाषा में आज भी प्रचलित है।

परुषरश्मिः (५९७।१ उत्त०): सूर्य

परेष्टुका (पूगतिथिभिः परेष्टुकाभिः, १८६।१ उत्त०): बहुत बार ब्याई हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गाय (प्रचुरप्रसूता)।

पल्लवकः (मुनिद्रुमदलेष्विवसंकोचनोचितेषु पल्लवकलोकसूपाटीपटेसु, ११।२ उत्त०) : विद्वान्

पलाण्डुः (पलाण्डुमुण्डिकाडम्बरम्, ४०५।५) : प्याज

पलाशः (४८।३): राक्षस

पलिक्नी (संख्यातीताभिः पलिक्नीभिः, १८६।२ उत्त०): गाभिन गाय

पलिशः (पलिशदेशाश्रयिणा तेन, १८०।२ उत्त०) : जहाँ बैठकर मृग का शिकार किया जाता है उसे पलिश कहते हैं।

पवनाशनः (१९।६) : साँप

पवनकन्यका (५३१।४): चमर ढोरने वाली कृत्रिम पुत्तलियाँ

पश्यतोहरः (२५८।८): देखते-देखते चुरा लेने वाला चोर, सुनार

पस्त्यम् (पस्त्यभित्तिमणिद्योतैः, २०६।१) : गृह, सोमदेव ने पस्त्य का एक से अधिक बार प्रयोग किया है (प्रचेतः पस्त्यमित्राप्यजडाशयम्, ३४५।५)।

पृषतः (पृषत्खुरखण्ड्यमान, २००।२ उत्त०): मृग, सेहुल

पृषदाज्य (पृषदाज्येनाभिक्षया च समेधित महसम्, ३२४।२): ताजा घी

पृषदश्वः (चापलविलासः पृषदश्वेषु, २०२।२): वायु

पंकजातम् (२८१।९): कमल

पंकिलः (१६३।४): पापी

पंकेज (४१६।६): कमल

पंचजनाः (नगनगरग्रामारण्यजन्मसमवायैः पंचजनैः, १४५।४): मनुष्य, पंच लोग

प्रजापति (२०६।२ उत्त०): राजा

प्रचलाकिन् (उपरितनतलचलत्प्रचालाकिबालक, १९।५) : मयूर। भवभूति ने भी प्रचलाकि का प्रयोग किया है (उत्त० २।२९)।

प्रत्यंगम् (असत्यतां नीतोऽयं प्रत्यंगफलनिर्देशः, १९१।२) : सामुद्रिक शास्त्र

प्रत्यवसानम् (१५०।८) : भोजन

प्रतारणम् (७२।२ उत्त०) : ठगना

प्रधावधरणि (प्रधावधरणिष्विव स्रोतस्विनीषु, ६८।५): गजशिक्षा प्रदेश, नगर के बाहर का वह प्रदेश जहाँ गजों को शिक्षित किया जाता था या घुड़दौड़ आदि होती थी। इसका कई बार प्रयोग हुआ है (प्रधावधरणिषु करिविनोदविलोकनदोहदम्, ४९५।८)। इसे करिविनयभूमि भी कहते थे (४८२.५)।

प्रधिः (धान्वन्धरारन्ध्रेष्विव प्रधिषु, ६८।५) : कुआँ

प्रणधिः (अवधीरिताधोरणप्रणिधिभिः, ३०।५) : अंकुश

प्रणालम् (चन्द्रोपलप्रणालाग्रैः, २०५।७) : नाली, परनाला देशी भाषा में प्रचलित है।

प्रायोपवेशनम् (प्रायोपवेशनवासिन्यपि कुट्टिनी, ४२९।३): संन्यास

प्रवहणम् (मदीये निलये प्रवहणं कर्तव्यम्, १५०।२ उत्त०) : पंक्तिभोज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रष्ठौही (बाध्यमानप्रष्ठौहीपक्षम् १८५। ३ उत्त०) : कुछ दिन के गर्भ वाली गाय

प्रसवम् (अनवधिप्रचारप्रसवस्तवक, ४६५।२) : पुष्प

प्रसंख्यानम् (पारिरक्षक इव प्रसंख्यानोपदेशेषु, २३६।२) : गणितशास्त्र

प्रस्फोटनः (प्रस्फोटनस्फारमारुत—२२६।५ उत्त०) : सूर्य

पाकः (शुकपाक, सोत्कण्ठमुत्कण्ठस्व, ३५१।५) : महामत्स्य, श्रुतसागर ने सहस्रदंष्ट्र अर्थ किया है।

पाण्डुरपृष्ठा (५६।५ उत्त०) : कुलटा

पाथोनिधिः (२५०।४) : समुद्र

पामरः (पामरपुत्री च यस्य जनयित्री, ४३०।१) : नीच

पारणा (उपकल्पितपारणास्विव, २।१६।१) : उपवास के बाद का भोजन

पारदरसः (पारदरस इव द्वन्दपरिगतः ११२।१) : पारा

पारिपुंखः (पारिपुंख इवानात्मीनवृत्तिरपि, ४१।१) : बौद्ध

पालिन्दः (पालिन्दमन्दिरोदरतारतरोच्चार्यमाण, २४७।४) : नरेन्द्र, राजा

पालिन्दी (प्रबलानलान्दोलितपालिन्दीसंततिभिः, १९९।६) : तरंग, लहर

पिचण्डः (कथं नामायं पिचण्डः स्फायताम्, ४०२।९) : पेट, तोंद

पिचुमन्दः (पिचुमन्दकन्दलसदनम्, ४०५।३) : नीम। पृ० ७१६ पर भी प्रयोग किया है।

पिण्डी (पिण्डीभाण्डशालिनाम् ४२९। ८) : खली। तैल निकालने के बाद शेष बचा तिलहन का छूँछ—सीठी

पित्तम् (उद्रिक्तपित्तास्विव, ६६।५) : आयु

पिप्पलिः (गुडपिप्पलिमधुमरिचैः, ५१२।१०) : पीपल (छोटी पीपल)

पिष्टातकः (पिष्टातकचूर्णाः, ३३८।४) : पिष्टातक चूर्ण। इसके लिए सोमदेव ने केवल पिष्ट शब्द का भी प्रयोग किया है (२२७।५)।

पिथुरः (पिथुरार्पितजरूथमन्थरकपालशकलम्, ४८।६) : राक्षस

पिंजनम् (२२३।९ उत्त०) : रूई धुनने की पींजन

पितृपति (१५१।३) : यम

प्रियालः (प्रियालमंजरीकणकलित, १०५।६) : प्रियाल वृक्ष

पीलुः (मदतिलकितकपोलं पीलुकुलमिव ४६१।८) : गज

पुटकिनी (पुटकिनीपुटपटलान्तरंगम्, २०७।५ उत्त०) : कमलिनी

पुण्यजनः (पुण्यजनावासमिवाप्यराक्षसभावम्, ३४४।५) : यम, सज्जन व्यक्ति

पुण्ड्रेक्षुः (पुण्ड्रेक्षुकाण्डमंडपसंपादनीभिः, १०३।२) : पौंडा, गन्ना सफेद मोटे गन्ने को अभी भी पौंडा, कहा जाता है।

पुलाकः (३८६।७) : हाथी को खिलाई जाने वाली रोटी।

+ मराठी - भां ६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरुदंशः (पुरुदंशोनिशाखरनखर, ४८।६) : बिलाव, बिल्ली। इसका प्रयोग सोमदेव ने एक से अधिक बार किया है (पुरुदंशोदर्शनप्रकाशकेश, १६१।४)।

पुरधूर्तः (मुग्धेषु पुरधूर्तवत्, ४२३।९) : शृगाल

पुष्पंधयः (गलन्तीषु पुष्पंधयेषु धृतिषु, ६८।२) : भ्रमर

पुष्पदन्तम् (अपहसितपुष्पदन्तं कुवलय-कमलावबोधनाद्देव, ३२८।३) : चन्द्रसूर्य

पुष्पशरः (१६०।७) : कामदेव

पुष्पास्त्रः (१२४।९) : कामदेव

पूतनम् (अराक्षसक्षेत्रमपि सपूतनम्, १९६।३ उत्त०) : राक्षसी

पूतिपुष्पफलम् (पूतिपुष्पफलदुष्टदशा-विदानीं वक्षोरुहौ, १२४।५) : कपित्थ, कैंथ

पूषन् (द्यौः पूष्णा भोगिलोकौ, २३१। ४) : सूर्य

पोगण्डः (पोगण्डचाण्डालादिकादृशीक, ३३२।२) : विकलांग

पौत्री (पौत्री च मुस्ताशनः, ६१।४) : जंगली सुअर

पोताधानम् (कमलमूलनिलीयमान-पोताधानम्, २०८।६ उत्त०) : छोटी मछली

पोरोगवः (समस्तसूपशास्त्राधिगमपाट-वाय पौरोगवाय, २२२।४ उत्त०) : रसोइया

फेलाभुक् (फेलाभुक् प्रतिकूलः, ५११। ३) : जूठनखोर, एक अन्य प्रसंग में फेला को जूठन कहा है (१२८।४)।

बभ्रुः (बभ्रुः शिखण्डतनयश्च भवेत्प्रहृष्टः, ५।११।१०) : नकुल

बस्तः (१८४।५ उत्त०) : बकरा

बृहती (१९५।२ उत्त०) : क्षुद्र वार्ताकि

बृहद्भानुः (५८।१) : अग्नि

ब्रध्नः (ब्रध्नदीधितिप्रबन्धाभिः, ४५।६) : सूर्य

ब्रह्मचारिन् (अप्रथमाश्रममपि ब्रह्म-चारिबहुलम्, १९६।१ उत्त०) : पलाश, पलाश के लिए केवल ब्रह्म-तरु का भी सोमदेव ने उप-योग किया है (३।२, २०१।८ उत्त०)।

बकोट : (अवाचाटबकोटचेष्टितचकित, २०८।५ उत्त०) : बक, बगुला

बालधिः (बालधिषु च नियुक्तयम-दण्डैरिव, २९।१) : पूंछ

+**भण्डनम्** (भण्डनोद्भटरटद्गलान्तरैः, ११५।४, स्वकुलभण्डनाद्भीतम्, ११५।७) : युद्ध, झगड़ा

भण्डिल : (सोऽपि भण्डिलः १९१।५) : कुत्ता

भल्लूकः (हरिणप्रयाणभयभीत-भल्लूकनिकरम् १९८।४ उत्त०) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ शृगाल किया है। देशी भाषा में भालू, रीछ को कहते हैं।

+ मराठी = भाउजी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भविलः (भविल इव नादत्ते दारवं पादपरित्राणम्, ४०८।१) : महामुनि

भ्रमणिका (राजाद्य भ्रमणिकायां गतस्तरुमूल, १०१।९ उत्त०) : वाटिका, श्रुतसागर ने इसका अर्थ वनक्रीड़ा किया है। मुद्रित प्रति का भूमणिकायां पाठ अशुद्ध है।

भृशायमान (५३।३ उत्त०) : तेज गतिशील

+ **भायः** (४२६।८) : बहनोई
भोजप्रबन्ध तथा मो० वि० में भी यह शब्द आया है।

भुजिष्या (सरस्वती विनोदभुजिष्येव, २२३।७) : गणिका

भूदेवः (८८।९ उत्त०) : ब्राह्मण

भोगीन्द्रः (५०४।८) : शेषनाग

मकरः (उन्मत्तमकरकरास्फालनोत्ताललहरिका, २०९।१ उत्त०) : जलगज

मठः (मठस्थानमिदं नैव, ३८३।८) : छात्रालय

मण्डलः (१२।५) : कुत्ता

मण्डलव्यूहः (दण्डासंहतभोगमण्डलविधीन्, ३०४।५) : मण्डलाकार व्यूहरचना

मण्डूकीं (१५३।६ उत्त०) : मेंढकी

मध्यंस्थ : (त्रिविष्टपव्यापारपरायणावस्थे मध्यस्थे, २५०।३) : यम

मधुकः (मधुकलोकविहितमंगलानि, २२८।१) : बन्दिजन, स्तुतिपाठक

मन्दः (स्त्रीवृन्दमिव मन्दस्य, ७।२) : नपुंसक

मन्दः (९५।६) : शनिश्चर नामक गृह

मन्दीरम् (पुराणतरमन्दीरमेखलालंकृत- ३९८।६) : मथानी की रस्सी

मनीषा (गुणेषु ये दोषमनीष–यान्धाः, ११।१) : बुद्धि

मयः (मेषमहिषमयमातंग, १४४।१, मयमुक्तस्फोतफेन, ५२४।३) : ऊँट

मयुः (मयुमिथुनसंगीतकानन्दिनि, २३०।२) : किन्नर, गन्धर्व

मरालः (मरालकुलकामिनी, २०७।४ उत्त०) : हंस

मराली (२४९।४) : हंसी

मरिचः (गुडपिप्पलिमधुमरिचैः, ५१२।१०) : मिर्च

मल्लिकाक्षः (अनेकमल्लिकाक्षकुटुम्बिनी, २०८।२ उत्त०) : हंसविशेष

महामण्डलः (महामण्डलावगुण्ठितगलनाल, ३०९।३) : सर्प विशेष

महीनः (यस्येत्थं तव महिमा महीन) : पृथ्वीपति, राजा। मही–पृथ्वी उसका इनः—स्वामी महीन।

मृगदंशः (१८६।५ उत्त०) : कुत्ता

मृगधूर्तः (परव्यसनान्वेषणाय मृगधूर्तस्येव मन्दमन्दप्रचारः, ४३९।८) : सियार

मृगादनी (वल्लयोऽपि मृगादनीप्रायः, २००।७ उत्त०) : एक प्रकार की लता

मृषोद्यम् (७२।१) : असत्य वचन

माकन्दः (माकन्दमंजरीहृदयंगमः, २१३।१, माकन्दमंजरीव पुष्पाकरस्य, २२३।३) : आम्र

मागधी (रघुवंशमिव मागधीप्रभवम्, १९४।३ उत्त०) : पिप्पली

+ दक्षिण भारत में मामा श्वसुर के लिये प्रयुक्त होता है
*. शुद्ध रूप मेहुणा है।
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्गायुकः (निसर्गान्मार्गायुकक्रमश्च, १८६।७ उत्त०) : मृगया कुशल, शिकार करने में चतुर।

मार्जनीयदेशः (समाश्रित्य मार्जनीयं देशमाचरितोपस्पर्शनः, ३२३।५) : हाथ-पैर धोने का स्थान

मातृनन्दनः (अमहानत्रमीदिनमपि समातृनन्दनम्, १९७।१ उत्त०) : करंज वृक्ष

मातरिश्वः (विनीयमानात्मनि मातरिश्वनि, २५०।५) : वायु

+ **मामः** (भायसमोऽपि च मामः, ४२६।८) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ मामा, श्वसुर किया है। माँ के भाई को व्यवहार में मामा कहा जाता है।

मायाकारः (स्वपरजनपरीक्षणमायाकार मायाकार, १९२।७ उत्त०) : प्रतिहार

मालूरम् (अवालमालूरमूलक...., ४०५।१) : विल्व

माषः (भुंजीत माषसूपम्, ५१२।११) : उड़द

मांहेयी (माहेयीदोहव्याहाराहूयमान : १८५।६ उत्त०) : जिस गाय को दुहते समय घर्र-घर्र की आवाज होती है।

मिण्ठः (स्थानायानेतुमीशाः पयसिकृतरतीन् हस्तिनो नैव मिण्ठाः ७०।२) : गजपरिचारकों का मुखिया, जो गजों को नहलाने-धुलाने आदि का काम करता था। बाण ने भी मेण्ठ का उल्लेख किया है (हर्ष० २०६)। हिन्दी में मेठ शब्द मजदूरी करने वालों के नायक के लिए प्रयुक्त होता है। यहाँ भी संभवतया छोटे गज-परिचारकों के मुखिया जमादार के लिए मेण्ठ आया है।

मुण्डिका (एरण्डफलपलाण्डुमुण्डिकाडम्बरम्, ४०५।५) : शाक विशेष

मितद्रुवः (मितद्रवखुरक्षोभित....४६५।१) : अश्व, सोमदेव ने मितन्द्रु : और मितन्द्रव दो शब्दों का प्रयोग किया है (१४४।१)।

मितंपचः (मितंपचानामग्रेसरः, ४०३।७) : कृपण, कंजूस

मिहिरः (दृष्ट्वेमं मिहिरं जगत्प्रियकरम्, ५४४।६) : मेघ

मेघरावः (वर्षारात्रमिव घनमेघरावम्, १९४।३ उत्त०) : मयूर, मेघों को देखकर मयूर बोलता है। इसलिए भाव के आधार पर मयूर को मेघराव कहा है।

मैथुनिकः (मैथुनिकः सवरकस्यास्तरकस्य ४०३।५) : श्याला, साला-पत्नी का भाई। मराठी में साला को 'मेहुनिया' कहा जाता है। *

मोदकम् (मोदकमन्दमठिकावलोकनात् ८८।५ उत्त०) : लड्डू

मुग्धमतिः (प्रतार्यते मुग्धमतिर्न केन, १४।७ उत्त०) : मन्द बुद्धि

मुनिजनः (काननश्रीरिव संत्वरप्रचुरा मुनिजनगोचरा च, २०६।४ उत्त०) : तापस पक्षी

+ मराठी = मूस
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूलक : (कोलाहलावलोकमूकमूकक-लोकम्, २०८।७ उत्त०) : मंडूक, मेंढक

मूर्छन्ति (२०।२) : निकलना, प्रकट होना के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

मूढ़धीश्वरः (९।९) : समीक्षक

मुर्मुरः (विनिर्मितमुर्मुरोपहारास्विव, ६५।१) : अंगार

मूलक (मालूरमूलकचक्रकोपक्रमम्, ४०५।१, भुंजीतमाषसूपं मूलक सहितं न जातु हितकामः, ५१२।११) : मूली

मूषा+ (वितापमानमूषाशुषिरेष्विव, ६५।३) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ स्वर्ण गलाने वाली घरी किया है। वैसे यहाँ चूहा अर्थ भी संगत बैठ जाता है।

मौकुलिः (संततं धवलमौकुलिनादः, २२९।६) : कौआ

यक्षकर्दमम् (२८।२ उत्त०) : कंकोल, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी को मिलाकर बनायी गयी सुगन्धी। इसे चतुःसम सुगन्धी भी कहते हैं।

यजत्रम्(निर्वर्तितयजत्रकर्मभिः, १८५।३ हि०) : हवन करना

यन्त्रधारागृहम् (३९।१० हि०) : स्नानगृह

यवागूः (८८।९ उत्त०) : लप्सी

यष्टि (३०१।७) : लाठी

यागनागः (२८८।७) : पट्टहस्ति, गजशास्त्र में इसके विशेष गुणों का वर्णन है। सोमदेव ने भी अन्यत्र गज प्रसंग में उनका विवरण दिया है।

यादः (५२३।५) : जलजन्तु

यायजूकः (३२।३) : हवन करनेवाला

यावकः (५६।३ हि०) : अलक्तक

यावनालः (२५६।५ हि०) : जुवार

याष्टीकः (२१४।३ हि०) : प्रहरी

रजनिः(रजनिरसश्चूर्णरजसीव, ४२२।७) : हल्दी

रतिचतुरः (रतिचतुरविकरनखमुखाव-लिख्यमान, ३५।६) : कबूतर

रक्ततुण्डः (१९८।१ उत्त०) : तोता

रक्ताक्षः (१८५।२ उत्त०) : भैंसा

रदिन् (मदनरदिमदोद्दीपनपिण्डे, १५।१ उत्त०) : हस्ती, रदिन् का कई बार प्रयोग हुआ है।

रल्लकः (२००।५ उत्त०) : रल्लक नामक जंगली बकरा। इसके ऊन से बना वस्त्र रल्लिका कहलाता था। सोमदेव ने रल्लिका का भी उल्लेख किया है। कोश ग्रन्थों में रल्लक को एक प्रकार का मृग कहा गया है।

रल्लिका (३६८।२) : रल्लक नामक जंगली बकरे के ऊन से बना वस्त्र।

रसवतीगृहम् (तस्मिन्नेव रसवतीगृहे सकलरसप्रसाधन'''', २२२।६ उत्त०): रसोई घर

रंकुः (२००।३) : एक प्रकार का मृग (नैष० २।८३)।

राजिका (४०६।१) : राई।

रावणशाकः (९८।७ उत्त०) : मांस

रिंगिणीफलम् (२५७।२ हि०) : भट-कटैया, कंटकारी

रुरुः (२००।४) : मृग विशेष

+ मराठी श्रेणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रेरिहाणः (रेरिहाणनिवहविहार इव, ६०५।७) : महिष, भैंसा

रोदः (२०।५) : आकाश

लगुडम् (२१६।७ उत्त०) : लकुटदण्ड, लट्ठ

लक्ष्मण (२०६।५ उत्त०) : लक्ष्मण (राम का छोटा भाई), सारस पक्षी

लतान्तम् (९७।१) : फूल

लटहः (११३।७) : सुन्दर

लटहगति (१५।४) : ललित गमन

+ लयनम् (१३४।१) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ शिलोत्कीर्ण गृह किया है। यहाँ गुफा से तात्पर्य है।

लम्बस्तनीकम् (१९७।२ उत्त०) : चिंचावृक्ष

लक्ष्मी (१९५।१ उत्त०) : लक्ष्मी, भरडश्रृंगी नामक औषध

लंजिका (४१७।५) : वेश्या

लांगली (३।३ उत्त०) : जल पिप्पली

लालाटिकः (१६४।५) : नौकर

लुलायः (५२३।६) : महिष, भैंसा

लूता (२६३।१०) : मकड़ी

लेखपत्रम् (१९७।२ उत्त०) : ताड़पत्र

लेसिकः (४५।३ उत्त०) : लेसिक नामक गज-परिचारक, जो हाथियों को तेल लगाने आदि का काम करता था। बाण ने हर्षचरित में लेसिक परिचारकों का उल्लेख किया है।

लोम (प्रकामायामलोमचूड़ैर्गणैः, ४६६।५) : केश, बाल

लोमचूड़ः (४६६।५) : मुर्गा

लोहलः (विविधवाद्योद्धुरध्वानलोहले, २४७।६) : व्याप्त

व्यजनः (२०५।६) : पंखा

व्याघ्री (२००।७ उत्त०) : लता विशेष

व्याली (५१।३ उत्त०) : दुष्ट हथिनी

व्योमकेशः (२१।२) : शिव

वत्सलम् (४०२।६, ५०८।८) : भोजन

वर्धमानम् (१९६।२ उत्त०) : एरंड वृक्ष

वनीपकः (१८।२) : स्तुतिपाठक

वनेजम् (२४३।४) : कमल, पानी का एक नाम 'वन' भी है। वन में उत्पन्न होने के कारण इसे 'वनेज' कहा है।

वप्तः (४३।३) : पिता, बीज डालने वाला। संभवतया 'बाप' इसी से बना है।

वर्वरकः (१८४।५ उत्त०) : शिशु

वर्षधरः (१३३।३) : नपुंसक

वराहः (१९८।७ उत्त०) : सुअर

वराहवैरी (१८८।३ उत्त०) : कुत्ता

वल्लकः (उच्छूनोद्वेल्लितवल्लकरालक, ४०५।५) : कच्चा

वल्लवी (१९८।५) : गोपी

वल्ली (२००।७ उत्त०) : लता

वल्लूरम् (स्ववपुर्लूनवल्लूरम्, ४९।५) : मांस

वलालः (बलं वलालः, २१९।२) : वायु. पृ० १९९।७ उत्त० में भी इसका प्रयोग हुआ है।

वलीकम् (तुहिनतरुविनिर्मितवलीकान्तरमुक्त..., २९।२ उत्त०) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ पट्टिका किया है। संभव-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तया उनका अभिप्राय खूंटी से है।

वष्कयणी (१८५।४ उत्त०) : बहुत दिन की व्याई गाय, 'बकेन' या 'ठोकरी गाय' देशी भाषा में कहते हैं।

वशा (वशया वनगज इव, २७।९ उत्त०) : हस्तिनी

वसा (१८६।२ उत्त०) : वन्ध्या गाय

वहित्रम् (३८८।८) : नौका

वृकः (२१९।१) : बकरा

वृन्ताकम् (५१६।७) : बैंगन

वृष्णिका (१८४।६ उत्त०) : बूढ़ी गाय

वृषः (२०४।२ उत्त०) : मूसा या चूहा

वागुरा (२५३।२) : जाल, बांधने का जाल

वाजिः (१८६।३ उत्त०) : अश्व

वाजिन् (३०८।५) : वाज पक्षी

वार्ताकम् (४०५।४) : बैंगन

वातूलः (४६।६) : वायु, अंधड़

वाध्री (१२२।४) : चमड़े की रस्सी

वान्तादः (१८८।४ उत्त०) : कुत्ता

वानरः (१९९।४ उत्त०) : बन्दर

वामना (१९६।२ उत्त०) : हथिनी

वामनम् (१९६।२ उत्त०) : मदन वृक्ष

वामलूरः (२०४।४ उत्त०) : वल्मीक, सांप की बांमी

वारवनिता (४१।३) : वेश्या, चकवी

वारला (२४३।४, २०९।५ उत्त०) : हंसिनी, कोशों में वरटा शब्द आता है।

वारस्त्री (३२३।३) : वेश्या

वाली (सैकतोल्लोलवालीविहारवाचालवारलम्, २०९।५ उत्त०) : लहर, तरंग

वालेयकः (१८६।२ उत्त०) : गधा

वास्तुलः(वास्तुलस्तण्डुलीयः,५१६।७): वास्तुल शाक, संभवतया जिसे आजकल 'बथुआ' कहते हैं।

वासनेयी (४६।२ उत्त०) : रात्रि

वासवः (३१५।७) : मेघ

वाहरिका (वीरणप्ररोहवत्पर्यस्तवाहरिकैः, ३०।५) : हाथी बाँधने का खूँटा। श्रीदेव ने हाथी के पीछे के पैर को बांधने वाला खूँटा अर्थ किया है। देशी भाषा में इसे 'पिछाड़ी' कहते हैं।

वाहा (१९२।१) : भुजा, बाँह

विकर्तनः (७१।१०) : सूर्य

विकृतः (४८६।१) : रोगी

विकिरः (५८।८) : पक्षी

विचकिलः (५२८।५, ५३२।३) : मोगरा पुष्प

विजया (१९४।४) : हरड़ नामक औषधि

वितर्दिका (९९।४) : वेदिका, कोशों में वितर्दि का प्रयोग आया है। महावीरचरित में वितर्दिका भी आया है (६।२४)।

विधिः (२०।४) : नर्तन – नाचना

विनियोगः (१६१।७ उत्त०) : अधिकार, राजाज्ञा

विनेयः (७२।४ उत्त०) : शिष्य, विद्यार्थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विटंकः (२०।१, ५९८।७) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ एक स्थान पर पक्षियों को बैठने के लिए बाहर निकाले गये मलगे तथा दूसरे स्थान पर वरण्डक किया है।

विरसालः (४०४।५) : राजमाष, उड़द की एक जाति

विरेयः (६८।१) : तालाब, पोखरा शब्दार्थ चिन्तामणि में नदी के लिए विरेफ शब्द आया है।

विरोचनः (५२।२, ६५।२) : सूर्य, अग्नि

विलातः (१९८।६ उत्त०) : भील

विलेशयः (बालविलेशयवेष्टितविटपभागम् ४६२।३) : सर्प

विश्वकद्रुः (११५।५) : कुत्ता, सोमदेव ने इसका कई बार प्रयोग किया है। श्रुतसागर ने इसका अर्थ शिकार करने में कुशल कुत्ता किया है। अभिधान चिन्तामणि में भी विश्वकद्रु का यही अर्थ किया गया है (४।३४७)।

विश्वद्युतिः (१५५।१) : सूर्य

विशसनम् (२८।६) : हिंसा, पशुवध

विष्टिः (४२७।४) : बेगार लेना, बिना मूल्य दिये मजदूरी कराना।

विष्वद्रीचिः (६५।१) : सर्वत्र, संसार भर में

विष्वाणम् (१३४।६) : भिक्षा द्वारा भोजन, भोजन (शब्दरत्नाकर ३।६३)

वीरणः (३९०।२) : वंश, बाँस (महा० १।१३।१७)

वीरुध (२००।७ उत्त०) : लताविशेष

वेडिका (२१७।१ उत्त०) : छोटी नाव

वेतालः (२१।७) : भूताविष्ट मृतक शरीर

वेदण्डः (२९१।५) : हाथी

वेल्लिकः (१९८।६ उत्त०) : बालक, सोमदेव ने भीलों के बालकों को 'विलात-वेल्लिकाः' कहा है।

वेलावनम् (२२१।४) : समुद्रतट के बगीचे

वेसरः (१८६।३ उत्त०) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ द्विशरीर किया है।

वेहा (१८६।२) : गर्भ गिर गयी गाय को 'वेहा' कहते हैं।

वैकक्ष्यम् (२४।६ उत्त०) : दुपट्टा, ओढ़ने का चादर

वैकक्षकः (३९६।५) : दुपट्टा, ओढ़ने का चादर

वैवश्वतः (२१६।६ उत्त०) : यम (रामा, १५।४५)

वैशिकम् (२६।१ उत्त०) : माया, छल

श्वेतपिंगलः (१८६।७ उत्त०) : सिंह

श्यामाकः (४०६।४) : साँवाँ (शाकु० ४।१३)।

शकुलः (४४०।७) : मत्स्य, मछली सोमदेव ने इसके शकुल और शकुलि दो रूपों का प्रयोग किया है (२४७।१ उत्त०)।

शतमखः (३६४।५) : इन्द्र (कुमार० २।६४, रघु० ९।१३)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शर्करिलः (५२।९ उत्त०) : रेतीला प्रदेश

शरमासुतः (१८७।८ उत्त०) : कुत्ता

शष्कुलि: (५१२।९) : कचौड़ी

शल्लकः (२००।४ उत्त०) : सेही नामक जंगली पशु। इसके सारे शरीर में बड़े-बड़े काटे होते हैं।

शम्भली (१८८।७ उत्त०) : दासी

शंभुः (३४६।२) : सुख देने वाला

शंसितव्रतः (४०८।६) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ दिगम्बर किया है। मनुस्मृति (१।१०४) में लिखा है कि उसका अध्ययन करने वाला ब्राह्मण कहलाता है।

शिखामणीयमान (४५४।२) : शिर के मणि की तरह होता हुआ।

शिपिविष्टः (संहाराविष्टः शिपिविष्ट इव, १४७।४) : महादेव

शिवप्रियः (१९५।५ उत्त०) : धतूरा वृक्ष

शिशुमारः (२१४।६ उत्त०) : मगर (महा० १।८५।१६)।

शुचिः (४०८।३) : अग्नि

शुनीसूनुः (१९०।८।उत्त०) : कुत्ता

शूर्पकाराति (४१।४) : कामदेव, कामदेव के लिए शूर्पकाराति शब्द कुषाण युग में प्रचलित हो गया था। बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द में शूर्पक नामक मछुये की कहानी का उल्लेख है। वह पहले काम से अविजित था पर बाद में कुमुद्वती नामक राजकुमारी की प्रार्थना पर कामदेव ने अपने वश में करके राजकुमारी को सौंप दिया।

शेषा (शेषायां तन्दुलाः करे, ४१६।८): आशीर्वाद

श्रायसम् (७०।५ उत्त०) : कल्याणप्रद (पाणिनि)

श्रीफलः (४५९।४) : विल्व वृक्ष

स्तभः (१५०।७) : बकरा

स्थानम् (७०।२) : गजशाला

सकुटीः (सकुटीच्छुटिता घोटिकेव, ५३।३ उत्त०) : अश्वशाला

सत्रम् (१९९।५) : दानशाला

समयः (५२।२) : शास्त्र

समर्थस्थानम् (१९५।२ उत्त०) : आश्रम

समांसमीना (१८६।१) : प्रतिवर्ष ब्याने वाली गाय।

सर्वंकषः (१४२।६) : यम

सलिलतूलिका(५२९।५): जलशय्या, पानी के बीच में बनाया गया शयनस्थान।

सवनगृहम् (५०७।४) : स्नानघर

संधिनी (१८६।२) : गर्भिणी होने के बाद वृषभाक्रान्त गौ।

संवरः (२०६।४ उत्त०) : श्रृंग वृक्ष

संवाहकः (४०३।५) : तेल मालिश करनेवाला।

संस्थपतिः (२८९।१) : वास्तु-विद्या विशेषज्ञ

संस्थितः (१५०।६) : मृत

संसर्गविद्या (२०२।३) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ भरतशास्त्र किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत कोषों में (मो० वि०) समाज विज्ञान अर्थ दिया है।

सागरः (३४९।२) : अश्व

सामजः (४८५।५) : गज, सोमदेव ने गज के लिए सामज शब्द का प्रयोग कई बार किया है।

सावित्रः (४६६।१) : सूर्य

सारणी (५२५।३) : कृत्रिम नदी, नहर

सारसनम् (१५०।६) : करधनी

सारंगः (३४९।३) : गज

सालूरः (१४४।२) : मेंढक

सिचयः (१९।१) : वस्त्र

सिताम्बुजम् (२११।९) : सफेद कमल

सिद्धार्थकः (२२।९) : पीला सरसों

सिद्धादेशः (२।१०) : सिद्ध पुरुष का कथन

सिद्धायः (४२७।४) : कर

सिन्धुरद्विपः (५२४।१) : सिंह

सुदर्शना (१९४।५ उत्त०) : इस नाम की औषधि

सुवर्णः (५३।३) : स्वर्ण, राजकुल

सुव्रता (१८६।२ उत्त०) : सहज दुहने वाली गाय।

सुविदत्रम् (सुविदत्रवस्तुव्यस्तहस्तैः, ३२४।५) : मांगलिक वस्तु

सुधा (३५२।८) : जल

सूतिकासद्म (२२६।७) : प्रसूति गृह

सुरवारणः (२४५।८ उत्त०) : ऐरावत हाथी

सुरसुरभिः (१८५।८ उत्त०) : कामधेनु

सूनाकृत (सूनाकृतो गृहमुपेत्य ससारमेयम्, ४१५।७) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ खाटकिन् किया है। आजकल खटीक कहते हैं।

सोभाजन (४०५।४) : सहजन वृक्ष

सोमम् (१९६।३ उत्त०) : हरीतिकी नामक औषधि, हरड़

सौखशायनिकः (३६६।५) : सुख शयन की बात पूछने वाला।

सौरभेयः (६८।२) : बैल

सौवस्तिकः (४५२।१०) : पुरोहित

हरिणः (१८२।३) : स्वर्ग

हरितवाहवाहनः (८५।१) : सूर्य

हरिहस्तिन् (१२।५ उत्त०) : ऐरावत (इन्द्रका हाथी)

हल्लः (सोल्लासहल्लाननाः, २२७।३): आशीर्वाद देने वाला

हलम् (१३।४) : मित्र, हल

हलम् (२९६।५) : पैरों की अँगुलियाँ

हंसायित (१२८।७) : हंस के समान आचरण

हिंजीरकम् (६१७।१०) : नूपुर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र फलक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक 9

चित्र संख्या

१. कंचुक : (पृ० १३१) कंचुक या चोली पहने श्रीकंठ जनपद (थानेश्वर) की स्त्री। (अहिच्छत्रा के खिलौने, संख्या ३०७)

२. चोलक (क) : (पृ०१३३) मथुरा से प्राप्त कनिष्क की मूर्ति में खुले गले का चोलक।

३. चोलक (ख) : (पृ० १३३) मथुरा से प्राप्त चष्टन की मूर्ति में तिकोनिया गले का चोलक।

४. चण्डातक (क) : (पृ० १३४) चण्डातक पहने चामरधारणी परिचारिका (औंध कृत अजन्ता फलक ७३)

५. चण्डातक (ख) : (पृ० १३४) चण्डातक पहने लक्ष्मी। (अमरावती स्कल्पचर्स, फलक ४, चित्र २९)

फ़लक १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

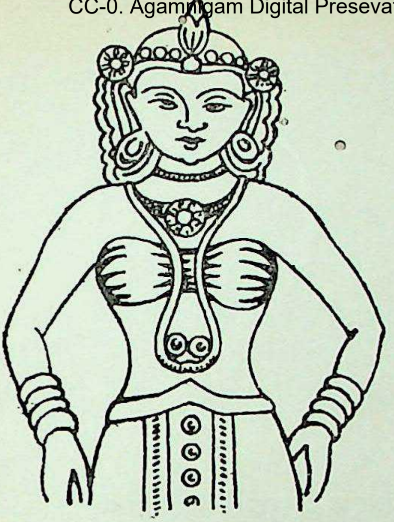

१. कंचुक

३. चोलक (ख)

२. चोलक (क)

४. चण्डातक (क)

५. चण्डातक (ख)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक २

चित्र संख्या

७. उष्णीष : (पृ० १३५) भरहुत, साँची तथा अमरावती की कला में अंकित विभिन्न प्रकार के उष्णीष (क से घ तक)। (अमरावती० फलक ७)

७. पट्टिका : (पृ० १३५) मस्तक पर अंशुक नामक रेशमी वस्त्र की उष्णीष पट्टिका। (अजन्ता फलक २८)

८. कौपीन : (पृ० १३५) कौपीन पहने तापस। (अमरावती० फलक ९, चित्र १)

९. चीवर : (पृ० १३६) चीवर पहने बौद्ध भिक्षु। (वही, चित्र १४)

१०. उत्तरीय : (पृ० १३५) तरंगित उत्तरीय। (देवगढ़ गुप्तकालीन मंदिर की मूर्ति से)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

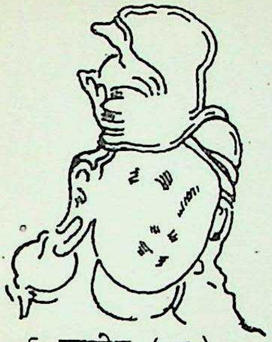

६. उष्णीष (क)

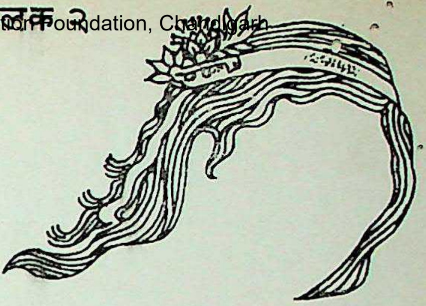

७. पट्टिका

८. कौपीन

९. चीवर

(ख)

(ग)

(घ)

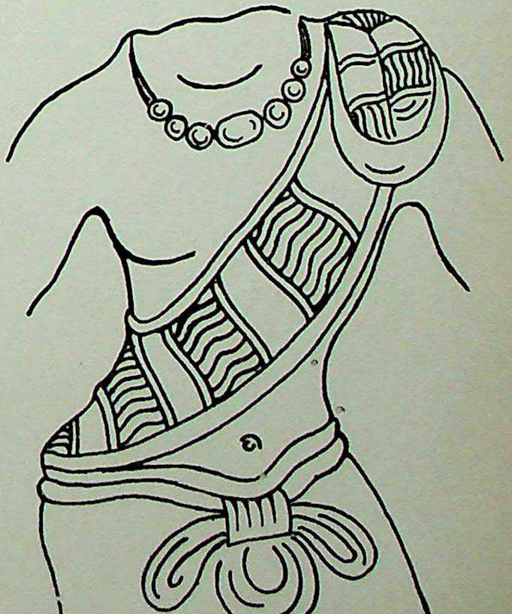

१० उत्तरीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक ३

चित्र संख्या

११. किरीट : (पृ० १४०) किरीट धारण किये इन्द्र । (अमरावती० फलक ७, चित्र ८)

१२. मुकुट : (पृ० १४१) अजन्ता गुफा १ में वज्रपाणि । बोधिसत्त्व के चित्र में अंकित मुकुट । (अजन्ता, फलक ७८)

१३. अवतंस : (पृ० १४१) नीले कमल का बना अवतंस । (अमरावती० फलक ८, चित्र २०)

१४. कर्णिका : (पृ० १४३) पुष्प की पंखुड़ियों को ऊपर की ओर मोड़कर बनाये गये अवतंस । (वही, फलक ७, चित्र १८)

१५. कर्णपूर : (पृ०१४२) पत्रांकुर का कर्णपूर । (अजन्ता फलक ३३)

१६. कर्णोत्पल : (पृ०१४३) खुली पंखुड़ियों वाला कर्णोत्पल । (वही)

१७. कुण्डल : (पृ० १४४) गोल आकार का कुण्डल । (वही), दोहरी लड़ी तथा बाली युक्त कुण्डल । (चित्र १५)

१८. एकावली : (पृ० १४४) अजन्ता गुफा १ में वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र में मध्यमणि से युक्त एकावली । (वही, फलक ७८)

१९. कंठिका: (पृ० १४६) गले में कण्ठी पहने लक्ष्मी । (अमरावती० फलक ४, चित्र २९)

फलक ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११. किरीट

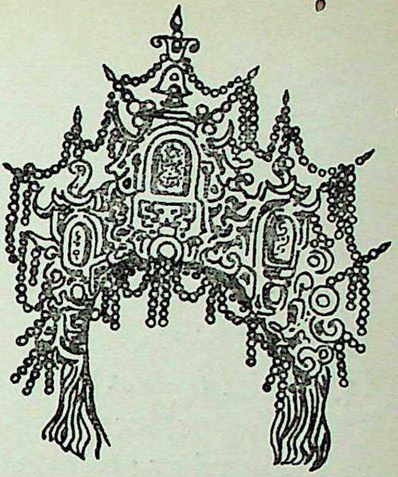

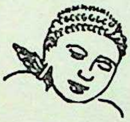

१३. अवतंस

१२. मुकुट

१४. कर्णिका

१५. कर्णपूर

१६. कर्णोत्पल

१७. कुण्डल

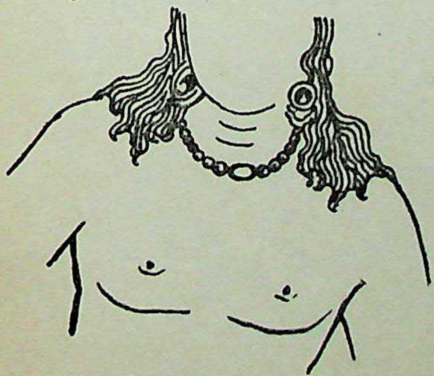

१९. कण्ठिका

१८. एकावली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक ४

चित्र संख्या

२०. हार : (पृ० १४६) वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र में अंकित हार। (अजन्ता फलक ७८)

२१. हारयष्टि : (पृ० १४६) हारयष्टि या इकहरी माला। (अमरावती० फलक ८, चित्र ६)

२२. अंगद और केयूर : (पृ० १४७) अंगद और केयूर नामक भुजा के आभूषण। वही, चित्र ७-८)

२३. कंकण : (पृ० १४७) कंकण नामक कलाई का आभूषण। (वही, चित्र ९, ११)

२४. वलय : (पृ० १४७) वलय नामक कलाई का आभूषण। (वही, चित्र १५)

२५. मेखला : (पृ० १४९) मेखला नामक करधनी जिसे पहनकर चलने से आवाज होती थी। (वही, चित्र २६)

२६. रसना : (पृ० १४९) दोहरी लड़ी की रसना। (वही, चित्र २८)

२७. कांची : (पृ० १४८) इकहरी लड़ी को ढोली-ढाली करधनी या कांची। (वही, चित्र ३४)

२८. घर्घरमालिका : (पृ० १५०) घर्घरमालिका नामक करधनी। (वही, चित्र २७)

२९. हिंजीरक : (पृ० १५०) हिंजीरक नामक आभूषण। (वही, चित्र १७,१८)

३०. मंजीर : (पृ० १५०) मंजीर नामक आभूषण जिसमें भीतर चादी के कंकड़ भरे रहते थे जिससे चलते समय आवाज होती थी। (वही, चित्र १९)

३१. नूपुर : (पृ० १५०) थाली में नूपुर लिये परिचारिका। अलक्तक मण्डन समाप्त हो तो नूपुर पहनाये। (अमरावती० फलक ९, चित्र १८)

३२. हंसक : (पृ० १५१) हंसक नामक पैर का आभूषण। (हर्षचरित० फलक ९, चित्र ३८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

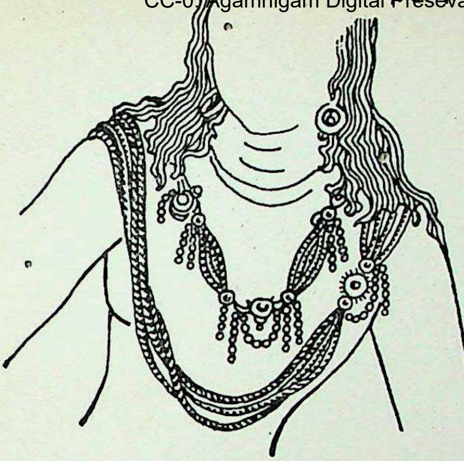

२०. हार

२१. हारयष्टि

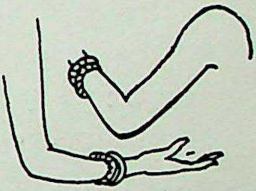

२३. कंकण

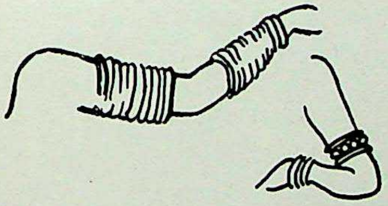

२२. अंगद और केयूर

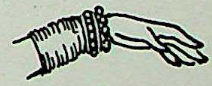

२४. वलय

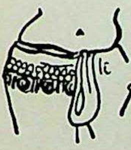

२५. मेखला

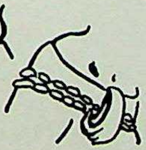

२६. रसना

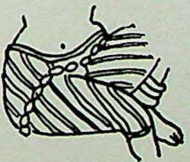

२७. कांची

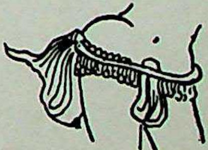

२८. घर्घरमालिका

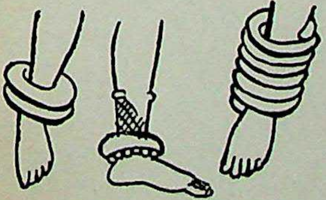

२९. हिंजीरक ३०. मंजीर

३१. नूपुर

३२ हंसक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक ९

चित्र फलक

३३. अलकजाल : (पृ० १५३) राजघाट (काशी) से प्राप्त एक मृण्मूर्ति । (कला और संस्कृति पृ० २४७)

३४. मौलि : (पृ० १५६) चूर्ण विशेष द्वारा घुँघराले बनाये गये बालों की त्रिविभक्त मौलिबद्ध केश रचना । (वही पृ० २५१)

३५. केशपाश : (पृ० १५४) पत्र और पुष्प मंजरी से सजा कर मुकुट की तरह बाँधे गये केश । (वही पृ० २५१)

३६. कुन्तलकलाप : (पृ० १५३) मोर की पूँछ के अग्रभाग की तरह सँभारे गये कुन्तल । (वही पृ० २४८)

३७. वेणिदण्ड : (पृ० १५७) वेणिदण्ड या इकहरी चोटी । अमरावती० फलक ८, चित्र २३)

३८. जूट : (पृ० १५०) जूट या जूड़ा । (अमरावती० फलक ९, चित्र २)

३९. धम्मिल : (पृ० १५५) एक विशेष प्रकार का धम्मिल । (वही, फलक ९, चित्र ३)

फलक ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३३. अलकजाल

३४. मौलि

३६. कुन्तलकलाप

३५. केशपाश

३७. वैणिदण्ड

३८. जूट

३९. धम्मिल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक ६

चित्र संख्या

४०. असिधेनुका : (पृ० २०३) कमर की पेटी में खोंसी हुई असिधेनुका सहित पदाति युवक। अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्ति। (हर्षचरित० फलक २ चित्र १२)

४१. कर्तरी : (पृ० २०४) कर्तरी नामक एक विशेष प्रकार की छोटी छुरी। (अमरावती० फलक १०, चित्र २)

४२. कटार : (पृ० २०५) दोनों ओर मुँहवाली नुकीली कटार। (अमरावती० फलक १०, चित्र ६)

४३. अशनि : (पृ० २०७) इन्द्राणी की मूर्ति के हाथ में स्थित अशनि या वज्र। (भारत कला भवन, वाराणसी)

४४. अंकुश : (पृ० २०९) गज के मस्तक पर प्रहार किया जाता अंकुश।

४५. कोदण्ड (अ) : (पृ० २००) लपेटा हुआ कोदण्ड। (अमरावती० फलक १०, चित्र ४)

४६. कोदण्ड (ब) : (पृ० २००) चढ़ाया हुआ कोदण्ड। (वही, चित्र ११)

४७. गदा (अ) : (पृ० २१३) बड़े आकार की गदा। (वही, चित्र १५)

४८. गदा (ब) : (पृ० वही) छोटे आकार की गदा। (वही, चित्र १८)

४९. त्रिशूल (अ) : (पृ० २१७) प्रहार किया जाता त्रिशूल। (वही, चित्र १४)

५०. त्रिशूल (ब) : (पृ० वही) हाथ में स्थित त्रिशूल। (वही, चित्र १६)

५१. दण्ड : (पृ० ११४) हाथ में दण्ड या डण्डा लिये प्यादा। अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति संख्या १९३। (हर्षचरित० फलक १७ चित्र ६१)

५२. प्रास : (पृ० २११) (अमरावती फलक १०, चित्र १)

फलक ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

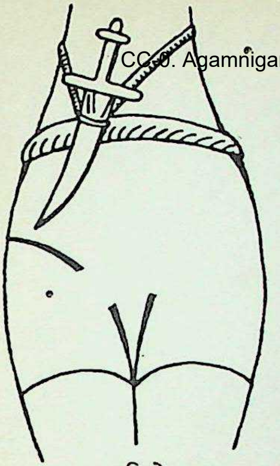

४०. असिधेनुका

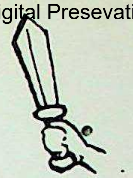

४१. कर्तरी

४२. कटार

४३. अशनि

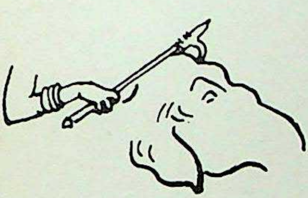

४४. अंकुश

४५. कोदण्ड (अ)

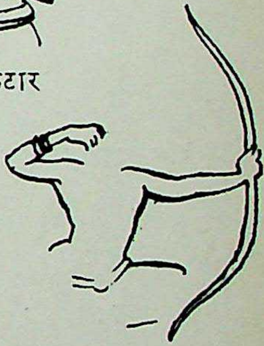

४६. कोदण्ड (ब)

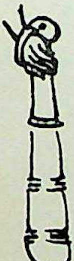

४७. गदा (अ)

४८. गदा (ब)

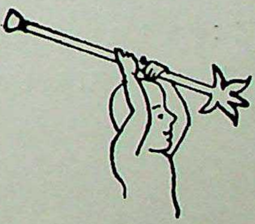

४९. त्रिशूल (अ)

५०. त्रिशूल (ब)

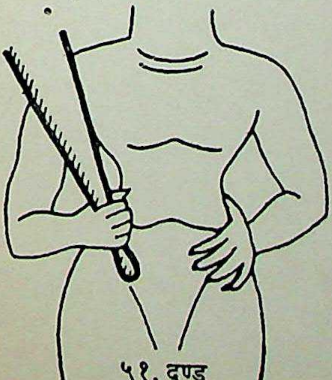

५१. दण्ड

५२. प्रास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक ७

चित्र संख्या

५३. भस्त्रा या नाराचपंजर : (पृ० २०३) भस्त्रा या धौंकनीनुमा तरकश। (हर्षचरित० फलक १८, चित्र ३)

५४. कुठार : (पृ० २११) कुठार या परशु। (अमरावती० फ़लक १०, चित्र ३)

५५. यष्टि : (पृ० २१६) यष्टि या असियष्टि को कमरमें लटकाये हुआ सैनिक। (अमरावती० फलक १०, चित्र ८)

५६. पाश : (पृ० २१८) श्री जी० एच० खरे कृत मूर्तिविज्ञान, फलक ९४, चित्र ३०)

५७. वागुरा : (पृ० २१८) अहिच्छत्रा से प्राप्त सूर्य मूर्ति पर अंकित पार्श्वचर के हाथ में वागुरा या कमन्द। (चित्र ९७)

फलक ७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

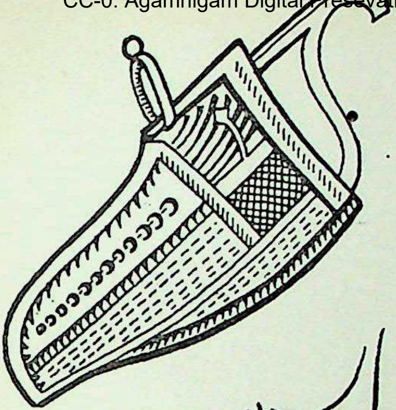

५३. भस्त्रा या नाराचपंजर

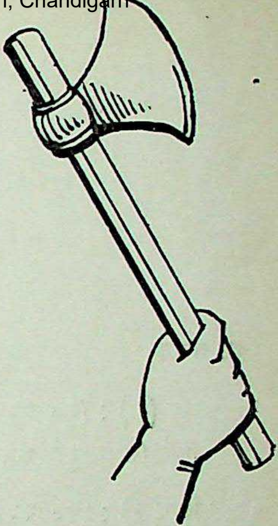

५४. कुठार

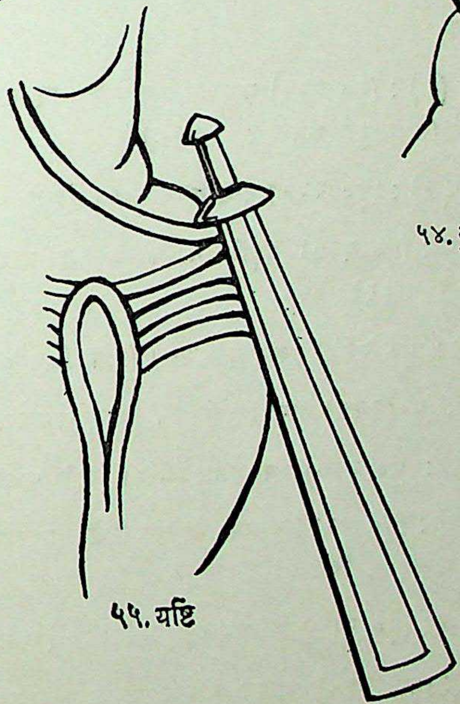

५५. यष्टि

५६. पाश

५७. वागुरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक ८

चित्र संख्या

५८. शंख (क) : (पृ० २२५) मुख पर बजाने के लिए कलश लगा हुआ शंख। (व्रजमाधुरी फलक १, चित्र ८)

५९. शंख (ख) : (पृ० २२५) वाद्य योग्य शंख। (वही, चित्र १०)

६०. दुंदुभि : (पृ० २२७) दुंदुभि नामक अवनद्ध वाद्य। (वही, फलक ३, चित्र १२)

६१. ढक्का : (पृ० २२८) ढक्का या ढोल। (वही, चित्र ७)

६२. ताल : (पृ० २२९) ताल की जोड़ी। (वही, फलक ४, चित्र १२)

६३. डमरुक : (पृ० २६०) डमरुक या डमरू। (वही, फलक ३, चित्र १३)

६४. वल्लकी : (पृ० २३२) वल्लकी या एक विशेष प्रकार की वीणा। (वही, फलक १, चित्र १)

६५. डिण्डिम : (पृ० २३४) डिण्डिम या डिमडिमी। (वही, फलक ३, चित्र ९)

६६. करटा : (पृ० २३०) करटा नामक अवनद्ध वाद्य। (वही, फलक ३, चित्र ६)

६७. रुंजा : (पृ० २३१) रुंजा नामक वाद्य की जोड़ी। (वही, फलक ३, चित्र १३)

फलक ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

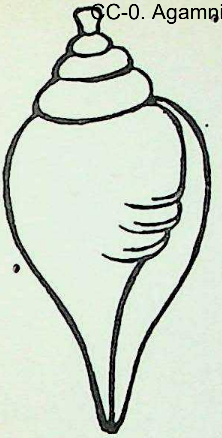

५८. शंख (क)

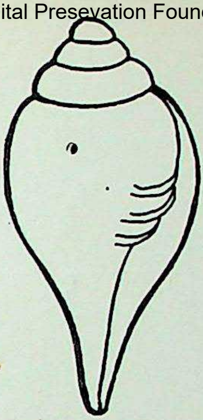

५९. शंख (ख)

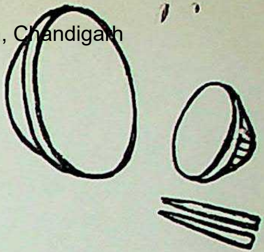

६०. दुंदुभिः

६३. डमरुक

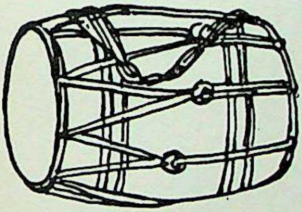

६१. ढोल

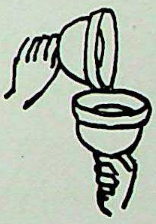

६२. ताल

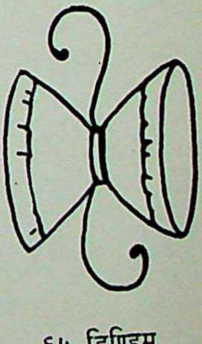

६५. डिण्डिम

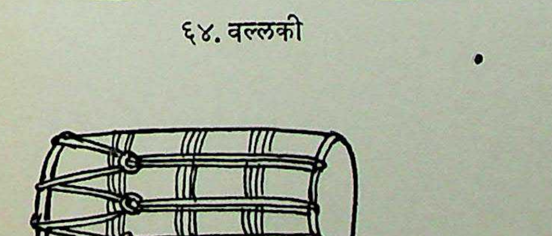

६४. वल्लकी

६७. रुंजा

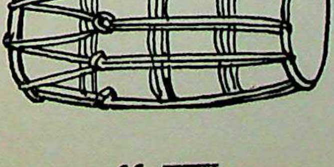

६६. करटा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक ९

चित्र संख्या

६८. वेणु : (पृ० २३१) वेणु या बांसुरी । (व्रजमाधुरी, फलक २, चित्र १)

६९. तूर : (पृ० २३३) तूर या तुरही । (कलकत्ता संग्रहालय, ७६)

७०. मृदंग : (पृ० २३३) मृदंग या मर्दल । (वही, २७९)

७१. घण्टा (अ) : (पृ० २३१) बड़ा घण्टा । (वही, १८५)

७२. घण्टा (ब) : (पृ० २३१) छोटा घण्टा । (वही, १८३)

७३. आनक (अ) : (पृ० २२८) आनक या नगाड़ा । (वही २०४)

७४. आनक (ब) : (पृ० २२८) एक अन्य प्रकार का आनक या नौबत । (वही २०४)

७५. भेरी : (पृ० २३३) भेरी नामक अवनद्ध वाद्य । (वही २६६)

चित्रों के रेखांकन के लिए मैं श्री वीरेश्वर बनर्जी तथा श्री कर्णमान सिंह का आभारी हूँ ।

फलक ९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६८. वेणु

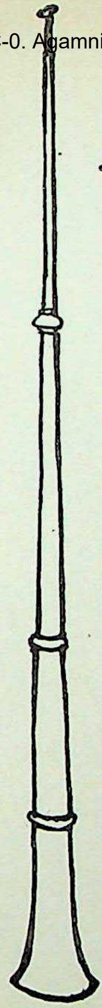

६९. तूर

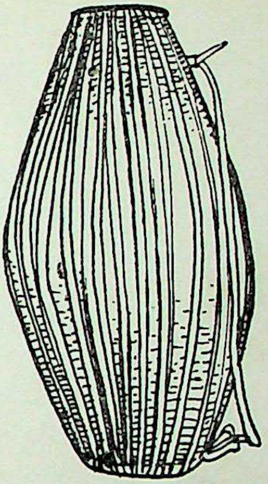

७०. मृदंग

७१. घंटा (अ)

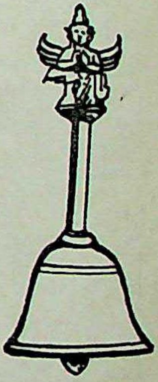

७२. घंटा (ब)

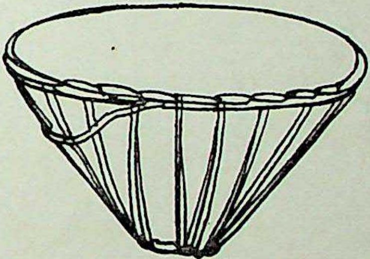

७३. आनक (अ)

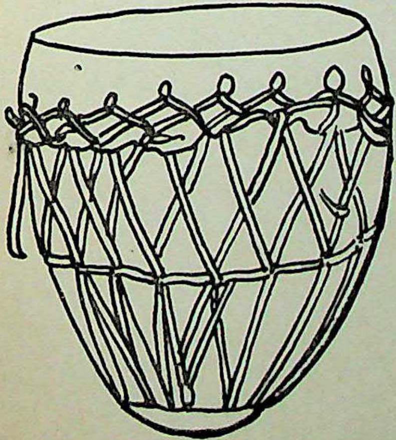

७४. आनक (ब)

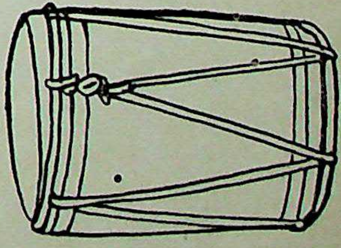

७५. भेरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायक ग्रन्थ-सूची

यशस्तिलक के संस्करण और अध्ययन ग्रन्थ

[१] यशस्तिलक पूर्व खण्ड, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०१
[२] यशस्तिलक उत्तर खण्ड, ,, ,, १९०३
[३] यशस्तिलक पूर्व खण्ड (द्वि० सं०) ,, ,, १९१६
[४] यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर (अंगरेजी), जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९४९
[५] यशस्तिलकचम्पूमहाकाव्यम् पूर्वार्ध (संस्कृत-हिन्दी), महावीर जैन ग्रन्थ-माला, वाराणसी, १९६०
[६] उपासकाध्ययन (संस्कृत-हिन्दी), भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६४

पाण्डुलिपियाँ

[७] यशस्तिलक, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना
[८] यशस्तिलक, दि० जैन तेरह पंथियों का बड़ा मंदिर, जयपुर
[९] यशस्तिलक पंजिका, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वारा करायी गयी हस्तलिपि

प्राचीन ग्रन्थ

[१०] अर्थशास्त्र (संस्कृत) – श्री गणपति शास्त्री की व्याख्या सहित, त्रावन-कोर, १९२१-१९२५ (भाग १-३)
[११] अन्तःकृतदशा (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[१२] अनेकार्थ संग्रह (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९२९
[१३] अपराजितपृच्छा (संस्कृत) – गायकवाड़ ओरियंटल सीरिज, बड़ोदा, १९५०
[१४] अभिधानचिन्तामणि (संस्कृत), भाग १-२ – यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वी० नि० सं० २४४१, २४४६
[१५] अभिज्ञानशाकुन्तलम् (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६
[१६] अमरकोष (नामलिंगानुशासन) (संस्कृत) – ओरियंटल बुक एजेंसी, पूना, १९४१
[१७] अमरुशतक (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[१८] अश्वशास्त्र (संस्कृत) – सरस्वती महल लायब्रेरी, तंजोर, १९५२
[१९] अष्टाध्यायी (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३०
[२०] आचारांग (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[२१] आचारांगचूर्णि (प्राकृत) – ऋषभदेव केसरीमल, रतलाम, १९४१
[२२] उत्तररामचरित (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३०
[२३] कल्पसूत्र (प्राकृत) – सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जोधपुर
[२४] कर्पूरमंजरी (प्राकृत) – कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, १९४८
[२५] कादम्बरी (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, (अष्टम सं०) १९४०
[२६] कामसूत्र (संस्कृत), भाग १-२ – लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई वि० संवत् १९२१
[२७] काव्यप्रकाश (संस्कृत-हिन्दी) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५५
[२८] किरातार्जुनीय (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० सं० १९९६
[२९] काव्यादर्श (संस्कृत-हिन्दी) – ब्रजरत्नदास द्वारा संपादित, वाराणसी, वि० संवत् १९८८
[३०] कुमारसंभव (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५
[३१] कुवलयमाला (प्राकृत) – भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९
[३२] गजशास्त्र (संस्कृत) – सरस्वती महल लायब्रेरी, तंजोर, १९५८
[३३] गीतगोविन्द (संस्कृत) – मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड संस, वाराणसी
[३४] गोम्मटसार, भाग १-२ (प्राकृत) – रायचन्द्रजैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९२७-२८
[३५] चरकसंहिता (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० सं० १९९५
[३६] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, भाग १-२ (प्राकृत) – सेठ देवचन्द लालभाई जैन, बम्बई, १९२०
[३७] जसहरचरिउ (अपभ्रंश) – अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रन्थमाला कारंजा, बरार, १९३१
[३८] तत्त्वानुशासनादिसंग्रह (संस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
[३९] दशरूपक (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२८
[४०] द्वयाश्रयकाव्य, भाग १-२ (संस्कृत-प्राकृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१५, १९२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[४१] दीघनिकाय (पाली) – बाम्बे युनिवर्सिटी पब्लिकेसन्स, १९४२
[४२] नलचम्पू (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३२
[४३] नागानन्द (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३१
[४४] नाट्यशास्त्र, भाग १-२-३ (संस्कृत) – गायकवाड़ ओरियंटल सीरिज, बड़ोदा, १९३४, १९५४, १९५६
[४५] नाममाला (संस्कृत) – जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, वी० नि० सं० २४६३
[४६] नायाधम्मकहा (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि-द्वारा अनुवादित
[४७] नीतिवाक्यामृत (संस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि० सं० १९७९
[४८] नैषधचरित्र (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३३
[४९] पदमावत (हिन्दी) – साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), वि० सं० २०१२
[५०] पद्मपुराण (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२-३ – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५८,१९५९
[५१] प्रश्नव्याकरणसूत्र (प्राकृत) – मुक्तिविमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, वि० सं० १९९५
[५२] प्रासादमंडन (संस्कृत) – पं० भगवानदास जैन द्वारा संपादित, जयपुर, १९६१
[५३] भगवतीसूत्र (प्राकृत-हिन्दी) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
[५४] भट्टिकाव्य (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२ – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५१
[५५] भावप्रकाश (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२ – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३८, १९४१
[५६] मनुस्मृति (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३५
[५७] महापुराण (संस्कृत), भाग १-२-३ – भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५१, १९५४
[५८] महापुराण (अपभ्रंश), भाग १-२-३ – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७, १९४०
[५९] महाभारत (संस्कृत) – चित्रशाला प्रेस, पूना
[६०] मानसोल्लास (संस्कृत) – दी सेन्ट्रल लायब्रेरी, बड़ोदा, १९२५
[६१] मालतीमाधव (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६
[६२] मालविकाग्निमित्र (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[६३] मेघदूत (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९४०

[६४] मृच्छकटिक (संस्कृत-हिन्दी) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५४

[६५] याज्ञवल्क्यस्मृति (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६

[६६] रघुवंश (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२५

[६७] रामायण (वाल्मीकिकृत, संस्कृत) – मद्रास ला जर्नल प्रेस, १९३३

[६८] रायपसेणियसुत्त (प्राकृत) – श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित

[६९] वर्णरत्नाकर (मैथिली) – रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल, कलकत्ता, १९४०

[७०] वरांगचरित (संस्कृत) – माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३८

[७१] बृहत्स्वयंभू स्तोत्र (संस्कृत-हिन्दी) – वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली

[७२] वास्तुसारप्रकरण (संस्कृत) – पं० भगवानदास जैन-द्वारा सम्पादित, जयपुर, १९३६

[७३] विक्रमोर्वशीयम् (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी

[७४] विश्वलोचनकोष (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२

[७५] समरांगण सूत्रधार (संस्कृत) – गायकवाड़ ओरियंटल सीरिज, बड़ौदा, १९२४

[७६] समराइच्चकहा (प्राकृत), भाग १-२ – रायल एसियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९२६, द्वि० सं०

[७७] संगीत पारिजात – हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६३

[७८] संगीत रत्नाकर – अडयार लायब्रेरी, १९५१

[७९] संगीतराज – संगीत कार्यालय, हाथरस, १९४१

[८०] साहित्यदर्पण – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६

[८१] सूत्रधारमंडन का देवतामूर्तिप्रकरणम् (संस्कृत) – मेट्रोपोलिटन पब्लि० हाउस, कलकत्ता, १९३६

[८२] सौन्दरानन्द (संस्कृत) – रायल एसियाटिक सोसायटी ऑव् बंगाल, १९३९

[८३] शतपथब्राह्मण (संस्कृत) – अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, वि० सं० १९९४, १९९७ भाग १-२

[८४] शब्दरत्नाकर (संस्कृत) – यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वी० नि० सं० २४३९

[८५] शिशुपालवध (संस्कृत) – चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, १९२९

[८६] शृंगारशतक (शतकत्रयम् के अन्तर्गत) (संस्कृत) – भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[८७] हरिवंशपुराण (संस्कृत-हिन्दी) – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६३
[८८] हस्त्यायुर्वेद (संस्कृत) – आनन्दाश्रम, पूना
[८९] हर्षचरित (संस्कृत) – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२, तृ० सं०
[९०] ऋग्वेद (संस्कृत) स्वाध्याय मण्डल, औंध, १९४०

आधुनिक ग्रन्थ और शोध-निबन्ध

[९१] आयने अकबरी, भाग १-३ – रायल एशियाटिक सोसायटी ऑव् बेंगाल, १९२७, १९४८, १९९४
[९२] गाइड टू द म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेन्ट इन द इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता, १९१७
[९३] द एज ऑव् इम्पीरियल कन्नौज – भारतीय विद्याभवन, १९५५
[९४] वैदिक इन्डेक्स, १-२ – मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९५८
[९५] अग्रवाल, वासुदेवशरण – कला और संस्कृति, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद, १९५२
[९६] ,, कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन – चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८
[९७] ,, पाणिनिकालीन भारतवर्ष – मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वि० सं० २०१२
[९८] ,, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५३
[९९] ,, कीर्तिलता – साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, १९६३
[१००] अत्रिदेव विद्यालंकार – प्राचीन भारत के प्रसाधन – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
[१०१] अल्तेकर, अनन्त सदाशिव – राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स–ओरियण्टल बुक एजेंसी, पूना, १९३४
[१०२] आप्टे – संस्कृत-अँगरेजी डिक्शनरी (परिवर्धित संस्करण) – प्रसाद प्रकाशन, पूना
[१०३] ओमप्रकाश – फूड एण्ड ड्रिंक इन ऐंशियन्ट इण्डिया – मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १९६१
[१०४] कनिंघम – ऐंशियण्ट ज्योग्राफी ऑव् इण्डिया, कलकत्ता १९२४
[१०५] कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र – प्रशस्ति संग्रह–अतिशय क्षेत्र, श्री महावीरजी, जयपुर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[१०६] कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र – राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की सूची, भाग १-२-३-४, जयपुर

[१०७] के० भुजबली शास्त्री – कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

[१०८] कुलकर्णी, ई० डी० – वोकबुलरी ऑव् यशस्तिलक, बुलेटिन ऑव द डेकन कालिज रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना

[१०९] चुन्नीलाल शेष – अष्टछाप के वाद्ययन्त्र, व्रजमाधुरी, व्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, वर्ष १३, अंक ४

[११०] जगदीशचन्द्र जैन – लाइफ इन ऐंशियण्ट इण्डिया ऐज डिपिक्टेड इन द आगमाज़, न्यू बुक कम्पनी लिमिटिड, बम्बई १९४७

[१११] जे० एन० बनर्जी – द डेवलपमेण्ट ऑव् हिन्दू आइकोनोग्राफी, युनिवर्सिटी ऑव् कलकत्ता, १९५६

[११२] नाथूराम 'प्रेमी'–जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई

[११३] ,, – सोमदेवसूरि और महेन्द्रदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[११४] पी० बी० देसाई – जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९५९

[११५] पी० सी० चक्रवर्ती – द आर्ट ऑव् वार इन ऐंशियण्ट इण्डिया, द युनिवर्सिटी ऑव् ढाका, रमना डाका, १९४१

[११६] बी० सी० ला – हिस्टारिकल ज्योग्राफी ऑव् ऐंशियण्ट इण्डिया, सोसायटी एशियाटिक डि पेरिस, फ्रान्स

[११७] ,, – ज्योग्राफी ऑव अरली बुद्धिज्म, लन्दन, १९३२

[११८] भगवतशरण उपाध्याय, – कालिदास का भारत, भाग १-२, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५४, १९५८

[११९] भटशाली – आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स इन द ढाका म्यूजियम, ढाका म्यूजियम कमेटी, ढाका, १९२९

[१२०] मिराशी : हिस्टारिकल डेटाज़ इन दण्डिनाज़ दशकुमारचरित, एनाल्स ऑव् भण्डारकर, ओ० रि० इं०, भाग २६

[१२१] मोतीचन्द्र – जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, साराभाई मनीलाल नबाब, अहमदाबाद, १९४९

[१२२] मोतीचन्द्र – भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार, प्रयाग, वि० सं० २००७
मोतीचन्द्र – सार्थवाह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५३

[१२३] मोनियर विलियम्स – संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[१२४] मोहनलाल महतो – जातककालीन भारतीय संस्कृति, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५८

[१२५] आर० एस० त्रिपाठी – हिस्टरी ऑव् कन्नौज, मोतीलाल बनारसीदास, १३५९

[१२६] राखालदास (अनुवादक, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा) – प्राचीन मुद्रा, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि० सं० १९८१

[१२७] राय कृष्णदास – भारत की चित्रकला, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९९६ वि० सं०

[१२८] रे डेविट – बुद्धिस्ट इण्डिया, सुशील गुप्ता लिमिटिड, १९५०

[१२९] वाटर्स – आन युवानच्वांग ट्रावल्स इन इण्डिया, रायल ऐशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०४, १९०५ (भाग १-२)

[१३०] वी० राघवन् – यन्त्राज़ एण्ड मेकैनिकल कण्ट्राइवन्सेज़ इन ऐंशियण्ट इण्डिया, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑव् कल्चर, बेंगलोर, १९५६

[१३१] वी० राघवन् – नीतिवाक्यामृत आदि के कर्त्ता सोमदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[१३२] वी० वाघवन् – सोमदेव एण्ड किंग भोज, जनरल ऑव द युनिवर्सिटी ऑव गोहाटी, भाग ३, १९५२

[१३३] वी० राघवन् – ग्लीनिग्ज़ फ्राम सोमदेव सूरीज़ यशस्तिलक, गंगानाथ झा, रिसर्च इंस्टीट्यूट जनरल, भाग २, ३, ४

[१३४] सरकार – द वाकाटकाज़ एण्ड द अश्मक कन्टरी, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटरली, भाग २२

[१३५] सरकार – द सिटी ऑव् बंगाल, भारतीय विद्या, जिल्द ५

[१३६] सरकार – स्टडीज़ इन द ज्योग्राफी ऑव् ऐंशियण्ट एण्ड मिडिएवल इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, १९६०

[१३७] सालेटोर – द सदर्न अश्मक, जैन एन्टिक्वेरी, भाग ६

[१३८] सालेटोर – लाइफ इन द गुप्ता एज़, पापुलर बुक डिपो, बम्बई, १९४३

[१३९] सालेटोर – मिडिएवल जैनिज़्म, करनाटक पब्लिशिंग हाउस, बम्बई

[१४०] एस० आर० शर्मा – जैनिज्म एण्ड करनाटक कल्चर, करनाटक हिस्टॉरिकल रिसर्च सोसायटी, धारवार, १९४०

[१४१] शिवराममूर्ति – अमरावती स्कल्पचर्स इन द मद्रास ग० म्यूजियम, मद्रास, १९५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[१४२] हीरालाल जैन – जैन शिलालेख संग्रह, भाग १, माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई

[१४३] एच० सी० चकलदार – सोशल लाइफ इन ऐंशियण्ट इण्डिया, स्टडीज़ इन कामसूत्र, ग्रेटर इण्डिया सोसायटीज़, कलकत्ता, १९२९

पत्र-पत्रिकाएँ आदि

[१४४] अनेकान्त, वीरसेवा मन्दिर, सरसावा

[१४५] इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटरली, कलकत्ता

[१४६] इम्पीरियल गजट ऑव् इण्डिया

[१४७] इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्ज़

[१४८] जनरल ऑव् गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद

[१४९] जैन ऐण्टिक्वेरी, आरा

[१५०] जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

[१५१] भारतीय विद्या, बम्बई

[१५२] बुलेटिन ऑव् द डेक्कन कालिज रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना

[१५३] ब्रजमाधुरी, मथुरा

[१५४] श्रमण, वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

अ

अंकुश १६, २०९
अंग १४०, १६५, १७९, २५७, २६७, २८६
अंगद १३, १४७
अंगयष्टि २३५
अंगरक्षक १३२
अंगविज्जा ९९
अंगारपाचित ९, १०२
अंगिरा ७७
अंगुली १३, १४०, १४८, २१०
अंगुलीयक १३, १४०, १४८
अंगूठी १४८, १९७
अंगूर ११०
अंगौछा १२
अंजन १३, १५७, १८४
अंडी ९७
अंतःपुर १९, २०, ७४, १३७, २५३, २७०, २९०
अंतगडदसाओ १२७
अंतरास्य १७३, १८३
अंताखी नगरी १९३
अंत्यज ७, ६१, १०६
अंध्र २१, २६९
अंभ श्यामाक ९२
अंश १७३
अंशुक १०, ११, १२१, १२५, १२९, १३०
अंसुय १३०
अकलंक १६१, १६५
अकलंक-न्याय १४
अक्षमाला २३५
अक्षांश २७०
अक्षोल ९८
अखरोट ९८
अगरचंदन १२३
अगरु १३, १५७, १९०
अगस्ति ९७, १०३
अगस्त्य ९७, १६६
अगहन ९२
अग्नि १८, ६३, ९०, ९३, ११३, १७१, २४३
अग्निदमन ९, ९७, १०३
अग्निपुराण २१८
अग्निमान्द्य ११५
अग्रवाल (वासुदेवशरण) १२४, १२६
अघमर्षण ७९
अछूत ६६
अज ४५
अजगव २०२
अजंता १४३, १४४, १५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजयराज ५४
अजराज २८१
अजायबघर १५६
अजीर्ण १०, ११५, ११६
अटनि १९, २००, २०३, २४८
अटारी १५२
अड्ढ १९६
अड्ढमासक १९६
अतसी १२८
अतिथि ११४
अतिमुक्तककुमार ७४
अत्यशन ११२
अत्रि ७७
अदरख ९७, १०२, ११२
अदिति १७४
अधिपति २८१
अधोक्षज १७१
अधोवस्त्र १२७, १३४, १३६
अध्ययन १, ३, २३
अध्यर्ध १९६
अध्यशन ११२
अध्यात्म २९
अध्यापक १३६
अध्याय ४, ६, १७, २०, २२, २७, ११९, ३०३
अनंग ६३
अनंतमती २९१
अनगार ८२
अनाथपिंडक १९७
अनार ९८
अनाश्वान् ८३
अनीकस्थ १७९
अनुवंश १७०, १७३
अनुवाद ३३
अनुश्रुति ६९, ७०, १७०, २८२, २८५
अनुष्टुप् ५२
अनुष्ठान ४२, ७९
अनुसंधान २८४
अनूक १७३, १८३, १८५
अनूचान ८२
अनेकप १८१
अपकर्ष ७५
अपभ्रंश ६, ५०, ५१, २३२
अपर १७३
अपरकला १६२, १६८
अपराजितपृच्छा १९, २४८
अपवाद ७४
अपिशल १४
अपेय ७६
अप्रत्याख्यानावरण ७२
अब्लूर २७९
अभक्ष्य ७६
अभयमति ८, ४५, ७४
अभयरुचि ८, ४५, ७४
अभिचंद्र २७५, २९०
अभिधानकोश २
अभिनय १७, २२३, २३५, २३९, २५०
अभिनेता १७, २५०
अभिरक्षा ६९
अभिलषितार्थ चिंतामणि २४१
अभिषादी १८७
अभीरु १०, ११८
अभोज्य १०, १११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभ्यंग १०, ११३
अमरकंटक २९८
अमरकोष ११९, १३९, २२३, २२४
अमरकोषकार १२५, १२६, १३५, १३८, १४७, १४९, १५५, २०४, २२३, २८०
अमरावती १३५, १५०, २११, २१४
अमर्ष ८१
अमलक-देहली १९
अमृत ९५
अमृतगणाधिप १७९
अमृतमति १४, ४३, ४४, ९०, १०४, १३१, १३७, १६१, १९४, २६२, २६३
अमृता १०, ११८
अम्ल ९१, १०९
अयोध्या २१, १९५, २८२, २८७, २९१
अयोमुखपुंख २०३
अरजस्वला ८, ९०
अरब २८
अरबसागर २७०, २९८, २९९
अरबी १३२
अरमाइक १३२
अरिकेसरिन् ५, ३२, ३४
अरिकेसरी ५, २७, ३२
अरिभेद १०, ११९
अरुण १६२
अरुणांशुक १२९
अर्क १०, १०३, ११९
अर्काट २८
अर्गला १८०
अर्जुन १०, ९८, ११८, २०१, २०२
अर्थ २२, १८७, ३०३
अर्थवेदिता १७२
अर्थशास्त्र ३३, ३८, १२६, १३१, १९६, २१०
अर्ध १९६
अर्धकाकणी १९६
अर्धचंद्र १८५
अर्धपण १९६
अर्धमाणक १९६
अर्धमाष १९६
अर्वन्त १८७
अलंकार १३, १७, २९, १४०, १६०, २३६
अलंकारशास्त्र १२, १४०
अलक १५२, १५३
अलकजाल १३, १५२, १५३, २५९
अलक्तक १३, १५७, २४१, २८०
अलक्तक-मंडन १५०
अलबरूनी ८, ९०
अलवर २७१
अलसी १०३, १२८, १२९
अलाबू ९
अल्तेकर २८
अल्पना १८
अवतंस १२, १४०, १४१; १५९, २६१
अवतंसकुवलय १३, १५९
अवदंश ९, १०१, १०२
अवध ४०
अवनद्ध १७, २२५, २२६, २२८
अवन्ति ६, २१, ४३, २६७, २८२, २८४, २९०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवन्ति-सोम ९, ९६, ११६
अवस्था १७७
अवस्थानुकरण १७, २३६
अव्रती ७२
अशनि १६, २०७, २०८
अशोक १८, १७०, १८४, २४२
अशोकरोहिणी २४१
अश्मक २१, २६८, २७७, २८७
अश्मन्तक २६८
अश्व १४, २९, १०४, १८२, १८३, १८६, १८७
अश्वघोष ४६
अश्वचालक १८७
अश्व-चिकित्सा १६६
अश्वत्थ ९, ९८
अश्व-प्रशस्ति १८६
अश्ववाहक १६६
अश्वविद्या १६१, १६६, १८२, १८७
अश्वविद्याविद् १८७
अश्वविद्या-विशेषज्ञ १८७, १८८
अश्वशाला १९, २५१
अश्वशास्त्र १४, २२, १८२, १८३, १८६, ३०३
अष्टभाग १९६
अष्टवक्र १३१
अष्टशती १६५
अष्टांगसंग्रह १००
अष्टांगहृदय ११९
अष्टाध्यायी १६४, १९६
असणि २०८
असि ६९
असिर्तात १७१
असिधेनुका १६, २०३, २०४, २०५
असिपत्र १६, २०७, २७७
असिपुत्री २०३
अस्ताचल १३९, २९५
अस्त्र २११, २१५, २१८
अस्सक २६८
अहंकार ८२
अहिंसा ६, ४७, ४८, ४९, १०३
अहिच्छत्र २१, २८२, २९४
अहिच्छत्रा १३२
अहिच्छेत्र ६१
अहोबल २३२

आ

आंगिक १७, २३५, २३६
आंध्र १५१
आंध्रभृत्य २८९
आँवला ९७, ११०
आक ११९
आकाश ११०, २०८
आगरा ९९
आगम ७
आगमाश्रित ६७, ७२
आगार २५१
आख्यान २९
आख्यायिका २८
आचार २, १६, ६०, ७७, १७२, १९८
आचारांग १२६, १२७, १३०
आचारांग-चूर्णि ११
आचार्य ३२, ४५, ११९, १७०, १७७, १७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आजीवक ८, ७५
आज्य ९, ९६, १०२
आटा ६, ८५
आटोप ११७
आतप ११३
आतोद्य १७, २२४
आत्मविद्या ८१
आत्मा ७६, ८३
आदेशमाला १३, १४४
आघोरण १७९
आनक १७, १८४, २२५, २२८
आनुपूर्वी ३१
आपण १९१
आपस्तम्भ ९२
आपिशल १६१, १६२, १६३
आपिशला १६३
आपिशलि १६३
आप्टे २२, २१९, ३०४
आभरण २४१
आभूषण १२, १३, २२, २९, ६५, ८६, १४०, १४१, १४४, १४६, १४७, १४८, १५० १९५, ३०३
आम्नाय ८२
आम ९७, १०९, २९४, २९८
आमड़ा ९७
आमला ९५
आमलासारकलश २४८
आभिक्षा ९, १०७
आमेर ५२, ५३
आम्र ९, ९७, १०३
आम्रवन २९८
आम्रातक ९, ९७, १०३
आयाम १७२
आयास ११३
आयु ७५, ८९, ९४, १७२, १७७, १८३
आयुध २९, २०८, २०९, २१५, २१६
आयुर्वेद १०, १४, २२; १०१, ११४, ३०३
आयुर्वेदविशेषज्ञ ११९
आयुर्वेदाचार्य ११९
आरंभी ४८
आर्द्रक ९, ९७
आर्थिक १५
आर्य ३८
आलानस्तंभ १८०
आलाप ७७, ७८
आवर्त १८३, १८५
आवान ११, १२, १२१, १३६, १३९
आवास ७७, ७८, २५१
आवेदिता १७२
आशाम्बर ८१
आश्यान १५२
आश्रम ७३, १७४, २९६, २९७
आश्रमवासी १२, १३६
आश्रम-व्यवस्था ७, ७३, ७४
आश्वास २७, २९, ४२, १४८, २२३, २९९
आसन ९८
आसनावकाश १७३
आसाम १२४, १२९
आस्तरक ७, ६४
आस्थानमंडप १८, १९, २५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आहत १९६
आहार १११
आहार्य १७, २३५, २३६
आहुति १०१

इ

इंदीवर १८४
इंदुमति २०८
इंदौर २८८
इंद्र १२, १४, ३४, ३६, ३८, ३९, ११९, १४०, १६२, १७५, २०७, २०८, २४५
इंद्रकच्छ २१, २६९, २८८
इंद्रगोमिन् १६३
इंद्रधनुष १२२, २५८
इंद्रनील १४५
इंद्रपुरी २६९
इक्षु ९६, १०९
इटालियन ३३
इतिहास २, २८, २९, ३६, ३९, ४०, ९४, २०१, २५०
इभ १८१
इभचारी १४, १६५, १७८
इलायची १०२
इलाहाबाद २८६
ईडर २०७, २१०
ईरान ११, १३२
ईसा १०

उ

उग्रसेन २७२
उच्छ्वास २४१, २६३.
उज्जयिनी २१, ४३, ४५, १३८, १९४, २६२, २८२, २८४, २८७, २९९
उज्जैन २६७
उडुप ६४
उड़द ९४, १०७, १०९, १११
उड़ीसा २२७
उत्कर्ष ७५
उत्कल २७१
उत्खनन २८४
उत्पत्ति-स्थान १७२
उत्पल १२, १४१, १४२, १५९
उत्सव १४१
उत्सेध १७२
उत्तम २१०
उत्तरकनारा २७२, २७३, २७८
उत्तर प्रदेश ९३, २७६, २८०, २८२, २८४, २८५
उत्तर मथुरा २१
उत्तराध्ययन २०८
उत्तरापथ १३५, २०४, २०५, २१०, २११, २१५
उत्तरीय ११, १२, ६०, १२१, १२८, १३५, १३६, १३७
उत्तुंगतोरण २४९
उदम्बर ९
उदयगिरि २७६
उदयन-कथा ६
उदयसुंदरी २७३
उदयाचल १४५, २९५
उदर २६३
उदवास २९९
उदारहार १४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदासीन ८२
उदुम्बर ९८
उद्धत २३९
उद्यान १४०
उद्यानतोरण २५७
उद्योगी ४८
उद्योतनसूरि ६, १०, ५०, १२२
उद्वर्तन १०, ११३
उद्वसित २५०
उन्माद १४५
उपचार १७८
उपदंश १०२
उपदेश ९
उपधान १२, १२१, १३७
उपनिषद् १०८
उपमा ६५, १२८, १४३, १५६, २०७, २१३, २१४
उपमालंकार १३५
उपमुद्रा ७६
उपलेप २४१
उपवन १४३
उपशम ७२
उपसंव्यान ११, १२, १२१, १३६, १३७
उपसर्ग २८२
उपहार २४९, २७१, २७३, २७४, २७६
उपाध्याय ७, ६०, ७७
उपासकाध्ययन २, ३१, ४२, ४५
उबटन ११३
उमास्वाति १६४
उरोमणि १७३
उर्दू २५७
उर्मिका १३, १४०, १४८
उर्व १५
उल्लोच १३९
उवासगदसा ९३
उष्णीष ११, १२, १२१, १३५, १४१
उस्ताद २२३

ऊ

ऊँट १०७, २७८
ऊन १२४, १२५
ऊनी १२
ऊमर ९८
ऊरू ७०, २३७, २३८
ऊर्ध्ववात ११७
ऊर्व १६८
ऊषर १९०

ऋ

ऋग्वेद ९२, ९४, २०८, २१८, २३६
ऋतु ८, ९५, १०९, ११४, १२५, १४६, २५७, २९६
ऋतु-चर्या १०९
ऋषभदेव ६९, ७०, २२४, २४२
ऋषि ७७, ८१
ऋर्षिक १९३

ए

एकचक्रपुर २१, २८३
एकदेशसंयम ७७
एकपाद २८३
एकमासक १९६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकानसी २१, २८४
एकावली १३, १४०, १४४, १४५
एकेन्द्रिय ६८
एण १०५
एरंड ९, ९७, १०३
एर्वारु ९, ९७
एशिया ११

ऐ

ऐंद्र १६१, १६२, १६३
ऐंद्रव्याकरण १६३
ऐरावत १८, १७२, २४३
ऐलक ७७

ओ

ओझा ४०
ओघनिर्युक्ति २०९
ओदन ९९
ओमप्रकाश ९४, ९९, १००
ओष्ठ १८३

औ

औजार १८९
औदार्यन २६९
औरभ १०५
और्व १६८
औषधि १०, ११८

क

कंकण १३, १४०, १४७, १४८
कंकाहि २१, २८४
कंकोल १३
कंगूरा २१०
कंचुक ११, १२१, १२२, १३१, १३२
कंठ १५, १६८
कंठिका १३, १४०, १४४, १४६
कंठी १३
कंडू ११५
कंद ९, ९७, १०३, १०९, ११०
कंथा १२, १२१, १३७, १३८
कंधरा १७३, १८३
कंबोज २१, २६९, २७०
कंमलकेयूर १५९
कंसहंसक १५१
ककड़ी ९७
ककुभ ९, ९८
कच १५२
कचनार १२, १४१, १५९
कचौड़ी १११
कच्छ २६९
कच्छोटिका १३७
कच्छुटिया १२, १३७
कज्जल १३, १५७
कटाक्ष २३७
कटार १६, २०५
कटाहद्वीप १९३
कटि १३, २०, १४८, १४९, १५९, २६२
कणय १६, २१०
कणयकोणप २१०
कण्व ९२
कथरी १३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कथा २, ६, २८, ४२, ४५, १७४, १९७, २११, २७२, २८७, २९१
कथाकोष ५१
कथावस्तु २, ६, २८, ४२, ४६, ४८
कदंब २७२, २७३
कदल ९, ९७
कदलीकानन २५७
कदलीप्रवालमेखला १४, १५९
कनकगिरि २१, २८४
कनपटो १५४
कनफूल १२; १४३, १५९
कनारा ४०
कनिष्क १३४, २१०
कनेर १४३
कन्तुसिद्धान्त १५, १६७
कन्नड़ ६, ५०, ५३
कन्नड़कवि ३३
कन्नौज ४, ५, ३४, ३६, ४०
कन्या ८, ८९, १७४, १९५
कन्यादान ९०
कपाल ७६
कपास १४४
कपित्थ ९, ९८
कपोल २०, १४१, १७३, २६२
कफ १०८, १०९
कबरी १३, १५२, १५७, २०७, २७७
कमठ ९, १०४, २८२
कमर १४०
कमल १४२, १५९, १८४, २१३
कमलकेयूर १३, १५९
कमलनाल १०९
कमलवापी २६०
करटा १७, २२५, २३०
करटो १८१
करघनी १३, २०, ८७, १४६, १४९, २६२
करपत्र १६, २१२
करवाल १६, ७६, २०६
करहाट २१, २७०, २९५
करि १८०, १८१
करिकलाभ १७२, १७३
करि-मिथुन २६०
करिविनोदविलोकनदोहद १९, २५३
करीमनगर ३२
करुण २३१
करेला ९७, ११२
करौंत २१३
कर्कारु ९
कर्ण १८३, २०१, २०२
कर्णपर्व २१८
कर्णपूर १२, १४, १४०, १४१, १४२, १५९
कर्णफूल १४, १४३, १५९
कर्णाट २१, २७०
कर्णाटक २१, ३८, १४२
कर्णाभरण १४०
कर्णाभूषण १२, १४१
कर्णावतंस २०, १४२, १४३
कर्णिका १२, ७६, १४०, १४१, १४३
कर्णिकार १५७
कर्णोत्पल १२, १४, १४०, १४१, १४३, १५९
कर्तरी १६, २०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्त्रन्वय ७०
कर्दम १३०
कर्नाटक २८, १४२
कर्पट १२१
कर्पूर १३, १०१, १०२, १५८, २४४, २५४
कर्म ८२
कर्मग्रंथ ७
कर्मंद ७५, ७६
कर्मंदी ८, ७५, ७६
कर्मभूमि ६९
कर्म १९६
कलम ९, ९२
कलमशालि ९३
कलश १९, १८५
कलहंस ९, १०४
कला २, १३, २८, २९, ६२, १३५, १४४, १५०, १६७, १८९, २०९, २४१, २४५
कलाई १३, १४७
कलाप १५३
कलापित् १५४
कलाबत्तू १२७
कलाविनोद २९
कलि ८, १०, ९६, ११९
कलिंग २१, ४५, ६३, ९७, १९४, २७०
कलियुग ६९
कल्चुरी २७९, २८९
कल्चुरीविज्जल २७९
कल्पना १८०
कल्पनी २०४
कल्पवृक्ष २६७
कल्पसूत्र १६२, २०७, २१०, २२६
कल्याण २७३
कवि १५, १६१, १६५, १६८
कविकल्पद्रुम १६२
कश्मीर २७०, २७२
कषाय ७२, ९०, १०९
कसरे शीरीं २५७
कसैला १०१
कस्तूरी १३०, २५४, २९२
कस्तूरीमृग २९४
कस्बा २७८
कहानी ६
कहापण १९६
कांकरौली २२६
कांखुर १२९
कांच १३
कांचन १८४
कांचिका १४९
कांची १३, २१, १४०, १४८, २३७, २३८, २७१, २७६
कांचीवरम् २७१, २७६
कांजी ९९, १०३, १११, ११६
कांड २०३
कांसा १५१
काकणी १९६
काकंदी २१, २८४
काकमाची ९, ९८, १११
काठियावाड़ २८७
कातन्त्र १६२, १६३
कात्यायन १३०, १९६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कादम्बरी २, ५, ४२, ४५, १३३, १६९, २५५, २५९, २६०
कान १५९
कान्यकुब्ज ३४, ३५, ३९
कापालिक ८, ९, ४९, ७६, ७७, १०४
काबुल १३२
काम २९, ११३, १८७
कामकथा २५५
कामकृत १८६
कामदेव ८६, २४२
कामधेनु १९२
कामशास्त्र १४, १५, १६२, १६७
कामसूत्र ११९, १६७, १६८
कामिनी १८
काम्पिल्य २१, २८४, २८५
कारण ११५
कारवान लीडर १९८
कारवेल ९, ९७, ११२
काराकोरम १९३
कार्तिकेय २१७
कार्दमिकांशुक १२९
कार्षापण १६, १९५, १९६
काल ७२
कालपृष्ठ २०१, २०२
कालसेय ११६
कालागुरु २५४
कालिदास २, ६, १०, १५, २८, ९२, ९३, १२२, १२७, १२९, १३२, १५३, १५५, १६८, २०८, २२७, २५६, २७६, २८०, २९४, २९७
कालिदासकानन २१, २९४
काली २०९
काली मिर्च १०१
कावेरी २७०
काव्य १, २, १४, १५, २७, २८, ४६, ५१, १६२, १६८
काव्यशास्त्र ४६
काव्यालंकार १४२
काशिका १६३
काशिकाकार २२८
काशिराज ११९, १६२, १६६
काशी २१, १२८, २७१, २७२, २८९
काशी विश्वविद्यालय ४
काश्मीर १३८
काषाय ११३
काहला १७, २२५, २२६
किंजल्क १८४
किंपिरि २४७, २४८
किन्नरगीत २१, २८५
किरात ७, ६६, १०६, २९५
किरातराज २९५
किरातार्जुनीय ६६
किरीट १२, १४०
किसलय ९, ९७, १०९
किस्थवार २९८
कीथ ३, ३०, १६६, १८८
कीर २१, २७२
कीर्तिलता २५७
कीर्तिसाहार २५०
कीर्तिस्तंभ ३२
कुंकुम १३, १५३, १५७, १९२, २४४, २५४
कुंजर १८०, १८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुंजी २३
कुंडल १२, ७६, १४०, १४१, १४४
कुंडिनपुर २७४
कुंत १६, २१२
कुंतल २१, १४१, १५२, १५३, १५४, २३७, २७२, २७३
कुंतलकलाप १३, १५३
कुंतलजाल १५३
कुंभ १८, १७३
कुंभकार ६३
कुंभड़ा ११२
कुंभी १८१
कुंभीर ९, १०४
कुआँ ९५
कुक्कुट ४५
कुक्षि १७३
कुच १८७, २६३
कुटज १५४
कुठार १६, २११
कुत्ता ४४, ४६
कुमार १५, १६८
कुमारदास १६८
कुमारपाल २६३
कुमारश्रमण ८, ७७
कुमारसंभव २०८
कुमुद १५, १६९
कुम्हड़ा ९७
कुरर १०४
कुरवक ९, ९८, १६०
कुरवकमुकुलस्रक १४, १६०
कुरु २७२
कुरुक्षेत्र २७५, २८८
कुरुजांगल २१, २७२, २७५, २८८, २९०
कुरुर ९
कुर्कुट ९, १०४
कुल ६५, १७२, १७७, १८३
कुलकर्णी (ई० डी०) ३१
कुलटा ४४
कुलाचार्य ७६
कुलिश १८५
कुलीर ९, १०४
कुलूत २१, २९३
कुल्योपकंठ २५७
कुल्लूवेली २७२
कुल्हाड़ी २११
कुवलय १४१, १४२, १५९
कुवलयमाला १०, ५०, १२२, २८०
कुवलयावतंस १४२
कुवेर १९, २४५
कुशाग्रपुर २१, २८५
कुष्ट ११५
कुसुमदाम १४७
कुसुमपुर २१, ३८, २८६
कुसुमावलि ४५, १०५
कुसुम्भांशुक १२९
कूप ९
कूर्चस्थान २०, २५५
कूर्पासिक १३१, १३३
कूर्म १०५
कृतयुग ६९
कृपाण १६, २०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृपाणी २०४
कृपीट १८३
कृषक १४८
कृषि १५, ६९, ७०, १८९
कृष्ण ६८
कृष्णकान्त हन्दिकी ३, ३०
कृष्णराज २७, ३९, २८९
कृष्णवर्णा २७२
कृष्णा २७०, २७९
केंकड़ा १०४
केंचुली १२२
केंद्र २८४, २८५
केकट १५
केडा १९४
केतकी २३५
केतुकांड २४८
केतुकांडचित्र २४८
केयूर १३, १४७, १५०, १५९
केरल २१, २७३, २७४
केला ९७, १११
केवलज्ञान २४५
केश १३, ६५, १५२, १७३
केश-धूपाना १५२
केशपाश १३, १५२, १४४
केशप्रसाधन १५३, १५४
केशविन्यास १५२, १५४, १५५
केसर १५७, १८३, १९०, २५६, २७२
कैंची १६८, २०४
कैंथ ९८
कैकट १६९
कैरव १२, १४१, १४२, १५९
कैलाश २७९
कैलाशचन्द्रशास्त्री ३१
कैलास २१, २९४, २९७
कैलासगिरि २९९
कैलास लांछन २९४
कैवर्त ६४
कोंग २१
कोंपल ११०
कोक ९, १०४
कोकक १६७
कोकुंद ९, ९८, १०३
कोट ११, १३१, १३३
कोटीर १४०
कोदंड २०२
कोदंडविद्या २०३
कोदंडाचनचातुरी २०३
कोद्रव ९२
कोथ ११५
कोप ११३
कोपीन १२१
कोयंबटूर २७३
कोयल १११, २२४
कोलापुरम् २७५
कोलिक १२६
कोली १२६
कोविद ६
कोश २२, ४३, १७३, ३०३
कोशल १३०, २८२
कोशकार ११
कोशा १३०
कोशी २९६
कोष १९३
कोस २७५, २८४, २८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोसम २८६
कोहना २७०
कोहल ९, १५, ९७, ११२, १६९
कोहे विहिस्तून २५७
कौआ १११
कौंग २७३
कौक्षेयक १६, २०६
कौटिल्य ३३, ६४, १२६, १२८, १३१, १३२, १३३, १९६, २१२, २१४
कौपीन ११, १२, १३५
कौल ८, ९, ४२, ४९, ७६, ७८, १०४
कौलाचार्य २०६
कौलिक ७, ६३
कौशल २१, ४०, २७३, २७९
कौशाम्बी २१, २८६
कौशेय १०, ११, १२१, १३०, १३१, २७४
क्रतु ७७
क्रथकैथिक २१
क्रथकैशिक २७१
क्रीड़ा १४१
क्रीड़ाकुत्कील २५७
क्रीड़ाप्रासाद १९
क्रीड़ामयूर २६९
क्रीड़ावापी २०, २५५
क्रीड़ाशैल २५७
क्रीड़ाहंस १५१, २५९
क्रोंच ९
क्रौंच १११, १०४
क्लिष्ट २२
क्षणिकचित्र २४४
क्षत्र ७, ६१
क्षत्रिय ७, ५९, ६१, ७०, १०४, २८२
क्षपण ८१
क्षपारस ९, ९६
क्षमाकल्याण ५२
क्षय ७२
क्षयोपशम ७२
क्षार ९०
क्षीर १०९
क्षीरकदंब २७४, २९०
क्षीरतरंगिनी १६८
क्षीरवृक्ष ९८
क्षीरसागर (जे० एन०) ३०, १२८
क्षीरस्वामी ७६, ११९, १३९, १४३, १४७, १६८
क्षुमा १२८, १२९
क्षुल्लक ७७
क्षेत्र ७२
क्षेपणिहस्त १६, २१९
क्षेमीश्वर ३८
क्षौम ११, १२८
क्षौमवस्त्र १२८

ख

खंभात २९८
खट्वांग ७६, ७८
खड्ग १६, २०५
खड्गयष्टि २०५
खड़ाऊँ ७८
खदिर ११९, २१४, २१६, २१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खरदंड २०२
खर्जूर ९८
खांड १०१
खाण्डव ९, १००, १०२
खातवलय २५७
खाद्य ८, ९१
खाद्यसामग्री ९२
खानपान ९१
खाल १२४
खिलौना १३२, १५३, १५४
खीर ११०
खुखुन्दू २८४
खुजली ११५
खुर १८३
खुरली २०१, २०३
खुराशान २८१
खुशालचन्द्र ५४
खुसरू परवेज २५७
खेत ६२
खेरखाना १३२
खेस १३८

ग

गंगकोंडा २७५
गंगधारा २७, ३२, ३९
गंगा २१, २८३, २९६, २९७, २९८, २९९
गंगाधारा ५
गंगापटी १२२
गंगापुर २७५
गंजम २७१
गंडक २९६
गंध १८४
गंधमादन २१, २९४
गंधर्व १८७, २२३, २८०
गंधर्व कवि ५१
गंधार २७०
गंधोदककूप २०, २५५
गज १४, १९, २९, १७४, १७५, १८०, १८१, १८४, १८५, २५९
गजदर्शन १७९
गज-परिचारक १४, १७०, १७९
गजमद १८४
गजविद्या १४, १६१, १६५, १७०, १७९
गजवैद्य १७९
गजशाला ४३, २५१
गजशास्त्र १४, २२, १७०, १७२, १७३, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, ३०३
गजशास्त्रविशेषज्ञ १७८
गजशिक्षा १४, १७०, १७९
गजसुकुमार ७४
गजोत्पत्ति १७३
गड़रिया ६२, १४८, १९७
गणपति १५, १६९
गणपतिशास्त्री १२८, २०७, २१०, २११, २१२, २१५, २१६
गणित १४
गणितशास्त्र १६५
गणेश १७०, १७९
गति १७३, १७७
गदरी १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गदा १६, २१३, २१५
गद्य १, ४, २७, २८, ५२
गन्ना ९३
गरुड़ २०८
गरुड़पुराण १६६
गर्जक २०६
गर्भ ८६
गर्भान्वय ७०
गर्भिणी ८६
गल ६४
गला १४०, १४४
गवय १२२
गवाक्ष १८, १५२, २९९
गव्यण १०५
गव्यूति २७५, २८६
गांगेय २०२
गांडीव २०१, २०२
गांधार २२४
गांधारी २०९
गाँव ८०
गात्र १८३
गाथियन ११९
गाय ३७, ९५, १०७, २७८
गायत्री १०, ११९
गारवदांस ५४
गिरिकूटपत्तन २१, २७४
गिरिनार २८१
गिरिसोपा २७८
गिलाफ ११, १२८
गीत ६५, ८६, २२३
गीतगांधर्वचक्रवर्ती १७
गीतगोविन्द १२७
गुंजा १९६
गुग्गुल ८०
गुजरात ३, ११, १९, ३०, १२४, २५१, २७८
गुजराती ६, ५०
गुड़ ९, ९३, ९४, ९६
गुण १८३, २०३
गुणस्थान ६९, ७२
गुणस्थानवर्ती ७२
गुणस्यूत २०१
गुणाढ्य १५, १६८
गुदा ११७
गुथनियाँ २१९
गुप्त ५
गुप्तकाल ९०, १५६
गुप्तयुग १३, १२७, १४५, १९६
गुफा २२६
गुरमानका १३२
गुरु ५, १४, ७३, १६५
गुरुकुल १४, ७३, १६१
गुरुचि ११८
गुर्जर ४, ५, ४०, २०५
गुर्जर-प्रतिहार ३४
गुलबर्गा २७३
गुल्फ १३३, १४६
गुल्म १०, ११४, ११५, ११७
गुह्यक १६६, १८८
गुह्या ११, १२, १३७
गूलर ९८
गृहदीर्घिका १९, २८३
गृहवास्तु २५७
गृहस्थ ७२, ८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृहस्थधर्म ७१
गृहोद्यान २८३
गेगर २७८
गेरसोप्पा २७८
गेरु २४१
गेह २५१
गेहुआं १३१
गेहूँ ९२, ९४, १०९, ११४
गोखुर ९, १०४
गोत्र ७, ६९
गोत्रकर्म ६८
गोदान ८, १४, ७३, ८८, १६१
गोदावरी २१, २६८, २७०, २७९, २९८
गोध ७, ६२
गोधन २७८
गोधा २०३
गोधूम ९, ९२
गोप ७, ६२
गोपाचल २७५, २८६
गोपाल ७, ६२
गोपिका ६२
गोपी ६२
गोफणहस्त २१९
गोबर २४४
गोमती २९६
गोमांस १०७
गोम्मटसार ७२
गोरखनाथ १०
गोरक्षा ७०
गोरस ९, ९६
गोरोचना १२५
गोल ४०
गोलधर १६, २१९
गोलासन २१९
गोल्ल ४०
गोविंदराम ३१, ३६
गोशाल ७५
गोशाला २७०
गोशीर्षचंदन १५८
गोस्वामी २२६
गौड़ ३३, ४०, १३३
गौड़मंडल २८६
गौड़संघ ५, ३३, ४०
गौतम १४, १६६, ११९
गौतमबुद्ध २०८
ग्रंथ ११९
ग्रंथिपर्ण १०, ११९, २८१
ग्रलहि १५, १६९
ग्राम २०, २१, २८२, २९१
ग्रामवृद्ध ६
ग्रीवा १७३
ग्रीष्म ९५, १०९, १४६, २५७
ग्वाला ६२
ग्वालियर २५४, २७५, २८६, २८७

घ

घंटा १७, २२५, २३१
घन १७, २१४, २२५, २२९
घर्घरमालिका १४८, १५०
घर्षण २७२
घाघरा २९६
घास ३७
घी ९१, ९४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घुँघुरू २३८
घुड़सवार १८७
घुड़सार २५१
घूँघर १५३
घृत ९४, ९५, ९६, १०९, ११०, १८४
घोड़ा १२१, २२४, २७८
घोणा १८३
घ्राण ६८

च

चंडकर्मा १०६
चंडकौशिक ३८
चंडमारी ४२, ४४, ४६, ७६, ७८, १०४, १३४, १३९, १५०, २००, २०५, २११, २१२, २१३, २१४, २१५
चंडरसा २७७
चंडातक ११, १२, १२१, १३४
चंडुपंडित १६३
चंदकांत १९
चंदन १९०, २५४
चंदेरी २५४
चंदोवा १२, ११०
चंदोर २९८
चंद्र १४, १८, १९, १६१, १६२, १६३, २४३
चंद्रकवल १३, १५८
चंद्रकांत १४४, २५९, २७९
चंद्रकांतमणि २५९
चंद्रगुप्त ३८
चंद्रगोमिन् १६३
चंद्रातप १२
चंद्रद्वीप २७९
चंद्रनवर्णी ५६
चंद्रप्रभ ३४, ३५
चंद्रभागा २१, २९८
चंद्रम ५६
चंद्रमति ४३, ४४, ४५, ४६, ८६, १३५
चंद्रमंदिर २५०
चंद्रमा ९५, १४५, १४६
चंद्रलेखा १०, ११८
चंद्रापीड १३३
चंद्रायणीस १६२, १६८
चंपक १२, १४१, १५९,
चंपा २१, १४१, २६७, २८६
चंपापुर १९५
चँवर २३७, २३८
चकोर ११०
चक्र १६, ६२, १८५, २१३, २१५
चक्रक ९, ९७
चक्रवर्ती २४२
चक्रवर्ती (पी० सी०) २१८
चक्रवाक ११०
चक्षु ६८
चटगाँव २७९
चतुरश्र २३४
चतुरिन्द्रिय ६८
चतुर्वर्ण ६०, ६९, ७०
चत्तारोमासक १९६
चप्पल ७८
चमड़ा २१८, २८४
चमर ९, १०४
चमार ६५
चमूरु ९, १०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चरक १४ ११०, ११९, १२०, १६७
चरकसंहिता ११९, १२०
चर्मकार ७,६५, १०६
चर्मप्रसेविका ६५
चर्वी ११३
चष्टन १३४
चष्टनशैली १३४
चांडाल ७, ६३, ६५, १०६
चाँदी १६, १९६
चांद्र १६२
चांद्रव्याकरण १६३
चाणक्य ३८
चाणक्यनीति ३८
चादर १२, ७७, १३७, १३८
चाप २०२
चारायण १४, ११०, ११९, १२०, १६७
चारित्रमोहनीय ७२
चारुदत्त ६४
चार्वाक ७८
चालुक्य ५, ३९, २६८, २७२, २७३, २८९
चावल ९२, ९३, ११०
चाष २४७
चिउड़ा ९३, ९४
चिंचा १०२
चिंतामणि १५, १९
चिकित्सा १४, १७०
चिकुर १५२, १५५
चिकुरभंग १३, १५२, १५५
चित्र १८, २०८
चित्रकर्म १७, १८, २४४
चित्रकला १४, १५, १७, २९, १६२, १६७, २०७, २४१, २४२, २४४, २४५
चित्रपट ११, १२४
चित्रपटी १०, १२१, १२४, २५१
चित्रभानुभवन २५०
चित्रशिखंडी ८, ७७
चिपट ९३
चिपिट ९, ९३
चिबुक १८३
चिर्भटिका ९, ९७
चिल्ली ९, ९७, ११२
चीता २५९
चीन १०, ११, १२१, १२२, १२३, १२४, १२९, १३१, २५१
चीनांशुक १०, १२३, १२४, १२९, १३०
चीनी १०, ९४, १०९, १९३
चीवर ११, १२, १२१, १३६
चीवरक्खंधकं १३६
चुंकार २१, २८६
चुन्नीलाल शेष २२६, २३२
चुरी ९५
चूचुक २०, २६२
चूर्ण ९४, १०१, १०२, १५२
चूर्णिकार १२६
चेदि २१, २७४, २७५, २७९, २९०
चेनाव २७७
चेर २७
चेरम २१
चैत्यालय १८, २२३, २३६, २४६
चैत्र २७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चोटी २९६
चोल २१, २७, २७४, २७५
चोलक ११, १२१, १३१, १३३
चोला १३३
चोली ११, १३१
चौलकर्म ८८
चौलमंडल १९४
चौलाई ११२

छ

छंद २९
छकड़ा १९६
छवि १७२
छाँछ १११
छाग १०५
छानी २०९
छाया १७२, १८३, २४१
छायामंडप २५७
छुरिका २०३
छुरी २०३

ज

जंगली ६६
जंघा १८३
जंबीर ९८
जंबू ९, ९८
जंबूक १०, ११८
जगत्स्थिति २९
जघन १८३
जटा १५२
जटाजूट १३, २३५
जटासिंहनंदि ६९
जटिल ८, ७७
जठराग्नि १०, ९५, १०८
जननी ८, ८८
जननेता १
जनपद ६, २०, २१, ४०, ४२, ४३, १२४, १४६, १४७, १८९, १९४, २६७, २७०, २७१, २७४, २७५, २७६, २७८, २८०, २८१, २८२, २८४, २८८, २८९
जन्नकवि ५३
जबलपुर २८९
जमुना २८६
जम्मू २९९
जयघंटा २३१
जयदत्त १६६
जयपुर ५३, ५४, २७१
जयसिंह, २७२
जल ९, ९५
जलकेलिवापिका २५७
जलचर १०४
जलजंतु ९
जलवाहिनी, २१, २९४, २९८
जलौघ २५८
जव १७३, १८३
जसहरचरिउ ६, ५०, ५१
जहाज १९४, २४७
जांगल २७२, २९०
जांघ १६०
जांघिया १३५
जातक १९५, १९६, २२६
जातकर्म ८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जातरूप-भित्ति १९
जाति ७, ६५, ६६, ६९, १७२, १७७, २२३
जानकीहरण १६८
जानु १८३
जामदानी ११, १२४
जामुन ९८
जायसी १०, १२१, १२३
जाल ६४
जावा १९३
जाह्नवी २८३, २९७
जितेन्द्रिय ८९
जिनचंद्रसूरि ५५
जिनदत्त १९४
जिनदास ५५
जिनदासशास्त्री ३१
जिनभद्र १९४
जिनसेन ५९, ६९, ७०, ७१, ७२
जिनालय १८
जिनेंद्र ३५, १४०
जिनेन्द्रभक्त १९४
जिमरिया ९८
ज़िरहबख्तर ११, १३३
जिह्वा १८३
जीन २८४
जीवन ८, ८५
जीवनचरित्र २७
जीवंती ९, ९७, ११२
जुआड़ी १९१
जुआर ९३
जुरमानकह १३२
जुलाहा ६३
जुलूस २१९
जुहुराण १८७
जूं १३८
जूट १५२, १५७, २१८
जूड़ा १५५
जैत १९७
जैन १, २, ५, ९, ४७, ६७, ६८, ६९, ७२, ७९, १०३, २३६, २८०, २८२, २८५
जैनधर्म ७, ५९, ६८, ७०, ७१, ७५, १०४
जैनमंदिर २८४
जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज २४२
जैन साहित्य ७, ४७,
जैन सिद्धान्त भास्कर ३८, ३९
जैन स्तूप आफ मथुरा २३६
जैनागम ७१, ७४, ७५
जैनाचार्य ५९, ८०
जैनाभिमत ७, ६७
जैनेन्द्र १४, १६१, १६२
जैनेन्द्र व्याकरण १६४
जोधपुर २८०
जौ ७९, ९२, ९४, १०९, ११०
ज्ञान ८३
ज्ञानकीर्ति ५३
ज्ञानभूषण ५१
ज्या २००, २०३
ज्यारोप २०३
ज्योतिष २२, २९, ३०३
ज्योतिषी १३५
ज्वर १०, ११४, ११५, ११६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झ

झंपासिंह २४८
झल्लरी १७, २२५, २३२
झालर २३२
झिल्ली २२६
झोल २०, २१, २९७
झेलम २९९

ट

टाँड़ा ७, १६, १९२
टाप १८३
टिप्पण २२, २९, ३०४
टिप्पणी २२, ३०३
टीका २२, २९, ३१, ३३, ३६, ९१, १६७, ३०४
टोटी २५९
टयूडर २५७

ठ

ठक्कुर फेरु २४८
ठाणांग सूत्र २९८

ड

डंडा ६५
डंडी १५१
डमरु २३०, २३४
डमरुक १७, २२५, २३०
डहाल २१, २७४, २७५, २९०
डिंडिम १७, २२५, २३४
डिमडिमी २३४
डोडी ९७, ११२
डोरा २०१
डोरी २००

ढ

ढक्का १७, २२५, २२८
ढल्हण ११९
ढाका २०९, २७९
ढुलकिया २२८
ढेंकी ९३
ढोल २२८, २३२
ढोलक २३४
ढोलकी २२८

त

तंजोर १८२, २४५
तंजौर १६६, २७५
तंडुभवन २५०
तंडुलीय ९, ९७, ११२
तंतु २२५
तंत्र ८०
तकिया ११, १२, १२८, १३७
तक्र ९, ९५, ९६, ११६
तक्ष २८०
तक्षक ७, ६२
तक्षशिला २८०, २८१
तड़ाग ९
तत १७, २२५, २३१
तत्त्वचिंतक १
तत्त्वज्ञानतरंगिणी ५१
तत्त्वार्थवार्तिक १६५
तत्त्वार्थसूत्र ४८, १६४
तनुरुह १८३
तपस्या ४५, २८२
तपस्विनी १०, ११८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तपोवन ७३
तमाल १५५
तमालदलधूलि १३, १५८
तमिल ६, ५०, ५५
तयीमासक १९६
तरकस २०३
तरंड ६४
तरणितीरणी २९८
तरवारि १६, १८५, २०६
तराई २९४
तराजू १५१
तरी ६४
तरोना १४३
तर्क २९
तर्कविद्या १६१
तर्कशास्त्र १४
तप ६४
तलवर २०६
तलवार ४२, ८३, २०३, २०५
तलहटी २९५
तहसील २८
तांडव १७, २२३, २३६, २३९, २४०
तांत २१८, २२५
तांबा १९६, २३३
तांबूल १३, १५८
तांबूलवाहिनी २०
तामलुक २८६
ताम्रचूड १११, १७१
ताम्रपत्र २९२
ताम्रलिप्ति १६, २१, १९३, १९४, २८६
तार २१८, २२५, २३२
तारा १४५
तार्किक १
तार्किकचक्रवर्ती ६
ताल १७, ९८, २२५, २२९, २३८
तालपत्र १४३
तालाब ९५, २६७
तालु १७३, १८३
तिकोना १२
तिक्त ९१, १०९
तिब्बत १९३, २९७
तिब्बती १६३
तिरहुत ९३, २०५
तिर्यग्योनि २३५
तिर्यंचगति ४८
तिल ९९, १०९
तिलक २६२
तीक्ष्ण ९०, १०८, १०९
तीर्थंकर १८, २४२, २४४, २४५, २८२, २८५
तुंगभद्रा २७८
तुरग
तुरंगम १८७
तुरही २३३
तुर्किस्तान १९३
तुलाकोटि १३, १४०, १५०
तुवग्तरंग ६४
तुषारगिरि २८१, २९६
तुहिनतरु २०, २५५
तूंबी २३२
तूर १७, २२५, २३३
तूर्य २३३
तेज १७७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेल ९
तेली ६३
तेलुगु १६४
तैत्तरीयब्राह्मण ९४
तैत्तरीयसंहिता १६३
तैल ९६
तोयश्यामाक ९२
तोरण ८७, १८५, २८२
तौर्यत्रिक २२३
त्रयश्र २३४
त्रयी ६७
त्रस ७२,
त्रापुषमणि १४७
त्रिक ७७, १८३
त्रिकटुक ९९
त्रिचनापल्ली २७५
त्रिदश १५, १६९
त्रिपुरी ३७, २७९, २८९
त्रिभुवनतिलक १८, १९
त्रिभुवनतिलकप्रासाद २४९
त्रिमाष १९६
त्रिवला २३०
त्रिवली २०, २६२
त्रिविला १७, २२५
त्रिविली २३०
त्रिवेदी ७, ६०, ६१
त्रिशूल १६, २१५, २१७
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र २८५
त्रीन्द्रिय ६८
त्रेतायुग ६९
त्वष्टकि १६२

थ

थलचर १०४
थान १२३
थाली १५०
थैला ६५

द

दंड १६, ६५, २१४, २१५
दंडि २८
दंति १८१
दक्षिणमथुरा २१
दक्षिणापथ ३५, २७०
दत्तक १६२, १६७
दधि ९, ९४, ९६, १०९
दधीचि १३२
दध्नापरिप्लुत ९, १०२
दमकलोक १८०
दया ६९, ८३
दरद ९, ९६
दरबार १२५, १३३, २३४, २७७, २८१
दरबारेआम १९
दर्दरीक ९, ९८
दर्दुर २२७
दर्शन २८
दर्शनमोहनीयकर्म ७२
दशकुमारचरित ६०
दशन १८३
दशरूपक १७
दशरूपककार २४०
दशा १८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशार्ण २१, १४३, २७५, २७६
दही ९१, ९४, १०२
दहेज १२७
दाक्षिणात्य १३५, १४६, १५७
दीक्षी १६४
दाख ९८, ११०
दाडिम ९८
दादागुरु ४०
दान १८०
दानपत्र ५, २७, ३२, ३३, ३४
दानशाला २६७
दार्शनिक १५, २२, ३०, १६९, ३०३
दाल ९१, ९४
दासी १५०
दाह ११३
दिगम्बर ८०
दिग्वलयविलोकविलास २५३
दिवाकर मित्र १४५
दिवाकीर्ति ७, ६३, ६४
दीक्षा २७४
दीक्षान्वय ७०
दीदिवि ९, ९२, ९९
दीर्घतप १७५
दीर्घतपा १७५
दीर्घनिकाय २६९
दीर्घिका २०, २५५, २५६, २५७, २६४
दुंदुभि १७, २२५, २२७
दुःख ७५
दुकूल १०, ११, १२१, १२५, १३७, २३५, २५३
दुग्ध ९, ९४, ९५, ९६, १०२, १०९, १८४
दुपट्टा १२
दुर्गा २१७
दुर्जर १०
दुर्योधन २१३
दुर्वासा २४९
दुस्फोट १६, २१३
दूत १३७, १४०, २०४, २११, २१७, २८०
दूतिका ८, ८८
दूध ३७, ८३, ९१, १०७, १०९
दूविया १२८
दृग्मान्द्य १०, ११५, ११६
दृति ६५
दृश्य २३६
देव ३४, ९०
देवता १२, ४८, २०७, २०९
देवनंदी १६४
देवपूजा ११०, ११४
देवभोगी ७, ६०, ६१
देवराज ३६
देवरिया २८४
देवलोक १७५
देवविमान १८, २४३,
देवसंघ ४, ५, ३२, ३३
देवसूरि ५४
देवांतु ५, ४०
देवालय २८३
देवी १२, २०७, २०९
देवेन्द्र ३५, ५५
देश २०, ७२, १७२, १७७
देशक ८, ७७
देशयति ८, ७७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशव्रती ७२, ७७
देशसंयम ७२
देशी ७
देहदाह ११५
देहली २५४, २५७
दोहद ८६, १०५, २९८
दौंनी १९०
द्रविड़ ३३
द्रविड़संघ ३३
द्रामिल १४३
द्रुत २३९
द्रोण ७५, २०२
द्वापर ६९
द्विज ७, ६०, ६१, ९०
द्विदल ९, ९४
द्विप १८१
द्विमाष १९६
द्विरद १८१
द्वीन्द्रिय ६८
द्वीप २८३
द्वैमासक १९६
द्वयाश्रय २०८

ध

धतूरा ११९, २२६
धनंजय १७, २३६, २४०
धनदधिष्ण्य २५०
धनु २०२
धनुर्धर २०२
धनुर्धारी २०३
धनुर्वेद २२, २००, २०२, २०३
धनुष १६, २००, २०१, २०३
धनुष-विद्या २०१, २०३
धन्वन्तरी १४, ११९, २२३
धन्वी २०२
धम्मिल १५५
धम्मिलविन्यास १३, १५२, १५५
धरण १६, १९६, २४९
धरोहर १६, १९८
धर्म २८, ६७, ६९, ७४, ८२, १७३, १८७, १९९
धर्मधाम २५०
धर्मशाला २६७, २८३
धर्मशास्त्र ६७, ८९
धर्माख्यान १४, १६१
धर्माचार्य १
धवल १२७
धसान नदी २७६
धातु २३१, २३३
धात्री ८, ८७, ८८, ८९
धात्रीफल ९, ९७
धान ६२, ९३
धाम २५१
धारवाड़ २८, २७२, २७३
धारागृह २५७
धार्मिक ३०
धारोष्ण ६५
धिषण १४, ११०, ११९, १२०, १६७
धिष्ण्य २५१
धीरप्रशान्त २३६
धीरोदात्त २३६
धीरोद्धत्त १७, २३६
धीरललित २३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धीवर ७, ६४, १०६
धूप १५२
धूपवास १५२
धूलिचित्र १७, १८, २४३
धैवत २२४
धोती १३६
धोबी ६३
ध्यान ७९, ८२
ध्यानमुद्रा २३५
ध्वज ६३, १८५, २०८
ध्वजदंड १९
ध्वजस्तंभ १९
ध्वजस्तंभस्तंभिका २४८
ध्वजिन् ७, ६३
ध्वनि २२, ३०३

न

नंद ३८
नंदीदुर्ग २७३
नकुल १११
नख २६२
नगर २०, २१, ८०, २७६, २८२
नगरी २७२, २९९
नगारा २२८
नग्न ८१
नजर ११०
नट ७, ६५
नदी २१, ४३, २७२, २९७, २९८
नभचर १०४
नमक ९३, ९६
नमकीन १०१, १०९
नमत १२, १२१, १३८
नमदा १२४ १३८, २८४
नमस्कार १४०
नमेरु ९, ९८
नर १४, १६६, १७९
नरक ४८
नरेन्द्र ३५
नरेश २७, २८, २२६, २६८
नर्तकी १०२
नर्मदा २१, २७८, २८८, २९८
नल २०२
नलक ६३
नवनीत ९, ९५, ९६, १३१
नव्यानव्यकाव्य १६१
नहर २०, २५७
नहरेबिहिश्त २५७
नहुष २०२
नाई ६३
नाग १४५, १८०, १८१
नागनगरदेवता १५५
नागरंग ९, ९८
नागलोक २११
नागवल्ली ९८
नागवृक्ष १३१
नागानंद २०८
नागार्जुन १४५
नागेशनिवास २५०
नाटक १४, २८, ३८, २३४
नाट्य १७, २९, २२३, २३६
नाट्यमंडप २३४
नाट्यशाला १७, २२३, २३४, २३५
नाट्यशास्त्र १५, १६७, २२४, २२७, २३२, २४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाद २२६
नाथूराम प्रेमी ३१, ३८, ४०
नापित ६४
नामकर्म ६८
नाभि २०
नाभिगिरि २१, २६२, २९०, २९४
नायक १७
नायिका १७, १४६
नारद १४, १६६, १७९, २६१, २७४
नाराच २०३
नाराचपंजर २०३
नारायण १५, १६८
नारिकेल ९, ९८
नारिकेलफलांभ ९, ९६
नारियल ९८, १०९
नासिका १८३
नास्तिक ८, ७८
निंदा ८२
निकाच १८०
निचल १३८
निचुल १३९
निचुलक १३९
निचोल १२, १२१, १३८, १३९
निचोलक १३९
निचोलि १३९
निजामाबाद २६८
नितंब १४६, १८७
नित्यवर्ष ३८
निद्रा १११, ११३
निपाजीव ७, ६३
निमाड़ २८८
निमि १४, ११०, ११९, १६७
नियतिवाद ७५
नियम ८२
निरंकुश ७३
निर्णयसागर प्रेस ३०, ११९, १६९
निर्मम ८२
निवास २५१
निशीथ १२६
निशीथचूर्णि ११
निषाद १०६, २२४
निष्क १६, १९५
नीति ६, २९, ३९
नीतिप्रकाशिका २१८
नीतिवाक्यामृत ५, ३३, ३४, ३६, ३७, ३८, ३९, ६७, १२०, १९२
नीतिशतक १६९
नीतिशास्त्र १४, १६५, २५०
नीम ९७
नील ६८
नीलकंठ १७६
नीलकमल १८४
नीलगुंड प्लेट २७२
नीलपट १५, १६९
नीलभट्ट १६९
नीलमणि १५१
नीला १५९
नीलांशुक १२९
नीहार १०, ११३
नूपुर १३, १४०, १४७, १५०, १६०
नृत्त १७, २३६, २३८, २३९, २४०
नृत्तवृत्तान्तभरत २२३
नृत्य १७, ८६, २२३, २३४, २३६, २३७, २४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नृत्यकला १७
नेत १२३
नेता ७१
नेत्र १०, २०, १२१, १२२, २५१, २६२
नैपाल २१, २९२, २९४, २९७
नेपाल शैल २१, २९४
नेमिदेव ५, ३२, ३३, ३९
नेमिनाथ ३३
नैपाल १६३
नैषध १६३
नैषधकार ६३, १६३
नोनखार २८४
नौबत २२८
नौशे ११, १३३
नौसंतरण १५, १८९
न्यायविनिश्चय १६५
न्यास १५, १६, १६३, १८९, १९८

प

पंखा २६२
पंचम २२४
पंचमार्कड १९६
पंचमालिप्ति १४९
पंचरंगपाग १३५
पंचशैलपुर २८५, २८९
पंचाग्निसाधक ८३
पंचाल २७६
पंचेंद्रिय ६८
पंजाब २७२, २७७
पंडित १६१, १९७
पकवान १०१, ११२
पक्वान्न ९, १०१, १०१
पक्षी ९
पगड़ी १२
पचूड़ी १२३
पटना ३८, २८५, २८७, २९९
पटरानी १९, २९०
पटवास १३, १५८
पटह १७, २२५, २२८, २३४
पटोल ९, १०, ११, ९७, १२१, १२४, २५१
पटोला ११, १२४
पट्ट १२, १२४, १४०, १४१
पट्टकूल १२१, १२४
पट्टबंध १७०
पट्टिका १२१, १३५
पट्टिस १६, २१५
पण १९६
पणव १७, २२५, २२७, २३२
पणि १४, १६४
पणिपुत्र १४, १६१, १६२
पण्यपुटभेदिनी १९२
पतंजलि १६२, १६४
पताका १२५, २३८
पति ८, ४६
पत्नी ८, ७४
पत्रच्छेद १६८
पत्रोर्ण १३१
पदप्रयोग १६१
पदमावत १०, १२१, १२३
पदाति २१०
पद्मनाथ ५२
पद्मनाभ ५२, ५४, ५५
पद्मनिखेट २१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पद्मसरोवर १८, २४३
पद्मावतंस १४२
पद्मावतीपुर २१, २८७
पद्मिनी १९४
पद्मिनीखेट २८७
पद्म १, ४, १८, २७, २८, ३५, ३६
पनवेल ९८
पनस ९, ९८
पन्नालाल ५४
पबंध १४१
पयसा-विशुष्क ९, १०२
परदनिया १२, १३६
परमहंस ८३, ८४
परमान्न ९, १००, १०२
परवल ९७, ११०
परशु १६, २११, २१७
परशुराम १६२, २११
पराग १८४, २३५, २५४
परासर ७८
परिकर्तन ११७
परिग्रह ७३, ८१
परिघ १६, २१४
परिचर्या १०, १५, १०८, ११५, ११६, १६७
परिच्छेद ६, ७, ८, ९, १०, १२, १४, १६, १७, २०
परिणाह १७२
परिधान ११, १२, १२१, १३६, १३७
परिवार ७४, ८५, ८९
परिव्रजित ७५
परिव्राजक ८, ७८, २८३
परिव्राट ७८
परिहृरानंद ५४
परीक्षित १४, १६५
पर्दनी १३६
पर्पट ९, १०२
पर्भनी ४०, २६८
पर्याप्तक ६९
पर्वत २०, २१, २२६, २७४, २८१, २९०, २९१, २९४
पलंग ४३, ४४, १३७, २६२ २३३
पलंगपोश ११, १२८
पलांडु ९, ९८, १०३
पल्लव १२, २१, १४१, १५२, १५९, १९३, २७१, २७६, २८२
पल्लवावतंस १४१
पवनकन्यका २६२
पवाया २८७
पशु ९, ६८
पशुबलि ६
पशुयोनि ६, ४४, ४५, ४७
पश्म १२४
पस्त्य २५१
पहलवी ११, १३२
पांचजन्य २२५
पांचाल २१, ११९, २००, २०४, २११, २१६, २७६, २८२, २८५, २९४, २९८
पांडु २१, २०७, २७६
पांडुलिपि ३०, ५२, ५३, ५५, २४५
पांड्य २१, २७, १४६, २७६
पाकविज्ञान २९, ९१
पाकविद्या ८, ९१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाकिस्तान २८९, २८९
पाचूड़ी १०
पाटलिपुत्र २१, १९४, २८६, २८७
पाटली १५६
पाठीन ९, १०४
पाणि १४, १६४, २३८
पाणिग्रहण ४३
पाणिनि १४, ७५, ९९, १६२, १६३, १६४, १९५, १९६
पाणिनीय १६१
पाताल १४५
पाद १९६
पानक ९, ९६, १०९
पानी ८३, १०९
पाप ८२, १९९
पापड़ १०२, ११२
पामर ७, ६१
पायस १०६
पारदरस १०, ११९
पारलौकिक ७, ५९, ६७
पारा ११९
पाराशर ८, १४, ७५, १६५
पाराशर्य ७५
पारासर ७८
पारिजात ९, ९८
पारिरक्षक १६१, १६५
पारिवारिक ८
पार्वती ७७, २४०
पार्श्वनाथ २८२
पार्श्वनाथचरित ५१
पार्ष १०५
पालकाप्यमुनि १६५, १७४, १७६, १७७, १७८, १७९
पालकाप्यचरित्र १७४, १७५
पालि २६८, २७८
पालीताना २८७
पाश १६, २१८
पाश्चात्य ११८
पिंठा १९२
पिचुमंद ९, ९७, १०३
पिता ८८
पित्त १०८, १०९, ११३
पिनाक २०२
पिप्पली ९, ९६
पिष्टकुक्कुट ८५, १०४
पिष्टात १५३
पिष्टातक १५३, १५८
पी० एल० वैद्य ६
पीटरसन ३, ३०
पीठ १७३
पीतल २१८, २२६
पीपल ९६, ९८, ११८
पुंख २०३
पुंखानुपुंखक्रम २०३
पुंड्र १८३, १८५
पुंड्रेक्षु ९, ९८
पुट्टकोट्टा २७५
पुट्टा १८५
पुण्य ८२
पुण्यजनावास २५०
पुत्तलिका २०, २५४
पुत्र ८, ७४
पुन्नाग १६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुन्नागमाला १४, १६०
पुन्नाट ३३
पुन्नाटसंघ ३३
पुरंदरागार २५०
पुरंध्री १०९
पुरवृद्ध ७४
पुराण १४, १६, २९, १९६, २७४
पुरातत्त्व २, २९, १५२, २३५, २५६
पुरानी गुजराती ५५
पुरानी हिन्दी ६, ५०, ५४
पुराविद् ३८
पुरुष ११, १२, १४७, १५५
पुरोहित ७, ६०, ६१, ८७, ८९, १९२, २३८, २७२, २७४, २९०
पुष्कर १७, १७३, २२५, २२७
पुष्करणी २०, २५५, २५६
पुष्करत्रय २२७
पुष्कल २८०
पुष्कलावती २८०
पुष्प १४१, १५२, १५८, २७२
पुष्पदंत ५१, २८५
पुष्पप्रसाधन १३, १५८
पुष्पमाला १५२, २०८, २४३
पुष्पवाटिका २५७
पुष्पावतंस १४१
पुलस्त्य ७७
पुलह ७७
पूंजी १९२
पूंछ १७३, १८३
पूग ९८
पूज्यपाद १६१
पूर्णकुंभ १८, २४३
पूर्णदेव ५३
पूर्णभद्र ५२
पूर्णरूप ११७
पृथुक ९४
पृथुवंश २८२
पृथ्वी १५, १८, १८९, २०१
पृथ्वीचंद्रचरित २०५
पृषदाज्य ९६ १०१
पृष्ठ १८३
पृष्टभूमि ४६
पेचक १७३
पेट ११३, १८३
पेदन १६४
पेय ८, ७६, ९१
पेशा ६५, ६६
पैंठास्थान १५, १९१, १९२, १९५
पैठण २७३
पैर के आभूषण १४०, १५०
पोखरा ९५
पोंडा ९८
पोदन २६८
पोदनपुर २१, २६८, २८७
पोरोगव ९१
पोशाक १३१
पौंड्र ११, १२६
पौंड्रदेश १२८
पौरव २१, २८७
पौराणिक १५, २२, ६९, १६९, १७०, १७३, ३०३
पौरोगव ९
पौष ९२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याज ९३, ९८
प्रकार ११६, १७२
प्रकृति १८३
प्रचार १७७
प्रचेत:पस्त्य २५०
प्रच्छदपट १३९
प्रजा १८७
प्रजापति १६१
प्रज्ञा १
प्रज्ञाचक्षु ३६
प्रज्ञापना २०८
प्रणाल २४७, २४८, २५९
प्रतिभा १
प्रतिष्ठान २७३
प्रतिहार ४, ५
प्रतिहारी २१६
प्रतीक २४३
प्रतीकचित्र १८
प्रदेश २७०, २७२, २७३
प्रदोष २६०
प्रद्युम्न १८, २४१, २४२
प्रधावघरणि २५३
प्रपा २६७
प्रबोधचन्दोदय ७६
प्रभंजन ६, ५०, ५१
प्रभा १७२
प्रभुदयाल २२६
प्रमदवन १९, २०, १४१, १५५, २५५, २५७
प्रमदारति २३८
प्रमाणशास्त्र १४, १६१, १६५
प्रमाणसंग्रह १६५
प्रयाग २१, २७१, २७६, २९१, २९८
प्रवचन २९
प्रवर्षण २५८
प्रशस्ति ३३, ३४, ३६, ५२, २७१
प्रशिष्य ३२
प्रसंख्यान १६१, १६५
प्रसंख्यानशास्त्र १४
प्रसाद २८
प्रसाधन १३, २९
प्रसाधन-सामग्री १५७, १५८
प्रसूति ८६
प्रसूतिगृह ८६
प्रसेनजित २८५
प्रस्तावना ३८
प्रांत २८६
प्राकृत ६, २८, ५०, ५२, १३०, २०८
प्राक्कथन २७८
प्रागद्रि २१, २९५
प्राग्ज्योतिषेश्वर १२४
प्राभृत २९२
प्रालेयशैल २८१, २९६
प्रावरण १३८
प्रासु १६, २११, २१२
प्रासाद २५१, २५७
प्रासादपट्ट १४१
प्रासादमंडन १९, २४८
प्रासादशिल्प २५५
प्रियदत्त १९५
प्रियालमंजरी १५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेक्षागृह २३४, २३५
प्रेम १९१
प्रेमिका १६८
प्रेमी १६८
प्रेमी (नाथूराम) ३३, ३६
प्लक्ष ९, ९८
प्लास्टर २४१

फ

फणयुक्तसर्प २४३
फतेहपुर सीकरी १९, २५२
फर्रुखाबाद २८४, २८५
फर्श २५४
फल ७९, ८२, ९७, १७९
फलश्रुति ७५
फव्वारा २५९, २६१
फारसी १३२
फाल्गुन २८
फुहार २६०
फूल १५९, २२६

ब

बंग २१, २७९
बंगला १२३
बंगाल १०, २१, ४०, १२३, १२४, १२६, १२९, १४२, २३३, २७९, २८६, २९८
बंगी २१, २७९
बंदी १७२, १७३, १८२
बंदूक २१९
बंधूक १६०
बंधूकनूपुर १४, १६०
बंबई ३०, ३३, २७०, २७३
बकरा ११, ४५, ४६, १३६, १४८, १९७
बकरी ४५, ४६, २७८
बकुल १३१
बगीचा २६७, २८३, २९४
बड़वा १६६
बड़ौदा १९, २०९, २५१
बथुआ ९७
बदमाश २८६
बधीचन्द्र ५४, ५५
बनवासी २७२
बनारस ३६
बनिकटुपुल ३२
बमुथु १८०
बरपानक १३२
बरवान १३२
बरछी २१०
बरार २६८, २७७
बरेली २८२
बर्छी २१७
बर्फ २९६
बर्बर २१, १९४, २६८, २७७
बल १७३, १७७, १८३
बलराम २१३, २१४, २१६
बलवाहनपुर २१, २८७
बलि ४२, ७६
बल्हरा २८
बहावलपुर २८९
बहित्रयात्रा १९४
बाँस २१२, २३१
बाँसुरी २३१
बाकरगंज २७९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाजरा ९२
बाजा ६५
बाजार १५, १९०, १९५
बाण २; १०, ११, १५, २८, ४१, ४२, ९८, १२७, १२८, १५१, १५५, १६८, १८४, २०१, २०३, २५९, २६०, २६४
बाणभट्ट २, ५, ४५, १२२, १२४, १३०, १३२, १३४, १४८, १६९, २५६, २५८
बाणासन २०२
बाल ९, ४३, १२४, १५५
बालकवि ३७
बालधि १८३
बाल-विवाह ८
बालिस्त २३३
बाली १२, १४४
बाहुबलि १८, २४१, २४२
बिलासपुर ९३
बिहार १९७, २६७, २८५, २८६, २८९
बीदर २७०, २७३
बुद्धभट्ट १६६
बुंदेलखंड १२, १३१, १३५, १३६, १३७, १४४
बुद्ध २०७
बुद्धचरित ४७
बुद्धयुग १९६
बुहलर २७८
बृहत्कला ११,
बृहत्कल्पसूत्र १२४
बृहत्कल्पसूत्र भाष्य १३०
बृहत्तर भारत २०
बृहस्पति ७८ ९२, १२०, १४५, १६५, २२३, २८६
बृहत्संहिता १२, ९९, १४१
बेल ९७
बेलगांव २७२, २७३
बैंगन ९७, १०३, ११२
बैल २२४
बोंटुडपुल्ल ३२
बोधगया १९७
बोधन २६८
बौद्ध १३६, १६३, १९७, २३६, २८६
ब्रह्नसोध २५०
ब्रह्म ८३
ब्रह्मचर्य ७, ७३
ब्रह्मचारी ८, ७८, ८३
ब्रह्मजिनदास ५५
ब्रह्मनेमिदत्त ५२
ब्रह्मपुत्र १७९, २९७
ब्रह्मा ७०, १७४, १७५, १७९, २०८
ब्राह्मण ७, ९, ५९, ६०, ६१, ६८, ७०, १०४, २५०
ब्राह्मणकाल ९४
ब्राह्मणी १६३
ब्राह्मी १२३

भ

भंडारकर इंस्टीटयूट ५२
भंभा १७, २२५, २२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भक्त ९, ९९
भक्ष्य ७६
भगन्दर १०, ११३, ११५, ११६, ११७
भगवद्गीता २२५
भगवती २०८
भगासनस्थ ७६
भगिनी ८, ८८
भटकटैया ९७
भट्टनारायण १६८
भट्टारक ३४
भट्टिकाव्य १२७, २१६
भड़ौंच २७८
भद्र १४, १७०, १७५, १७७, १८१
भद्रमित्र १९४, १९७, १९८
भरत ७०, ७१, १६२, १६७ २३२, २३३, २३६, २४२, २८०
भरतक्षेत्र ४३
भरतपदवी २२३
भरतमुनि २२३, २३४
भरहुत १३५, १९७
भरुकच्छ २७८
भर्तृमेंठ १५, १६८
भर्तृहरि १५, १६८, १६९
भवन २५१
भवन-दीर्घिका २५७
भवन-मयूर २५९
भवभूति १५, २८, १६८
भविल ८, ७८
भव्य ६९
भस्त्रा २०३
भस्म ७६
भांग २१८
भागलपुर २६७, २८६
भागीरथी २९७
भागुरि १४२
भाग्य ७५
भादों ९९
भात १०९
भारत ३, १०, २८, ४०, ८४, १२५, १२९, १९५, २९२
भारतवर्ष ३, १८, २८, १२५, १२९, १३३, १९६, १८९, २२६, २४४, २५७
भारतीय वेश-भूषा १२३, १३२
भारद्वाज १४, १६५
भारवि १५, २८, ९३, १६८
भार्या ८, ८८
भाल ६६, १०६
भाला २१७
भावनगर २८९
भावपुर २१, २८८
भावप्रकाश ११६, ११७
भावलपुर २८९
भावाश्रित १७
भास १५, २८, १६८
भिंदिपाल १६, २१२
भिक्षु ७५, ७६, १४५
भित्तिचित्र १७, २४१
भिनमाल २८०
भिल्लमाल २८०
भीम १४, १६५, २१३, २९५
भीमवन २१, २९५
भीष्म १४, १६५, २०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजा १४०, १४७
भुसुंडी १६, २०६
भूकंप २०१
भूगोल ४, २०, २९
भूदेव ७, ६०, ६१
भूमितिलकपुर २१, २७५, २८८
भृंग १८४
भृगु १७५
भृगुकच्छ २७८
भृति १९८
भेड़ १०७, २७८
भेद १७५, २३९
भेरी १७, १८४, २२५, २२६, २३३
भेरुंड ९, १०४
भैंस २७८
भैंसा ४५, १९४
भैरव ७६
भोगावलि १४, १६८
भोज २१, ३७, १६६, २५१, २५८, २५९, २६०, २६१, २६३, १६४, २७७
भोजदेव २६२, २६३
भोजन १०, ११०, १११
भोजपत्र २९४
भोजपुरी १०, १२३
भोजावनी २७७
भोज्य १०, १११
भौंरा १४१
भ्रमिल १६, २१५

म

मंखलिपुत्त ७५
मंगल २२६, २२७
मंजरी १५२
मंजिष्ठा २७४, २७५
मंजीर १३, १४०, १५०
मंडप ४३
मंडलाग्र १६, २०६
मंडी १९१
मंत्र २९, ८०
मंत्रजाप ७९
मंत्री २३८
मंद १४, १०८, १७०, १७६, १७७, १८१, २३९
मंदर २१, ९८, २९५
मंदाकिनी १४५, २६३
मंदाग्नि ११२
मंदिर ४२, ४४, ६१, ७८, १३९, २५१
मकड़ी २२६
मकर ९, १०४
मकरध्वजाराधनवेदिका २५७
मकरी २६०
मकोय १११
मक्खन ९९
मगध २१, ९३, २७७, २८५, २९०, २९४
मगर ४५, ४६, १०५
मछली ४५, ६४
मट्ठा ९४, १०२
मणि २५५
मणिकिंकणी १४९
मणिकुंडला २८१
मतंगज १८१
मत्सर ८२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मत्स्य १०५
मत्स्यपुराण २१२
मत्स्ययुगल १८, २४३
मथानी १४९, १५०
मथुरा ३३, १३२, १३४, २८१, २८८
मथुरासंग्रहालय १३३, १३४
मद ८१, ८२, १८०
मदनमदविनोद २५७
मदावस्था १७८
मदुरा २१, २८८
मद्य ६६, ७७, १०४
मद्र २१, २७७
मधु ९, ९६, १०१, १८४
मधुमाधवी २४४
मधुर ९१, ९६, १०९, २३९
मध्य एशिया १२३, १३४
मध्यदेश २७४
मध्यप्रदेश ९३, २८९
मध्यप्रांत २८८
मध्यम २१०, २२४, २३९
मध्यमणि १४४
मनःसिल १३, १५८
मनसिजविलासहंसनिवासतामरस २५३
मनु १०५, २९९
मनुष्य ६८
मनुस्मृति १६, ६३, ६५, १०५, १९५, १९६
मनोहरदास ५५
ममता ८२
मय ९, १०४, १०७
मयूर १५, १११, १५३, १५४, १६८, २३९, २८३
मयूरपिच्छ १५४
मरकत २४४, २५४
मरकतपराग १९
मरंडश्रृंगी ११८
मराठा २७३
मरिच ९, ९६
मरीचि ८७, २६१
मरुद्भव १०, ११८
मरुभूमि १३४
मरवादेश २९३
मरुवा १५९
मर्कटी २४८
मर्दल २२७, २३३
मल १०
मलखेट २७३
मलखेड २७३
मलय २१, २७७, २९५
मलयाचल २७३
मलावरोध ११७
मल्लिका १५४, २५२
मल्लिकामोद २७२
मल्लिनाथ १३२
मल्लिभूषण ५२
मसक ६५
मसाल ९६
मसाला ९
मसि ६९
मस्तक १७३
महर्षि १७४, १९४
महल २५७
महाकवि १५, ३७, ४६, १६८
महाकाली २०९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाकाव्य ४, २८, ४६, ४७, २०८

महागोविन्द सुत्त २६९

महाजनपद २७४

महाज्वाला २०९

महात्मा ४३

महादेव १४०, २०१, २०२, २१७, २४०, २९७

महादेवी २५४

महानवमी ४२

महानसकी ८, ८८

महापुराण ७०

महाबोधि १९७

महाभागभवन १८

महाभारत १९५, १००, २०८, २१४, २२७, २२८

महाभाष्य १६३

महामात्र १७९

महामुनि ७८

महाराज २७

महारानी १४, ७४, १३७

महाराष्ट्र २८९

महावंश २७८

महावग्ग ९९, १३६

महावत ४३, ४४, २१०

महावादी ५

महावीर ७५

महावीरचरित २०१

महाव्रती ८, ७८

महासामन्त १२

महासाहसिक ८, ७८

महासुदस्सनसुत्तन्त २८६

महिष ९, १०४

महिषमर्दिनी २०९

महिस १२२

महीपालदेव ३८

महेन्द्र ३४, ३६

महेन्द्रदेव ५, ३५, ३६, ३९, ४०

महेन्द्रपर्वत २७१

महेन्द्रपालदेव ५, ३६, ३७, ३८

महेन्द्रमातलिसंजल्प ५, ३३, ३६

महेश्वर २८८

मांग १५६, १५७

मांस ६६, ७७, ७८

मांसाहार ९, १०३, १०४, १०६, १०७

मागधी १०, ११८,

माघ १५, ९३, १६८, १६९

माड़वार १५०

माणक १९६

माणिक्चन्द्र ३३

माणिक्यसूरि ५२

मातंग ७, ९, ६६, १०४, १७४, १७५, १८०, १८१, २९५

मातंगचारी १७९

मातंगलीला १७९

मातलि ३६

माला ७४, ८५

माथा १५६

माथुरसंघ ३३

माधुर्य २८

मान ८१, ८२

मानस २१, २९७

मानसरोवर २१, २९७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानसार १५४, १५५
मानसी २०९
मानसोल्लास १८, १०२, २४१
मानधाता २८८
मान्यखेट २७३
मामा १२४
माया ८१
मायापुरी २१, २८८
मायामेघ २०, २५८
मारिदत्त २, ४२, ४३, ४५, ७६, १४२, १६१, १७०, २०५, २२३, २५७, २६९
मार्कण्डेयपुराण १६६, १८८
मार्गणमल्ल २०३
मालती १२२, १८४, २५४
मालव २६७
मालवा २५४, २७५
माला १५५, १५९
मालाकार ७, ६२
माली ६२, १९०
मालूर ९, ९७
माष ९, १०७, १९६
माषा १६, ९४
माहात्म्य ४६
माहिष १०५
माहिष्मती २१, २८८, २८९
मितद्रव १८७
मितंद्रु ९, १०५
मित्र २७५, २९२
मिदनापुर २८६
मिथिलापुर २१, २८८
मिथुन १६८
मिथ्यात्व ७२
मिरच ९६
मिराशी २६९
मिर्च ९३
मिलिन्दपञ्हो २९८
मील २८४
मुंगेर २६७, २८६
मुंडिका १०३
मुंडीकल्लार ११८
मुंडीर २०७, २७७
मुकुट १२, १४०, १४१
मुक्ताफल १४६, १८४, २५९
मुगल १९
मुगलकाल २५१
मुद्ग ९, ९४, १०७
मुद्गर १६, २१४
मुद्रा १६, १९५
मुद्राषट्क ७६
मुनि ८, ४०, ७७, ७८, ८१
मुनिकुमार १४४
मुनिधर्म ७१
मुनिमनोहर १४०, १५५
मुनिमनोहरमेखला २१, २९५
मुनिसंघ ३३
मुमुक्षु ८, ७८, ७९, ८२
मुर्गा ६, ४४, ४५, ८५, १११
मुर्गी ४५, ४६
मुल्तान २८९
मुसल १६
मुहम्मदशाह २५४
मुहूर्त ८६, १३५
मूंग ९४, ९५, ११०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूंज २१८
मूत्र १०
मूर्ति १३२
मूलक ९, ९७
मूलगुंड १६२
मूली ९७, १११
मूसल ९३, २१४, २१६
मृग १४, १२५, १७०, १७६, १७७, १८१
मृगमद १३, १५८
मृणाल १३०, १४८, २५६
मृणालवलय १४, १५९
मृण्मूर्ति ११, १३
मृत २१८
मृदंग १७, १८४, २२५, २२७, २३३
मृद्वीका ९, ९८
मेकडानल २३६
मेखला १३, १४०, १४८, १४९, १५९
मेघ १३९, १८४, १८६, २२८, २७६
मेघचंद्र १६४
मेघदूत २२८, २७६
मेघपुरन्ध्रि २६२
मेंढक १०४
मेदनी ३५
मेमना १२४
मेष ९, १०४, १०७
मेलपांटी २७, २८
मेलाड़ी २८
मैकाल २९९
मैतृक २८९
मैसूर २२६, २४२, २७२, २७३
मोंगरा १६०
मोक्ष २९, ७४, ७६, ७८, १८७
मोगरक १४७
मोती १४४
मोतीचंद्र १०, १२३, १३५, २४२
मोदक ९, १००
मोनियरविलियम्स २२, ३०४
मोम २२६
मोर ४६
मौक्तिकदाम १३, १४०, १४४, १४७
मौर्वी २०१, २०३
मौलि १२, १३, १४०, १५६
मौलिबंध १५२
मौहूर्तिक ७, ६०, ६१

य

यंत्रगज २५९
यंत्रजलधर २०, २५८
यंत्रदेवता २६१
यंत्रधारागृह १९, २०, २४१, १४२, १४७, १४८, २३९, २५७, २५८, २६१, २६३, २६४
यंत्रपक्षी २५६, २५८
यंत्रपर्यंक २६३
यंत्रपशु २५६, २५८
यंत्रपुत्तलिका २०, २५६, २५८, २६२
यंत्रमकर २६०
यंत्रमानव २५८
यंत्रमेघ २५८
यंत्रवानर २६१
यंत्रवृक्ष २०, २५६, २५८, २६१
यंत्रव्याल २५८, २५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यंत्रशिल्प २०, २९, २५६, २५८, २६४
यंत्रस्त्री २०, १४२, २५८, २६२, २६३
यंत्रहंस २५९
यक्ष १८
यक्षकर्दम १३, १५८, २५४
यक्षमिथुन २४१, २४३
यक्षणी १७४
यजुर्वेद ९२, ९९
यजुर्वेदसंहिता १०१
यज्ञ ९, ७९, १९७
यज्ञोपवीत ७६
यति ८, ७९, ८१, १६५
यम १९
यमराज २४९, २०६
यमुनपुर २८८
यमुना २१, २९६, २९८, २९९
यमुनोत्री २९८
यव ९, ९२
यवद्वीप १९३
यवन २१, १९३, १९४, २८१
यवनाल ९, ९३, १०३
यवनी २८१
यवागू ९, ९९
यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर ३०
यशस्तिलक चंद्रिका २९
यशस्तिलक पंजिका ४, २९
यशोदेव ३२, ३३, ४०
यशोधरकथा ५३
यशोधरकथाचतुष्पदी ५५
यशोधरचरित्र ६, ५०, ५१, ५२, ५४, ५६
यशोधर-जयमाल ५५
यशोधररास ५४, ५५
यशोमति ४४, १०५, २०२
यशोध्वज १९४
यशोर्ध ४३, ४५, ८५, ८६,
यष्टि १६, २१६
यागज्ञ ८, ७९
यागनाग १७७
याज्ञवल्क्य १४, १६६, १७८
याज्ञवल्क्य स्मृति ६३, ६५
यान ११३
युक्तिकल्पतरु १६६
युक्तिचिन्तामणिस्तव ३३
युद्ध २२५, २३१
युद्धमल २६८
युद्धविद्या १४
युवराज ७४, १४१
युवराजदेव ३७
युवांगच्यांग ११, १२५, २९१
युवानच्यांग २८५
युवानच्वांग २७८
योगी ८, ७९, ८३
योद्धा १४०, २०१, २११, २१५
यौधेय २१, ४२, ४६, १४३, १४७, १४८, १८९, १९४, २७८

र

रंग ६८
रंगघोषणा १६८
रंगपूजा १७, २३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रंगावली १८, २५३
रंगोली १८, २५४
रक्षागृह १२३
रक्त-शालि ९३
रक्तांशुक १२९
रघु १३२, २८२
रघुवंश १०, २०८, २२८ २५६, २७७, २८२
रजक ७, ६३
रजकी ६३
रजत-वातायन १९
रजस्वला ८९
रजाई १२
रतनपुर २७९
रतनसेन १२३
रति ८६, २३८
रति-रहस्य १६७
रत्ती १६, १९५
रत्न २४३, २८३
रत्नद्वीपटीका १६७
रत्नपरीक्षा १४, १६२, १६६
रत्नावतंस १४१, १४२
रथ १४
रथविद्या १६२
रदनि १८१
रनिवास २५३
रम्यक २६८
रल्लक ११, १२५
रल्लिका १०, ११, १२१, १२५, २५१
रविषेणाचार्य ७०
रसचित्र १८, २४४
रसना १३, ६८, १४०, १४८, १४९
रससिद्धि १४५
रसाल ९, १०१
रसाश्रित १७
रसोइया ९१
रसोईन ८८
रस्सी १४९, २१९
राई ९६, १०३
रांकव १२४
राघवन् (डा० वी०) ३१
राजगिरि २८५
राजगृह २१, २७७, २८५, २८९
राजगृही २७७, २८९
राजघाट १५३, १५४, १५६
राजतपुराण १६, १६६
राजधानी ५, ३२, ४२, ४३, २६७, २६८, २७१, २७३, २७५, २७६, २७९, २८५, २८९
राजनपुर २८९
राजनीति ५, १४, ३३, ३६, १६१
राजनीतिज्ञ १
राजनीतिशास्त्र १६५
राजपथ १५७
राजपुत्र १४, १३, १६६, १७९
राजपुर २१, ४२, १२५, १३९, १४०, १४१, १४६, १४७, २४९, २८९, २९५
राजप्रासाद १८
राजभवन १९
राजमंदिर १८
राजमहिषी १४, १४१
राजमाता ४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजमार्ग १९१
राजमाष ९४, १०३
राजमिस्त्री ६२
राजशेखर १५, ३७, १६८
राजश्यामाक ९२
राजसभा ४४
राजस्तुतिविद्या १६८
राजस्थान ३, ३०, ५२, २८०
राजस्थानी ६
राजा १८, १४१
राजादन ९८
राजिका ९, ९६
राज्यतन्त्र ५, ४१
राज्यश्री १२२
राज्यश्रेष्ठी ७, ६१
राज्याभिषेक ४३, ४४, १२५, १३५, १७७, २३३, २४३
रात्रिशयन ११३
रानी १८, ४३
राम २०२
रामनगर २८२
रामायण १००, २०८
रायगढ़ ९३
रायपसेणियसुत्त २२९
रायपुर ९३
रालक ९, ९८
रालका १०३
रालवृक्ष ९८
रावी २७७
राष्ट्रकूट ५, २७, २८, ३८, ३९, ४०, २७३
राष्ट्रकूटयुग ९०
रिंगणीफल ९, ९७, १०३
रिस्थवार २९८
रोढ़ १७०, १७३
रुंजा १७, २२५, २३१
रुचक ७६
रुद्र २०८
रुहेलखंड २७६, २८२
रूई १२६
रूप १७, १७३, १७७, २३६
रूपक १७, २८, २३६
रूपगुणनिका २४२
रेंड़ ९७
रेंड़ी ९७
रेशम ११, १२४
रेशमी १२३, १२४
रेशा १२९
रैवंत १६६, १८८
रैवंतक १८८
रैवत १४, १६१, १६६, १८७
रैवत-स्तोत्र १६६, १८८
रोग १०, १५, १०८, ११५, १६७
रोमक १९३
रोमपाद १४, १६१, १६५, १७९
रोमराशि १८३
रोरव १०५
रोरुक २६९
रोरुकपुर २६९, २८८
रोहिणी १८, २४२

ल

लंका २०८
लंगोट १२, १३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लंगोटी ७७
लकड़ी ७८, २१७, २३१
लक्षण ११७, १७२, १७५, १७६, १७७
लक्ष्मी १०, १८, ३५, ११८, १५४, २४३, २७०
लक्ष्मीदाम ५५
लक्ष्मीमति २६७
लक्ष्मीविलास २५१
लक्ष्मीविलासतामरस १८
लक्ष्य २०३
लखनऊ १५६
लगान १८९
लगुड़ ६४
लड्डू १००
लघीयस्त्रय १६५
लघुशंका ११३
लघ्वशन ११२
लतागृह २६१
लप्सी ९९, ११०
लम्पाक २१, २७८
लय १७, २३८
लवण ९, ९६
लवन १९०
लवली ९८
ललाट १८३
ललितकला १७, २२३
लहसुन ९८
लाइट २४१
लांगल १६, २१६
लांगवाटर २५७
लाघमन २७८
लाट २१, २७८
लानपो २७८
लाप १३४
लालकिला २५७
लावण्यरत्न ५५
लास्य १७, २३६, २३९
लिकुच १३१
लिपजिग १६३
लुनाई १९०
लोकगीत १०, १२३
लोकधर्म ७
लोकभाषा १२
लोकाश्रित ६७
लोचन १८३
लोचनांजनहर २८६
लोहा २१७
लौकिक ५९, ६७
लौकी २३२

व

वंश १८०
वकुल २५२
वक्ष १८३
वज्र १८५, २०७, २०८
वज्रतारा २०७
वज्रांकुशी २०९
वट ९, ९८, १३१
वडवा १८८
वणिक ७, ६१, १९२, २९१
वत्स २८६
वत्सराज ५१
वदन १८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह्निग २७, ३२
वद्यग ५, २७, ३९
वधू १४८
वन २०, २१, २९४, २९६
वनदेवताभवन २५७
वनवास २७०, २७८
वनवासी २१, २७८
वनस्पति २९, ७९
वनेचर ७, ६६, १०६
वमन १०, ११५, ११६
वय १७३, १८३
वरदमुद्रा २३५
वरदा २७८
वरमाला ८९
वररुचि १५, १६९
वरांग २२९
वराह ९, १०४, १७०
वरुण १९, १७५, २१८
वरुणगृह २५०
वर्ण ७, ६८, ६९, १७२, १८३, १८४
वर्ण-चतुष्टय ६९
वर्ण-रत्नाकर १०, १२२, २०४, २०८, २०९
वर्ण-व्यवस्था ७, ५९, ६७, ६९, ७०
वर्णाश्रम ६५
वर्षा ९३, १०९, ११०
वलभी २८९
वलय १३, १४०, १४७, १४८
वला २८९
वलाका २५८
वलीक २०, २५५
वल्लक ९, ९८, १०३
वल्लकी १७, २२५, २३२
वल्लभदेव १६८
वल्लभराज २८
वल्लभी २१
वल्लरी १४१
वल्लिका १८०
वशिष्ठ ७७
वसंत ९५, १०९
वसंतमति २८०
वसंतिका १००
वसति २८३
वसु २९०
वसुंधरा १५, १८९
वसुमति २९०
वसुवर्धन २६७
वस्ति २९५
वस्तु १९७
वस्त्र २९, १२१, १९२, २४१, २७४
वांदिवास २८
वाकुची ११८
वागुरा १६, २१८
वाग्भट ११९
वाग्युद्ध ५
वाचंयम ८२
वाचिक १७, २३५, २३६
वाजि १८७
वाजिविनोदमकरंद १८२, १८३
वाडव ७, ६०, ६१
वाणिज्य १५, २९, ६९, ७०, १८९, १९०
वात १०८, १०९
वातोदवसित २५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वात्स्यायन ११९, १६७, १६८
वाद २९
वादित्र ८७, २२९
वादिराज ५१, ५५
वादीभपंचानन ६, ३२
वाद्धलि १४, १६६, १७८
वाद्य २२३, २२४
वाद्य-यंत्र १७
वाद्यविद्या २२३
वाद्यविद्याबृहस्पति २२३
वानप्रस्थ ७२, ८१
वानर ९, १०४, १८५
वानरमिथुन २६१
वापी ९, २८३
वाभ्रव्य ११९
वामन १८१
वारण १८१
वारबाण ११, १२१, १३१, १३२
वारविलासिनी १५१, १९१, २३८, २८७
वाराणसी २१, ३०, १५३, १५६, २७१, २८९
वाराह १०५
वारिगृह २५८
वारियंत्र २६४
वार्धीण १०६
वाल ९७
वालधि १७३
वालारुण १८४
वाल्हीक २६९
वास-भवन १९
वासवसेन ५०, ५१
वासुकि १४५
वासुदेवशरण अग्रवाल १०, १२१, १५३, १९३, २५७
वास्तु १९
वास्तुकला २५७, २५८
वास्तुशिल्प १८, १९, २०, २९, २४६, २४८, २६०, २६४
वास्तुसार १९, २४८
वास्तूल ९, ९७, ११२
वाहन १४, ११३, १८६
वाहरिका १८०
वाहलि १४, १६६, १७९
वाहा १८७
वाह्लीक ११, १२४
विटरनित्ज ३
विंध्य २१, २७१
विंध्या २९५
विंध्याचल २७०, २९५, २९८
विंध्याटवी ६६, २८३
विकृष्ट २३४
विक्रमांकदेवचरित २७८
विक्षोभकटक १७३
विगाढना १९०
विचकिलहारयष्टि १४, १६०
विचार ७७
विजय २२७
विजयकीर्ति ५३
विजयपुर २१, २८९
विजयमकरध्वज ४३
विजयवैनतेय १८२, १८३
विजया १०, ११८
विजयार्ध २१, २९२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विटंक २४७, २४८, २४९
विट्खदिर ११९
वितान ११०, १२१, १३९, २५४
वितस्ता २९९
विदर २७०
विदर्भ २७१, २७७
विदाहि १०
विदिशा २७६
विदेशी ७
विदेहराज ११९
विद्या ६९, ७३, ७४, २३५
विद्याधर ४२, ७६, २०६
विद्याध्ययन १६१
विद्यापति २५७
विद्यार्थी १६१
विधि १७, ११२, २३६
विनायक १७०
विनाशन २९९
विनिमय १५, १८९, १९५, १९७
विप्र ७, ६०, ६१, ६५
विभीतक ११९
विरसाल ९, ९४
विराट ४०, २७१
विरुद २८
विरुदावली १६८
विरोधी ४८
विलासदर्पण २७७
विलासपुर २७९
विवाह ८, ८५, ८९, १२२, १२४
विवेकराज ५५
विशांपति ६१
विशालाक्ष १४, १६५
विशिख २०३
विश्व २७४
विश्वदेव २७४
विश्वनाथ २९७
विश्वावसु २७५, २९०
विष ९५, ९७, १०९
विषम १०८
विष्णु १७१, २०१, २०२, २१३,२१५
विष्णुधर्मोत्तर २४२
विस ९
विहार ८०, ८१
विहारधरा २५७
वीणा १७, २२४, २२५, २३१
वीत १८०
वीर २३७
वीरभैरव ४२
वृक ९, १०४
वृती १०, ११८
वृत्तविधान २८
वृत्ति १८५
वृन्ताक ९, ९७
वृषभ १८, १८४, २४३
वृष्ण २२५
वृहतीवार्ताक ९, ९७
वेंगी २७९
वेग १७७, १८३
वेडिका ६४
वेणिदंड १३, १५२, १५७
वेणीसंहार १६८
वेणु १७, २०९, २२५, २३१
वेत्रवती २७६
वेद २९, ५९, ६७, ७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदंड १८१
वेदी २६०
वेश-भूषा १०, ११, २९
वेश्या १९५
वेष-भूषा १२१
वैकक्ष्यक १२१
वैखानस ८, ७९, १३५
वैजयंती १२५, २१२
वैतालिक १४६, २५०
वैदिक १६, २२, ५९, ६८, ७१, ७२, ७९, १९५, २३६, ३०३
वैदिक माइथोलॉजी २३६
वैदिक युग ९४
वैद्य (पी० एल०) ५०
वैद्य ९१, ९४
वैद्यक १४, २९, १६६
वैद्यकशास्त्र ११७
वैयाकरण १६२
वैशंपायन २, ४२
वैशाख ३२
वैश्य ७, ५६, ६१, ७०
वोपदेव १६२
वोस १५, १६२
व्यंजन ८, १०२, १७२
व्यंतर २८२
व्यक्तिचित्र १८, २४२
व्यवहार १६, १९८, २८४
व्याकरण १४, २२, १६१, १६२, ३०३
व्याकरणाचार्य १६४
व्याघ्र २५९
व्यापार १५, ६१, १८९, १९०, १९३, २८४
व्यापारी १२३
व्यायाम १०, १५
व्याल २५९
व्यास १५, १६८
व्यूहरचना १६२
व्रजपाल ७, ६२
व्रजभूषणलाल २२६
व्रत ६७, ८२
व्रती ७२

श

शंकर १५, १६९, २११
शंकु १६, २१७
शंख १७, १४८, २१३, २२५, २२६
शंखनक १०२, १३७, १४४, १४६, १४७, १४८, १४९, १५१
शंखपुर १९५, २९१, २९४
शंसितव्रत ८, ८०, ८२
शक ११, १९३
शकल १३०
शकुंतला २५४
शकुन २९
शक्कर ९५
शक्ति १६, २१७
शक्तिकार्तिकेय २१७
शक्र १२७
शतद्रू २९९
शतपथब्राह्मण १०१
शतावरी ११८
शत्रु २१०
शफ १८३
शफरी २६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शबर ७, १०६
शब्दनिघंटु २९
शब्दरत्नाकर १३९
शब्दवेधी २०२
शब्दशास्त्र १४, १६१
शब्दसंपत्ति ३०३
शब्दानुशासन १६२
शयन ११०
शयनागार १२३
शय्या १३९, २६३
शरकुरली २०३
शरण २५१
शरद ९३, ९५, १०९, ११०
शरव्य २०३
शराब २८१
शराभ्यासभूमि २०२
शरासन २०२
शरीर ११५
शरीरोपचार १६२, १६६
शर्करा ९, ९६, १००
शर्कराढ्य ९६
शर्कराढ्यपय ९
शवर ६६
शवरी ६६
शश १०५
शष्कुली ९, ९९
शस्त्र २१७
शस्त्रविद्या १४, १६२
शस्त्रास्त्र १६, २००
शस्त्री २०३, २०५
शहतूत १३०
शाकुंतल १०, ९२
शाकुनि १०५
शाखा २७९
शाप १७४, १७५, १९९
शार्ङ्ग २०१, २०२
शार्दूल १८५
शास्त्र २२, ८२
शास्त्रभंडार ६, ३०, ५०, ५२, ५३, २०९
शालभंजिका २६३
शालि ९, ९२, ११०
शालिहोत्र १५, १६६, १८२ १८८
शासन ५, ६३
शाही ११, २५८
शिकार ६६
शिकारपुर १९३
शिक्षा १४. २९, १६१, १६५, १७९, २००, २७४
शिखण्डिताण्डव २१
शिखण्डिताण्डवमण्डन २९६
शिखर २९६
शिखरणी १०१
शिखा ८३
शिखामणी ७६
शिखोच्छेदी ८३
शिता ९
शिप्रा ४३, ४५
शिबिर २७
शिर १८३
शिरीष १५४, १६०
शिरीषकुसुमदाम १४, १६०
शिरीषजंघालंकार १४, १६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिरोभूषण १४०
शिलालेख ४०, १६२, १६४, २६८, २७३, २७९
शिल्प ११, १३, ६९, १९७, २०७, २०८, २०९, २११, २४५
शिल्पविज्ञान १७
शिल्पशास्त्र १५, १६७
शिव ७६, ७७
शिवप्रिय १०, ११९
शिव-स्तुति १६९
शिवभारत २१६
शिवालिक २९६, २९९
शिशिर १०९
शिशिरगिरि २८१
शिष्य ३२, ५१, ७५, ७७, १३६
शील १७२
शीलांकाचार्य १२६
शुंडाल १८१
शुक २, ४२, १८४, २५५
शुकनास १५, १६२, १६६
शुक्र १४, १६५
शुक्रनीति २१८
शुक्राचार्य १९२
शुचि ८२
शुनक ७५
शुभचन्द्र ५६
शुभधार्मजिनालय ३२
शुल्क १९२
शुल्क-स्थान १९२
शूद्र ७, ५९, ६१, ६९, ७०
शूद्रक २, २८, ४२, १२७
शूल ११७, २११
शृंगाटक १५६
शृंगार २३७
शृंगारशतक १६९
शेड २४१
शैलूष ७, ६५
शैलेन्द्र २९२
शैव ७६, ७७, ७८
शोण २१, २९८, २९९
शोभा १७२
शोलापुर ३, ३०
शौच ११३
शौनक ७५
श्यामाक ९, ९२, १०३
श्यामांशुक १२९
श्रमण ८, ७७, ८०, ८१, २४४
श्रमणवेलगोला ४०
श्रमणसंघ ७७
श्रवणबेलगोल १६४, २४२
श्राद्ध ९, ६०, १००, १०५
श्रावक ७०, ७५, ७७
श्रावकाचार ४५
श्रावस्ती १९७
श्रीचंद्र २१, २७९
श्रीदेव ४, २२, २९, ३१, १६४, १६५, १६६, १६७, ३०४
श्रीनाथ १६४
श्रीभूति १९२, १९८
श्रीमाल २१, २८०
श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर १८
श्रीसागरम् २१, २९०
श्रीहर्ष १२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रुत ८२
श्रुतदेव ६३, ७७, ७८, ८०, १३१, २५९, २८१, २९३, २९४
श्रुतमुनि ५६, १६४
श्रुतसागर ३, २२, २९, ३०, ३१, ३५, ५१, ५२, ६५, ६६, ९१, १०१, ११९, १२०, १२१, १२३, १२५, १३७, १४९, १५०, १६४, १६५, १६६, १६७, १८९, २२७, २२८, २२९, २३०, २४४, २४८, २५४, ३०४
श्रुति ५९, ६७, ७४
श्रेष्ठी ७, ६१, १९५
श्रोणिफलक १७३
श्रोत्र ६८
श्रोत्रिय ७, ६०, ६१
श्रौत-स्मार्त ७, ६९, ७०
श्लिष्ट २२
श्लोक २७२
श्वेताम्बर १८
श्वेताम्बर-परंपरा २४३

ष

षड्ज २२४
षड्रस ९१
षण्णवतिप्रकरण ५, ३३
षाडव १०१

स

संकर्पण २१४
संकल्पी ४८
संकीर्ण १४, १७०, १७७, १८१
संगमरमर १३२, २४९
संगीत १४, १७, २२३, २३९
संगीतक १६२
संगीतपारिजात २२६, २३४
संगीतरत्नाकर २२६, २२९, २३०, २३२, २३३
संगीतरत्नाकरकार २२७
संगीतराज २२९, २३२
संगीतशास्त्र १७, २२५, २३१
संग्रहालय २६०
संघ ३३, ४०, ५२, ८०, १९३, १९७
संघपति १९३
संघवई १९३
संघवो १९३
संघी ५४
संधिविग्रही २५३
संन्यस्त ७३, ७५
संन्यास ४३, ७३, ७४
संन्यासी १६५
संपादक ३१
संप्रदाय ८, ९, ४९, ७५, ७६, १६३
संयम ८२
संयोग ७५
संवाहक ७, ६४
संसर्गविद्या १५, १६७
संसार ७५
संसिद्ध जल ९५
संस्कार ४३
संस्कृत १, २, ६, ११, २२, २७, २८, ५०, ५१, ५२, १३२, १९३, २१३, ३०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति २३६
संस्थान १७२, १७७, १८३
सकलकीर्ति ५१
सक्तु ९, ९४
सचित्र २७२
सज्जन ९१
सतलज २९९
सतारा २७०
सत्तू १०९, १११
सत्र २८३
सत्व ७५, १७३, १७७, १८३
सदुक्तिकर्णामृत १६९
सन २१८
सपादलक्ष २६८
सप्तच्छद १५५
सप्तर्षि ७७, २६१
सप्तार्णव २२८
सब्जी ९, ७९, ९७
सभंग २७४, २७५
सभा १८
सभामंडप १३६, २३८, २४५
सभ्यता ६९
सम. १०८
समयसुन्दरगणि १६२
समराइच्चकहा ६, ५०
समरांगणसूत्रधार २०, २६०
समवसरण १८, २४५, २५०
समशन २१२
समा ९२
समाजशास्त्री १
समिता ९
समिध ९, ९९
समुद्र १८, १४५, १४९, १८५, २२८, २४३
समुद्रगुप्त २७१
समूर १२४
सम्यक्त्व ६७, ७२
सम्यग्दृष्टि ७२
सम्राट् २७९, २८०, २८१
सरकार २६९
सरगुजा ९३
सरयू २१, २९८, २९९
सरसी ९५
सरस्वती २१, २२, १५४, १५५, २२४, २३५, २९८, २९९, ३०३,
सरस्वतीविलासकमलाकर २५३
सरित्सारणी २५७
सरोवर २१, २९७
सर्प १८, १०७, २३९, २५९
सर्पविषिस्नात ९, १०२
सर्वार्थसिद्धि १६४
सहचरी ८, ८८
सहजन ९७
सहालाप ७५, ७९
सहावास ७५, ७९
सह्य २७१
साँकल २१८
साँची १३५
साँप ४५, ४६, ८८
साँवाँ ९२
सांस्कृतिक ४, ६, ४६
साग ९, ९७
सागरदत्त २८४
साड़ी १२४, १२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवाहन १४५
सात्विक १७, २३५, २३६
साथ १९२
साधक ८, ८०
साधन १९५
साधना ७६, ७७
साधु १, ५, ८, ३९, ४०, ४४, ७४, ७७, ७८, ८०
साधुसंघ ५
साधुसुन्दरगणि १२८
सामगायन १७४
सामज १८१
सामंत २७
सामवेद १७४
सामवेद १७९
सामाजिक ६
सामिता ९९
सामुद्रिक ज्ञान २९
सायक २०३
सारंग १८१
सारथी ३६
सारनाथ २६०
सारसना १३, १४०, १४८, १५०
सारस्वत ९४
सारिका २५५
सार्थ १६, १९५
सार्थपार्थिव १९२
सार्थवाह ७, १५, २९, ६१, १८९, १९२, १९३, १९४
सार्थनीक १९२
सालनक १०३
सालूर १०४
सालेम २७३
सावन ९९, २३९
सावित्री १४८, १५५
सासानी ११, १३२
साह लोहट ५४
साहित्य २, १४, २२, २८, २९, ६९-१३५, १५२, १६१, १८९, १९५, १९७, २०८, २२६, २६८, ३०३
साहित्यकार १
साहित्यिक ४
सिंघाड़ा १५६
सिदवार १४९
सिंदुर १३, १५२, १५७, १५८
सिंघी १९३
सिंधु २१, २८०, २९८, २९९
सिंधुर १८१
सिंधुवार १५९
सिंह १८, १०४, १८४, १८५, २३९, २४३, २५९
सिंहपुर २१, २७६, २९१
सिंहल २१, २७, २९२
सिंहसेन २७६
सिंहासन १८, ६३, २४३
सिक्का १६, १९५, १९६, २१५
सिचयोल्लोच १२
सितश्वित १०, ११५, ११८
सिता ९५, ९६
सितांशुक १२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धान्त ६, २९, १७३
सिद्धान्तकौमुदी २०८
सिद्धिविनिश्चय १६५
सिप्रा २१, २४९, २८३, २९९
सिर २०, १७३
सिरमौर १५६
सिरोसागरम् २९०
सींग १३, १४८
सीमंत १५६, १५७
सीमंतसंतति १३, १५२, १५६
सीरिया १३२, १९३
सुंदरलाल शास्त्री ३०, ३३, १३८
सुख ७५
सुत्तनिपात २६८
सुदत्त ४२, ४५, १६१, १७१
सुदर्शन २१५
सुदर्शना १०, ११८
सुपारी ९८
सुपार्श्व १८, २४१, २४२
सुपार्श्वगत २४२
सुमात्रा २९२
सुबन्धु २८
सुभाषित २९
सुभाषितावलि १६८
सुरतविलास २८०
सुरपादप २६७
सुरा ६३
सुवर्ण १६, १९५, १९६, १९७
सुवर्णकुड्या ११, १२६
सुवर्णगिरि २८४
सुवर्णद्वीप १६, २१, ६१, १९४, १९७, १९२
सुवीर १९४
सुवेला २१, २९६
सुश्रुत ९३, ९९
सुश्रुतसंहिता ११९
सुषिर १७, २२५, २२९, २३३
सूप ९, ९९
सूपशास्त्र ९
सूरन ९७
सूरसेन २१, २८०, २८१
सूरि ८, ८०
सूर्य १८, १९, ९५, १३२, १६६, १७४, १८८, १९४, २४३
सूर्यकान्त २४७, २४८
सृक १८३
सृक्व १७३
सृणि १८०
सेठ १९४
सेतुबंध २१, २९६
सेना २७, २०५, २११, २२८
सेनापति १४१, २३८
सेवा ७७, ७९
सेही ४६, १२५
सैंधव २८०
सैनिक ९३, १३५, १४३
सोंठ १०१
सोना १४३, २२६
सोनार गाँव २७९
सोपारपुर २१, २९०, २९४
सोभाजन ९, ९७, १०३
सोम १० ६३, ११८, १४५, २१८
सोमकीर्ति ५१, ५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोमदत्तसूरि ५५
सोमदेव १, २, ३, ४, ५, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १९, २०, २१, २२, २७, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३८, ३९, ४७, ४८, ५१, ५९, ६२, ६३, ६६, ६७, ७१, ७२, ७५, ७६, ७८, ८०, ८६, ८९, ९३, ९९, १०३, १०६, ११०, ११२, ११६, ११९, १२३, १२६, १३४, १३६, १३९, १४०, १४२, १४३, १४५, १४९, १५२, १५५, १५६, १५८, १६१, १६२, १६६, १७९, १८३, १८७, २००, २०५, २०८, २२३, २३०, २३३, २४०, २५७, २६३, २७०, २७२, २७६, २८१, २८२, २८५, २९०, २९५, ३०४, ३०३
सोलापुर ३०, ३१
सौंदरानंद ४६
सौध २५१
सौराष्ट्र २१, २८१, २८७, २८९
सौवीर २६९
स्कंदकार्तिकेय २१७
स्कंध १८३
स्टेट २८९
स्टेशन २८४
स्तंबेरम १८१
स्तंबिका १९
स्तन २०, २६२
स्तुति ८२
स्तूप १९७, २४८
स्त्री ११, १२, १४७, १५५,
स्थापना १८०
स्थावर ७२
स्नान १०, ७९, ११४
स्निग्ध ९६
स्पर्शन ६८
स्पोर्ट्सस्टेडियम १९
स्मिथ २३६
स्मृति ८, २९, ५९, ६७, ७१
स्याद्वादेश्वर १६१
स्याद्वादोपनिषद् ३४
स्यालकोट २७७
स्रग्जीवी १९१
स्वप्न ४४
स्वयंवर ८, ८९
स्वर १७३, १८३, २३९
स्वर्ग १४५, २६७, २७०
स्वर्ण १६, २७८
स्वस्तिमति २१, २७५, २९०
स्वास्थ्य १०, १०८, १६७

ह

हंदिकी (कृष्णकान्त) ३, ५, १५, ३०, ३१, ४०, १६९, २१०, २७९
हंस १११, १८५, २९७
हंसक १३, १४०, १५०, १५१
हंसतूलिका १२, १२१, १३७
हंसमिथुन ११, १२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हथिनी १७४
हथियार २०७, २०९
हनु १८३
हनुमान् २०८
हय १८७
हरड ११८
हरि ९, १०४
हरिगेह २५०
हरिण ९, १०४
हरिबल ३३
हरिभद्र ६, ५०, ५१, ५२
हरिरोहण १३, १५८
हरिवंशपुराण ७०
हरिषेण ५१
हर्ष ४२, १२२, १३३, १४५, २५६
हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन १२१
हर्षचरित ५, १०, १२६, १५१, २०४, २५६
हल ६२, १८५
हलजीवी १८९
हलदी ९६
हलायुधजीवी ७, ६२
हस्त १८०
हस्तिनापुर २१, २७२, २७५, २८८, २९०
हस्तिपक १७, १७९, २२३
हस्तिश्यामाक ९२
हस्ती १८०, १८१
हस्त्यायुर्वेद १६५, १७९, १८१
हाट १५
हाथ २०
हाथी १८, २३९, २७१
हाथीखाना २५१
हाथी-दांत १३
हार १३, ६५, १४४, १४६, २३५, २७६
हारयष्टि १३, १४०, १४४, १४६, १४७, १४९, १६०
हारिण १०५
हारू रशीद २५७
हिंगु १९२
हिंजीरक १३, १४०, १५०
हिंदी ३०, ३१, ५४, १९३
हिंसा ६, ४७, ४८, ७२, १०६
हिंस्र २५९
हिमगृह २६०
हिमाचल २८१, २९४
हिमालय २१, १७५, २८१, २८२, २९४, २९६, २९७, २९८, २९९
हिरण ४५
हिरण्य १६, १९६
हींग ९६, १०२
हीरालाल ५२
हूण १९३
हृदय १७३
हेनरी २५७
हेमंत १०९, १२५, २९६
हेमकन्यका २०, २५४
हेमकुंजर ५३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेमचंद्र १३७, २०४, २५३, २५८, २६०, २६३, २६४, २८५
हेमचंद्राचार्य १२८
हेमनाममाला ३५
हेमपुर २१, २९०
हेम्पटन कोर्ट २५७
हैदराबाद २८, ३२, २६८, २६९, २७०, २७३
होलालो १२५
ह्लेषित १८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
गुरु बाजार, अमृतसर